

सहजानंद शास्त्रमाला

मोक्ष – शास्त्र प्रवचन

भाग 1

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी “सहजानन्द” महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

भारतवर्षीय वर्णी जैनसाहित्य मंदिर

मोक्षशास्त्र प्रवचन

प्रथम व द्वितीय भाग

Lotus Tea Centre
33 Kamla Nehru Marg

प्रवक्ता:— *Freegan Ujjain (M.P.)*

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री गुरुवर्य मनोहर जी वर्णी,

“श्रीमत्सहजानन्द महाराज”

संपादक—

सुमेरचंद जैन

१५, प्रेमपुरी, मुजफ्फरनगर

प्रकाशक:—

सुमेरचंद जैन

प्रधानमंत्री भा० वर्णी जैनसाहित्य मंदिर

मुजफ्फरनगर

प्रथम संस्करण १०००

सन् १९७७



मोक्षशास्त्र प्रवचन १, २ भाग

(प्रथम भाग)

“सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः” ॥१॥

तत्त्वार्थसूत्रकी जैन आम्नायमें मान्यता और पूज्यता है, इसे सब जानते हैं। एक यही ग्रन्थ ऐसा है, जिसे श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों मानते हैं। क्योंकि इसमें जैनागमका तत्त्वज्ञान है। संक्षेप रूपसे उसका संकलन करने वाली दूसरी इससे अच्छी रचना नहीं हो सकती थी, इस लिये अपने श्वेताम्बर भाइयोंमें भी इसके कुछ सूत्रोंमें थोड़ा हेर फेर होकर इसकी मान्यता है, ऐसा कई विद्वानोंका मत है। इस शास्त्रमें कई तरहकी विशेषता है। ग्रथमानुयोगके विषयको छोड़ अन्य सब अनुयोगोंका वर्णन सूत्ररूपसे इसमें भरा हुआ है। वैसे तो क्षेत्र काल गति आदि सूचना रूप ‘प्रथमानुयोग भी आगया है। इसके विषयके प्रतिपादानका क्रम, शैली और गांभीर्य अति उत्तम है। इनका सूक्ष्म दृष्टिसे मनन करनेवाला परम आगमका अभ्यासी हो सकता है।

‘सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः’ इस प्रारंभके सूत्रमें प्रारम्भमें सम्यक् और साध्याःपद इस सूत्रजी के अन्तिम सूत्रके अंतमें आया हुआ है। जिससे यह अर्थ भी निकल सकता है कि रत्नत्रय जिसका विवेचन आगे पूरे ग्रन्थमें किया गया है वह साध्य है, साधने योग्य है। सम्यक् और साध्याः के मध्यमें जितना प्रवचन है वह हृदयमें धारने योग्य है। यद्यपि ग्रन्थकारका भाव यह रहा हो। ऐसा निश्चय नहीं कर सकते, फिर भी तत्त्वज्ञानियोंके शब्दोंका बड़ा महत्त्व है। एक ही बातमें कई गूढ़ अर्थ भरे रहते हैं। जो अर्थ उनके ध्यानमें दृष्टि उस ओर न होनेसे शायद नहीं भी होता हो, वह अर्थ भी उनके वचनोंसे निकल जाता है। ग्रन्थमें जो १० अध्याय हैं, उनसे भी मतलब निकलता है कि गणना मूलमें ६ तक है, उसके बाद शून्य जोड़ कर १० बनते हैं, जो ‘एक गोल’ ऐसा लिखा जाता है। पदार्थ भी ६ होते हैं, और ये व्यवहारसे हैं।

इन ६ भेदोंसे अतीत पदार्थका स्वरूप शुद्ध निश्चयनयका विषयभूत स्वरूप है। इन ६ भेदोंके उल्लंघन होनेपर वह गोल (GOLE) आता है जो आदि मध्य अंतसे रहित

व ध्येयरूप है। इस तरह उसके दशवें प्रकारका भी संकेत दशवें अध्यायसे ले सकते हैं। दशवें अध्यायमें शुद्ध पर्यायिका वर्णन है जो स्वभावके अनुरूप है। यों तो सामान्य तौरपर सात तत्त्वोंके प्ररूपणमें १० अध्याय बन गये, यह बात ठीक है। इंग्लिशमें गोलको (GOLE) ध्येय कहते हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि ये १० अध्याय क्या हैं ? गोल (ध्येय) है। दसों अध्यायोंमें जीव अजीवके विस्तारका वर्णन है सो इन भेद-पर्याय-विस्तारको समझे बिना इनके एक आश्रयभाव तत्त्वको समझना कठिन है। अतः यह विस्तार भी एक गोलपर पहुंचानेके लिये है। सूत्रके प्रारम्भमें टीकाकार पूज्यपाद स्वामीने मंगलाचरण किया।

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं, कर्मभूभृताम्। ज्ञातारं विध्वतत्त्वानां बन्दे तद्गुण-लब्धये। अर्थात् मोक्षमार्गके नेता, द्रव्यकर्म वा रागद्वेषादि भावकर्मके भेदनेवाले और विश्वके तत्त्वोंके ज्ञाता अथवा विश्व माने सम्पूर्ण तत्त्वोंके ज्ञाताको उनके गुणोंकी प्राप्तिके लिये अथवा उन गुणोंकी प्राप्तिके लिये नमस्कार करता हूँ। इसमें पहिला विशेषण मोक्ष मार्गके नेताका दिया। नेता वह कहलाता जो अपने लक्ष्यकी ओर ले जाय, ले जानेवाला स्वयं जाता और दूसरोंको उस अभीष्ट तक ले जाता। नेताका अर्थ पहुंचा देनेवाला नहीं होता। क्योंकि पहुंचा देने वालेमें वह नेतृत्व शक्ति नहीं होती। नेता तो वही है जो स्वयं उसको प्राप्त करे या उसपर चले और दूसरोंको भी उसमें ले जाय। मोक्षमार्गपर तो स्वयं न चला हो, स्वयं उस भावको जिसने प्राप्त न किया हो तो दूसरोंको मोक्षमार्गमें ले जानेका निमित्तत्व उसमें नहीं हो सकता। अरहंत आप्तमें यह नेतृत्व पूर्णरूपसे पाया जाता है। इसके साथ ही जो पूर्णरूपसे रागद्वेषरहित वीतरागी हो और पूर्ण ज्ञानी (सर्वज्ञ) हों, वही वास्तविक मोक्षमार्गका नेता हो सकता है। मोक्षमार्गका प्रणयन, अल्पज्ञानी या रागी-द्वेषी नहीं कर सकता। इसी लिए ग्रन्थकार इन तीन गुणोंकी प्राप्तिके लिए अथवा उन तीन गुणोंसे विशिष्ट आप्त अरहंतकी अनुभवमें प्राप्तिके लिए उन गुणोंको व तद्विशिष्ट अरहंतको नमस्कार करते हैं। क्योंकि जो जिसका अर्थी होता है वह उसीकी उपासना करता है। लोकमें भी ऐसा देखा जाता है।

किसी भी कार्यमें सफलता पानी हो तो पुरुषको पुरुषार्थी, निर्दोष व ज्ञानी होना ही चाहिए। यहां मोक्षमार्गकी बात है इसके लिए मोक्षमार्गका पुरुषार्थी और निर्दोषतामें सर्वथा निर्दोष व पूर्ण ज्ञानी होना चाहिए। इस श्लोकमें ३ विशेषण दिए हैं, १-मोक्षमार्ग-नेता, २-कर्मभेत्ता, ३-विश्वज्ञाता। मध्यका विशेषण पूर्व और ऊपर दोनोंके लिए कारण

है। जब तक जीव रागादि भावकर्म और मोहनीयादि द्रव्यकर्मका क्षय नहीं करता तब तक वह मोक्षमार्गका अधिकारी, नेता व सर्वज्ञ नहीं बन सकता। जैनसिद्धान्त गुणवादी है व्यक्तिवादी नहीं। जब एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कुछ परिणामन ही नहीं कर सकता, तब व्यक्तिपूजाको महत्त्व का स्थान ही कैसे हो सकता है? जैन सिद्धान्तके इस मर्मको नहीं जाननेवाले लोग न्यायके मार्गमें कदम रखे तो पद पदपर फिसलना पड़ता है। यहाँ मोक्ष-मार्गके नेताका स्मरण इसीलिये है कि उनका ही निमित्तरूपेण हम सबपर उपकार है। कर्मभेताका स्मरण इसलिए किया है कि आखिर निर्विकल्पता ही तो ज्ञानीने केवल शुद्ध दशामें निर्णीत की है। विश्वज्ञाताका स्मरण इसलिए किया है कि अन्तमें शुद्ध अवस्था होनेपर सद्भावरूपेण यही सर्वज्ञता ही तो रहती। अहो, नमस्कार भी हो तो ऐसा हो कि वह नमस्कार परिणामन सफलताकी उन्नति करता रहे। मोक्षमार्गके नेता, कर्मरूपी पहाड़के भेदन करनेवाले व सर्व तत्त्व (त्रिलोक व त्रिकालवर्ती) के जानने वाले चैतन्य-स्वरूप प्रभुको नमस्कार हो।

वे मोक्षमार्गके नेता जो तत्त्वज्ञान बताते हैं, वह सनातन है। क्योंकि ज्ञानको वेद कहते हैं, और बहुत लोगोंने वेदको अपौरुषेय, अनादिसे चला आया माना है। श्रुतज्ञान रूपी वेद, अथवा षट्खण्डागम वेद, महावीर तीर्थकरने नया पैदा किया हो अथवा पहिलेके और दूसरे तीर्थकरोंने पैदा किया हो, ऐसी बात नहीं है। वह ज्ञान (वस्तुका धर्म) किसी का बनाया नहीं बनता, वह तो हमेशा विद्यमान है। आत्माकी आत्मीयता, आत्माकी चेतनता, आत्माकी ज्ञानात्मकता, आत्माका रत्नत्रय — ये सब उसमें अनादिसे हैं, जो संसारी आत्माएं विकारी हैं, उनको दूर करनेका उपाय भी अभीसे नहीं है, वह भी सनातन है। सर्व सनातन है, अतः तत्त्वज्ञानरूपी वेद सनातन हैं, तीर्थकर उसका प्रणयन करते हैं। जगतके प्राणी उस ज्ञानसे (धर्मसे) शून्य होते हैं, वे अपने उस गुण और धर्मको भूले रहते हैं। तब तीर्थकर उसका उद्बोध मात्र कराते हैं। वर्तमान कालमें २४ तीर्थकरोंके निमित्तसे यह उपकार हुआ। इसके पहिले अनंत भूतकालमें, अनंत तीर्थकर होते आये और वे मोक्षमार्ग का प्रणयन करते आए। आगे अनन्त भविष्यमें भी यही क्रम चलता रहेगा। अतः इस दृष्टिमें वेद (ज्ञान) अनादि है उसी सनातन ज्ञानको यहां दिखाया जाता है। “सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः”। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र-इन तीनोंकी एकता मोक्षका मार्ग है।

सत् एक अखण्ड होता है और उसकी पर्याय भी एक समयमें एक होती, उस सत् के भेद शक्तिके आधारपर होते हैं और पर्यायके भेद शक्तिकी व्यञ्जनापर होते हैं। मोक्ष-

मार्गमें भी आत्मा एक है और पर्याय भी एक समयमें एक है। वह पर्याय है निःशंकतापूर्वक ज्ञाता द्रष्टा रहना। इस एक कार्यमें सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्यकी एकता स्पष्ट प्रतीत हो रही हैं। उत्तरोत्तर वह अभेद दृढ़ होता जाता है। अंतिम मोक्षमार्ग चौदहवें गुणस्थानका अंतिम भाग है। गुणरूपसे अंतिम मोक्षमार्ग १२ वें गुणस्थानका अंतिम भाग है। मोक्षमार्गका प्रारंभ चतुर्थ गुणस्थानमें पहुंचनेसे पूर्व मिथ्यात्व गुणस्थानका अंतिम भाग है। अनादि-मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वगुणस्थानको छोड़ कर यदि अन्य गुणस्थान लेता है तो उपशमसम्यक्त्वका गुणस्थान लेता है तो प्रायः अविरतसम्यक्त्वनामक चौथा गुणस्थान पाता है। बिरला कोई जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वके साथ साथ देशव्रत या महाव्रत भी पा लेता है। सर्वत्र जो भी हो दर्शन ज्ञान चारित्र्यका एकत्व है। जैसे मोक्षमार्गमें सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र्यका एकत्व है। वैसे संसारमार्गमें भी देख लो भैया ! मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान, मिथ्याचारित्र्यका एकत्व संसारमार्ग है।

मोक्षशास्त्रकी रचनाका आधार और मूल प्रारम्भकर्ता व रचयिताके धर्मवात्सल्यका दिग्दर्शन—

एक कथानकके आधारपर प्रकट रूपमें जो यह पहिला सूत्र कहा गया है उसकी प्रारम्भिक रचना इस रूपमें नहीं हुई थी और न इस सूत्रकी रचनाका प्रारम्भ उमा स्वामी से हुआ। इसका प्रारम्भ करनेवाला एक भव्य मुमुक्षु श्रावक है। उस मुमुक्षुने एक बार इसका निश्चय करके कि मोक्षमार्गका बताने वाला कमसे कम १ सूत्र बनाकर ही मैं भोजन किया करूंगा। पहिले दिन उसने पहिला सूत्र बनाया 'दर्शनज्ञानचारित्र्याणि मोक्षमार्गः' कुछ समय पीछे इस श्रावकके घर मुनि आये, श्रावककी गृहिणीने पडगाहन करके आहार दिया। मुनि जब बनको जाने लगे तो उनकी दृष्टि भीतपर लिखे हुए उस सूत्रपर पड़ी। कुछ सोच कर उसके आदिमें 'सम्यक्' पद और जोड़ दिया। इस लिए कि दर्शन ज्ञान चारित्र्य मिथ्या भी होते हैं, वे मोक्षके मार्ग नहीं संसारके मार्ग होते हैं, इसलिये संदिग्ध पदको सुधार देना उचित है—ऐसा सोचकर सूत्रके पहिले सम्यक् लिख दिया। मुनि इसके बाद तपोवनमें चले गये। श्रावक जब घरपर आता है और उसकी दृष्टि उस सूत्रपर पड़ती है तो श्रावक रह जाता है, गृहिणीसे पूछता है—कोई आया था घरपर ? वह साधुके आने और उन्हें आहार देनेका समाचार कहती है। जिज्ञासु श्रावक निश्चय करता है कि यह उपकृति उन्हीं साधुकी है। मुनिगमनकी दिशा मालूम कर शीघ्रतासे खोज करता हुआ मुनिके समीप पहुंच जाता है और चरणोंमें नम्रीभूत हो निवेदन करता है कि मुने ! जिस रचनाको मैंने प्रारंभ किया उसके प्रथम प्रयासमें ही मुझसे भूल हो गई, तब आगे वह रचना ठीक ही होगी

यह कैसे हो सकता है, अतः आप ही इसके अधिकारी हैं और इस ग्रन्थका निर्माण आप ही करनेकी कृपा करें। मुनिने उस भव्यका निवेदन स्वीकार किया और उसकी रचना तत्त्वार्थसूत्रके रूपमें की जो कि हमारे समक्षमें है, और हमारे कल्याणके लिये जो एक अनुपम निधि है अथवा जिन योगियोंने सत्य आनन्दका अनुभव किया है उनकी प्राणियोंपर दृष्टि होनेपर यह भाव हुए बिना नहीं रहता है कि ये स्वभावतः आनन्दमय ज्ञानमूर्ति निज प्रभुके दर्शन बिना भटक रहे हैं, ये स्वाधीन शान्तिमार्ग पायें। इस भावनासे आगृहीत पूज्यवाद योगीश्वर ग्रन्थरचना करते हुए सर्व प्रथम एकदम स्पष्ट मोक्षमार्ग बतलाते हैं—“सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः”। प्रकरणवश इतना जान लेनेपर हम इस प्रथमसूत्र पर ही विचार करें। सूत्रका शब्दार्थ प्रस्तावनामें प्रकट हो चुका है। यह सूत्र ही ऐसा अद्भुत है कि सूत्र कहना चाहोगे तो पहिले जो कहोगे वह अर्थ ही हो जावेगा।

सम्यग्दर्शनका अन्तर्बर्हिः स्वरूप—अब हम सम्यग्दर्शनके बारेमें विशेष विचार करें—जिस स्वरूपसे विशिष्ट जो पदार्थ हैं उनका उस प्रकार श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। यह परिभाषा व्यवहारसे है। लेकिन निश्चयका अर्थ भी इसीसे घटित होता है। सत् असत्, नित्य-अनित्य, सामान्य-विशेष और एक-अनेक आदि धर्म विशिष्ट जीव अजीव तत्त्व हैं। उनकी विकारी पर्यायसे आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष मिलकर ७ भी तत्त्व हैं। उन सातोंमें जीव साररूप है, उस जीवमें भी उसका जो निर्विकार शुद्ध चित् भाव है, जो आनन्दस्वरूप है वह सार है। उसका श्रद्धान होना, देखना, अनुभवन होना सम्यग्दर्शन है, सम्यक् का सम्यक् दर्शन होना सम्यग्दर्शन है।

पदार्थकी सहज सुन्दरता—प्रत्येक पदार्थ अपने एकत्वनिश्चयमें प्राप्त हो तो सुन्दर है, सम्यक् है। अपने स्वभावके विरुद्धपरके निमित्तको पाकर स्वविभावशक्तिसे जायमान विभावोंकी ओर उन्मुखता हुई कि बड़े विसंवाद बन जाते हैं। वस्तु अखंड एकस्वभावी है। उसकी अनंतानंत पर्यायोंमें भी वह एक स्वभाव सदा अंतः प्रकाशमान रहता है। इस अशुद्ध संसार अवस्थामें भी तीव्र मिथ्यादृष्टिजीव तक अपने स्वभावके कारण पदार्थोंको बहिर्मुखतया भी जाननेसे पहिले आत्मसामान्यका स्पर्श करते हैं। हां यह बात अवश्य है कि जिसके स्पर्शका यत्न होता है उसे स्पर्श कर भी उसकी संचेतना बहिरात्मा नहीं करते हैं। सिद्ध-ान्तशास्त्रोंमें यह बिल्कुल स्पष्ट लिखा है कि कुमतिज्ञानसे भी पहिले चक्षुर्दर्शन होता है। यह दर्शन क्या है? कहीं आँखसे देखनेका नाम चक्षुर्दर्शन नहीं है, किन्तु चक्षुरिन्द्रियके निमित्तसे उत्पन्न हुए ज्ञानसे पहिले जाननेका बल विकसित करनेके अर्थ उपयोग आत्माकी ओर भुक्तता

है तब जो सामान्य अवलोकन है उसे चक्षुर्दर्शन कहते हैं। इसी तरह चक्षुको छोड़कर अन्य इन्द्रिय व मनके निमित्तसे जायमान ज्ञानसे पहिले जो दर्शन होता है उसे अचक्षुर्दर्शन कहते हैं। देखो भैया ! आत्मकल्याणके लिये सुविधासामग्री सदा तैयार है, जो भव्य उसका उपयोग करले वह धन्य है। यह चैतन्यस्वभाव जो कि अखंड अविनाशी स्वतःसिद्ध है वही सुन्दरतम है, सम्यक् है। इस सम्यक् का सम्यक् विधिसे अर्थात् भेद विकल्पोंसे निर्णय कर भेदपक्ष छोड़कर अभेद दृष्टिके अवलंबनके अनंतर समस्त दृष्टिपक्षके विकल्पोंसे हटकर अभेदानुभव करना सम्यग्दर्शन है। जीवके लिये सम्यग्दर्शनके समान और कोई उपकारी नहीं है। इसके बिना ही वह कुज्ञानी और मिथ्याचारी बना रहता है। इसी लिये समन्तभद्र स्वापी कहते हैं—न सम्यक्त्वसमं किञ्चित्त्रैकाल्ये त्रिजगत्पि। श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तनुभूताम् ॥ तीन काल और तीनों लोकोंमें सम्यक्त्वके समान कल्याणकारी दूसरा नहीं और मिथ्यात्वके समान अकल्याणकारी दूसरा नहीं। यह मिथ्यात्व सम्यग्दर्शनके ठीक विपरीतरूप होता है। इस सम्यग्दर्शनकी महिमा कहनेमें कोई समर्थ नहीं है। सम्यक्त्वके बिना पूजा, दान, तप आदि भी वास्तविक नहीं होते, योग्य नहीं होते। उन सब अच्छे कार्योंका लक्ष्य संसारकी तरफ चला जाता, विकल्प बाहिरकी तरफ दौड़ते रहते।

प्राप्त सुविधाके सदुपयोगमें बुद्धिमान्—हमारी प्रारम्भिक निगोद दशा कैसी थी ? हमवेचारे थे, असहाय थे। वेचारे अर्थात् जिनका चारा नहीं, आश्रय नहीं। ऐसे वेचारे तो हम निगोदमें अथवा उसके ऊपर भी असंज्ञों पर्यायोंमें ही थे। संज्ञा (मन) होने पर सोचने समझनेकी शक्ति आनेपर वेचारा मन कहाँ रहा ? अब तो यथार्थ पुरुषार्थ करनेकी शक्ति इसमें आ गई। फिर भी हम वेचारेके वेचारे बने रहें और सम्यक्त्वको जागृत न करें तो यह कितनी भारी भूल होगी ? मनुष्य—जन्मकी सफलता अपने स्वरूपको समझनेमें है।

चैतन्य महाप्रभुकी परस्वरूपा—देखो भैया ! निज चैतन्य महाप्रभुकी सत्कृपाः—निगोद जैसे दुष्पदसे निकलनेमें चैतन्यभावके सद्बिकासका ही तो अनुग्रह है। यह चैतन्य महाप्रभु जैसे जैसे प्रसन्न होता गया उत्तरोत्तर समृद्धि पाता हुआ आज सैनी पञ्चेन्द्रिय मनुष्यकी दशामें आ गया जिसके लिए इन्द्र भी तरसते हैं। यदि अब भी हमने चैतन्यदेवकी भक्ति नहीं की और विषय कषायकी वृत्तिमें प्रभुपर हमला किया तो हमारी बड़ी दुर्गति होगी। एक साधु जंगलमें बैठे ध्यान कर रहे थे। उनके पास एक चूहा बैठा रहा करता था। अचानक बिलावने उसपर हमला करना चाहा तो भट दयावश साधुने आशीर्वाद दिया “बिडालो भव”। वह बिलाव बन गया। अब बिलावका तो डर न रहा किन्तु कुत्ताने आक्रमण करना चाहा तो आशीर्वाद मिला कि श्वा भव। कुत्ता बन गया। फिर भपटा व्याघ्र, सो कहा

“व्याघ्रो भव” । फिर सिंह झपटा तो आशीर्वाद दिया “सिंहो भव” । वह बूढ़ा उत्तरोत्तर वृद्धिसे सिंह बन गया । अब सिंहको लगी भूख, सो साधुको ही सिंहने खाना चाहा, तब आशीर्वाद मिला “पुनर्मूषको भव” । बन्धुवो ! इसी प्रकार चैतन्यदेवका आशीर्वाद पाकर यह जीव निगोदसे निकल कर मनुष्य हो गया । यदि वह मनुष्य जिस चैतन्यदेवकी प्रसन्नतासे उन्नत बना, उसी चैतन्यदेवपर आक्रमण करेगा तो भट्ट यही आशीर्वाद मिलेगा कि “पुनः निगोदो भव” अर्थात् फिर निगोद बन जा ।

लब्धियोंका बल—इस मनुष्य-जन्ममें देखो कितनी शक्ति प्रकट हो गई है, विवेक उसके उपयोगका होना चाहिये । चाहे उपयोगको स्वभाव की ओर लगादो, चाहे विषय कषाकी ओर लगा दो । भावनासे ही सब काम होता है । इस मनुष्य-जन्ममें सम्यक्त्व प्राप्त होनेके योग्य क्षयोपशमलब्धि प्राप्त है । क्योंकि भला बुरा सोचने समझनेका हममें पर्याप्त ज्ञान है । देशना लब्धि अर्थात् तत्त्वज्ञानीका उपदेश मिलना । वह भी हमारे लिये उपलब्ध है । विशुद्धिलब्धि आत्मपरिणामोंकी विशेष निर्मलताको कहते हैं । यदि हम चाहें तो परिणामोंमें कठोरता तीव्रता तामसी वृत्ति न आने दें । परिणामोंमें कठोरता रखना या कोमलता रखना यह हमारे हाथकी बात है क्योंकि इस लायक योग्यता प्रकट होगई । इन तीन लब्धियोंकी प्राप्ति हो जानेपर चौथी प्रायोग्यलब्धि होती है । विशुद्धि बढ़नेपर जब कर्मोंकी लम्बी स्थिति पढ़ना बंद हो जाती है और अधिकसे अधिक अन्तःकोटाकोटि सागर प्रमाण कर्मोंका स्थितिबन्ध रह जाता है, तब यह विशुद्धि प्रायोग्यलब्धि कहलाती है । इस प्रायोग्यलब्धि-वाला जीव पहिले गुणस्थानसे लेकर छटवें तक बंधने योग्य कितने ही कर्मोंका बन्ध नहीं करता । यद्यपि सम्यक्त्व होजाने पर चौथे, पांचवें और छटवें गुणस्थानमें बंधने योग्य उन प्रकृतियोंका बन्ध होने लगता है, लेकिन सम्यक्त्वके उन्मुख होनेपर प्रायोग्य लब्धिमें यह बंध नहीं होता, उतने समयके लिए वह रुक जाता है । जैसे जिस वरकी शादी होती है, उसको विवाह होनेके समय तकके लिए बादशाह मान लिया जाता है । पीछे विवाह हो चुकनेपर फिर वह बादशाहीपन नहीं रहता । उसी तरह कुछ प्रकृतियोंके बंधविचारमें प्रायोग्यलब्धिवाले मिथ्यादृष्टिके अविरत सम्यग्दृष्टि देशविरत या प्रमत्तविरत जैसी बादशाहियत समझना चाहिये । इस लब्धिके प्राप्त हो जानेपर जीवके आगे आगे समयमें असंख्यातगुणी असंख्यातगुणी निर्जरा होने लगती है और बंध इसी क्रमसे हीन-हीन ।

चौतीस बन्धापसरण—कर्मोंकी स्थिति पथ्यके असंख्यातवें भाग कम हो होकर पृथक्त्वशतसागर कम हो जाने पर नरक आयुके बंधका होना रुक जाता है उसके बाद की हीन-हीन स्थितियोंमें क्रमशः तिर्यञ्च, मनुष्य और देवायुके बंधका अभाव होता है । फिर

नरकगति नरकगत्यानु—पूर्वी इन २ प्रकृतियोंका बंधव्युच्छेद हो जाता है। पुनः सूक्ष्म अपर्याप्त और साधारण इन प्रकृतियोंका सम्मिलित बंध रुक जाता है। इस प्रायोग्यलब्धिमें ३४ बंधापसरण होते हैं। प्रत्येक बंधापसरणमें पृथक्त्वशत सागर स्थिति कम होती है। वह हीनता पत्यके असंख्यातवें भाग कम हो होकर होती है। यहां तक ६ बंधापसरण हुए। इसी प्रकार ये २८ बंधापसरण कहना चाहिये। ७—सूक्ष्म अपर्याप्त प्रत्येक, ८—बादर अपर्याप्त साधारण, ९—बादर अपर्याप्त प्रत्येक, १०—द्वीन्द्रिय अपर्याप्त, ११—त्रीन्द्रिय अपर्याप्त, १२—चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त, १३—असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, १४—संज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त, १५—सूक्ष्म पर्याप्त साधारण, १६—सूक्ष्म पर्याप्त प्रत्येक, १७—बादर पर्याप्त साधारण, १८—बादर पर्याप्त प्रत्येक एकेन्द्रिय आताप स्थावर, १९—द्वीन्द्रिय पर्याप्त, २०—त्रीन्द्रिय पर्याप्त, २१—चतुरिन्द्रिय पर्याप्त, २२—असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त, २३—तिर्यग्गति तिर्यग्गत्यानुपूर्वी उद्योत, २४—नीच गोत्र, २५—अप्रशस्तविहायोगति दुर्भंग दुःस्वर अनादेय, २६—हुंडकसंस्थान असंप्राप्तसृपाटिका संहनन, २७—नपुंसकवेद, २८—वामनसंस्थान, कीलक संहनन, २९—कुब्जकसंस्थान अर्द्धनाराचसंहनन, ३०—स्त्रीवेद, ३१—स्वातिसंस्थान नाराचसंहनन, ३२—न्यग्रोधपरिमंडलसंस्थान वज्रनाराचसंहनन, ३३—मनुष्यगति मनुष्यगत्यानुपूर्वी औदारिकाङ्गोपाङ्ग वज्रवृषभनाराचसंहनन, और ३४ वीं बारमें आसाता अरति शोक अस्थिर अशुभ अयशः कीर्ति। ये बंधापसरणकी प्रकृतियां वे हैं जो १, २, ४, ६, ७ वें गुणस्थानमें बंधसे व्युच्छिन्न होती है। यहां विचारिये यह प्रायोग्यलब्धिवाला जीव भी कितना बलिष्ठ हो रहा है, सातवें गुणस्थान तक की अनेक प्रकृतियोंके बंधको इतने समयके लिए तो हटा ही देता है।

करणलब्धिकी नियामकता—उक्त करामात प्रायोग्यलब्धिमें रहती है। फिर आगे करणलब्धिका प्रारंभ होता है, करण नाम निर्मल परिणामोंका है। अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके करणलब्धि प्रथमोपशम—सम्यक्त्वके प्रादुर्भावके लिए होती है। करण ३ होते हैं— १ अधःकरण, २ अपूर्वकरण, ३ अनिवृत्तिकरण। अव्यवस्थित परिणाम जब किसी उत्तम व्यवस्थामें आनेको होते हैं तो एक सदृश व्यवस्थित होनेसे पहिले २ प्रकारकी अवस्थायें होती हैं, वे हैं अधःकरण और अपूर्वकरण। अधःकरणपरिणामवाले जीवोंके परिणाम एकही समय अथवा कुछ समय पहिलेके व आगेके समयोंमें सदृश अथवा विसदृश होते हैं। अपूर्वकरणपरिणामों में एक ही समीपवर्ती आत्मावोंके परिणाम चाहे सदृश होजावें परन्तु आगे-पीछे के समीपवर्ती आत्मावोंके परिणाम अपूर्व ही होते हैं। अनिवृत्तिकरण परिणाममें एक समयवर्ती आत्मावों के परिणाम एक सदृश ही होते हैं। लोकमें भी व्यवस्थासम्बन्धी यत्न ऐसा ही देखा जाता है। जैसे अव्यवस्थित घूमने वाले सिपाहियोंको कमाण्डर व्यवस्थासेसमीप आनेकी आज्ञा

दे तब वे सिपाही कुछ लाइनमें व कुछ बाहर, इसी प्रकार कुछ बिना पैर मिले व कुछ मिले पैर वाले होते हैं। दूसरे यत्नमें लाइन एक हो जाती है, परन्तु पैरोंका मेल बेमेल बना रहता है। तीसरे यत्नमें सर्वथा व्यवस्थित हो जाते हैं। इसी प्रकार यहां सम्यक्त्वके प्रादुर्भावके लिए जो करणयत्न है उसमें त्रिविधता होती है। इन करणोंमें सम्यक्त्वघातक निषेकोंके उपशमका यत्न व अन्तरकरण होता है। जिन समयोंमें सम्यक्त्व रहेगा उन समयोंकी स्थितिका सम्यक्त्वघातक निषेक नहीं रहता है उस स्थिति वाले निषेकआगाल प्रत्यागालकी विधिसे कुछ पहिले कुछ पश्चात् की स्थिति वाले निषेकोंमें पहुंच लेते हैं।

सम्यक्त्वोत्पत्ति के प्रारंभमें निर्मलताकी विशेषता—उस समय जीवके भारी निर्मलता रहती है इतनी निर्मलता कि शीघ्र शुद्धि बड़े तो अंतर्मुहूर्तमें (जिस अंतर्मुहूर्तके अवान्तर १४ अन्तर्मुहूर्त १४ तरह के कार्यों के लिए हैं।) मोक्ष पा सकता है। वे चौदह अन्तर्मुहूर्त चौदह कार्योंके लिये इस प्रकार हैं :—पहिला अन्तर्मुहूर्त अन्तर करणका, दूसरा उपशम सम्यक्त्व प्राप्त करनेका, तीसरा अन्तर्मुहूर्त क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त करने का, चौथा व ५ वां अन्तर्मुहूर्त अनंतानुबन्धीके विसंयोजनका व दर्शनमोहके क्षयका, ६ वां अन्तर्मुहूर्त अप्रमत्तविरत गुणस्थान होने का, ७ वां अन्तर्मुहूर्त प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानोंमें अदल बदल होने का, इसमें छोटे-छोटे असंख्यात अन्तर्मुहूर्त हैं। ८ वां अन्तर्मुहूर्त अधःकरणका, ९ वां अन्तर्मुहूर्त अपूर्वकरणका, १० वां अन्तर्मुहूर्त अनिवृत्तिकरणका, ११ वां अंतर्मुहूर्त सूक्ष्म साम्परायका, १२ वां अंतर्मुहूर्त क्षीणमोहका, १३ वां अंतर्मुहूर्त सयोग केवली होनेका, चौदहवां अंतर्मुहूर्त अयोगकेवली होकर सिद्ध होने का है। इन १४ अंतर्मुहूर्तोंका काल बहुत थोड़ा है। सबका समय मिलकर भी अंतर्मुहूर्त ही होता है। क्योंकि अंतर्मुहूर्तके अगणित भेद हैं। इस तरह सम्यक्त्वकी प्राप्ति होनेपर मोक्ष प्राप्त होनेमें देर नहीं लगती यह स्पष्ट हुआ। यदि विलम्ब भी हो तो कुछ कम अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन कालसे अधिक विलम्ब तो हो ही नहीं सकता।

सम्यक्त्वमें लक्ष्यभूत तत्त्वकी मीमांसा—(१) आत्मश्रद्धाको सम्यग्दर्शन, (२) आत्मज्ञानको सम्यग्ज्ञान और (३) आत्मलीनताको सम्यक्चारित्र कहते हैं। व्यवहारसे सात तत्त्वोंका यथार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शन, ७ तत्त्वोंका यथार्थ ज्ञान सम्यग्ज्ञान और पाप-निवृत्तिको सम्यक्चारित्र कहते हैं। सम्यक्त्वभावको निमित्त तीन स्थितियां हैं—(१) अनंतानुबन्धी क्रोध, मान, माया लोभ व मिथ्यात्व—इन पांच प्रकृतियोंका उपशम तथा वेदक

योग्य सादिमिथ्यादृष्टिके सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति मिलकर ७ प्रकृतियोंका उपशम है (२) इन्हीं ७ का क्षयोपशम व (३) व इन्हीं ७ का क्षय है सो क्षय तो वेदकसम्यग्दृष्टि ही करता है। उपशम व क्षयोपशमको मिथ्यादृष्टि कर लेता है। क्षयोपशमसम्यक्त्वको उपशमसम्यग्दृष्टि भी करता है। प्रकृतियोंके उपशमादिका निमित्त है अखंड चैतन्य स्वभावका ध्यान। इस ध्यानके लिये आवश्यक है तत्त्वाभ्यास। तत्त्वाभ्यासके लिये द्रव्य, गुण, पर्यायोंकी समस्या अच्छी तरहसे हल कर लेना चाहिये। द्रव्य सत्स्वरूप, स्वतःसिद्ध, अनादिनिधन, स्वसहाय व अखण्ड होता है। जो कुछ दीखता है उसके खंड-खंड हो जाते हैं वह द्रव्य नहीं, उनमें अविभागी जो एकप्रदेशी सत् है वह द्रव्य है। आत्मा तो हमारा आपका सबका एक-एक अखंड है वह द्रव्य है। इसी तरह एक धर्म द्रव्य, एक अधर्म द्रव्य, एक आकाश द्रव्य, असंख्यात कालाणु एक-एक ये सब द्रव्य हैं। द्रव्य, अनंतशक्त्यात्मक होता है, एक-एक शक्तिका नाम एक-एक गुण है, उन सब गुणोंसे पर्यायें उत्पन्न होती हैं। यहां जीवका निमित्त पाकर अजीव कर्ममें व अजीव कर्मका धनिष्ठ संयोग विपाकका या अभावका निमित्त पाकर जीवमें कई अवस्थायें होगई हैं, वे संक्षेपमें ५ हैं—आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा व मोक्ष। आस्रव जिन प्रकृतियोंका हुआ है वे पुण्यपापके भेदसे २ प्रकारके हैं, तथा जीव व अजीवकी अपेक्षा २ मूलद्रव्य हैं इस प्रकार सब तत्त्व ६ हुए। इन भेदों—विकल्पोंका यथार्थ ज्ञान करके पर्यायों को पर्यायोंके स्रोत मूलद्रव्यके उन्मुख करे, निमित्तकी दृष्टिका उपयोग न करे, तब पर्यायें विलीन होकर एक मात्र द्रव्यदृष्टि रहेगी, वहां भी निश्चयपक्ष छोड़कर अत्यंत निष्पक्ष होता हुआ स्वभावका अनुभव करें। सर्व भेद विकल्पोंको छोड़कर अभेदस्वभावमें स्थिर रहें। यही कल्याणका असोद्य उपाय है।

सम्यक्त्वका अग्रगुणोंसे भेद व अभेद—ये तीनों सम्यक्त्व ज्ञान तथा चारित्रसे निजस्वरूप और नाम आदिकी अपेक्षासे भिन्न-भिन्न हैं, किन्तु अमूर्त आत्माके असंख्यात प्रदेशोंमें एकमेक होकर रहते इसलिये अभिन्न हैं। आजकल का राष्ट्रध्वज भी जैन सिद्धांतके अनुरूप है। राष्ट्रीय तिरंगा भन्डामें रत्नत्रयकी कल्पना घटित होती है। साहित्यकार रुचिका वर्णन पीले रंगसे करते हैं। और, जैनधर्ममें रुचिको सम्यग्दर्शन कहते हैं। हरा रंग हरे-भरेपन का द्योतक है, यह सम्यक् चारित्रको बतलाता है, क्योंकि उससे शुद्ध आत्मपर्यायिकी उत्पत्ति होती है। और ज्ञानका वर्णन सफेद रंगसे किया जाता है, तब सफेद रंग सम्यग्ज्ञानका प्रतीक हुआ। इस तरह रत्नत्रयका प्रतीक, पीला, हरा और सफेद रंग वाला तिरंगा भन्डा (राष्ट्रीय भंडा) है। उसमें जो चक्रका चिन्ह है उसमें २४ आरे रहते जिनका अर्थ होता है कि उस मोक्षमार्गरूप रत्नत्रयको २४ तीर्थकरोंने प्रकट किया है।

तिरंगा भंडा २४ तीर्थंकरों द्वारा प्ररूपित, प्रदर्शित आत्माके रत्नत्रय-धर्मको या कहिये मोक्षमार्गको स्मरण कराता है। हमको उस मोक्षमार्गमें अपना पुरुषार्थ प्रकट करना चाहिये। इस भवसे नहीं तो अगले भवोंसे हम मोक्ष पानेके अधिकारी हो जावें। मनुष्य-जीवनमें यह सबसे बड़ा काम है।

आत्मपौरुष करनेका स्मरणः— कोई कहे कि इस कालमें तो मोक्ष होता नहीं है, फिर उसके लिये प्रयत्न क्यों किया जाय ? तो उत्तर है कि भाई ! यदि तुझे मोक्षकी चाह है तो उस मार्गमें लग जाना ही एक तेरा कर्तव्य है। अब नहीं तो तब, मोक्ष होकर ही रहेगा। यदि तुझे आज ही कुछ दिनों या वर्षोंमें मोक्ष मिले, तभी तू उसके लिये प्रयत्न करेगा, नहीं तो नहीं, तो यह तेरी आत्मवंचना है, बहाना है। तू आत्मकर्तव्यसे पीछे हटनेके लिये झूठी दलील चलाना चाहता है और फिर यह भी तो सोच कि बड़े बड़े महापुरुषोंको भी सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिके बाद मोक्ष पा लेनेमें कितना समय लगा है ? सभी जीवोंको तो अंतर्मुहूर्तमें मोक्ष नहीं हो जाता' अरबों-खरबों वर्ष तक इसकी साधनामें बीत जाते हैं। ऋषभदेव भगवान्को कुछ कम १ लाख पूर्व अर्थात् हजारों अरब वर्ष लग गया। तू तो उनसे जल्दी भी जा सकता है। यहां से मरकर विदेहमें उत्पन्न होकर तो ८-९ वर्षमें ही सिद्ध बन सकता है। हां, कमी यह है कि मरते समय हमारे सम्यक्त्व रहे तो विदेहमें नहीं पैदा हो सकते। उस विदेहकी भी चिन्ता हटावो। सम्यक्त्वका वियोग मत होओ तू भव को मत देख। देख भव रहित निज चैतन्य स्वभावको, आत्म संतोष और धैर्यपूर्वक मोक्षपथमें चलते रहनेके लिये ज्ञानवृत्ति रूप उद्यम कर, तू भवको मत देख। यदि स्वभावकी ओर उपयोग हो तो तुमही बतावो क्या भवका उपयोग रहता है ? स्वभाव तो शुद्ध अशुद्ध सभी पर्यायोंसे विलक्षण एक केवल शुद्ध है। स्वभावमें भव कहाँ हैं ? देखो-देखो, स्वभावमें बड़ी महिमा है तभी तो इसके आश्रयसे इसका धनी महान् बन जाता है। स्वभाव अखंड है तभी तो अखंडके आश्रय से अन्तमें ज्ञान त्रिलोक, त्रिकाल-वर्ती समस्त पदार्थोंका अखंड ज्ञाता हो जाता है। स्वभाव निर्विकल्प है तभी तो स्वभावके आश्रयसे इसका धनी निर्विकल्प हो जाता है। स्वभाव अविनाशी है तभी तो इसके आश्रयसे इसका धनी विषम पर्याय के अभाव रूप अविनाशी एक समान पर्यायोंके अविनश्य प्रवाह रूप अविनाशी पदको प्रकट कर लेता है। अहो ! बड़े बड़े योगीन्द्रोंने भी मात्र एक आत्मस्वभावकी उपासना की। यह बात तो बिल्कुल पूर्ण प्रकट है, साईं समें उत्तीर्ण निःसंदेह बात है। मित्रो ! एक इस ही ज्ञानस्वभाव का, चैतन्यस्वभावका आश्रय लो, फिर मुक्ति हस्तगत ही है। भले ही कुछ समय और लग जावे, परन्तु विचारों तो सही, अनन्तान्त कालके सामने असंख्यात भी समय क्या चीज है ?

ममता का अर्थ भगवान् आत्मदेव पर अन्याय—एक सच्ची कहानी है सुनिये—एक तपस्वी पलाश वृक्षके नीचे ध्यान लगाये थे। एक श्रावक भक्त आया, मुनिका ध्यान टूटा। धर्मकथा हुई। श्रावक भगवान् के समवशरणमें जा रहा था। वहां मुनिसे बिदा मांग चलने लगा। मुनिने कहा, मेरे संसारके कितने भव बाकी हैं, मेरा मोक्ष कब होगा? भगवान् से पूछना। श्रावक भगवान् के समवशरणमें गया। तत्त्वज्ञान प्राप्त किया और मुनिके संसारी भवोंको भी मालूम किया। वापिस समवशरण से आया तो इसी बीच मुनिराज पलाश वृक्षके नीचेसे उठकर इमलीके वृक्षके नीचे पहुंच गये। श्रावक मुनिको इमलीके वृक्षके नीचे बैठा देख खिन्न होता है। मुनि पूछते हैं क्या कारण है? दुःख मनानेका। श्रावक बोलता है कि महाराज! भगवान् ने अपनी दिव्य वाणीमें आपके प्रश्नका उत्तर दिया है कि आप जिस वृक्षके नीचे बैठे हैं उतने ही भव बाकी हैं। इस बातसे मुझे खुशी होगई थी क्योंकि आप उस समय पलाश वृक्षके नीचे बैठे थे, जिसमें कि इनेगिने पत्ते थे। लेकिन अब आप इमलीके नीचे बैठे हैं। जिसके पत्तोंकी गणना करना कठिन है। इसी बातको विचारकर मनमें क्लेश हो रहा है कि अभी आपके इतने अधिक भव संसारके पड़े हैं। मुनि खुश होते हैं और श्रावकको समझाते हैं कि इसमें अप्रसन्न होनेकी बात नहीं, खुशी मनानेकी बात है। अनादि से कितने भव बीते सो क्या पता? अब यह तो निश्चय होगया कि इतने ही भव शेष हैं अधिक नहीं। और भैया देखो इतने ही भव थोड़े कालमें निकल सकते हैं। एक अन्तर्मुहूर्त में ६६३३६ भवोंसे निपट लिया जाता है। अब मुमुक्षु को मोक्षमार्गमें प्रयत्न करनेकी सच्ची प्रेरणा हासिल करना चाहिये, घबड़ाहटका तो कुछ काम भी नहीं। मोक्ष मार्गमें भी सम्यग्दर्शन जो खास महत्त्व रखता है, इसकी प्राप्तिके लिये कमर कस लेना चाहिये। जीव और शरीरका भेद विज्ञान और फिर आत्मस्वरूपका अनुभव जिस किसी तरह करनेकी चेष्टा पूरी-पूरी करना चाहिये। तब ही पुरुषार्थी कहलाओगे।

निर्मल पर्यायका साधन—आत्माका धर्म चैतन्य स्वभाव है जो न मलिन है, न विमल है किन्तु अपने स्वभावसे ही सदा एक स्वभाव सर्वचिद्वृत्तियों का स्रोत है। उसकी दृष्टिसे कार्यधर्म होता है। करणधर्मकी दृष्टि अथवा उपादत्ति बिना कार्यधर्म होता नहीं है। यह कार्यधर्म न पापवृत्तियोंसे प्रकट होता है और न पुण्यवृत्तियों से। किसी भी विचारसे धर्म प्रकट नहीं होता। सनातन निर्मल स्वभावकी दृष्टि व उपादत्तिसे निर्मल पर्याय प्रकट होती है। निर्मल पर्याय आकुलता अनुभवसे रहित पूर्ण सुखमय होती है। अतः सुख

प्राप्तिके अर्थ अनादि अनन्त अहेतुक चैतन्यस्वभावमय निज सहजसिद्ध भगवानके दर्शन करना चाहिये ।

मोक्षमार्गके नायक का अभिवन्दन— इस शास्त्रके मंगलाचरणका अर्थ है—मोक्षमार्ग के नेताको, कर्मपहाड़ों के भेदने वालेको, समस्त तत्त्वोंके जानने वाले को उन गुणों की शक्ति के लिए नमस्कार करता हूं। इन तीन विशेषणों में तीन बातें आयीं—हितोपदेशी वीतराग और सर्वज्ञ। मोक्षमार्ग के नेता हैं। इसका अर्थ है कि हितोपदेश करते हैं, नेता उपदेशक ही तो होता है। जो खुद चले और दूसरों को सममार्गमें ले जाय उसे कहते हैं नेता। नेता का अर्थ है ले जाने वाला। ले जाने की बात तब ही होती है जब स्वयं पहुंच जाय, सो वे स्वयं पहुंच चुके और दूसरों को भी पहुंचाते हैं। यहाँ मोक्षमार्ग के नेता का वयों पहिले शब्दमें स्मरण किया है। यों कि जिस ग्रन्थ का प्रारम्भ किया जा रहा है वह मोक्षमार्ग का प्रतिपादन करने वाला है। सो इस शास्त्र के मूल प्रणेता के प्रति कृतज्ञता हो और शास्त्र की प्रमाणिकता जाहिर हो। मोक्षमार्ग का नेता वही हो सकता जो कर्मपहाड़ का भेदनहार है। और जो समस्त तत्त्वों का जाननहार हो। ये तीनों विशेषण परस्पर एक दूसरे के पोषक हैं। इनमें परस्पर कारण कार्य भाव लगाया जा सकता है। मोक्षमार्गका नेता है, कर्मभूतका भेत्ता है, विश्वतत्त्व का ज्ञाता है, विश्वतत्त्वका ज्ञाता कर्म के भेदन बिना नहीं हो सकता। इसलिए कर्मभूत का भेत्ता यह विशेषण बीचमें दिया हुआ है। इसका प्रभाव पड़िले विशेषण पर भी है और तृतीय विशेषण पर भी है। वन्दना करने वाला भव्य पुरुष इसमें अपना प्रयोजन दिखाता है कि उन गुणों की प्राप्ति के लिए मैं नमस्कार करता हूं। जो प्रभु के गुण हैं वे गुण मुझमें आ जायें। यहां स्वरूप दृष्टिसे बात समझिये जो प्रभुके गुण हैं वे मेरे में कैसे आ सकते? वे तो प्रभु में ही हैं, लेकिन गुणत्व सामान्यकी दृष्टि से गुण गुण एक चोज हैं। वे गुण मुझे मिलें, उनके गुण मुझे मिलें, यह बात नहीं कही जा रही है। और यदि ऐसा भी कहा जाय तो गुणस्वरूपकी दृष्टिसे अर्थ लगाता है। यह मंगलाचरण सूत्रकारका है या नहीं, इस विषयमें कई धारयें चल रही हैं चर्चा की। कुछ का मतव्य है कि यह तत्त्वार्थसूत्रकर्ता श्री उमा स्वामी के द्वारा किया गया मंगला चरण नहीं है। कुछ का अभिप्राय है कि उनके द्वारा किया गया मंगलाचरण है। कुछ भी हो लेकिन इस मंगलाचरण का इतना अधिक महत्त्व है कि इस मंगला चरण का अर्थ स्पष्ट करने के लिए विद्यानन्द स्वामी ने एक आप्त परीक्षा नामका स्वतंत्र ग्रन्थ लिखा है। वह एक दार्शनिक ग्रन्थ है, जिसमें समस्त विवेचन किया गया कि यह ही भगवाण क्यों मोक्षमार्ग के नेता हैं, अन्य क्यों नहीं हैं? एक दार्शनिक विधि से सब मतों

का विवेचन करते हुए यह सिद्ध किया कि मोक्षमार्ग के प्रणेता ये ही जिनेन्द्र देव हैं। खूब युक्तियों से परीक्षा कर सिद्ध किया गया है आप्तपना, तभी तो उस ग्रन्थ का नाम ही आप्त परीक्षा है। आप्त कहतैं हैं पहुंचे हुए को। जैसे व्यवहार में कहते हैं कि यह तो पहुंचा हुआ पुरुष है, अर्थात् यह पुरुष प्रामाणिक हैं, उस में रंच भी संदेह नहीं है।

ग्रन्थके आदिमें प्रभुस्तवनका प्रयोजन ग्रन्थकी प्रामाणिकता का व ग्रन्थकर्ता की कृतज्ञताका प्रकाश—आप्तका स्तवन, स्मरण पहिले इस कारण किया जाता है कि सुनने वालों के चित्त में यह तथ्य आये कि यह ग्रन्थ प्रामाणीक हैं यह आप्तमूलक ग्रन्थ हैं यह यों ही अटपट नहीं रचा गया, किन्तु सर्वज्ञदेवकी परम्परा का यह वचन है। जिसका स्तवन किया जाता है उस नामसे ही यह बात सिद्ध हो जाती है। किसी के चित्त में यह शंका हो सकती है कि एकदम किसी बातको सुनने से पहिले कैसे कह दिया कि यह प्रामाणिक है। अच्छा मूल से विचार चलाइये। और परखिये कि आखिर ये वचन ये वाक्य प्रामाणीक हैं या नहीं। देखिये वचन, वाक्य शब्दविन्यासपूर्वक हुआ करते है। इससे यह तो सिद्ध होता ही है कि किसीके द्वारा यह रचा गया है, उसमें वाक्य हैं। वचन हैं, यह हैं तो उससे यह साबित होता है कि इसका कोई रचने वाला जरूर है। देखो बात बात में अनेक बातें घटती हैं, तो कहेंगे कि यह बात तो बिल्कुल सत्य है कि जहां शब्दविन्यास है उसका कोई बनाने वाला जरूर है, लेकिन एक सिद्धान्त ऐसा है कि जिनका मतव्य है कि शब्द तो बनाये ही नहीं जाते। शब्दोंको उत्पन्न नहीं किया जाता। किन्तु शब्द संसारमें, आकाशमें सर्वत्र पहिले से ही भरे पड़े हैं। वह तो आकाशका गुण है, पौद्गोलिक भाषावर्गणका गुण नहीं, ऐसा वे मानते हैं। तब फिर वे शब्द कैसे निकलते हैं। इसका समाधान उन दार्शनिकोंके यहां क्या दिया है? ये ओंठ, तालू आदिक के प्रयोगसे ये शब्द व्यक्त होते है, उत्पन्न नहीं होते। जैसे किसी कमरेमें बहुतसी चीजें रखी है और उनपर कपड़ा डाल दिया गया तो कपड़ा उघाड़नेसे कहीं चीजें नहीं बनती, किन्तु बनी बनाई चीजें प्रकट हो जाती हैं, ऐसे सिद्धान्त के भी लोग हैं। तो उनसे भी प्रथम सन्तोष कराना होगा। उन्हें समझाना होगा कि देखो भाई ओंठ, तालू आदिकके व्यापारका निमित्त पाकर शब्दवर्गकरणें उत्पन्न होती हैं, पहिले से बनी हुई प्रकट नहीं होतीं। उसकी अनेक युक्तियां हैं जिनका दार्शनिक शास्त्रसे सम्बन्ध हैं, उन्हें समझाना चाहिए। भैया एक इस तरह का भाव लेकर इस शास्त्रका प्रसंग सुनो कि यह शास्त्र सबका है, सबके लिए है, सबको समझाया जा रहा है, इसके सम्बन्धमें प्रत्येक व्यक्तिका अधिकार है कि वह शंका कर सके, प्रश्न कर सके। चाहे किसी भी सम्प्रदाय का हो,

यह शास्त्र सबके लिए हितकारी है, तो इसपर सबका अधिकार है। कोई पुरुष यों समस्या ला सकता है कि जब यह शब्द रचना है, उस शब्दरचनाका बनाने वाला कोई पुरुष है और जो पुरुष उस शब्दरचना को बना रहा होगा वह आप्त ही है, सर्वज्ञ नहीं है। भगवान् कहीं कलम दावात लेकर अक्षर नहीं बनाया करते अक्षरों का बनाने वाला तो कोई छद्मस्थ ही होगा कैसे हम मानें कि जो कुछ इसमें कहा जा रहा है वह प्रमाणीक है। तो इस बातसे समझना चाहिये कि यद्यपि इस ग्रन्थके कर्ता सर्वज्ञ नहीं थे, उमा स्वामी महाराज सर्वज्ञ न थे, लेकिन उनकी जो वाणी निकली, उनकी जो लेखनी चली वह उस परम्परा के वाक्य अर्थ में ही बताने वाली हुई, जो आप्त सर्वज्ञ देव की दिव्यध्वनि में मूल उपदेशमें था उसीका यह अंश व्यक्त किया गया तो मूल वक्ता आप्त हैं। युक्तियों से भी थोड़ा बात चित्तमें लायें कि कैसे माने जावें कि ये वचन आप्त वचन हैं जिनका कि सर्वज्ञदेवके उपदेश को परम्परा का व्याख्यान कहा जाय। तो सुनिये—युक्ति और आगम से जिनमें विरोध न आये, समझिये कि वह सर्वज्ञ परम्पराका ही व्याख्यान है। इसका बहुत विवरण करने के लिए पहिले कुछ दार्शनिक विषय भी आना पड़ेगा, जो कि कुछ कठिन भी होगा और परीक्षामुखमूत्र, आप्त भी मांसा में तो इसका स्पष्ट विवेचन है। अनुभव भी बताता है कि इसमें कोई विरोध नहीं है। ये आप्त वचन हैं इसलिए प्रमाणीक हैं। अच्छा, यह समझा कि इन आचार्य संतोने अपने पूर्वज गुरु परम्परा से इसका व्याख्यान किया, लेकिन गणधरदेव है, श्रुतकेवली हैं, उन्होंने भी तो कुछ रचना की है, तो उनकी जो ग्रन्थरचना है वह तो उनकी स्वयंकी अपने आपकी है, उसे कैसे प्रमाणीक माना जा सकता? वह तो अप्रमाण हो जायगी, इन आचार्यजनों ने तो परम्परा लिया तो इसका भी समाधान समझिये कि इनकी भी स्वतंत्र रचना नहीं, किन्तु सर्वज्ञदेवकी व्याख्यान परम्परा का ही सूत्रक है मतलब यह है कि जो व्याख्यान इस महाशास्त्रामें होगा वह सब प्रमाणीक है, सर्वज्ञदेव की दिव्यध्वनिकी परम्परासे चला आया है, इसलिए इसपर कुछ आस्था रख कर मुनिके लिए तैयार होना चाहिए।

आप्तमूलकता होनेसे ग्रन्थमें प्रमाणीकताकी प्रसिद्धि—कोई यह नहीं कह सकता कि क्या जरूरत है यह कहनेकी कि यह ग्रन्थ सर्वज्ञदेवकी परम्परा से है, आप्तमूलक है। अरे यह ग्रन्थ अपौरुषेय है ऐसा कह दो, किसीने बताया ही नहीं है। कर्ताका नाम ही क्यों लिया जाता? प्रमाणीकता आ जायगी। जैसे कुछ लोगोंने माना कि ये शास्त्र आकाशसे उतरे, अथवा अनादि से ही चले आ रहे हैं, ऐसे अपौरुषेय मानकर भी तो प्रमाणीकताका

काम चल सकता है। इसके समाधानमें युक्तिसे सोचो कि यदि अपौरुषेय हो आगम, इसका मूल प्रणेता कोई नहीं है, चला आ रहा है अनादिसे तो आप बतलावो कि आगम जो है सो है, इसके शब्द स्वयं दूसरोंको अर्थ बता सकते हैं क्या ? स्वयं शब्द अर्थ नहीं बताया करते कि लो सुनो कि हमारा अर्थ यह है इसतरह क्या शब्द दूसरों को अर्थ बता सकेंगे ? अगर शब्द अर्थ बताते होते तो जिनको संकेत नहीं मालूम वे भी शब्दका अर्थ समझते। पर यह बात तो है नहीं कि शब्द खुद अर्थ बता दें। उन शब्दोंका अर्थ बताने वाला कोई पुरुष जरूर होना चाहिए, जिसे कहेंगे व्याख्याता, भाषणकर्ता। जो भाषण करने वाला है, शब्दोंके अर्थको स्पष्ट करने वाला है वह पुरुष सर्वज्ञ है या असर्वज्ञ ? पहिले यह बात बताओ। अगर कहा जाय कि सर्वज्ञ है तो यह आगम सर्वज्ञके आधीत हो गया। वह तो सबको जानने वाला है। आगमके आधीन व्याख्याता नहीं रहा, और, जब सर्वज्ञ व्याख्याता माना तो आगमको अपौरुषेय मानकर प्रमाण माननेकी बात क्यों सोचता ? सर्वज्ञ है, उसका व्याख्यान है, वह स्वतः प्रमाण है, कहो कि आगमका भाषण करने वाला रागी है, छद्मस्थ है तो उसकी बातका क्या अर्थ लगाया जाय ? वह तो अनेक अर्थ लगायेगा। जब तक मूल प्रणेता वक्ता सर्वज्ञ न हो तब तक उस संतानकी परम्परामें प्रमाणता नहीं आ सकती। तो यह मानना होगा कि जो भी इस महाशास्त्रमें कहा जा रहा है वह सब वही कहा जा रहा है जो तीर्थकरों के समयमें व्याख्यान हुआ था और चर्चा हुई थी उस परम्परा का व्यच्छेद नहीं हुआ है। कैसे जानें कि वह परम्परा है ? देखो बहुत सी बातें तो यहां परम्परासे जानते ही हो। आप लोग खण्डेजवाल हैं, अग्रवाल आदि हैं ? या जो भी जिसका गोत्र है, कैसे समझा कि बराबर चला आ रहा है। देख रहे हैं। १०० वर्ष पहिले की बात तो नहीं जानते, लेकिन उपदेश द्वारा चला आ रहा है, समझते चले आ रहे हैं, जान रहे हैं कि यह गोत्र है। फिर कुछ लिखा हुआ भी चला आ रहा। उन्होंने उन्हें बताया, उन्होंने अपने पुत्रोंको बताया, लो इस परम्परासे जो आप जान रहे हैं कि यह गोत्र चल रहा है, इसमें कोई शंका भी करता है क्या ? एक मामूली लोकव्यवहारमें ही जब एक विश्वास देखा जा रहा है तो जो वचन युक्ति और शास्त्रसे विरुद्ध नहीं हैं, और बड़े-बड़े पुराण ऋषी संतों के आदान प्रदानकी परम्परा से चले आ रहे हैं, उनमें कैसे शंका की जा सकती है ? देखो प्रत्यक्षज्ञानी तो स्पष्ट जान जाते हैं, और जो विशिष्ट ज्ञानी हैं वे कुछ अनुमान से, कुछ उपदेश परम्परा से समझ लेते हैं। तो सब हमको बल दे रहे हैं ये प्रमाण कि यह जो सम्प्रदाय है वीतराग शासन का, यह अनवच्छिन्न धारासे ज्यों का त्यों

चला आ रहा है ।

मोक्षशास्त्रकी सूत्र रूपता—अब वर्तमान इस महाशास्त्रके विषयमें थोड़ी सी आवश्यक जानने योग्य बात देखिये इसे कहा गया है सूत्र । सूत्रका अर्थ है जिसमें युक्तियां हों, सत्य अर्थका जो प्रतिपादन करता हो और थोड़े शब्दों में कहा गया हो वह सूत्र कहलाता है । यह सूत्र है, सयुक्तिक हैं, शुद्ध अर्थका प्रतिपादक है, यह कैसे समझा जाय जिससे इसको सूत्र मान लिया जाय ? तो स्पष्ट प्रमाण यह है कि देखो यहां बाधा देने वाली कोई प्रमाणकी बात नहीं आती, कोई बाधक प्रमाण नहीं मालूम होता । विचार करनेपर जो शास्त्रमें प्रवेश करेंगे या जिन्होंने किया है उनको स्पष्ट है कि शास्त्रमें बहुत युक्तिपूर्ण वर्णन हैं । कई बातें बहुत सूक्ष्म होती हैं, वह तुरन्त प्रमाण में नहीं आतीं, लेकिन कोई समय उसको प्रमाणीक प्रसिद्ध कर देता है । जैसे परमाणुका कथन जो साधारणजनों के विश्वासके लायक नहीं बताता है कि क्या कोई ऐसा परमाणु जो अत्यन्त सूक्ष्म है लेकिन आजके वैज्ञानिक चाहे वे परमाणु तक नहीं पहुंचे, लेकिन इतने सूक्ष्म स्कंधतक पहुंचे जिसका वे अणु नामसे प्रयोग करते हैं और उसमें इस दृष्टिसे निरखते हैं कि एक एक जो इनर्जी है वह एक-एक यूनिट है । एक-एक गुणको द्रव्य माना । विशेषबात की तरह । इसकी खोज में भी वे उतरने चले हैं । शब्दोंको बताया जाता था कि वे पौद्गलिक हैं, जबकि कुछ दार्शनिकों की मान्यता थी कि शब्द तो आकाशका गुण है । देखिये—दार्शनिक लोग कुछ न कुछ आपनी बुद्धि लगाकर ही बोलते हैं । आजके समयमें भी कुछ ऐसा लग रहा होगा कि जब रेडियो बोलता है और आकाशमें ही पकड़कर बोलते हैं तो लगता है कि शब्द कहाँ से आये । आकाशसे ही तो आये ? लेकिन एक दृष्टि और दीजिए । शब्दोंको पकड़ लेना, शब्दोंको उसमें ढाके रहना और जब चाहें सूई लगाकर उसे प्रकट करना, उसे पकड़ना, ढाकना, छेड़ना, निवारण करना यह बात तब ही सम्भव हो सकती है जब कि शब्द भूतिक हों, पौद्गलिक हों । तो ऐसी अनेक बातें जो सन्देहमें पड़ी थीं उन्हें आजके वैज्ञानिकोंने बहुत कुछ सिद्ध करके बता दिया । तो ऐसी ही जो और-और भी सूक्ष्म बातें हैं वे चाहे आज प्रमाणमें तो नहीं आयें, लेकिन कभी वे स्पष्ट प्रमाणीकतामें आ जाती हैं । और, सबसे बड़ी बात एक यह है कि जो जो विषय युक्तिमें उतर सकते हैं—जैसे जीव, अजीव आश्रव, बंध, सम्बर, निर्जरा, मोक्ष पुण्य और पाप आदिक ७ तत्त्व ६ पदार्थ थे युक्तिमें उतरते हैं, और इनमें जब रंच भी कहीं विरोध नहीं है तो ऐसे सूक्ष्म तत्त्व का विवेचन करने वाले वीतराग ऋषी संतोंके जितने भी और वचन हैं वे सब भी प्रमाणीक हैं, अपने आप यह आस्था बन जाती है । तो इस

मोक्ष शास्त्रके बारेमें यह शास्त्र है, सूत्र है, यह कैसे जाना ? तो पहिले इसका प्रथम सूत्र ही देखिये “सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः”—यह जो प्रथम सूत्र है, समस्त मोक्ष-शास्त्र के सारे सूत्र एक इस सूत्रके ही पोषणके लिए बनाये गए हैं । दसों अध्यायों में जितने भी सूत्र हैं, चाहे विग्रह गतिका वर्णन करें, चाहे नरक स्वर्ग का वर्णन करें सभी सूत्रोंका प्रयोजन यही है जो यह सिद्ध करता है कि जो प्रथम सूत्रमें कहा वह वास्तविक बात है । तो देखिये कैसा पुष्ट आधार है कि जो वचन आये उन ही वचनोंके पोषण के लिए समस्त अध्यायोंके सूत्र हैं । तो जो समस्त शास्त्र वाक्योंका एक प्रतिनिधि रूप हो ऐसे सूत्रको हम कैसे सूत्र न कहेंगे ?

जिज्ञासुता और वक्तृता का योग—अब इस शास्त्रनिर्माण विषयक एक सम्बंधकी बात देखिये जब कभी भी व्याख्यान होता है तो उसमें दो का सम्पर्क रहता है वक्ता और जिज्ञासु । वक्ता प्रमाणीक न हो अथवा जिज्ञासु न हो तो शास्त्र की प्रवृत्ति नहीं होती । यह तो यहां की बात है । समवशरण में भी जब तक गणधरदेव न उपस्थित हों तब तक भगवानकी दिव्यध्वनि नहीं खिरती । एक कथन आया है ना कि जब तक मुख्य गणधर नहीं थे तब तक महावीर स्वामी की ध्वनि नहीं खिरी, तो एक ऐसा योग है । जिज्ञासु न हो, जाननेकी इच्छा रखने वाला किसी भी प्रकार कोई न हो तो वक्ता कुछ बोलेगा तो समझना कि वह उसका अविवेक है । कोई समझना ही नहीं चाहता है और वक्ता जबरदस्ती बोल रहा है तो इसका क्या अर्थ है ? जिज्ञासु और वक्ता इन दोनोंके मेल होने से व्याख्यानकी प्रवृत्ति चलती है । जैसे समवशरणमें तीर्थंकर और गणधर, तो इसीप्रकार यह महाशास्त्र जो रचा गया है उसमें वक्ता तो हुए उमास्वामी महाराज और जिज्ञासु हुए उनकी बुद्धिमें आये हुए थे समस्त भव्यजन, अथवा इसकी एक कथा भी है कि जिसको समझानेके लिए इस महा-शास्त्रकी रचना की गई है । तो किसीको जिज्ञासा होती है, तब तो ज्ञानपुरुषक शास्त्रकी प्रवृत्ति होती है । जिज्ञासाके बिना शास्त्रकी प्रवृत्ति नहीं होती । लेकिन इस जिज्ञासाके सम्बन्धमें ही अनेक दार्शनिकों में अनेक मत हैं । किसीका सिद्धान्त है कि जाननेकी इच्छा प्रकृतिको होती है । देखो उपदेश तो दिया गया आत्माको और इच्छा जगी प्रकृतिको, किसीका मंतव्य है कि ज्ञानके योगसे आत्मा ज्ञानी बनता है । आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप नहीं है, तो उसकी इच्छा भी कोई ज्ञानका सम्बन्ध होने से ही बनती है । स्वयं आत्मा जिज्ञासु नहीं है, तो किसीका इसी विषय में विवाद है, तो जब इस सूत्रको भली भांति समझा जायगा तो यह विवाद भी अपने आप मिट जायगा । क्या है दर्शन, क्या है ज्ञान, क्या है

सूत्र १—१ :

चारित्र ? इसका विवेचन होने से अनेक समस्यायें अपने आप दूर हो जायेंगी । तो यह शास्त्र एक मोक्षमार्गका प्रकट करने वाला है और मोक्षमार्ग की व्याख्यामें जिज्ञासु तो हैं भव्य जीव और मूल वक्ता हैं सर्वज्ञदेव । उस परम्परासे भव्यों के कल्याणके लिए इस शास्त्रका अवतार हुआ है ।

मूलसंकटहारी तत्त्वार्थशास्त्रकी अभ्यहेता—जैन सिद्धान्त के ग्रन्थोंमें मोक्षशास्त्र ग्रन्थ ही बड़ी महिमा प्रकट है, जिसे तत्त्वार्थसूत्र भी बोलते हैं । कई जगह तो दैनिक कार्य-क्रमोंमें तात्त्वार्थ सूत्रका पाठ भी किया जाता है उसमें किसका वर्णन है ? संसारके जीव संसारके संकटोंसे छूटें, उस उपायका वर्णन है । हम आप लोगोंको संकट लगा है तो बस एक जन्म मरणका । देखिये जीवनमें किसी भी बातका संकट मत मानों ये हजारों ऊपरी बातें भिन्न हैं, बेकार हैं और अपनी आत्माको दुःखी बनाती हैं । किसीका वियोग हो गया तो, धन सम्पदामें कुछ क्षति हुई तो, या अन्य कोई बात प्रतिकूल बन गई तो यह कोई संकट नहीं है । इसे संकट संज्ञा मत दीजिए, इसके ज्ञाता दृष्टा रहो । हो रहा है देख लो यह भी हो गया जो हो रहा है वह सब कर्मकी माया है, कर्मकी लीला है । उसके ज्ञाता दृष्टा रहो । अपना खाम संकट यह समझिये कि हमें जन्म मरण करना पड़ रहा है । यहाँ के अन्य संकट कोई संकट नहीं । पहिले किस भ्रमसे आये, वहाँ क्या साथ था और क्या हमारा अब तक है ? तो यहाँ की भी जो संतति है, समागम है वह भी क्या साथ रहेगा ? यह तो बिल्कुल भिन्न चीज है, लेकिन व्यर्थका मोह लगा है, व्यर्थका भ्रम किए हैं, जिसके कारण निरन्तर दुःखी रहा करते हैं । कहां तो आत्माका एक शुद्ध सहज स्वरूप और कहां भ्रम लगा करके अपनेको दुःखमें डाले रहते हैं । यह कितनी अविवेक की बात है । संसार में कहीं दुःख नहीं है । जो बाहर की बातें होती है उनसे मेरेको दुःखका सम्बन्ध नहीं है । दुःख है तो केवल जन्म मरण का । मरण की बात तो सब जानते हैं कि बड़ा दुःख होता है, लेकिन मरना नहीं चाहते हैं । मरणके समय में बड़ा दुःख होता है । पर जितना कष्ट मरण में होता है उससे भी अधिक कष्ट जन्म में होता है । जन्मके समय में कुछ बुद्धि ग्रहण नहीं करती अधिक इसलिए ख्याल नहीं है कि जन्ममें क्या दुःख होता है, मगर जन्मका दुःख मरणसे भी कहीं अधिक है । और अनुमान भी कर सकते । जब कोई मनुष्य गर्भ में आया तो पेटमें भला बतलाओ किस तरह से रहना पड़ता है । एक कमरे में जहां हवा न आती हो वहां ही घबरा जाते हैं, फिर भला बतलाओ जो जीव पेटके अन्दर पड़ा है, आँधा मुख है, शरीर भी अभी पूरा नहीं बना, मांस पिण्ड पड़ा हुआ है, कितना दुःख है, और गर्भसे निकलते समय का भी घोर दुःख है । तो जन्म में भी दुःख, मरण में भी दुःख

और जन्म मरण के बीच जितनी जिन्दगी हैं उस जिन्दगी में भी दुःख । तो आप देखो हम आप पर दुःख ही दुःख बीत रहे हैं । बाहर से किसी पदार्थसे नहीं किन्तु हमारे मोह से, हमारी कल्पना से, हमारे विचार से हम पर दुःख ही दुःख मंडरा रहे हैं । जब इस दुःख से छूटने का उपाय बना लो तो आपका जीवन सफल है; जैन शासन का सुयोग मिला है वह सफल हो जाएगा ; सदा के लिए संकटों से छूट जायगा । ऐसे उपायकी महिमा को कौन बता सकता । तो वह उपाय बनाओ और बाहरी कोई सम्मदाका आना, धरमें रहना, लोगों में रहना इन सब बातों को पुण्य पापके भरोसे छोड़ दीजिये । जैसा उदय है वैसा होगा, चिन्ता से कुछ नहीं होता । आप तो हर स्थितिमें तैयार रहें, संकट आये तो वहां पर भी हम तैयार हैं । क्या संकट है ? ये सब बाहर की बातें हैं । आयें तो आयें, न आयें तो न आयें । तो अपने आपमें विकल्प होते, जन्ममरण होते, यह ही बड़ा संकट है । इस संकटसे छूटने का उपाय इस मोक्षशास्त्र में बताया है ।

संकटोंसे छूटने के उपायका संदर्शन—पहिले ही सूत्रमें कहा गया कि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः—मोक्षमार्ग—संसारके संकटोंसे छूटने का उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र है । सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्माके सही स्वरूपका विश्वास होना कि यह मैं हूँ । जैसेकि संसारीजन, मोहीजन का इनके विपरीतखयाल बना है मैं मनुष्य हूँ, मैं व्यापारी हूँ, मैं पिता हूँ, अन्य अन्य अनेक श्रद्धा बनाते हैं अपने बारेमें, वह बात सत्य नहीं है । सत्य तो यह है कि मैं केवल ज्ञानप्रकाशमात्र हूँ, देखो इतनी बात कभी दृष्टिमें आ जाय तो आप अमीर हैं । आप परमात्माके लघुनन्दन हैं, आपकी पवित्रता की कौन महिमा गा सकेगा ? अगर दृष्टिमें यह बात समा जाय कि मैं तो ज्ञानप्रकाश मात्र हूँ, इसे कहते हैं सम्यग्दर्शन । सम्यग्दृष्टिकी महिमा चाहे वह संयम न पाल सक रहा हो फिर भी वह बड़े बड़े इन्द्रों द्वारा महनीय होता है । सुख शान्ति जिसमें मिले वह बात कही जा रही है । धर्म करते हैं रोज—रोज, पूजन बंदन आदि करते हैं तो देखो इसका भी कितना प्रभाव पड़ता है कि रात दिन जो अनेक संकट सहते हैं, अनेक कषायें जगती हैं, अनेक विकल्प जगते हैं तो घंटेभर धर्मध्यान में चित्त लगे तो एक आराम मिलता है और एक अपनी फिर तैयारी हो जाती है । कुछ बरबाद हो गए, दुखी हो गए, फिर धर्मकाममें लगने से अपने आत्माकी एक तैयारी हो जाती है । फिर संकटमें आ जाते हैं, तो गृहस्थीमें यह ही बात तो हो रही है कि धर्म किया कुछ ठीक हुआ, फिर विकल्पोंमें आ गए, इसे बताया है आचार्योंने हस्तिस्नान । हाथी स्नान करता है तो उस समय तो ठीक है, मगर बाद में पानी से बाहर निकला कि अपने ऊपर धूल कीचड़ डाल लेता है, इसी तरह लोग धर्म करते हैं, बादमें फिर वही विकल्प किए जाते हैं,

दूकान करना, ग्राहकों से बोलना, मोहियोंमें रहना, तो ऐसा होने पर भी जो रोज रोज धर्म में समय बिताया जाता है तो वह एक रक्षा करने वाला कर्त्तव्य है। हमारा समय धर्ममें न बीते तब तो फिर पूरी बरबादी है। तो कोई धर्म ऐसा मिल जाय, कोई प्रकाश ऐसा मिल जाय कि जिसमें सम्यक्त्व पैदा हो, संकटों से सदाके लिए छूटने का उपाय बन जाय, उससे बढ़कर जगतमें कोई चीज नहीं है। बात कही जा रही है अपने अपने आत्माकी। लोग अपने अपने पर घटा लो कि किसी समय यह चैन मानना है क्या? कोई मौजमें चैन भी माने तो वहां पर भी कष्ट ही पा रहा। चैन तो एक मानने का है। तो चैन किसी बाहिरी बात से नहीं है। बस आत्माका ज्ञान न रखना, इसे श्रद्धा में न लेना इससे बेचैनी है। मैं तो सिर्फ ज्ञान—मात्र हूँ, ज्ञान ही मेरा स्वरूप है, ज्ञान ही मेरा वैभव है, मैं ज्ञानको ही साथ लेकर जाऊँगा, ज्ञान ही यहां रक्षा करने वाला है, ज्ञान को ही मैं कर सकता हूँ, ज्ञानको ही मैं भोग सकता हूँ, ज्ञान ही मेरी दुनिया है, मेरे ज्ञानस्वरूपको छोड़कर दुनियामें मेरा ओर कुछ नहीं है, इस बातपर जब नहीं डट पाते, ओर बाहरमें दृष्टि करते, और यह शरीर मल सूत्र आदिक का पिण्ड सुहावना लगता, इसमें रति करते, इसमें राग बनाते, सो ये संकटों में पड़े हैं देखे संकट भी लग रहे हैं उन्हें भी भोगते जा रहे हैं फिर भी संकटरहित जो आत्माका स्वरूप है उसकी सुध नहीं बना पाते। यही कारण है कि यह संकट जीवन भर बना रहता है। इन संकटोंसे मुक्ति प्राप्त करना होगा, मोक्ष प्राप्त करना होगा, उस ही मोक्षका वर्णन इस ग्रन्थ में किया जा रहा है।

सम्यग्ज्ञानमें ही प्रकाशका अभ्युदय—अपने आत्माका विश्वास बनाओ कि मैं आत्मा सबसे निराला ज्ञानज्योतिस्वरूप हूँ, आत्माको पहिचानने के लिए ऐसा ज्ञान बनावें कि मैं तो केवल इतना ही हूँ, इससे बाहर कुछ नहीं हूँ। जिस कुटुम्ब में इतना मोह बना रखा वे जीव उतने ही न्यारे हैं जितने न्यारे दुनियाके कीड़े मकोड़े जीव हैं। घरके ये लड़के, बहुवें नाती पोते, स्त्री आदिक जीव उतने ही न्यारे हैं जितने कीड़े मकोड़े के जीव न्यारे हैं। अब मोह की बात अलग है कि मोहमें ऐसा मान रखा कि ये सब मेरे हैं, और यह ही तो कारण है दुखका देखो वियोग तो नियम से होगा, उसे तो कोई रोक नहीं सकता। जिन-जिनका संयोग है उनका वियोग नियमसे होगा। चाहे आपका ही पहिले मरण हो जाय या किसी दूसरे का, पर वियोग नियमसे होगा। उस वियोग के समय मैं यह जीव बड़ा कष्ट मानता है। वह कष्ट है अज्ञान का ऐसा अज्ञान बसा रखा, मोह बसा रखा कि वह मेरा ही था, मेरा ही है अरे कहां था आपका? कहीं से आया, थोड़े समय को रहा, फिर चला गया। तो जब तक सम्यग्ज्ञानका प्रकाश नहीं होता तब तक जीवको प्रसन्नता नहीं आ सकती।

यह निश्चित बात है। धनमें शान्ति थोड़े ही है। धन तो एक अजीब पदार्थ है, जड़ है, पौदगलिक पदार्थ है, उससे शान्ति नहीं मिलती वह तो आता है पुण्यके अनुसार। जितना आना हो आये, न आना हो न आये। वह शान्तिका धाम नहीं है। शान्ति तो आत्माके स्वरूपमें बसी हुई है। जब हम अपनेको ज्ञानमें लेते हैं तो शान्ति मिलती है, आनन्द मिलता है। जब हम किसी परमें लगाव लगाते हैं तो कष्ट मिलता है। तो अब कुछ अपनेको समझाना होगा। उम्र बहुत गुजर गई। इस रही सही उम्रमें अपने आत्माका प्रतिबोधन करना होगा। हे आत्मन् ! तू तो पवित्र है, भगवत्स्वरूप है, ज्ञानानन्दमय है। तेरे पर कष्ट का नाम नहीं। तेरे को जाने बिना तेरे से अलग होकर अब तक कष्ट पाये। क्या यह कुछ तेरा रहेगा ?

आत्मदेत्ताकी निरापदता—देखिये जैसे कोई बड़ा अफसर हो और उसका कहीं तबादला हो रहा हो तो उस तबादले से उस अफसर को कोई कष्ट है क्या ? अरे उसे तो माल ले जाने के लिए रेलगाड़ी का एक पार्शल डिब्बा मिलेगा, अनेक नौकर चाकर सामान चढ़ाने वाले मिलेंगे। परिवारको ले जाने के लिए अलग से एक रेलगाड़ी का आराम देह डिब्बा मिलता है। जहां पहुंचेगा वहां भी रहने के लिए मकान खाली पड़ा है। सेवा करने के लिए नौकर तैयार हैं। स्वागत करने के लिए अनेक लोग तैयार हैं। बताओ उस आफिसर को क्या कष्ट ? उसे तो उस रेलगाड़ी में चढ़ने और उतरने का काम करना है। कष्ट तो छोटे छोटे लोगों को होता है जैसे मास्टर्स को, क्लर्कों को उन्हें कहीं मकान खोजना पड़ेगा, सामान को बड़ी मुश्किल से ले जाना होगा। पर उस बड़े आफिसर को तबादले में क्या कष्ट ? ठीक ऐसे ही जो ज्ञानी आत्मा हैं, जो सम्यक्दृष्टि जीव हैं वह भी जब यहां मरण करता है तो उसे उस समय क्या कष्ट ? वह तो जानता है कि मेरा तो सब कुछ मेरे साथ जा रहा है, जो मेरा है वह मेरे से कभी छूट नहीं सकता, और जो मेरा है ही नहीं वह मेरे मैं कभी आ नहीं सकता। मेरा वैभव है ज्ञान दर्शन आनन्द स्वरूप ज्ञान ज्योति। इसी में ही मैं तृप्त रहता हूँ। यह मेरा वैभव मेरे से कभी छूट नहीं सकता, और तो सब बाहरी बातें हैं। तो जब अपने आपके आत्माका बोध हो तो इस जीव को शान्ति मिलेगी। यह ही हुआ सम्यग्ज्ञान। और अपने आत्माका ऐसा स्वरूप जानकर यहां ही तृप्त रहना, संतुष्ट रहना। मेरे को अधूरा काम कोई नहीं पड़ा है। मेरे को कोई आपत्ति नहीं है कहीं। मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, आनन्दमय हूँ, इसही में मैं तृप्त रहता हूँ, सुखी हूँ, शान्त हूँ, स्वयं महान हूँ। तो आत्मा में तृप्ति करे, मग्न हो जाय, लीन हो जाय यह ही है सम्यक्चारित्र्य। ये सब ज्ञानके विकास ही तो हैं। ज्ञानविकास में ही निरापदता है।

मोक्षशास्त्र की महाशास्त्रता—मोक्षशास्त्र ग्रन्थ में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका वर्णन है, इसीलिए यह महाशास्त्र कहलाता है। यहां कोई ऐसी समस्या रख सकता है कि शास्त्र तो वह ही होना चाहिए जिसमें रत्नत्रय का वर्णन हो। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रका वर्णन हो। लेकिन कुछ शास्त्र ऐसे हैं कि जहां सम्मग-दर्शन का ही वर्णन है जैसे समयसार। कुछ शास्त्र ऐसे हैं कि जिनमें सिर्फ ज्ञान ज्ञान का ही वर्णन है—जैसे न्यायशास्त्र। और कुछ शास्त्र ऐसे हैं कि जिनमें चारित्र का वर्णन है जैसे श्रावकचार, मूलाचार आदिक। तो क्या वे शास्त्र नहीं कहलाते? शास्त्र नाम तो उनका बताया गया है कि जिनमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों का वर्णन हो। तो यहाँ समाधान यह लेना कि उनमें भी तीनों का ही वर्णन है। हां मुख्यता की बात अवश्य है। किसी में ज्ञान की मुख्यता है, किसी में चारित्र की मुख्यता है, किसी में सम्यक्त्व की। तो मोक्षमार्ग तो ये तीनों हैं, जैसे इस गाँव से २० मील दूर जाना है किसी शहर में तो जाने का मार्ग तो यहीं से शुरू हो गया। अब आप आधी दूर पहुँच गए तो वह आधा मार्ग हो गया। जब आप उस शहर के बीच में पहुँच गए तो वह मार्ग आप पार हो गए। तो इसी तरह मोक्षमें जाने के लिए सम्यग्दर्शन भी मार्ग है। वह पहिले का मार्ग है। सम्यग्ज्ञान भी मार्ग है और सम्यक्चारित्र भी मार्ग है। इसीलिए तो रत्नत्रयको अगर हम ७ भङ्गों में पेश करें तो कर सकते हैं। देखो जो तीन चीजें होती हैं उनका हम ६ तरह से स्वाद ले सकते हैं। यही सप्त भङ्गी कहलाता है। यही स्याद्वाद है। जैसे तीन चीजें कुछ भी रख लो नमक, मिर्च, जीरा। तो देखो एक तो इन तीनों का अलग-अलग स्वाद लेने पर ३ स्वाद हो गए नमक, मिर्च और जीरा। अब नमक मिर्च मिलाया तो यह ५ वां स्वाद हुआ। मिर्च जीरा मिलाया तो यह छटा हुआ, और नमक, मिर्च, जीरा इन तीनों को मिलाया तो यह ७ वां स्वाद हुआ। तो जहां तीन बातें होंगी वहां ७ ढग बनेंगे, इसीतरह सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीन तत्त्व हैं। इनकी भी सप्त-भङ्गी बना लीजिए—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र ये तीन भङ्ग हुए, अब सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान यह चौथा भङ्ग हुआ, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र यह ५ वां भङ्ग हुआ, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र यह छठा भङ्ग हुआ, और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों से मिलाकर एक ७ वां भङ्ग हुआ। माने जो शास्त्र हैं उनमें ७ तरह की बातें मिलेंगी। कोई ग्रन्थ ऐसे हैं कि जिनमें केवल सम्यक्त्वका वर्णन है, किसीमें दो का वर्णन है और किसीमें तीनोंका वर्णन है। हैं वे सब सत्यशास्त्र, तो इस मोक्षशास्त्र में आप तीनोंका वर्णन पायेंगे, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। और दसों अध्याय

भी इस सूत्रका पोषण करते हैं, ऐसा यह मोक्षशास्त्र ग्रन्थ है, जिसकी हम आप लोग भक्ति करते हैं, अर्घ भी चढ़ाते हैं। दशलक्षण पूर्वके दिनोंमें लोगदसों अध्यायके सूत्रोंमें अर्घ भी चढ़ाते हैं। तो इतना तो जानेंकि उनमें बात क्या लिखी है। चीज क्या है, उसकी महिमा क्या है? इतना जान कर तो जरूर रहना चाहिए। तत्त्वार्थ सूत्र की अनेक हिन्दी टीकायें हैं। कोशिश करें कि हम उन सूत्रों का पूरी तरहसे अर्थ जान जायें। इस तत्त्वार्थसूत्र के अर्थके जाननेमें आप जैन शासनका बहुत सा रहस्य जान लेंगे। यह मोक्षशास्त्र ग्रन्थ प्रमाणीक है, क्योंकि सर्वज्ञदेवकी परम्परासे चला आया है। सर्वज्ञदेव ने तीन लोक तीनकालकी बात को जाना। देखो, हम आपको ज्ञान हैं ना, सो बहुत सी बातें जानते हैं ना, कोई बात बहुत जानते कोई कम जानते, तो हम आपके साध कर्म हैं, इतने पर भी हमारा ज्ञान बना हुआ है। और, जैसे सूर्यके नीचे बादल आ जाय तो बादलके आ जाने पर भी यहां प्रकाश बना रहता हो और बादल हट जाय तब तो एकदम तीव्र प्रकाश हो जायगा इसी तरह हम आपके आत्मापर कर्मके बादल छाये हुए हैं इतने पर भी तो हमारा ज्ञान जगता रहता है! कर्म हटें तो हम आपका ज्ञान तीन लोक तीन कालकी सर्व बातों को जानने वाला हो जायगा। इसीके मायने परमात्मा है।

कषायोंको दूर कर परमात्मत्व प्राप्त करनेके लक्ष्यकी महनीयता—भैया जीवन में एक यह संकल्प बने कि मुझे तो परमात्मा होना है। जैसे चित्तमें रहता है ना कि मुझे तो लखपती बनना है, करोड़पती होना है तो ये सब बेकार बातें हैं। अरे उदयानुसार जो हो सो होने दो, उसीमें गुजारा चलता है। जिन्दगी ही तो चलाना है। जिन्दगी हर तरह से चल सकती है, उसके लिए अधिक आकांक्षायें मत रखो। देखिये—जैन शासनका यदि सदुपयोग करना है तो यह चित्तमें दृढ़ता लावो कि मेरे को अन्य कुछ नहीं बनना है, मेरे को तो परमात्मा बनना है, भगवत्स्वरूप होना है, शुद्ध ज्ञानानन्दमय बनना है, यह चित्तमें भावना बनायें, बाकी सब बातें बेकार हैं। क्या है! कोई बड़ा धनिक हो तो अब भी कष्ट, और जब उसे छोड़कर जायगा तो मरणके समय मोहका बड़ा कष्ट। क्या लाभ हुआ उससे? और अपने आत्माके ज्ञानकी बात पायी, जिस समय दृष्टि दी अपने आपके स्वभाव की और, उसी समय आनन्द है। लोग चाहते हैं कि दुनियाके लोग मुझे बड़ा समझें और इसीलिए कोई धन बढ़ाने की कोशिशमें हैं। कोई कुछ उपकार करने की कोशिशमें हैं। कोई देश सेवा

करने की कोशिश में है, कोई नेतागिरी की कोशिश में है, बस एक इस चाह से कि दुनिया के लोग समझ जायें कि यह फलाने भी कुछ हैं। अरे यह विचार तो करो कि ये दुनिया के लोग कोई भगवान हैं क्या ? ये कोई मेरा संकट भेट सकने वाले हैं क्या अथवा ये कोई पवित्र जीव हैं क्या ? ये कुछ ढंग के लोग हैं क्या ? अरे ये कर्म के प्रेरे स्वयं दुःखी, जन्म मरणके संकट सहने वाले, गरीब, मिथ्यात्वके भारसे पीड़ित कषायों से मलिन, उनकी निगाह में हम बड़ा क्यों बनना चाहते ? क्या लाभ मिलेगा ? उन्होंने अपनी गरज से अगर कुछ समझ कोई प्रशंसा की बात कह दी तो उसकी आत्माको कौन लाभ मिल गया ? इसे छोड़े भीतर से। हम तो जिन्दा हैं धर्म के लिए। गुजारा करना है और अपना समय हमें धर्म में लगाना है। आत्मज्ञान करें, आत्मध्यान करें, मंद कषाय करें, दूसरों को क्षमा कर दें। देखो धर्म तो हमारे सहज भावसे जब चाहे आ सकता है किसी पर क्रोध बनाने की आदत रखें तो इससे अपने को कुछ लाभ है क्या ? बल्कि कष्ट ही कष्ट है, दूसरों को क्षमा करने की आदत रखें तो अनेक कष्ट दूर होंगे और दूसरों के प्रति भलाई का काम करना चाहेंगे। हम घमंड छोड़ दें, नम्रता से रहें और दूसरों का आदर करें, दूसरों का बड़प्पन बतायें तो इससे देखो इस वक्त भी आप आनन्द में रहेंगे और मुक्तिका मार्ग भी मिलेगा। लोग मायाचार करते हैं सुखी होने के लिए, लेकिन मायाचार में कोई सुखी रह सकेगा क्या ? रात दिन कष्ट रहता है, क्योंकि मायाचारी पुरुषको निरन्तर श्रुत्य बना रहता है। और, मायाचार छोड़ दें, सरलचित्त हो जाये तो दूसरों के विश्वासपात्र हो जायेंगे। स्वयं सुखी हो जायेंगे। दूसरें भी सुखी हों जायेंगे तो सरलता से रहना चाहिए। लोभ कषाय में कितने कष्ट पड़ें हुए हैं। दूसरों की आस्था नहीं बनती है। स्वयं ऐसी उधेड़बुन में रहा करते हैं। जीवन बेकार सा हो जाता है। लोभ कषायका त्याग कर दें याने अपने कुटुम्ब के पालन पोषण में भी उदारता बतें, दीन दुखियों के उपकार में भी उदारता बतें, धर्म की प्रभावना में भी उदारता बतें। तो धन तो एक ऐसी छाया है कि इसका सदुपयोग करें तो मिटता नहीं है और इसको रखें रहें तो यह रहता नहीं है। किसी न किसी बहाने से निकल जायगा। तो इस लोभ कषाय का अन्तरङ्गसे त्याग हो। तृष्णाका त्याग हो, तो उदार चित्त बनने में देखी कितनी महिमा बढ़ती है, आत्मामें प्रसन्नता होती है। तो कषायों को दूर करना, मोह को दूर करना, भगवत् स्वरूप में भक्ति रखना, अपने आत्मा को सबसे निराला एक ज्ञानस्वरूप रखना यह बात अगर हो रही है तो समझ लो कि यह स्वभाव संस्कार साथ जायगा। अगले भव में भी आनन्द पायगा और यदि यह ज्ञानस्वरूप निगाह

में नहीं है, यहाँ का मोह ही बसता है तो यह जीवन भी बरबाद है और आगे भी कुशलता नहीं है। तो ऐसे संसारके संकटोंसे छूटनेका उपाय इस मोक्षशास्त्र में कहा गया है।

अन्तरात्मत्वकी सिद्धिमें कल्याणलाभ—जगतमें जितने भी जीव हैं वे सब जीव तीन प्रकारमें से किसी न किसी प्रकारके हैं। वे तीन प्रकार क्या हैं? बहिरात्मा, अन्तरा-त्मा और परमात्मा। बहिरात्मा उन्हें कहते हैं जो आत्मासे बाहरकी चीजको आत्मा मानते हैं। नाम ही बहिरात्मा है। बहिःमायने बाहरकी वस्तु, उसको आत्मा मानना। जैसे शरीरको और जीवको एक माना जाय वह बहिरात्मापन कहलाता है। अन्तरात्मा उसे कहते हैं कि जो अन्दरकी चीजको अपने आपके भीतरी स्वरूपको आत्मा माने उसे अन्तरात्मा कहते हैं। याने ज्ञानस्वरूप अपने आत्मामें यह मैं हूँ ऐसी जिनसे श्रद्धा हुई उन्हें अन्तरात्मा कहते हैं। परमात्मा किसे कहते हैं? जो आत्मा परम हो गया है, परम याने उत्कृष्ट हो गयी है याने आत्मा के जो गुण हैं वे पूरे प्रकट हो गए हैं। ज्ञान और आनन्द जहां उत्कृष्ट हो गया है उसे परमात्मा कहते हैं। अब यह छटनी करलें कि हम बहिरात्मा हैं कि अन्तरात्मा हैं कि परमात्मा हैं। अपनी बात सोचो कि हम क्या हैं? अगर बाहरकी वस्तुमें आत्मास्वीकार है—देह मैं हूँ, मैं व्यापारी हूँ, मैं पंडित मैं मूर्ख हूँ, मैं त्यागी हूँ, मैं मनुष्य हूँ, मैं स्त्री हूँ आदिक रूपसे अगर श्रद्धा बन रही है अपने आपकी तो समझो कि वह बहिरात्मा है। बहिरात्मा, मूढ़, मोही, मिथ्या दृष्टि ये सब एक ही बात कहलाते हैं। इनसे नफा न मिलेगा, बहिरात्माकी दशामें कुछ लाभ न मिलेगा। देखो कहते हैं कि धर्मकी बात बड़ी कठिन है कठिन नहीं। क्रिया चारित्र भले ही कठिन हो, मगर जो बात जैसी है उसे उस तरह समझ लेवें तो यह बात क्यों कठिन लगे? हर एक कोई सच जानना चाहता है। जो लोग झूठ जान रहे हैं वे भी सच जानकर जान रहे हैं। तो हम सबमें एक ऐसी आदत पड़ी है कि हम सच जानना पसंद करते हैं, झूठ जानना नहीं पसंद करते। झूठ भी जानते हो, झूठ मानते हो तो उसे झूठ समझकर कोई नहीं मानता। सच्चा समझ कर ही मानता। तो आखिर आदत तो सच्चा माननेकी पड़ी है, झूठ माननेकी आदत नहीं पड़ी है। तो वह भी बड़ी अच्छी बात है कि हम सब जीवों को सच जाननेकी इच्छा रहा करती है। तो जरा अब सच जानलें। झूठको सच मानकर मत रहें, सचको ही सच मानकर रहें। क्या इसमें कोई सन्देह है कि हम मरेंगे अथवा नहीं? अरे इसमें सन्देहकी क्या बात? एक दिन सभी मरेंगे। मरने का अर्थ क्या है? देह यहाँ पड़ा रहेगा। हम यहाँ से विदा हो जायेंगे। जानते हैं क्या? केवल बात बात तो कर लेंगे, पर भीतर में वह दृश्य न बना पायेंगे कि आखिर आयगा वह समय जब कि इस

देहको छोड़कर यों चले जायेंगे और लोग इस देहको जला देंगे । जैसे कि हमने दूसरों के देह जलाये । हम यहाँ न रहेंगे, ऐसा भीतरमें सच्चा भाव नहीं जगता । तो जानतेभी है और नहीं भी जानते । ऊगरी ऊपरी समझते हैं, पर भीतरमें यह श्रद्धा नहीं है कि हम मरेंगे, निश्चित मरेगे । शरीर छोड़कर हम आगे जायेंगे । देखो बहुत सी घटनायें ऐसी मिलती कि खूब हट्टा कट्टा जवान छोटी उम्रका, जिसके मरणका कोई आसार न था और अचानक ही ५ मिनटमें साफ हो गया । तो ऐसे ही सोचो कि क्या हम आप भी उसी तरह से कभी साफ न हो सकते थे अर्थात् मरणको प्राप्त न हो सकते थे ? कहो गर्भ में ही मर जाते, कहो छोटी उम्रमें ही मर जाते । कभी भी मर सकते थे । लेकिन आज तक भी जीवित हैं तो यों समझो कि हम मुफ्तमें जीवित हैं । अब तो अपने जीवनका अधिक समय लगावें ज्ञानमें

ज्ञानाभ्यासका यत्न होनेपर ज्ञानानुभवकी सुगमताका परिचय—न भैया ज्ञानकी बात कठिन धों लगती कि अभी उसके अभ्यासमें आये नहीं उसके अभ्यासमें आना ही नहीं चाहते । भैया हम तो देखते कि व्यापार करना बड़ा कठिन काम है । कहाँसे माल लाना, कहाँ भेजना, कहाँ रखना, कैसी व्यवस्था करना, यों कितने ही भ्रंश हैं, पर व्यापारियों को ये काम बड़े सुगम लग रहे हैं । क्यों सरल मालूम होते कि उनमें कुछ अभ्यास बन गया है । तो अभ्याससे सारी चीजें सरल हो जाती हैं । अगर हम ज्ञानकी दिशा में एक अध्ययन करते हुए कुछ बढें । जैसे यहां पंडितजी रहते हैं तो बड़ें-बड़े लोग भी अगर एक ग्रन्थ पढ़नेका समय रखें २०-२५ मिनट प्रतिदिन तो एक साल के अध्ययन से ही वन दिशा मिल जायगी कि कठिन से कठिन बात ठीक ठीक समझ सकते हैं । तो अपना ज्ञान बढ़ानेके लिए उत्साह जगायें । अब जीवन पलट लीजिये । इन भौतिक पदार्थों की ओर ही अपना झुकाव न रहना चाहिये, होता रहता है । वह तो होता है । उसके करने वाला कौन ? कोई चक्रवर्ती होता है तो क्या वह एक-एक राजा को जीत कर होता है ? उनके पिता मंडलेश्वर होते थे वे उत्पन्न हुए कि चक्री हो गए फिर उनका अपना कोतुहल है दिग्विजय को जाते हैं, अर्थात् जिनके सम्पदा आती है तो कहते तो हैं लोग ऐसा कि एक एक बूँदकरके तालाब भरता है । थोड़ा-थोड़ा धन आकर धनिक होता, पर ऐसी बात नहीं । पुण्यका उदय होता है तो अचानक ही कहीं से सम्पदा बरष जाती है । एक-एक बूँद करके भी आता और एकदम अचानक करके भी आता, तो ये बाहरी बातें हैं । इन बाहरी बातोंके लिए ही अपना उपयोग न लगावें । ये तो उदयानुसार आते हैं, इनमें आत्मा की करतूत नहीं । एक सम्यग्ज्ञान भर करना है, इस देहके भीतर जो गुणगुणाता है समझता

है, सोचता है। चिन्तन करता है। दुःखी होता है वह भीतर में है क्या, किस रंगका है। क्या मिलता है, कैसे दुःखी होता है, कैसे दुःख मिटेगा? ऐसी एक भीतरकी गुथी न सुल-भायेंगे तो बाहरके किसी भी परिश्रमसे आत्माका भला नहीं होनेका। बहिरात्मापनको छोड़े, अन्तर्मुखी होकर मैं अपने आपमें अपने वैभवको जान सकूँ। जब अन्तरात्मा हो जाता है तो वह इस अन्तस्तत्त्वका आलम्बन करके कर्मका क्षय करता है और परमात्मा हो जाता है।

सर्वाधिक बड़प्पन—भैया सबमें यह चाह है कि मैं ऐसा बनूँ जो सबसे ऊँचा कह-लाऊँ और फिर कभी-मिटे नहीं। जैसे कोई घनी होना चाहता तो उसके मनमें यह भावना रहती है कि मैं फिर मिटूँ नहीं। वैसा ही धनिक बना रहूँ। कोई यह नहीं सोचता कि मैं कम रहूँ और जो बने सो मिट जाय। चाहे हो जाय वह बात अलग है, मगर कोई सोचेगा कि मैं बड़ा बनूँ और बड़ा बनकर फिर कभी हल्का न होऊँ। तो यह ही बात आचार्य कह रहे हैं कि आप बड़े बनें और ऐसे बड़े बनें कि जैसा बड़ा बननेके बाद फिर कभी उससे हल्के न हो सकें। वह चीज क्या है? परमात्मा। परमात्मा बनें, जिसके बाद कभी वह छोटा हो ही नहीं सकता। और परमात्मापदके सिवाय बाकी जितनी स्थितियाँ हैं संसारकी उनमें विश्वास नहीं है। कुछ बड़े बनेंगे फिर मिट जायेंगे, छोटे होंगे देव भी मरकर पेड़ पौधे हो सकते, एकेन्द्रिय हो सकते। तो संसारमें और बड़प्पन क्या है? इसको बड़प्पन मत समझो। देखो धर्मके नामपर, आत्मदयाके नामपर ये सारी बातें समझनी होगी कि यह कोई बड़प्पन नहीं कहलाता। यह तो कीचड़ है। यह तो माया है। यह तो स्वप्नकी तरह है। इसका नाम बड़प्पन नहीं। बड़प्पन है तो अपने रत्नमयमें बड़प्पन है। सम्यग्-दर्शन हो, सम्यग्ज्ञान हो, सम्यक्चारित्र्य हो। अब यह बतलावो कि परमात्मा जिनेन्द्र अरहंत उनकी मूर्ति बनाकर बड़े-बड़े लोग भी पूजने के लिए, दर्शनके लिए क्यों आते हैं? देखनेको तो यह मिलता कि कुछ नहीं मिलता। जैसे कि जौ लोग मूर्तिपूजाको नहीं मानते वे यही तो कहते हैं ना कि यो लोग क्यों व्यर्थ में इस मूर्तिको पूजने आते हैं? कुछ मिलता है क्या? बात यह है कि वास्तविक बड़प्पन परमात्मपदमें ही है। और इतना महत्त्व है, इतना बड़प्पन है कि हम उस ही बड़प्पनके प्रति झुक जाते हैं कि उसके नामकी मूर्ति पूजते हैं। जैसे किसीको अपने पिता के प्रति बड़ा अनुराग है तो पिताके गुजरनेपर या रहने पर भी उस पिताका फोटो बनवाता है और उस फोटो का आदर करता है, इसीतरह भगवानमें हमें इतना अनुराग है कि हम उनकी मूर्ति पूजते हैं? तो वास्तविक बड़प्पन परमात्मदशामें है। संसारकी चीजों

में बड़प्पन मत मानें । देखो एक मानने की ही बात कही जा रही है । कोई तपश्चरणाकी बात तो नहीं कह रहे कि इतना कष्ट करो । एक जो यथार्थ बात है उसको मानलो, भला ही जायगा । एक वास्तविक बड़प्पन है परमात्मस्वरूपमें, अन्यमें नहीं, यह विश्वास बनाओ और फिर जो अधिक धनी दिखें, उनसे देखकर ऐसी लालसा न करें कि मैं ऐसा हो जाऊँ । जैसा भवितव्य है सो होने दो । हमारा काम तो गुजारा करनेका है और धर्ममें विशेष चित्त लगानेका है । किसी धनिकको देखकर उसका बड़प्पन न समझें । चक्रवर्ती भी हो जाते हैं फिर भी उसे वे महान नहीं मालूम होते हैं । छह खण्डका राज्य मिल जाये उसमें भी कोई महत्ता की बात नहीं है । हां महान होता है परमात्मा । एक अपना ऐसा सच्चा निर्णय बनालें कि यहां से कोई भी स्थिति बड़प्पनके लायक नहीं है । प्रधानमन्त्री हो गए, राष्ट्रपति हो गए, या संयुक्तराष्ट्रसंघके मंत्री हो गए, या कोई भी पद हो यहां बड़ा से बड़ा पद समझा जाता हो, वह कोई भी स्थिति बड़प्पनके लायक नहीं है । वह तो सब कर्मलीला है । जो जितना अधिक ऊँचे उठेगा वह गिरेगा तो उतनी ही अधिक चोट आयगी । जो जिसमें जितना अधिक बढ़ गया यहां वह उसके पीछे उतना ही अधिक कष्ट मानेगा । तो क्या है जगतकी दशा । जैसे कोई अनजान आदमी गहरे पानीमें गिरकर गोते खाता है, इसीतरह यहां संसारमें भी यह प्राणी गोते लगाता रहता है । तत्त्व कुछ नहीं मिलता । आत्मत्त्वकी सही श्रद्धा बनालें तो नियमसे पार हो जायेंगे । आपकी वास्तविक बात मिल जायगी । आत्माकी दृष्टि बने, रागद्वेष मोहरहित अवस्था बने, ज्ञानमें ही तृप्त होनेकी स्थिति बने, ऐसा सहज आनन्द जगे वहाँ बड़प्पन है । बाहरी चीजोंमें बड़प्पन नहीं है । तो यह है मोक्ष । जो परमात्माका स्वरूप है उसी को ही मोक्ष कहते हैं । ऐसे मोक्षका कोई उपाय जानना है ना । जानना ही चाहिए । संसारके संकटोंसे हम छुट जायें, इसका उपाय अवश्य ही जानना चाहिये । तो वही उपदेश इस मोक्षशास्त्र में चलेगा ।

आत्मार्थियोंके लिये ग्रन्थकी प्रयोजकता—यह उपदेश किसको दिया जा रहा है ? जिन्होंने यह ग्रन्थ बनाया उन्होंने किसके लिए बनाया, किसके लिए यह प्रयास किया ? जिसके यह भावना जगी कि आत्माका हित क्या है ? आत्माका संसारसे छुटकारा होनेकी क्या स्थिति और उपाय है, ऐसी जिनकी इच्छा जगी हो उनको ही सुनाया जा रहा है । कहीं भी हो । अब वहीं सभामें हम जबरदस्ती आप लोगोंको सुनायें और आप सुनना ही न चाहें तो वहां सुनानेसे न आपको लाभ है न हमको । आपको जिज्ञासु जानकर बोलें तो हमने भी लाभ पाया, आपने भी । यही बात शास्त्ररचनेके प्रसंगमें होती है कि उस मोक्षके जाननेका, मोक्षके उपायका जिसको भाव हुआ हो, जो जानना चाहता हो वह हो सामने या ऐसा जीव

आचार्यकी दृष्टिमें हो तो उनसेयह ग्रन्थ रचना बन सकती है । तो मोक्षमार्गको जाननेकी इच्छा होती है, क्योंकि आत्मा है ना । सभी भला चाहते । अपनी भलाई का उपाय समझने की सबके इच्छा जगती है, बस उसी आधारपर यह ग्रन्थ आचार्य संतोंने बनाया है । क्या बताया जायगा इस ग्रन्थ में ? मोक्षमार्ग । रोज-रोज सूत्र जी पढ़ते हैं और प्रायः करके कुछ महिलायें सूत्र पाठ करके ही भोजन करती हैं । उस सूत्रमें क्या महिमा पड़ी है जो इतना नियम बनाया जाता कि रोज पाठ करना आदर आदर तो बहुत है, पर आदर की चीज क्या है, इसका उनको पता नहीं । आस्था बहुत है । उसके बिना यह समझा कि हमने धर्म नहीं किया, पर चीज क्या है इसका पता नहीं । जिसके प्रति इतनी आस्था है उसका कोई अर्थ समझ जाय तो फिर उसकी आस्थाका कहना ही क्या है ? क्या भरा है इस मोक्षशास्त्र में ? इसमें जीवोंके संसारके संकटोंसे छूटनेका उपाय बताया है । कैसे छूटें ? मोक्षमार्ग बताया है । कोई सोचेगा कि इसमें मक्षोका उपाय बताया है । उससे पहिले तो मोक्ष बताना चाहिए कि मोक्ष क्या चीज है ? उपाय तो पीछे बताना चाहिए । सो देखो मोक्ष के बारे में किसी को तो विवाद नहीं ।

किसी न किसी रूप में मोक्ष को स्वीकार करते ही हैं । संकटों से छूटने का नाम मोक्ष है । अब इसकी और क्या बात जानना ? छूटने का उपाय है, यह समझने की चीज है, जैसे किसी एक गांव को जाना है । तो उस दिशा में रहने वाले लोगोंको तो कोई विवाद नहीं, किन्तु किस रास्ते से जाना है, इसमें विवाद है, इसी तरह मोक्ष के प्रति किसीको विवाद नहीं । मोक्ष सभी चाहते हैं, कर्मों से छुटकारा सभी चाहते हैं, पर उनके मार्ग में विवाद है । कोई कहता है कि सिर्फ ज्ञान ज्ञान से ही मोक्ष होता, कोई कहते कि इन धार्मिक क्रिया-काण्डों को करते करते मोक्ष होता । तो इस विवाद को मेटने के लिए मोक्षमार्ग बताया जायगा कि रत्नत्रय से मुक्ति मिलती है । यह आत्मरहस्यकी बात जानना एक बहुत आनन्द की चीज है । उत्साह और उत्सुकता बढ़ाने वाली बात है, लेकिन यह बात तब पसंद आयी जब इतना समझ में आये कि जितने समागम हैं बाहरी भौतिक वे सब मेरे लिए बेकार हैं, असार हैं । यह बात जब तक समायी न हो तब तक धर्म के लिए उत्सुकता नहीं जग सकती । जिनको ये विषय ही सार लग रहे हैं वे मुक्ति की बात ही क्यों करेंगे ? जिनको खाना पीना विषय सेवन, रूप देखना, राग सुनना, इज्जत देखना, प्रशंसा सुनना ये बाहरी बातें पसंद आ रही हों, भला वे क्यों मुक्ति की बात करेंगे ? तो यह धर्म की बात उस ही हृदय में समायी जा सकती है जिस हृदय में इतना निश्चय हो गया हो कि और बातें तो बेकार हैं, असार हैं । साथी नहीं हैं, शरण नहीं हैं, सब छूट जायेंगी, विनाशीक

हैं। यह मैं तो बन्दा अकेला ही रहूंगा। इसका किसमें भला है? वह बात हमें समझना है। यह चित्तमें बात समायी हो तो धर्म में प्रीति जगती है। तो हम सब जीवों का उद्धार कर सकने वाला एक धर्म ही हैं। और वह धर्म क्या है कि मैं अपने स्वभाव को जानूँ और इसमें ही लीन रहूँ। जो मेरे पास है, मेरी चीज है, मेरा वैभव है। मैं शुद्ध ज्ञानस्वरूप हूँ। मैं तो अपने ज्ञान से अपने ज्ञान स्वरूप की बात को समझूँ, बस इसी में ही भलाई मिल सकेगी और भ्रम में भलाई न मिल सकेगी। भ्रम सदा दुःखकारी चीज है। तब मोक्ष क्या? अब तो अपने जीवन को ऐसा पलटिये कि कम से कम १०-१५ मिनट तो रोज अध्ययन की दृष्टि से अध्ययन कीजिये। और, स्वाध्याय करें, स्वाध्याय सुनें तो इस दृष्टिसे कि मेरी भलाई किसमें है, वह चीज मुझे चाहिए, बाकी जितना फसे हैं वे सब मेरी बरबादी के ही कारणभूत हैं। भीतर ज्ञानप्रकाश मिलेगा, आत्मतृप्ति मिलेगी, वह आनन्द मिलेगा जो हमारे पुराण पुरुषों ने ऋषी संतजनों ने पाया है। उस ही मार्ग से हम आप भी चलें, बस यही है अपने पुराण पुरुषों के मार्ग पर चलने की बात। इसके लिए अध्ययन चाहिए। तो ज्ञान मार्ग में बढ़ने का एक संकल्प बनावें।

मोक्षमार्ग नेतृत्व में तत्त्वदर्शन—मोक्षशास्त्र के मंगलाचरणमें जो नमस्कार किया गया है उसमें तीन विशेषतायें हैं, उस मोक्षमार्ग के नेता को कर्मपहाड़ के भेदने वाले को, समस्त तत्त्वों के जानने वाले को नमस्कार करता हूँ। इन तीन विशेषणों से हमको हितके लिए कौन सी बात मिलती है तो परखो, जो मोक्ष मार्ग के नेता हैं, जो मोक्ष मार्ग पर चले और चल कर वहां मुक्ति पाया और जिनके चरित्र से, उपदेश से, दर्शन से भव्य जीव मुक्ति का मार्ग प्राप्त करते हैं, उन्हें कहते हैं मोक्षमार्गका नेता। मोक्षमार्गके नेता प्रभु अरहंत ज्ञानस्वरूप आत्मा हैं। जो ज्ञानस्वभावी होगा वही तो मुक्ति का मार्ग पायेगा, मोक्ष पायेगा। देखो इस प्रसंगमें थोड़ी एक दार्शनिक की बात बतलाया। किसी दार्शनिक ने ऐसा माना है कि आत्मा में ज्ञान नहीं होता। चेतन तो जरूर है आत्मा मगर उसमें ज्ञान नहीं है। तो फिर ज्ञान आता किस तरह है? तो उनका कहना है कि ज्ञान एक अलग पदार्थ है। गुण नाम का पदार्थ है। इस ज्ञानका जब आत्मा में सम्बन्ध होता है तब ही ज्ञानी बोलते हैं। सुनने में कुछ अटपट सा लग रहा होगा कि आत्मा तो ज्ञानस्वरूप ही है, कैसे उन्होंने यह बात पकड़ी कि आत्मा में ज्ञान नहीं होता। ज्ञान का सम्बन्ध होता है तब आत्मा ज्ञानी कहलाता है। तो यह बात समझने की उनकी दृष्टि यह रही कि ज्ञान गुण है आत्मा पदार्थ है। आत्मा का स्वरूप चेतन है, ज्ञान आत्मा में रहता है, लोग मुख से बोला भी करते हैं कि आत्मा में ज्ञान है। तो इस तरह दो चीजें समझ में वहां आयीं तो अलग-अलग

मान लिया, लेकिन ऐसा है नहीं। आत्मा है सो ज्ञान। ज्ञान है सो आत्मा। अगर ज्ञान आत्मा में नहीं है तो ज्ञानका सम्बन्ध होने से आत्मा ज्ञानी होता, तो जब ज्ञान का सम्बन्ध न हुआ तब आत्मा क्या ज्ञानी नहीं है? और जब आत्मा जुदा है, ज्ञान जुदा है तो ज्ञान आत्मा में ही क्यों चिपकता? आकाश में क्यों नहीं चिपक जाता? भौतिक पदार्थों में क्यों नहीं लग जाता? आत्मा में ही क्यों लगता है? तो आत्मा ज्ञान स्वभावी है। और ऐसा ज्ञानमय पदार्थ अनादि से कर्म के आवरण के कारण यह संसार में रहता, जन्म मरण करता दुःख पाता है। स्वरूप इसका वह है जो प्रभुका स्वरूप है। रागद्वेष मोह बाह्य पदार्थों में लगाव, ये सब व्यर्थ की और बेकार चीजें हैं या नहीं? तत्त्व दृष्टि से देखो जिनसे लगाव है ये दुःख के ही कारण हैं। सदा रहने वाले नहीं हैं, भिन्न पदार्थ हैं। लगाव करने की जरूरत क्या थी? जो आनन्द स्वरूप धर्म है उस आत्मा की क्या आवश्यकता है कि यह पर पदार्थों से लगाव लगाये। कोई चित्त में यह सोच सकता है कि बाह्य भूख है, प्यास है, भोजन करते हैं, गृहस्थी है, लोग है, कामधंधे हैं, इसलिये लगाव लगाना पड़ता है, पर यह तो बताओ कि यदि ऐसी स्थिति हम आपको मिल जाय कि देह ही न रहे, जन्म मरण ही न करना पड़े तो फिर बाह्य पदार्थों के प्रसंग की जरूरत क्या है? यह तो आनन्दका निधान है।

आत्माथीका शरण्य—आत्माथीको कहा नमना चाहिये, कहां शरण ढूढ़ना चाहिये। इसका संक्षेपमें समाधान चाहें तो दो जगह दृष्टि होनी चाहिए—परमात्मभक्ति और स्वभाव भक्ति। ये दो ही एक शरण और नमने के लायक तत्त्व हैं। परमात्मा जिनेन्द्र अरहंत, उसकी स्वरूपभक्ति संसारके पदार्थोंका समागम क्लेशका कारण है। भिन्न है। विकार होते हैं, कोई सम्बंध नहीं है तो उस लगावमें केवल कष्ट हैं उस कष्टसे छुटकारा पाने के लिए हमें कष्टरहित प्रभुके निकट आना चाहिए। भगवत अरहंत देव समस्त कष्टोंसे रहित हैं, १८ प्रकारके दोषों से रहित हैं। उनका जन्म है, न प्रतिष्ठा है, न मरण है। क्षुधा तृषा आदिक कोई दोष नहीं हैं। ऐसे निर्दोष मोक्षमार्गका नेता अरहंत जिनेन्द्र तीर्थंकर देव उनकी शरण गहनेसे हम आपको मार्ग मिलता है और परमार्थतः शरण है स्वभावभक्ति। अपने आपका जो एक ज्ञानस्वभाव याने परमें सम्बंध बिना, परका विकल्प किये बिना अपने आप ज्ञान जिस ज्योतिकलामें रहता बस ज्ञान उस स्वभाव में रहे, वह कहलाता है स्वभाव, उसकी भक्ति ही शरण है। फिर गुरुवोंकी भक्ति तो प्रभुभक्ति से सम्बंधित आंशिक बात है। प्रभुतापूर्ण निर्दोष है। गुरु निर्दोष बन रहे हैं और निर्दोष बननेके मार्गमें लग रहे हैं तो वह विकाश भक्ति में

ही शामिल है । दो जगह हमारी दृष्टि होनी है अर्हदभक्ति और स्वभावभक्ति । अरहंत हैं मोक्षमार्गके नेता । कहते हैं ना कि जो तीर्थकर नहीं होते, दिव्यध्वनि नहीं होती तो जगतके जीव कहांसे ज्ञान पाते ? कहां मोक्षमार्ग पाते ? तो यह सब जिनवाणा की ही तो बलिहारी है कि हम आप कुछ बोध पाये हुए हैं । संसारके जीव प्रकृत्या दोषोंकी तरफ लग रहे हैं । उनको दोषोंका उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है । वे तो प्रकृत्या ही दोषों की ओर भुक्तते हैं । विषय कषायोंकी ओर प्रकृत्या भुक्तते हैं । उनको कोई सांसारिक कार्योंके उपदेशकी जरूरत नहीं । वे तो प्रकृतिदोषमें चलते ही चले आ रहे हैं । इनको उपदेश देनेकी जरूरत है मोक्षमार्ग की । कैसे छुटकारा मिले ? कैसे वह आत्मज्ञान मिले ? कैसे वह आत्मरमण मिले ? कैसे आत्मतृप्ति मिले ?

परलक्ष्यमें शान्तिकी असम्भ्रमता—लोग चाहते हैं शान्ति और ऐसी शान्ति मिले जो उत्कृष्ट हो । जिसका कहीं विनाश न हो । तो भना बतलावो ऐसी शान्ति किसी परपदार्थके ख्यालमें मित्र सकती है क्या ? नहीं मित्र सकती । क्यों नहीं मिल सकती ? यों कि जो विषय साधन है जो परपदार्थ हैं उनपर इसने उपयोग दिया । तो पहिली गल्ती तो यह हुई कि अपने प्रदेशसे बाहर जाकर बाहरी घरमें ठहरे, अपना घर इसने छोड़ दिया तो बात यह हुई कि बाहरी जो पदार्थ हैं वे विनाशोक्त हैं । तो जिनपर इसने राग लगाया है वह जब नष्ट होगा तो इतना खेद खिन्न होगा ना । इसलिए परपदार्थों के लगावमें कोई चाहे कि हम शान्ति पालें तो यह कभी हो ही नहीं सकता । जितनी शान्ति अब भी मिलती है तो यह न समझिये कि परपदार्थ के संयोगसे मिलती है, किन्तु ज्ञान इस तरहका बनाया है कि जिससे यह अपने से कुछ कृतकृत्य सा समझते लगता । मेरे करने को अब काम नहीं रहा । जो करने का काम था वह कर लिया, ऐसा भाव मनमें जगता है , उसका थोड़ा सुख मिलता है, चीजके मिलनेका सुख नहीं मिलता । जैसे किसीको कोई मकान दुकान, फर्म या कोई चीज बनानी हो तो जब तक वह चीज नहीं बनती तब तक तो आकुलता है, बेचैनी है और उस चीजके बननेमें जो क्षणिक मौज मिलता है तो लोग कहते हैं कि उस चीजके बननेमें सुख मिला, लेकिन वास्तविकता यह नहीं है । उस चीजके बन जानेपर जो उसके मनमें यह भाव बनता कि अब मेरे करनेको काम नहीं रहा, इस ज्ञानका आनन्द है वहां कामका आनन्द नहीं । चीजका आनन्द नहीं । बात सब जगह एक सी घटेगी । योगीजन काममें पड़े बिना, काम किए बिना पहिलेसे ही समझ लेने हैं कि मेरे करने को बाहरमें कुछ काम ही नहीं पड़ा । मेरे को तो यह ही काम था कि मैं अपने

ज्ञानस्वरूपको अपने ज्ञानमें समायें रहूँ, ऐसा काम यदि कर पाया तो मैं कृतकृत्य हूँ। तो बाहरमें करनेको कुछ काम नहीं, जब यह भाव बनेगा तब समझ मिलेगी। तो लोग बाहरमें कुछ काम होनेके बाद ऐसा ज्ञान कर पाते हैं योगीजन कामसे दूर रहकर ही यह ज्ञान बना लेते हैं इसलिए उनको शान्ति मिलती है।

चिकीर्षाके अभावमें शान्तिकी संभवता—एक दृष्टान्त लो। किसी मित्रका पत्र मानो दो जगह आया, दो मित्र थे, कि मैं अमुक गाड़ी से जा रहा हूँ और इस स्टेशन से जाऊँगा, आप स्टेशनपर मिल जायें। उसको उस स्टेशनपर उतर कर उस गांव न जाना था आगे जाना था। तो एक मित्रने तो उस पत्रको फाड़कर फेंक दिया सोचा कि क्या मिलना? और दुसरे मित्रने मिलने की इच्छा की। तो वह मानों करीब ८ बजे दिन में प्रतिदिन सोकर उठा करता था और ८ ही बजे उस स्टेशनपर गाड़ी आनी थी, तो उसदिन वह मित्र दो घंटे पहिले ही उठकर सारे काम बड़ी जल्दी-जल्दी में निपाटता है, फिर जल्दी ही स्टेशनपर पहुंचता है। वहां पहुंचकर पता लगाता है कि गाड़ी अभी कितनी लेट है? पता पड़ता है कि अभी १५ मिनट लेट है, तो कुछ खेद सा हो जाता है, जब गाड़ी आती है तो बड़ी दौड़ धूम करके वह अपने मित्रको पालेता है। गाड़ी वहां कोई ५ मिनट ही ठहरनी थी। वह अपने मित्रसे मिलकर बड़ा प्रसन्न हुआ। दो ही मिनट बाद भट वह खिड़कीसे झाँकने लगा—कहीं गाड़ने सीटी तो नहीं दे दी, कहीं गाड़ी चल तो नहीं पड़ी। जरा बताओ उस मित्रसे मिलने पर जो वह सुखी हुआ तो किस बात से सुखी हुआ? क्या मित्रके मिलने का सुख है? अरे तुम्हें सुख ही तो चाहिए। उस मित्रसे मिलकर खूब सुख लूटते रहो। क्यों झाँकने लगे खिड़कीसे? क्यों उतरने की सोचने लगे? तो मालूम होता है मित्रसे मिलनेका वह सुख नहीं है, किन्तु मित्रसे मिलनेका अब कामनहीं रहा इस बातका सुख है। मेरे करनेको अब बाहरमें कोई काम नहीं रहा यह ज्ञान जिस प्रकार आये उस प्रकार करें तो शान्ति मिलेगी। मेरेको बाहरमें कुछ काम करनेको पड़ा है यह ख्याल जब तक है तब तक उसे शान्ति नहीं है। भगवानका एक नाम है कृतकृत्य। जिसने करने योग्य काम सब कर लिया। तो जिसे अब करनेको काम कुछ नहीं रहा, यह ही तो भगवान का स्वरूप है। हम उसका आंशिक पालन करें, ऐसा ज्ञानबल बढ़ायें कि यह हमारी दृष्टिमें आये कि मेरे करनेको आत्मप्रदेशसे बाहर कुछ काम नहीं है। देखिये—इसीलिए तत्त्वज्ञान करना होता। मैं आत्मा हूँ, ज्ञानस्वरूप हूँ। ज्ञानस्वरूप ही मेरा सर्वस्व है। मैं अपने आपके ज्ञानको ही कर पाता हूँ, ज्ञानको ही भोग पाता हूँ, मैं अपने प्रदेशोंसे बाहरमें कोई काम नहीं कर पाता हूँ।

काम जितना भी बाहरमें होता है। वह निमित्त नैमित्तिक योगसे होता है, पर मैं बाहरमें किसी पदार्थका कुछ भी परिणाम करने वाला नहीं हूँ वे परिणामते हैं अपनी क्रियासे। हम उसमें निमित्त होते हैं। निमित्त नैमित्तिक भाव नहीं मिटता। वहतो चलाता ही है अनादिसे। और चलता ही रहेगा। तभी व्यवस्था है, लेकिन प्रत्येक पदार्थ केवल अपने आपका परिणाम करता है। दूसरेसे मेरे द्रव्य क्षेत्र, काल, भावका सम्बंध नहीं है। तो यह मैं आत्मा देखो विश्वके समस्त पदार्थोंसे निराला हूँ। मेरेको बाहरमें कुछ करनेवा काम ही नहीं है। कर ही नहीं सकते। किया ही नहीं गया कुछ। केवल कल्पना भर ही कर रहे कि मैंने यह किया, मैं यह करूँगा।

व्लेशकी कारणभूत प्रथम भूल अहंकार—जीवकी व्लेशके कारण चार प्रकारकी भूलें हैं पहली भूल तो मैं क्या हूँ इस सम्बन्धकी है। यह जीव जानता है कि मैं मनुष्य हूँ। पुरुष हूँ, स्त्री हूँ, ज्ञानी हूँ, मूर्ख हूँ, राजा हूँ, रंक हूँ, इस प्रकारके नाना विकल्प अपनी श्रद्धामें बनाये रहते हैं, एक भूल तो यह है इसकी। होता क्या है कि जो यह श्रद्धा रख रहा है कि मैं इनका पिता हूँ तो पिताको जिस तरह करना चाहिए उस तरह की चेष्टा करेंगे ही। क्या करें? पुत्रों को सुखी करें, खूब धन जोड़ें, करेंगे चेष्टा, और जब यह जानेंगे कि मैं तो केवल ज्ञान स्वरूप हूँ तो ज्ञानस्वरूपके नातेसे जो करना चाहिये था सो करेंगे। मानो वह साक्षी रहेगा, ज्ञाता दृष्टा रहेगा, बाहरी पदार्थों में हर्ष विषादन करेगा। क्या बड़े-बड़े समागमों में रहने वाले लोग सम्यक्त्व नहीं पाते? भरत चक्रवर्ती छह खण्डका राज्य था लेकिन सबसे निर्लेय थे। लोग कहते हैं कि भरत घरमें बैरागी। भरत ही क्या, जितने सम्यग्दृष्टि ज्ञानी गृहस्थ होते हैं वे घरमें रहते हुए बैरागी रहते हैं। जब जान लिया कि मेरे आत्माका केवल मेरा आत्मस्वरूप ही सर्वस्व है तो उसे व्यामोह क्यों होगा? घरमें रहनेके कारण वह तो अपना कर्तव्य निभायगा। तो पहिली भूल जीवकी अपना स्वरूप समझनेके बारेमें है।

व्लेशकी कारणभूत द्वितीय भूल रम्भकार—दूसरी भूल है बाहरी पदार्थोंको अपना धन मानने की। यह मेरा घर है, मेरा पुत्र है, मेरा देह है। परमार्थ दृष्टिसे देखो वस्तुतः मेरा है क्या? मेरा तो वह है जो मेरा कभी साथ न छोड़े। जो मेरा साथ छोड़े वह मेरा क्या? बहुत सीधी कुञ्जी है। अपना क्या है यह समझनेकी। जो मेरा साथ छोड़ दे वह मेरा नहीं है और कहते ही हैं लोग कि वक्त आये पर जो साथ न निभाये, जो साथ छोड़ दे वह मेरा क्या? तो अब देखिये क्या मेरा साथ देह देगा? ये कुटुम्ब, धन,

सम्पदा इज्जत ये कोई लोग मेरा साथ देंगे, मेरे साथ चलेगा क्या ? मेरे साथ तो मेरा ज्ञान ही चलेगा । उस ज्ञानकी जो कलायें हैं वे रहेंगी । कोई भी मेरा साथ न निभायेगा, इसलिए मेरा धन, मेरा सर्वस्व मेरा ज्ञान स्वरूप है, किन्तु मोहीजन ऐसा न मानकर बाहरी पदार्थोंको मानते कि ये तो मेरे हैं इसीलिए दुःखी होते । कहने की बात और कुछ माननेकी बात भले ही ऐसी रहे, मगर श्रद्धामें स्पष्ट यह रहे कि मेरा तो परमाणुमात्र भी नहीं है, केवल मेरा ज्ञानस्वरूप है । सेठका मुनीम भी तो सेठकी सारी जादादके प्रति मेरी-मेरी ही तो कहता है, मेरी जायदाद, मेरा फर्म । ग्राहकोंसे भी कहता कि मेरा तुमपर इतना गया, तुम्हारा हमपर इतना आया । मुझे आपसे इतना लेना है, आपको मेरेसे इतना लेना है पर बताओ क्या तो मुनीमको लेना और क्या देना ? अरे वह तो सेठकी सम्पत्ति है । कहनेको तो मुनिम भी कहता है, पर उसका अर्थ क्या ? वह तो उसका कर्तव्य (Duty) है । उसकी श्रद्धामें यह बात बसी है कि मेरा कुछ नहीं है, तो ऐसी बात जो स्वयं सेठ है, धनी है, सम्राट है वह भी तो अपनी सम्पदाके प्रति यही भाव रख सकता है कि मेरा कुछ नहीं है । जो वास्तविक बात है वह ज्ञानमें क्यों न रहेगी ? एक सेठ था तो उसके यहाँ जो मुनीम था वह सेठ की प्रवृत्ति देखकर बड़े आश्चर्यमें रहता था कि यह कैसे निर्लेय रहते हैं कई घटनायें देखा एक बार किसी फर्म में मानो बड़ा टोटा पड़ गया, खबर आयी तो मुनीमने कहासेठ जी इस बार तो फर्ममें १० लाखका टोटा पड़ गया—तो सेठ जी बोले हो गया टोटा, क्या है ? वह तो बाहरी बात हैं ? क्या परवाह है ? सेठकी बातको सुनकर मुनीम दंग रह गया । बड़े आश्चर्य में पड़ गया, सोचाकि देखो इतना बड़ा टोटा पड़ने पर भी इसके चित्तमें जरा भी कलुपता नहीं आयी । कुछ समय बाद मानो तगड़ा मुनाफा हुआ तो मुनीमने सेठको खबर दी कि इस फर्म में तो १० लाखका मुनाफा होगया तो सेठ बोला—हो गया होगा मुनाफा, क्या है ? नह तो बाहरी बात है ? अब तो मुनीम को और भी अधिक आश्चर्य हुआ । मुनीमने सेठ से पूछा कि सेठ जी, क्या कारण हैं कि आप न मुनाफेमें हर्ष मानते और न टोटे में विषाद मानते ? तो सेठने समझा दिया कि देखो भाई यहां किसका क्या है ? ये तो सब बाहरी चीजें हैं, लोग तो केवल उनके पीछे व्यामोह करते हैं ।

ममतामें कल्पनासे विडम्बना—रत्नकरण्डश्रावकाचार में परिग्रह पापकी कथामें बताया है कि एक स्मश्रुत नवनीत नामका पुरुष था । स्मश्रुत कहते हैं मूछको और नवनीत कहते हैं मक्खनको । हिन्दीमें उसका नाम मूछ मक्खन कहलो । तो उसका काम

क्या था ? उसने एक बार किसी श्रावकके यहां छांछ पिया तो छांछ पीनेके बाद मूछमें हाथ फेरा तो कुछ दही हाथ में लग गया । उसने सोचा कि अगर १०-२० घरोंमें रोज इस तरह से छांछ पी लिया करें और मूछार हाथ फेर कर दही इट्टा कर लिया करें तो कुछ ही दिनोंमें काफी धी इवट्टा हो जाया करेगा । बस यह ही काम उसका रोज रहे । मानो साल भर तक उसने यही काम कर लिया तो कोई तीन सेर धी जोड़ लिया । एक दिन जाड़ेके दिनोंमें वह अपनी भोपड़ीमें बैठा हुआ ताप रहा था । धी ऊपर सिकहरेमें लटका हुआ था । आग नीचे जल रही थी तापते हुएमें वह उसी जगह लेट गया । लेटा हुआ कुछ विचार करने लगा कलके दिन मैं इस धीको बाजारमें ले जाकर बेचूंगा, जितनेमें बिक जायगा उतनेमें एक बकरी खरीदूंगा । उससे कुछ मुनाफा होनेपर गाय खरीदूंगा । धीरे-धीरे भैंस खरीद लूंगा, उससे मुनाफा होनेपर बैल खरीद लूंगा, फिर कुछ खेती कर लूंगा, घर बनवा लूंगा, विवाह कर लूंगा.....। यों वह पड़ा हुआ कल्पनायें कर रहा था, उसे कुछ निद्रासी आने लगी पर उसकी कल्पनायें अभी आगे ही बढ़ती जा रही थीं । फिर सोचा कि विवाह हो जानेके बाद बच्चे होंगे । कोई बच्चा मेरे पास आयगा, कहेगा कि पिता जी भोजन करने चलो, मां जी ने बुलाया है, तो मैं कह दूंगा कि अभी नहीं आता, फिर दुबारा आयगा तो कहूंगा कि अभी नहीं आता, तबारा बुलाने आयगा तो लात-फटकार कर कहता है—अबे अभी नहीं आता । तो लातकी फटकार से उसका धी आगमें गिर गया । धी जलने लगा, भोपड़ी जलने लगी । अब वह बाहर निकलकर चिल्लाता है—अरे भाइयो दीड़ो हमारा मकान जल गया, हमारी स्त्री जल गई, हमारे बच्चे जल गए, हमारे जानवर जल गए । पड़ोसके लोग उसकी बात सुनकर दंग रह गए । सोचा कि अभी कल तक तो यह भीख मांगता था, आज कह रहा है कि हमारा मकान जल गया, हमारे जानवर जल गए, हमारे बच्चे जल गए । जब किसी ने उससे पूछा तो उसने सारा हाल कह सुनाया । तो एक सेठने कहा—अरे क्यों रोता, क्यों दुःखी होता ? तेरा तो कुछ भी नहीं जला, तू कल्पनायें ही तो कर रहा था, तेरा कहां था कुछ ? तो वहां किसी समझदार ने उस सेठ से कहा—सेठ जी तुम भी तो व्यर्थमें दुःखी होते फिरते हो । यह मकान, यह धन, ये घरके लोग तुम्हारे हैं कहां ? तुम तो कल्पनायें भर करते हो । क्यों व्यर्थमें इनके पीछे रात दिन चिन्तित रहा करते हो ? अरे तुम तो एक सबसे निराले जीव हो, तुमने कल्पनासे यहां सबको अपना बना रखा है । तो मैं केवल एक ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानस्वरूप ही मेरा सर्वस्व है । इसके अतिरिक्त अब मेरा कुछ नहीं है, ऐसा ज्ञान बनाओ, इसमें भूल न आये ।

क्लेशकी कारणभूत तृतीय भूल कर्तृत्वबुद्धि—तीसरी भूल यह होती है कि मैं अमुक काम करता हूँ, अरे जीवदृष्टि देकर देखो तो सही कि मैं देखने वाला अपने प्रदेशों में रहने वाला एक ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ। तो मैं जो कुछ कर पाऊँगा वह अपने प्रदेशों में ही कर पाऊँगा या किसी बाहरी पदार्थ में कर सकूँगा? अपने प्रदेशों में ही कुछ काम कर सकूँगा। एक अंगुली जो कुछ भी कर सकेगी वह अपनी अंगुली में ही कर सकेगी। जैसा अंगुली टेढ़ी कर लिया तो अंगुली का सब कुछ अंगुली में ही हुआ, अंगुली से बाहर कुछ नहीं हुआ। हाँ अंगुली का सम्बन्ध हो तो बाह्य पदार्थ भी यहां से वहाँ उठ जाय। इस स्थिति में भी अंगुली ने तो केवल अपनी अंगुली में क्रिया की। उसके बीच में वह चीज फस गई। यही निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध कहलाता। तो अंगुली चलाने का निमित्त पाकर यह चीज भी चली पर वस्तुतः परमार्थतः देखो तो अंगुली ने अपने में ही अपना सब कुछ किया। इसी तरह हम आप सब ज्ञान करते हैं। इच्छा करते हैं, विकल्प करते हैं, जो कुछ करते हैं वह उन प्रदेशों में करते, प्रदेशों से बाहर नहीं करते। तो यः श्रद्धा में आ जाय कि बाहर में मेरे करने का कुछ काम ही नहीं है। मैं अपने में सब कुछ किया करता हूँ। तो एक ज्ञान प्रकाश मिलेगा। तो तीसरी भूल यह सुधारनी है मैं क्या करता हूँ?

क्लेशकी कारणभूत चतुर्थभूल भोक्तृत्वबुद्धि—चौथी भूल होती है भोक्तृत्वबुद्धि—कि मैं भोजन भोगता हूँ, स्त्री भोगता हूँ, पुत्र भोगता हूँ, धन भोगता हूँ, सम्पदा भोगता हूँ, राज्य भोगता हूँ, आनन्द लेता हूँ, पर वास्तव में यह जीव तो ज्ञानका आनन्द लेता है, कल्पना का आनन्द लेता है। कल्पना के मिवाय और कुछ नहीं भोगता, तो यह भूल भी हमें मिटाना है और समझना है कि मैं कर्ता भोक्ता अपने आपसे अपने आपका हूँ, बाहर का नहीं हूँ। बाहरमें तो जो होता है वह उदयानुसार होता है। गृहस्थी में रहने के कारण हमारा कर्तव्य है कि हम अपना कर्तव्य निभाते रहें, दुकान पर बैठें, काम धंधा करें, उसी में जो कुछ भी आय होती हो उसमें सन्तुष्ट रहना चाहिए और उसी में अपने गुजारे की बात बनानी चाहिए, और कर्तव्य इतना ही समझें। तो मेरा ज्ञान विशुद्ध हो, मेरा आचरण अच्छा हो। मेरे विचार शुद्ध रहें, सब जीव सुखी हों, किसी जीव को मेरे द्वारा बाधा न हो। सब भगवान हैं। सब का आदर करें किसी को कुछ न मिले, ऐसा अपने भीतर में एक फैसला बनायें तो हमको शान्तिका मार्ग मिलेगा।

मुमुक्षुका नायक—हमारा नायक कौन है? संकटों से छुटकारा दिलाने में कौन मेरा मार्गदर्शक है, इसका निर्णय होना अपनी भलाई के लिए अति आवश्यक है।

मेरे नायक वीतरागसर्वज्ञ हितोपदेशी जिनेन्द्रदेव हैं। आज के समयमें यद्यपि जिनेन्द्रदेव नहीं दिखते, लेकिन उनकी परम्परा से चला आया हुआ जो उपदेश है उस उपदेश में, उस वचन में सब जगह जिनेन्द्र देव के दर्शन हो सकते हैं। ये प्रभु जो मोक्षमार्गके प्रणेता हैं, स्वयं जीवनमुक्त हुए हैं और मुक्तिका ही जिनका सबके हितके लिए उपदेश है, वह सकलज्ञेय ज्ञायक है फिर भी अपने ही आनन्द रसमें लीन है। प्रभु बाहरी बाहरी किसी भी पदार्थमें कुछ करते बिगाड़ते नहीं हैं। आम लोगों की यह भावना बन गई कि कोई परमेश्वर हम सबको बनाता है। मिलाता है, नरक भेजता है। स्वर्ग भेजता है, क्यों यह धारणा बनी ? इसका मोटा कारण तो यह है कि जब किसी बातका तथ्य समझमें नहीं आता, कोई रहस्य विज्ञात नहीं होता तो यह प्रकृति लोगों की हो गई कि उस बातको ईश्वरपर ढाल देते हैं कि यः तो ईश्वरकी मर्जी है, ईश्वरकी करनी है, ऐसे कर्ता धर्ता ईश्वरकी उपासनामें इस जीवको कोई लाभ नहीं हो सकता। जिसके चित्तमें यह बात है कि ईश्वर मेरेको सुख देने वाला है, मेरी मृष्टि करने वाला है तो उसमें वास्तविक भक्ति तो न जायेगी। डरके मारे भक्ति करेंगे यह मुझे नरक भेज दे, दुःखी न करदे। तों डरके मारे होने वाली भक्ति कोई भक्ति नहीं। यहां तो डरके मारे लोग बड़े-बड़े अफसरों की सेवा करते हैं। तो क्या यह कोई भक्ति में सामिल है ? भक्ति तो वह है जहां गुणानुराग होता है। यह कोई परमेश्वरका गुण है क्या ? कि वह किसीसे मारे पीटे, दुःखी करे, मुखी करे, स्वर्ग भेजे, नरक भेजे, प्रभुका गुण तो ज्ञानानन्दका अतुल विकास है। और युक्तियोंसे भी विचार लीजिए। परमेश्वर यदि जगत का कर्ता है तों वह क्यों कर्ता है ? क्या हम सब जीवों पर दया करके कर्ता है ! या वह तो अपना मन रमाने के लिए करता है ? यदि हम सबकी दयाके लिए करता है तो दया ही करते रहना चाहिए। क्यों दुःख दे, क्यों पाप करता, क्यों कष्ट देता ? जो बड़ा पुरुष हो वह तो समर्थ होता है। सबको सुखी करदे। वह तो अपने मनको रमाने के लिए करता है। तो इसमें तो कोई बड़प्पन नहीं हुआ। अपना मन रमानेके लिए यदवा तदवा प्रवृत्ति करने वाला कैसे महान् कहला सकता है ? तो हम आप सबको करनेका काम ईश्वरका नहीं है। ईश्वरका काम तो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति और अनन्त आनन्दका उपभोग करके रहना है, जिसके स्वरूपके स्मरणके प्रतापसे ही पाप दूर होते, ऐसा स्वरूप है प्रभुका तो प्रभु विकल्प करने वाला नहीं है, जगतका कर्ता हर्ता ईश्वर नहीं, किन्तु वह तो अतुल आनन्द और ज्ञानका निधान है। और भी देखिये परमेश्वर अगर कर रहा है किसीसे तो यह बतलावो कि जो पहिलेसे है उसीको कर रहा है या जो है ही नहीं बिल्कुल उसे कर रहा

है ? यदि कहो कि जो पहिलेसे है वह कर रहा है तो जो है उसके करने का क्या मतलब ? यह तो है ही' यदि कहो कि जो सर्वथा है ही नहीं उसे कर रहा तो इसे तो विवेकी नहीं मान सकता । वैज्ञानिक भी कहते हैं और उन के ही शास्त्र कहते हैं कि जो असत् है उसका कभी सद्भाव नहीं हो सकता । कोई युक्ति इस बात को सिद्ध नहीं कर सकती कि परमेश्वर' जगत को करने वाला है । अन्य श्रद्धा की बात अलग है । यों तो जब सबसे पहिले रेलगाड़ी निकली थी तो मानो जिस किसी भी दिन किसी लाइन से कोई गाड़ी निकल रही थी तो उसको देखने के लिए बहुत से लोगों की भीड़ लग जाया करती थी । तो आगे का जो काला-काला इंजन होता था उसको देखकर लोग समझते थे कि इसके अन्दर काली देवी है और वह इस रेलगाड़ी को चलाती है । कोई बात जब नहीं समझ में आती कि तथ्य में क्या है, कैसा निमित्तक भाव है, वस्तु का क्या स्वरूप है, जब समझ में न आया तो लोगों का एक ही उत्तर रहता है कि यह तो सब ईश्वर की करतूत है । ईश्वर की लीला है । पर परमेश्वर और परमईश्वर है । ईश्वर कहते ही उसे है जो अपने ऐसे ऐश्वर्य को भोगे कि जिसमें किसी की आधीनता न हो, उसे कहते हैं परमेश्वर । तो ऐसा यह वीतराग सर्वज्ञ हितोपदेशी आप्त भगवान हमारे मोक्षमार्ग का नायक है ।

भैया ! अपने सिरपर अपने हृदय में विराजमान करें अपने मोक्ष-मार्गके नायकको । बड़े का हाथ सिर पर रहेगा, बड़े की छत्र छाया में हम रहेंगे, संकट न आयेंगे । बड़े हैं मेरे को तो ये अरहंत जिनेन्द्र परमात्मदेव हैं, व्यवहार में ये ही महान हैं । इनमें भक्ति जगे, ऐसी धुन बने कि मेरे लिए तो एक भगवान ही सहाय्य हैं । परमें रहना पड़ता है, बच्चों का पालन पोषण करना पड़ता है, व्यापार करना होता है । सब कुछ करना पड़ेगा, गृहस्थी में कर्त्तव्य है वह, लेकिन यह श्रद्धा बनाये रहे कि बस मेरे को शरण है तो यही मेरा परमात्मतत्त्व और जिसकी स्मृति और ध्यान कराने में मददगार है तो यह व्यक्त परमात्मस्वरूप । दर्शन जब करने आते हैं प्रभु के तो यहां सबसे पहिले एमोकार मन्त्र और चत्तारिदण्डक बोलना चाहिये । तो चत्तारिदण्डक में बताया है कि चार चीजें मंगल हैं । मंगल उसे कहते हैं जो पापों को गलाये और सुख को पैदा करे । गालयति इति मंगलं । मैं कहते हैं पापको और उसे जो गलादे, नष्ट करदे सो मंगलतिइति मंगलं मंग कहते हैं सुखको । इसीसे तो उमंग शब्द बना । तो जो मंगको उत्पन्न करे उसे मंगल कहते हैं । ऐसे मंगल हैं अरहंत, सिद्ध, साधु और धर्म । व्यवहारमें तो अरहंत, सिद्ध, साधु हैं, ये तीनों ही प्रभु हैं । सिद्ध प्रभुके अंश हैं । अरहंत पूर्ण प्रभु हैं । तो प्रभुताको मंगल बताया है, और निश्चयसे आत्मा मंगल है । मेरा जो स्वभाव है अपने आप निरपेक्ष सहज मेरी जो कला है वह मेरे लिए मंगल है ।

आनन्दकी सहजसाध्यता—देखो कितना अन्तर है कि कष्ट तो बनाने से बनता है और आनन्द स्वयमेव होता है। आनन्द बनानेसे नहीं बनता। वह सहज स्वभाव है। अपने आप होता है। कष्ट बनाने से बना करता है। हम विचारते हैं, विकल्प करते हैं, सोचते हैं, कष्ट बनाया करते हैं। कष्टकी बात छोड़ दें, परिश्रम व्यापार छोड़ दें तो आनन्द तो इस जीवको सहज ही होगा वह कृत्रिम नहीं होता। कष्ट है कृत्रिम। आनन्द नैमित्तिक नहीं होता। कष्ट तो नैमित्तिक है। तो यह कष्ट पराधीन है। बनाने से बनता। नैमित्तिक है। यह कष्ट तो जीवोंसे लग रहा है व्यामोहमें सरल और अपना आनन्द लग रहा है इसको कठिन। देखिये जब भी होनहार अच्छा होगा तब यह ही स्थिति आयेगी कि समस्त बाह्य पदार्थोंका व्यामोह छूटेगा उपेक्षा होगी और अपने आत्मस्वरूपकी दृष्टि बनेगी। तो यह बात अभीसे ही कर ली जाय तो नफेकी बात है या नुकसानकी? बड़े लाभकी बात है। जीवन सफल हो जायगा। यदि एक यह प्रकृति हमारी बन जाय, दृष्टि बन जाय बस आनन्द और ज्ञान तो मेरा स्वभाव ही है। मेरेको कोई कष्ट नहीं। हम कृतार्थ हैं। मेरे पर कोई भार नहीं। हम तो स्वस्वतः पूर्ण निस्पन्न सही हैं। खेद किस बातका और, ऐसा धैर्य उत्पन्न हो कि जो परिस्थिति आये सो आये। किसी भी परिस्थिति से मेरे आत्माका बिगाड़ नहीं है। चाहे सम्पदा मिट जाय चाहे इष्ट वियोग हो जाय, चाहे देह भी छूट जाय कुछ भी स्थिति आये, किसी भी स्थितिसे मेरे आत्माका बिगाड़ नहीं है। यह बात स्पष्ट भलकना चाहिए। तथ्य भी इसीमें है। वस्तुस्वरूप भी यह ही बताता है। जो पदार्थ है वह अपने ही स्वरूपमें है। अपने में ही अपना उत्पाद व्यय करता है। किसी अन्यसे सम्बंध क्या है। जीव तो मोह में सम्बंध मानता है, पर प्रत्येक पदार्थ स्वतंत्र अपना स्वरूप रखता है। मैं रहूंगा। मैं ज्ञानानन्दस्वरूप हूं, मेरा किसीसे कोई सुधार और बिगाड़ नहीं है। मेरे लिए बाहरसे क्या है। ज्यादाहसे ज्यादाह कोई यह सोच सकता है कि शायद कभी किसीकी ऐसी स्थिति आये कि निर्धन हो जाय, लोकमें इज्जत न रहे, कोई सन्मान न करे तो जीवन कैसे चलेगा? तो देखो गुहस्थावस्थामें कुछ चाहिये तो जरूर कुछ क्रान्ति सम्पादन, लेकिन जिसको आत्मोद्धारका ही ख्याल है उसके लिये ये सब बातें व्यर्थ जंचती हैं। जो हो सो हो। ऐसे भी योगिराज हुए हैं कि जिनका उनके समयमें कोई आदर करने वाला न था, उनको जानने वाला भी न था। लेकिन अपनी साधनासे वे जब कर्ममुक्त हो गए तो उनके आनन्दमें, उनके विकास के क्या कोई कमी हुई? और जिनके बारेमें प्रायः सबको परिचय है ऐसे आदिनाथ भगवान में आनन्दमें कोई अन्तर है क्या? वहां सब एक स्वरूप है, सब भगवान है। तो जगतकी क्या बात है!

परमें शत्रुकी व्यर्थता—इस लोक में ऐसा कोई उपाय नहीं है जो सबको प्रसन्न कर सके, और न ऐसे कोई मनुष्य हुए हैं जो सारे विश्व को प्रसन्न रख सकें। तीर्थंकर भी ऐसे नहीं हुए कि जिनके प्रति सारे लोगोंकी श्रद्धा हुई हो और सब जीव जिनकी महिमा गाते हैं मगर विवेकियों ने उनकी महिमा गायी तो अविवेकियों ने निन्दा भी की। जगत में कोई भी ऐसा नहीं हुआ जो सारे विश्व को सन्तुष्ट कर सकता हो। तो जब आधे निन्दक हैं, आधे प्रशंसक हैं, आधे सन्तुष्ट हैं, आधे असन्तुष्ट हैं, तो सब सन्तुष्ट हों तो क्या, असन्तुष्ट हों तो क्या ? इससे क्या बिगाड़ ? जगतका ऐसा स्वरूप जानें वस्तुतः कोई भी जीव किसी का आदर नहीं करता। किन्तु वह अपने भावका ही आदर करता है। कोई किसी से प्रीति नहीं करता, किन्तु वह अपने विचार, कषाय, भावना और जो कुछ समझ रखा है उससे प्रीति करता है। वास्तविकता यह है 'पुत्र अगर किसीकी आज्ञा मानता है तो यह पिता है इस कारण आज्ञा नहीं मानता, किन्तु उसने खुद अपने को समझ रखा है कि आज्ञा मानते रहने में हमारी भलाई है। हमारी सुख सुविधायें हैं, हमारा इससे भक्तिव्य अच्छा है, इस बातसे आज्ञाकारी बनता है। इससे बुरा मानना यों जरूरी नहीं है कि यह वस्तु स्वरूपकी बात कही जा रही है। ऐसा कभी हो ही नहीं सकता कि कोई वस्तु किसी दूसरी वस्तुका द्रव्य गुण ग्रहण कर सके। तो इसीतरह समझिये सबकी बात। जो आज्ञा नहीं मानते उन्होंने समझ रखा है कि आज्ञा माननेसे हमारा कोई सुख नहीं, शान्ति नहीं। जो पुरुष जिसमें सुख शान्ति समझते हैं वे उसके अनुरूप कार्य करते हैं। मतलब यह है कि कोई किसी का भक्त नहीं। गिता पुत्रकी बात तो जाने दो। वस्तुतः कोई भगवानका भी भक्त नहीं। जो भी भगवानका भक्त हो रहा है वह अपने भावका भक्त है, भगवान का भक्त नहीं। निश्चयदृष्टिसे देखें तो भक्तके चित्त में यह बात है कि हम संसार से पार इस तरह होंगे। भगवानके स्वरूपका स्मरण करें, भगवानके गुणों में अनुराग करें, अपने आपके स्वरूपमें प्रतीति आये यह बात मुझे संसार के संकटों से छुटायेगी। तो संसार के संकट छूटने के ध्येय से भगवानकी भक्तिमें आता है। कहीं भगवान हमारे किसी रिस्ते में हों या महंत हों, इसलिए भक्तिमें नहीं आते। प्रयोजन यह है कि प्रत्येक जीवकी प्रवृत्ति अपने आप के लिए हुआ करती है। दूसरों के लिए नहीं हुआ करती। तो यह वस्तु स्वरूपकी बात है। समझना होगा। जो वस्तुस्वरूप जानेगा उसका मोह दूर होगा।

गृहस्थमें भी निर्मोहताकी सम्भावना—गृहस्थ निर्मोह होकर भी घरमें रह सकता है। राग न हो तब तो घरमें नहीं रह सकता, पर मोह न तो तब भी वह घरमें रह

सकता है। और, निर्मोह गृहस्थ सदा शान्त प्रसन्न रहता है, क्योंकि उसका हृदय श्रद्धावान है कि लोककी किसी भी परिस्थितिके कारण मेरे आत्माका सुधार और बिगाड़ नहीं है, किन्तु मेरे ही सम्पन्दर्शन, ज्ञान चारित्र की परिणतिसे सुधार है और मिथ्या दर्शनज्ञान चारित्रकी परिणतिसे बिगाड़ है। ऐसी सत्य श्रद्धा रखने वाला गृहस्थ निर्मोह रहता हुआ घर में प्रसन्न वित्त रहता है। राग बिना तो घर में रहना नहीं बनता, पर मोह के बिना घर में रहना बन सकता है। तो हमें अपने नायक की सच्ची खबर हो तो हम अपने को सुरक्षित अनुभव कर सकेंगे। हमारा नायक है वीतराग सर्वज्ञ हितोपदेश। इनकी सुधमें हमें अपनी भी सुध रहेगी। हम सदा अपने ही ज्ञान में अपना काम करते हैं। हम सदा अपने ही ज्ञान से अपने ज्ञान में रहा करते हैं। हम छोटी कल्पनायें करके रहें तो, अच्छा विचार बनाकर रहें तो, हमारा सारा सम्बन्ध केवल हमारे अपने आत्माके प्रदेशमें ही है। मेरे प्रदेश से बाहर मेरा कोई सम्बन्ध नहीं। ऐसे ही अन्दाज करलो, जिस घरमें आज आप हैं मानो इस घरमें न पैदा होते, कहीं दूसरे देशोंमें, किसी और घरमें पैदा हुए तो आपको इस घरकी कोई ममता, कल्पना, खयाल, लगाव कुछभी होता क्या? और, ऐसा हो नहीं सकता क्या? सारे घरोंमें कहां पैदा हैं? एक घरमें हैं तो बाकी घरोंकी ममता लगाव है क्या? गुजारा करने के लिए काम करना पड़ता है, वह करना होगा, करना चाहिए उसमें तो गृहस्थोंसे अपराध नहीं, किन्तु यह अज्ञान बनानेमें अपराध है कि मेरा सर्वस्व तो यह ही है, इसके बिना मेरा जीवन नहीं, इसके बिना मेरा उद्धार नहीं। ऐसा ज्ञान बनाने में, मोह बनानेमें बहुत बड़ा अपराध है। तो अपराधका फल बेचैनी है, पाप का बंध है, तो एक यह गुण उत्पन्न कीजिए कि सम्यक्त्व जगा रहे और मोह न रहे। एक यह ही गुण होगा तो नियमसे मुक्ति मिलेगी।

जीवका वास्तविक ठिकना—सम्यक्त्व जिसने पा लिया उसकी मुक्ति रिजर्व है। निकट कालमें ही उसे मुक्ति प्राप्त होगी। तो सम्यग्दर्शनके लिए तन, मन, धन, वचन, प्राण सब कुछ भी न्योछावर कर दें और एक सम्यक्त्वका लाभ उठा लें तो आपने सर्वस्व वैभव पाया, यों समझलो। जिनका चित्त बेठिकाने है, जिनके चित्तको कोई अपना धाम मिला ही नहीं है कि जब चाहे उस अपने ठिकानेमें बैठकर सच्चा आराम तो करले। ऐसा अपने आपका ठिकाना ही नहीं मिला तो यह उपयोग भटकता ही फिरेगा और कहीं जमकर न रह सकेगा। और जिस जीवको अपना ठिकाना हो गया—मेरा ठिकाना मेरा यह आत्माराम है। मेरा जो ज्ञानानन्दस्वभाव है वही मेरा सच्चा धाम है। कुछभी कष्ट हो, कहीं भी कोई

विडम्बनाकी बात आये तो भट अपने धाममें पहुँचें, अपने ठिकानेकी श्रद्धा रखें तो इसे शान्तिलाभ होगा। और जिसको अपने घरका पता नहीं वह परघर फिरता रहे, या दिमाग खराब हो गया और दूसरेके घरमें बैठनेकी, रहनेकी कोशिश करे तो क्या कहीं जम सकेगा? न जम सकेगा? तो इसीतरह हमारा घर है, हमारा आत्मा है, इसकी तो सुध न हो और दिमाग बिगड़ गया, ज्ञान बिगड़ गया, व्यामोह हो गया और पर पदार्थोंको अपना घर मानता, उन पर पदार्थोंमें विश्राम करने चाहे तो क्या वहाँ जम सकेंगे? वहाँ तो चिगेंगे, हटेंगे, धोखा होगा, कष्ट पायेंगे। तो इस बातकी महिती आवश्यकता है कि हम अपने सत्य स्वरूपको जान जायें। बड़ा साम्राज्य मिल गया, उससे भी अधिक आवश्यक है आत्मज्ञान। या बड़ी समृद्धि मिले उससे भी अधिक आवश्यक है। एक आत्मज्ञान, आत्मरमण। अन्य बातें आवश्यक हैं नहीं। यह तो परिस्थितिबश जुदी-जुदी पद्धतिमें आवश्यक समझा जाता है एक साधारण अस्थिर प्रयोजनके लिए। अपना विश्वास एक।

आत्महितचिन्तनामें आत्मकीर्तन—आत्मकीर्तन के ४-५ पदोंमें जो कुछ विवेचन है उसके ही सहारे से अपना चिन्तन रखिये। मेरी सत्ता स्वयं सिद्ध है। मेरा स्वभाव चलायमान न होगा, मैं चैतन ही रहूँगा, मेरे स्वरूप में विकार, कष्ट नहीं है। मेरा स्वरूप ज्ञातादृष्टा रहित है। मैं वह हूँ जो भगवान हैं। अन्तर यही पड़ गया कि वे वीतराग हैं और यहाँ राग है। यह राग मिट जाय तो मुझमें और भगवानमें कोई अन्तर रहेगा क्या? यह राग मेरा जा सकता है, क्योंकि औपाधिक हैं कर्मोदयके निमित्तसे हुआ है। मेरे स्वरूपकी चीज नहीं है। मेरा स्वरूप प्रभुके समान है। वही ज्ञानानन्द शक्ति सब कुछ मेरे में हैं। लेकिन परपदार्थ का व्यामोह करनेसे यह मेरी दयनीय दशा हो गई है। हम प्रभुकी उपासना इस मुद्रामें करें कि जो मुद्रा वास्तवमें प्रभुकी होती है। निर्लेप, अकिञ्चन केवल ज्ञानस्वरूप, तो ऐसी ही मुद्रा जिनेन्द्र देवकी बनायी गई है। निर्लेप, अकिञ्चन, नासादृष्टि, केवल ज्ञान और आनन्दमें लवलीत, जिस मुद्राको देखकर हमें प्रभुका यथार्थ स्वरूप भट सामने आ जाय वही तो दर्शनके योग्य है। तो ऐसा प्रभुवत मेरा स्वरूप है, उसकी सुध हुई है। बाहरमें जो आज हमारी स्थिति है तो दुःख उत्पन्न होता है। हमें दुःख देने वाला कोई दूसरा प्राणी नहीं है। कोई जानता है कि यह मेरा विरोधी है, मुझे सुख देता है। कोई विरोधी नहीं है। सब चेतन है। सब भगवानस्वरूप हैं। सब अपने अपने कषाये के अनुसार अपने में प्रवृत्ति करते हैं, सो वे भी अपनी शान्तिके लिए प्रवृत्ति करते हैं। मेरे विरोधके लिए नहीं करते। तथ्य तो यह है। कोई मेरा विरोधी नहीं। कोई सुख दुःख दाता

नहीं। मोह रागद्वेष ये ही मेरे को दुःखके कारण हैं। सो ये दुःख कब मिटें, जब मैं यह जानजाऊँ कि यह मैं ज्ञानानन्द स्वरूप, यह मैं आत्मा यह तो मैं हूँ और इसके अतिरिक्त बाहरमें जो कुछ है वें सब पर हैं, ऐसा जब बोध हो तो मोह टूटेगा और दुःखका कारण मिटेगा। देखो सबसे बड़ी बात है। अपनी सत्त्व छायाकी पहिचान करलो मेरा सच्चा घर क्या है! मेरा निजी घर यह मैं आत्मतत्त्व हूँ, जिसके नाम—जिन, शिव, ईश्वर, ब्रह्मा, राम, विष्णु, बुद्ध, हरि आदि हैं। ये आत्माके ही तो स्वरूप हैं, आत्माके ही तो रूप हैं। और शब्दोंसे देखा जाय तो पापोंसे हरे सो हरि। कौन हरेगा? यह मैं आत्मा। तो यह ही मैं हरि हूँ। जो व्याप कर रहे सो विष्णु। कौन रहता है व्यापकर? यही मैं आत्मा। जो ज्ञानस्वरूप हो सो बुद्ध। ऐसा कौन है? यही मैं आत्मा। जिसमें योगीजन रमण करें वह राम। वह कौन है? यही मैं ज्ञानस्वरूप अन्तस्तत्त्व। जो ऐश्वर्य वाला है, जो सृष्टिकी रचना करे वह ब्रह्मा, ऐसा कौन है! यही मैं आत्मा। जो रामद्वेषादिकसे जीते सो जिन? वह कौन है? यही मैं आत्मा। ऐसा मैं अपने धाममें किसी प्रकार अगर पहुँच सके तो आकुलताका फिर कोई काम नहीं हो सकता। अपने अन्तस्तत्त्वकी सुधलें, यह ही मात्र अपना शरण है। जिसका जो परिणामन है वह उसकी परिणतिसे होता है। मैं कुछ नहीं करता बाहरमें। मैं विकारोंको दूर करूँ, और अपने आनन्दमें रहूँ। कुछ आत्मभावना चले तो यह एक अपनी स्वरक्षाका साधन है।

प्रथमसूत्रमें मुमुक्षुका आश्वासन—इस तत्त्वार्थसूत्रका प्रथम सूत्र है सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्राणिमोक्षमार्गः जिसका अर्थ है सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, इन तीनोंका एकत्व मोक्षका मार्ग है। मोक्षमार्गकी बात सुन कर चित्त में एक शंका हो सकती है कि मोक्ष तो होगा बादमें, अभी तो बंध है। बंधपूर्वक मोक्ष हैं बंध था तब मोक्ष हुआ। तब फिर पहिले बंधके कारणों को क्यों नहीं बताया जाता? एक ऐसी बात आ सकती है मनमें। चित्त ही बता देगा कि अगर बंध की और बंधके कारणों की बात सबसे पहिले कहेंगे तो यह जीव पकड़ा जायगा। बंध दुःखका कारण है। बंधके कारण विपत्तियाँ हैं। उनके कारण यह जीव भय कर सकता है। उसकी एक राहत देने के लिए सबसे पहिले मोक्षकी बात कहा है। बंध तो है ही अनादि से। कारण जरूर बंधके बताने पड़ेंगे क्योंकि बंधके कारण बताये बिना उन कारणोंकी उपेक्षा कैसे न करेंगे? सो बतायेंगे। प्रथम तो कष्टमुक्तिकी बात कह रहे हैं। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रका एकत्व ही मोक्षका मार्ग है। जैसे कोई जेलखाने के बन्धन में बंधा हुआ हो और उसे बंधका व्याख्यान किया

किया जाय तो वह डरता है और अगर उसे छूटनेकी बात कही जाय तो उसे कितना प्रिय लगता है। इस तरह इस बंधनबद्ध जीवको मोक्षकी बात बतायी जाय तो इसे बड़ा विश्वास होगा। अतएवं मोक्षके कारणों की बात पहिले कही जा रही है।

तत्त्वार्थसूत्रकी उपपत्तिका हेतु—तत्त्वार्थसूत्रकी उपपत्तिकी उत्थानिका सुनो—इसमें तीन बातें हो सकती हैं। एक तो यह कि उस जमानेमें मोक्षमार्गका प्रतिपादन विपरीत तरीके से चल रहा था। कोई मोक्षका कारण ज्ञानको मानता था और कोई वैराग्य मानता था, कोई श्रद्धा मानता था, या कोई लोग अन्य अन्य प्रकार के भक्ति आदिक क्रियाकाण्ड मानते थे। तो अनेक बातें थी। तो उनका निराकरण करनेके लिए इस सूत्रजी की उत्पत्ति हुई है। दूसरी बात जैसे प्रसिद्ध है कि एक श्रावक के घर उमास्वामी आहार करनेके लिए गए, वहां उन्होंने देखा कि भीट में लिखा हुआ था, दर्शनज्ञान चारित्रिण मोक्षमार्ग। तो उस सूत्र के पहिले उन्होंने एक सम्यक शब्द और जोड़ दिया। तो यह श्रावक इस महा-शास्त्रकी व्याख्या करना चाहता था, पर यह समझकर कि जब पहिले सूत्रमें ही गलती निकली तो फिर मैं इसमें कहां समर्थ हूं। सोचा कि मैं उस आचार्यके पास चलूँ जिन्होंने उसकी रचना की। तो उसके पास गए। तीसरी बात यह हो सकती है जो प्रायः करके है ही कि संसार के जीवोंको दुःखमें निमग्न देखकर उनका उद्धार करनेकी अभिलाषा हुई हो। जैसे भी यह जीव अज्ञान दशाको छोड़कर ज्ञानकी स्थितिमें आवे और संसार के समस्त दुःखोंसे छुटकारा पावे, ऐसा मनमें आया, जीवोंके प्रति एक विशुद्ध करुणा उत्पन्न हुई, उसके कारण इस ग्रन्थकी रचना ग्रन्थकतनि की। अथवा ये तीनों ही बातें समझो। इन तीनों बातों से इस महाशास्त्र की रचना हुई है। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र इन तीनों की एकता मोक्षका मार्ग है। संक्षेपमें बात यह है कि आत्माके सहज स्वरूपका याने यह आत्मा अपने आप ही परकी अपेक्षा बिना स्वयं जैसा हैं उस प्रकार का श्रद्धान हो जाना कि यह मैं हूं इसे कहते हैं सम्यग्दर्शन और तत्वके बारे में अपने आत्म-स्वरूप के बारेमें यथार्थ बोध हो जाना इसे कहते हैं सम्यग्ज्ञान और जैसा कि बोध किया जैसा कि श्रद्धा की, जैसा कि स्वरूप समझा उस ही स्वरूप में मग्न होना उस ही स्वरूपके अनुरूप वृत्तियां होना इसे कहते हैं सम्यकचारित्र। तो इन तीनों की एकता मोक्षका मार्ग है।

आत्मकरुणाका प्रथम पाद—अब जरा सम्यग्दर्शन के बारे में थोड़ा विचार करें। यद्यपि इसके सम्बन्ध में विशेष विवरण आगे के सूत्र में आयगा फिर भी प्रसंग आया है

तो सम्यग्दर्शन के विषय में भी कुछ सोचें। सम्यग्दर्शन क्या है? जैसा कि आगे कहा है— तत्त्वार्थ का श्रद्धान होना सम्यग्दर्शन है। जैसा वस्तुका स्वरूप है उस स्वरूपसहित पदार्थ का श्रद्धान होना सम्यग्दर्शन है। यह बात बनती कैसे है? तो इसके लिए सबसे पहिले विशुद्धोपयोग की आवश्यकता है। कुछ तो विशुद्ध अध्यवसाय हो, शुभ संकल्प हो, कुछ परिणामों में विशुद्धता जगे, कषाय मंद हों। ऐसा उपयोग बनेगा तो उस उपयोग के प्रसाद से ऐसी योग्यता प्रकट होती है कि उपदेश का ग्रहण भी हो सकता है। कोई पुरुष क्रोध में बसा हो तो उसके उपदेश कहाँ लगेगा? कोई मान कषाय के रंग से रंगा हुआ हो तो उसके उपदेश कहाँ लगेगा। कोई माया चारी, छल कपट में लगा हो तो उसके उपदेश की बात कहाँ लगेगी। ऐसे ही कोई लोभ के रंग से रंगा हो तो उसके भी उपदेश की बात नहीं आ सकती। कषायें मंद हों, यह अपने लिए भली चीज है। देखिये—जीवन चला जा रहा है, गुजरा जा रहा है लेकिन लोग इन कषायों की तीव्रता में कमी नहीं कर रहे हैं। जरा जरा सी बातों में लोग क्रोध करने लगते, अपने को महान तथा दूसरों को तुच्छ समझने लगते, मायाचारी करते तथा लोभ कषाय की तीव्रता करते इससे भाई यह सामने रखकर कि जो कुछ भी मिला है वह कभी न कभी मिटेगा। लोग सोचते हैं कि मैं ऐसा मकान बनाऊँगा कि जो कमसेकम ५०० वर्ष रहे, अपने आप पर कुछ भी दया नहीं करते। अरे अपने आप पर कुछ तो दया करो। अन्य सब बातें असार समझो। सबको दुःख का कारण समझो, भ्रमजाल समझो। पर वस्तुओं में लगना यह सब विपत्ति है। जिस कालमें इस भगवान् आत्मतत्त्वमें दृष्टि जाती है सम्पन्नता तो उस कालमें है। सहज ज्ञानस्वभावी अखण्ड ज्ञायकस्वभाव जो है सो है। जैसे अग्निके विषयमें कोई वर्णन करे कि अग्नि किसे कहते हैं। तो वह कहता है कि जो जलाये सो अग्नि, जो प्रकाश करे, सो अग्नि, जो रसोई जलाये सो अग्नि, जो ठंड मिटाये सो अग्नि, जो ताप उत्पन्न करे सो अग्नि। ये विशेषतायें बतायी तो जा रही हैं पर वह जो है सो है। वह अपने परिणामनमें जल रही है। उस अग्निके समझानेके लिए भेद है, इसी तरह आत्मासे समझानेके लिए भेद है। जिसमें ज्ञान है। श्रद्धा है, चारित्र्य है, आनन्द है आत्मा, पर आत्मा तो स्वयं अपने आप एक चैतन्य-स्वरूप पदार्थ हैं और उसका प्रतिसमय अपने आपके रूपमें अखण्ड परिणामन होता चला जाता है।

आत्मदर्शनके उपायमें सर्वप्रथम मंदकषायकी आवश्यकता—आत्मस्वरूपकी दृष्टि बने इसके लिए सर्वप्रथम आवश्यक हैं कि अपने जीवनमें कषायें मंद करें। खोजो—जैसे घर में घुसे हुए चोरको लोग सब जगह भली भाँति खोजकर निकालते कि नहीं? उसे तो सब

तरहसे घरसे बाहर भगाने की कोशिश करते हैं। इसीतरह अपने आपके अन्दर चोर हैं ये विषय कषाय, ये पर वस्तुके सम्बंधके लगाव। इन्हें खोज खोजकर निकालनेका यत्न करें तो यह बुद्धिमानी है। और, अगर इनमें ही आनन्द मानने लगे तो घर लुट जायगा। इन विषय कषायों को अपने आपमें खोज करें कि मेरे अन्दर लोभादिक का गहरा रंग चढ़ा है कि नहीं। अगर चढ़ा है तो समझो कि बड़ी आपत्तिमें पड़ गए, बड़ी विडम्बनामें पड़ गए। इसमें कभी भलाई नहीं है। इसीतरह अन्य सभी कषायोंकी भी अपने आपमें खोजकरें। क्या सार पानेके लिए क्रोध किया जा रहा है? तो क्रोधभी कम करें। यद्यपि कषाये कम होना आत्मदृष्टिपर निर्भर है फिर भी आत्मदृष्टि करने की पात्रता होना कषायोंकी मंद करनेके आधारपर है। कोई तीव्र कषाय करता रहे तो वह सम्यग्दर्शन प्राप्त करनेका पात्र नहीं हो सकता। उससे होगा उपयोग विशुद्ध और उपयोग विशुद्ध होनेसे दर्शन मोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशम, की योग्यता बनेगी।

सम्यक्त्वोपपत्तिता अन्तरङ्ग निमित्त—अन्तरंग निमित्त दर्शन मोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशम, सातों प्रकृतियोंका उपशम आदिक यह है सम्यग्दर्शनका निमित्त कारण। देखिये—निमित्त नैमित्तिक भावका खण्डन बनानेके प्रयोजनसे लोग ऐसा भी बोलने लगे हैं कि देखो बहुत बार तो ऐसा समवशरणमें गए, पर सम्यग्दर्शन न हुआ। बहुत बार जिनबिम्बके दर्शनकिया पर सम्यग्दर्शन न हुआ, अनेक बार उपदेश सुना, पर सम्यग्दर्शन न हुआ। तो निमित्त कारण तो कुछ न रहा। वे यह नहीं समझते हैं कि समवशरणमें जाना, जिनबिम्बके दर्शन करना, उपदेश श्रवण करना, ये सम्यग्दर्शन के निमित्त कारण नहीं हैं। सम्यग्दर्शनका निमित्त कारया तो सात प्रकृतियोंका उपशम, क्षय, क्षयोपशम है। तो कहीं भी कोई बताये कि सात प्रकृतियों का उपशम, क्षय, क्षयोपशम होते होते सम्यक्त्व नहीं हुआ। तो ये बाहरी चीजें निमित्त नहीं कहलाती, ये आश्रयभूत कहलाती हैं, अर्थात् उपयोग इनका आश्रय लेता है और इनका आश्रय पाकर एक शुभ विकल्प बनता है। उसमें ऐसी योग्यता जगती है कि सात प्रकृतियों का उपशम, क्षय, क्षयोपशम आता है। इससे सम्यक्त्व उत्पन्न होता है। निमित्त कारण उपशम, क्षय, क्षयोपशम आदिक अवस्थायें हैं। जीवके भाव बनानेमें बाह्यपदार्थ निमित्त नहीं हैं, मात्र आश्रयभूत हैं। जैसे किसी पुरुषको किसी नौकरपर क्रोध आया तो लोग भट कह देते हैं कि देखो यह नौकर इस पुरुषको क्रोधी बनाने में निमित्त कारण पड़ा, पर यह बात गलत है। न तो नौकर ने क्रोध कराया

और न वह नौकर उसके क्रोधका निमित्त कारण है । क्रोध कषाय का निमित्त कारण है क्रोध प्रकृतिका उदय और वह नौकर उस क्रोध कषायमें नोकर्म पड़ गया, आश्रयभूत होगया । आश्रयभूतका कारणके साथ अन्वय व्यतिरेक सम्बंध नहीं है । आश्रयभूत हो तो कार्य जरूर हो यह नियम नहीं, पर समर्थ निमित्त हो वहां कार्य हो, यह दार्शनिकशास्त्र खूब बतला रहा है और आजके अनुभवभी बतला रहे हैं । क्रोध प्रकृतिका निमित्त कारण था जीवका क्रोधकषाय और उस क्रोध कषायका निमित्त कारण है क्रोध प्रकृतिका उदय और नौकर वगैरह दिख गया यह हुआ नोकर्म । कभी देखा होगा कि किसी स्त्रीसे अगर पति लड़ गया और स्त्री को बड़ा तेज गुस्सा आ गया तो वह क्या करती है ? पतिका तो कुछ कर नहीं सकती, पर वह अपना गुस्सा उतारती है अपने बच्चे पर । वह एक दो थप्पड़ बच्चेके जमा देती है । आखिर क्या करे वह ? भीतर में कषाय उठी तो उसका कुछ तो परिणाम होना ही चाहिए । तो आश्रयभूत पदार्थका सम्बंध नहीं है कार्यके साथ । निमित्त नैमित्तिकभाव है । आश्रयके साथ नहीं है । अतः ऐसी बात कहकर निमित्त नैमित्तिक भावकी व्यवस्था बनाना कोई बुद्धिमानी नहीं है । तो कुछ लोग निमित्त नैमित्तिक भावकों इतना महत्त्व देते हैं कि उसमें कर्ता कर्म भाव भी लाद देते हैं । क्रोध प्रकृति जीव ने क्रोध पैदा कर दी यह भी बात ठीक नहीं है । क्रोध प्रकृतिके उदयमें अपने आप क्रोध प्रकृतिका लाभ लिया, पर जीवने क्रोध नहीं किया । क्रोधप्रकृतिके विपाकका निमित्त पाकर जीवने अपनी परिणतिसे क्रोध कषाय उत्पन्न की । एक दृष्टान्तमें देखो-जैसे हम इस तखतमें बैठे हैं तो तखतने हमें नहीं बैठाया किन्तु इस तखतका निमित्त करके मैं खुद बैठ गया । इस तखतने मेरेमें कुछ बात नहीं की । इसका कुछ भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव मेरेमें नहीं आया । आप लोग तो यह देख ही रहे हैं । सर्वत्र निमित्त नैमित्तिक भावकी ऐसी ही व्यवस्था है ।

सम्यक्त्वके संदर्भमें—हम परिणाम विशुद्ध करें, कषायों को मंद करें । तत्त्व ज्ञान की और प्रयास करें । जो यथार्थ वस्तु का स्वरूप है उसका चिन्तन करें । तो ऐसे परिणाम का निमित्त पाकर यह संबंध है कि दर्शनमोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशम हो जाय और जहां दर्शन मोहका क्षय, क्षयोपशम आदिक हो वहां इसको सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है । सबसे पहिले जीवको उपशम सम्यक्त्व उत्पन्न होता है न क्षायोपशमिक न क्षायिक । इन तीनों का मतलब समझो - जैसे एक शीशी में गंदा तैल भरा है । थोड़ी देर बाद दो चार दिन बाद उसका मैल नीचे बैठ जायगा । तब ऊपर वह तेल बिल्कुल साफ हो जायगा ।

तो यह क्या कहलाया कि उस मैलका उपशम हुआ। अब वह तेल बिल्कुल निर्मल है और उस शीशी को कोई हिला दे तो उसका मैल ऊपर उठने लगेगा। इस स्थितिमें कुछ निर्मल और कुछ मलिन दीखेगा। इसे समझें क्षयोपशम। दाखिला तरीके बोल रहे हैं। और, जब उस शीशी का उपशम हो गया उस समय तेल को दूसरी शीशी में निखार लिया जाय तो वहां मैल का नाम नहीं है। इस ढंग का समझलो क्षय। तो जीवके जब सात प्रकृतियों का उपशम होता है तो सम्यग्दर्शन तो निर्मल हो जाता है मगर दबा है। तो जिस समय वह दाग उठता है तो उस समय उसका सम्यक्त्व विघट जाता है। देखो यह बात तो अन्य की है पर आपका पौरुष क्या करे? क्या आप यह पौरुष कर सकते हैं कि मैं इन सातों प्रकृतियों को दबा दूँ। और इन प्रकृतियों को तो देख भी नहीं सकते, छू भी नहीं सकते। स्पष्ट ज्ञान में भी नहीं आतीं। हम युक्ति से, आगम से जानते हैं। और वे हैं पर पदार्थ। उन पर आपकी कोई करतूत नहीं चल सकती। एक पदार्थ दूसरे पदार्थ का कर्त्ता नहीं होता। उसमें द्रव्य, क्षेय, काल, भाव अर्जित नहीं कर सकते। तो उस कर्म को क्या करोगे? कर्मों में कोई परिणति नहीं बनती। हाँ भाव का निमित्त पाकर कर्म अपने आप में अपनी परिणति बनाया करते हैं। तब हमारा पौरुष कहाँ चलेगा? हमारा पौरुष चलेगा विशुद्ध ज्ञान बनाने में। एक ही काम है कल्याण के लिए कि विशुद्ध तत्त्वज्ञान उत्पन्न करें। सर्व पदार्थों का जैसा स्वरूप हैं उस स्वरूप में उसकी परिणति प्राप्त करें। ऐसा परिचय पाने से परिणामों में निर्मलता आयगी और सम्यग्दर्शन होगा। तो उपयोग विशेष जब हमारा होता है, विशुद्ध अध्यवसाय संकल्प बनता है तो मन, वचन की चेष्टायें हमारी अटपट नहीं होती हैं और उस समय भीतर में ज्ञान का ऐसा विशुद्ध व्यापार चलने लगता है कि सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है यहाँ सम्यग्दर्शन का एक संक्षिप्त लक्षण बताया। विशेष आगे कहा जायगा।

सम्यग्ज्ञानका दिग्दर्शन—सम्यग्ज्ञान क्या चीज हैं? सम्यग्ज्ञान—जो पदार्थ जिस रूप से अवस्थित है उसे उस रूपसे समझना सच्चा ज्ञान है। पड़ी तो है रस्सी और हो जाय ऐसा भ्रम कि यह सांप है या रस्सी है तो क्या यह सम्यग्ज्ञान है? अरे सम्यग्ज्ञान (सच्चाज्ञान) वही है कि जो पदार्थ जिस प्रकार से अवस्थित है उसको उस ही प्रकार से जानना। देखो जीवतो कोई एक ज्ञानप्रकाशमय पदार्थ है और उसे संसारी जीव इस तरह से जान रहे हैं कि जो देह पाया उसी को मान बैठते हैं कि मैं तो यह हूँ, तो क्या यह कोई सच्चा ज्ञान है? अरे यह देह तो मैं नहीं हूँ। मैं तो इस देह से भी निराला एक ज्ञान ज्योति स्वरूप पदार्थ हूँ। तो जो पदार्थ जिस तरह हो उस तरह जानने का काम

सम्यग्ज्ञान है। इसका उपाय है नय और प्रमाण, जिसका विशेष वर्णन इस अध्याय में आगे आयागा। मगर थोड़े शब्दों में समझ लीजिए कि पदार्थका सर्वतोमुखी जो स्वरूप है उसका परिचय पाना प्रमाण है और प्रमाण से जान कर उस पदार्थ के बारे में एक एक विषय को जानना, एक एक धर्म का परिचय करना यह कहलाया ना? तो नय प्रमाण पूर्वक जीवादिक पदार्थों का बोध होता है। इसका विषय आगे स्पष्ट होगा। पर यहां इतनी बात समझ ले कि जो पदार्थ जिस रूप में अवस्थित है उस रूप से परिचय पाना सो सम्यग्ज्ञान है।

सम्यक्चारित्रकी भावना—सम्यक्चारित्र क्या है? सही आचरण करना सम्यक्चारित्र है। आत्माका जो सही स्वरूप है उस स्वरूपमें ज्ञान चलना, ज्ञानमें वह स्वरूप समाना और उस स्वरूपके अनुकूल ज्ञानकी परिणति बनना अर्थात् ज्ञातादृष्टा रहना, राग-द्वेषका अभाव होना यह है सम्यक्चारित्र। तो सम्यक्चारित्रकी यह है एक ऊंची अवस्था, पर उसके लिए प्रयोग जो पहिले किया जाता है वह प्रयोग क्या है? अशुभ मन, वचन कायकी चेष्टायें न होना, शुभ मन, वचन, कायकी चेष्टायें होना और फिर शुभ मन, वचन कायकी चेष्टाओंका भी परिहार होना अर्थात् अपने आपमें निर्विकल्प अभेद विविधे मग्न होना वह कहलाता है सम्यक्चारित्र। सम्यक्चारित्र कौन धारणकरता? जो संसारके कारणों को हटाने के लिए उद्यमी हुआ है। संसारके कारण हैं असंयम अश्रद्धा, अज्ञान। मन, वचन, कायकी खोंटी चेष्टायें, अशुभ चेष्टायें। तो संसारके कारणोंसे निवृत्त होनेके लिए जो उद्यमी हुआ है ऐसा जो उत्तम ज्ञानवान पुरुष है उसका जो बाह्य और अन्तरङ्ग कर्मोंका उपशम है उसका नाम सम्यक्चारित्र है। बाह्य कर्म क्या? शरीरका हिलना, वचन बोलना, और, आन्तरिक क्रिया है, विचार करना, ज्ञान करना। तो मन, वचन, कायकी क्रियाओंका उपशम होना, इसका नाम सम्यक्चारित्र है। देखिये अपनी सही श्रद्धा हो, अपने आत्माका सही ज्ञान हो और इस ही स्वरूपमें रुचि बने, यहां ही मग्न होनेकी धुनबने, उसका ही स्पर्श करे, बाह्य से हट जायें तो उसका एक ऐसा अलौकिक लाभ उत्पन्न होगा कि उसके अभी भी शान्ति है। आगे भी शान्ति होगी। कर्मोंसे वह छूट जायगा। उसका कल्याण ही कल्याण है। परवस्तुके मोह रागद्वेषमें किसी प्रकार का कल्याण नहीं।

प्रथमसूत्रमें सकलक्लेशविध्वंसके उपायका संदर्शन—संसारके दुःखोंसे छूटनेका उपाय क्या है इसका वर्णन इस प्रथमसूत्रमें किया जा रहा है। आत्माके सहज चैतन्यस्वरूपका आत्मारूपसे श्रद्धान होना, यह मैं हूँ इस प्रकार की प्रतीति होना और उसका ज्ञान एवं उसही में रमण (आचरण) होना, यह संसारके दुःखोंसे छूटनेका उपाय है। इसकी समझ

इसके विपरीत बात सोचने से जल्द हो जायगी। जब यह जीव अपने आत्माके सहजस्वरूपका विश्वास नहीं रखता, ज्ञान नहीं करता और इसही स्वरूपमें अपनी धुन नहीं बनाता, आचरण नहीं करता, उस समय की स्थिति देख लो—केवल क्लेश ही क्लेश है। संसारके इतने सारे जीव करते ही क्या हैं ? पर दृष्टि परको आत्मारूपसे श्रद्धान और पर दृष्टि करके जो विकल्प बनाया उसी विकल्परूप आचरण रहता है। ये ही काम करते चले जा रहे हैं तो इसके फलमें कष्ट ही कष्ट मिलते चले जा रहे हैं। पर वस्तुका श्रद्धान, ज्ञान और आचरण यही समस्त दुःखोंका कारण है, दूसरा कोई दुःखका कारण नहीं।

स्वरूपोद्बोधनसे स्वरूपश्रद्धानकी संभवता—अब अपने आपका श्रद्धान कैसे हो ? तो देखो—जगतमें जितने भी पदार्थ हैं उनकी सत्ता अपने आप है, किसी दूसरे पदार्थकी दयासे नहीं है। किसी भी पदार्थकी सत्ता दूसरे की दयासे नहीं है। स्वयं अपने आप है, क्योंकि वह सत् है। जो सत् नहीं है वह किसी भी प्रकार कितना ही मेल करनेके बाद भी सत् नहीं बन सकता। जो सत् है वह किसी भी अन्य द्रव्यके सत्त्वके लिए अपेक्षा नहीं करता फिरता। प्रत्येक पदार्थ सत् है और वह स्वतः सत् है। किसी पदार्थको किसी भी प्रकार बनाया नहीं जा सकता। अथवा किसी के मेल होनेसे उसकी सत्ता नहीं बनती। प्रत्येक पदार्थकी सत्ता अपने आप है, और जैसे पदार्थ स्वयं सिद्ध है उसीप्रकार पदार्थ स्वयं परिणामनशील है, किसी अन्य पदार्थका निमित्त (सम्बंध) होनेसे पदार्थमें परिणामनशीलता आयी हो यह बात नहीं है। तो प्रत्येक पदार्थ स्वयं सहज परिणामनशील है, यह पदार्थकी कला है इस सूत्रजीमें बताया है कि उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तंसत्, जो पदार्थ है वह अपने आप स्वयं उत्पाद व्ययध्रौव्यसे युक्त है। अगर पदार्थमें उत्पाद स्वभाव न हो तो फिर कितने ही कारण कलाप हों, पर उत्पाद हो नहीं सकता। व्यय और ध्रौव्य स्वभाव न हो तो कितने ही उपाय किये जावें, पर व्यय और ध्रौव्य उनमें नहीं हो सकते। यह तो पदार्थका स्वरूप है कि प्रति समय उत्पाद करे, विपरीत पर्याय विलीन करे और वह सदा काल बना रहे। जो बात कही जाय उसको अपने आपमें घटित करनेकी बात समझना। समस्त शास्त्रों का प्रयोजन है आत्महित। आत्माहितका प्रयोजन जिसका न हो वह खूब शास्त्रज्ञान भी करे, बड़ी बड़ी बातें भी बोले फिर भी उसका ज्ञान ऐसा है जैसा कि धन वैभव। उससे कुछ वास्तविक लाभ न उठा पाया। तो देखिये मैं आत्मा हूँ, अपने आप हूँ, अपने आप परिणामनशील हूँ, मैं खुद में खुद ही हूँ, मैं नवीन अवस्थायें बनाता हूँ, पुरानी अवस्थायें विलीन करता हूँ, और सदा काल श्रुत रहा करता हूँ। यह है अपनी एक सहज कला। यह तो बतलाया एक साधारण बात, जो कि सभी द्रव्योंमें पायी जाती है। अगर द्रव्यमें साधारण

गुण, असाधारण गुण न हो तो वह द्रव्य ही नहीं है। साधारण गुण असाधारण गुणके बलपर नाचते हैं और असाधारण गुण साधारण गुणके बलपर टिक रहे हैं। साधारण और असाधारण दोनों प्रकार के गुण पदार्थमें हुआ करते हैं।

स्वके असाधारण गुणके संदर्भमें—इसमें असाधारण गुण क्या है? चैतन्य, ज्ञान दर्शन, ये ज्ञान दर्शन जब सही रूपमें आते हैं तो दुःखों से छूटने की विधि बनती है। हमारे ज्ञानदर्शन आदिक गुण जब विपरीत अवस्थामें रहते हैं तो हम संसारमें रूले हैं। अब एक प्रश्न यह है कि विपरीत अवस्थामें क्यों चल उठे? तो यद्यपि पदार्थ अपने उपादानसे अपनी ही परिणतिसे परिणामते हैं, बुरा परिणामें तो, भला परिणामें तो, लेकिन केवल इतनी ही बात रहे कि अपनी ही शक्तिसे अपने ही कारण अपने ही मात्रसे ये विकार रूप परिणाम जाते हैं तो फिर सदा विकाररूप परिणामा करें। फिर विकारसे रहित अवस्था क्यों होती है? जो निरपेक्ष, परसम्बन्ध बिना जो बात होती है वह सदाकाल और ससंस्तरूपमें हुआ करती है। तब सिद्ध होता है कि मुझ आत्माके साथ कोई विपरीत वस्तु लगी हुई है। जिसे उपाधि कहते हैं उस उपाधिका सन्निधान पाकर यह मैं आत्मा विकार रूप परिणामता हूँ। यह एक विवेक रखना कि निमित्त बिना विकार होता नहीं, तिसपरभी निमित्त विकारकी परिणतिका कर्ता नहीं। ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक योग है। कोई भी दृष्टान्त आप बता नहीं सकते कि कोई भी विकार निमित्त के सन्निधान बिना हुआ हो। हो ही नहीं सकता। तो निमित्त सन्निधान बिना विकार नहीं हो सकता। निमित्तका सन्निधान अवश्य होता है तब विकार की बात बनती है। इतना होने पर भी प्रत्येक वस्तुमें उदात्त व्ययधौव्य स्वतः है। यह आत्मा विकार रूप अपनी ही परिणति से परिणामा। निमित्तकी परिणति लेकर विकाररूप नहीं परिणामा। यह बहुत बड़े विवेक की बात है। जहां निमित्त नैमित्तिक योग भी पथार्थ ज्ञानमें रहे और वस्तु स्वतन्त्र भी ज्ञानमें रहे, ऐसी जानकारी निष्पक्ष आत्महितके अभिलाषी पुरुषके ही हो सकती है।

स्वके असाधारण गुणमें चित्सामान्य और चिद्विशेषकी प्रमुखता—यहां दर्शन ज्ञान की जरा व्याख्या सुनो—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक् चारित्र मोक्षका मार्ग है यह कहा गया है ना? तो वह दर्शन ज्ञान क्या है? जिस शक्तिके प्रतापसे यह जाना जाता उसका नाम है ज्ञान और जिस शक्ति के प्रतापसे यह जाने, देखें उसका नाम है दर्शन। जिस शक्ति के प्रतापसे यह जीव श्रद्धा करे उसका नाम है श्रद्धा। तो ये ज्ञान दर्शन गुण हम भेद दृष्टिमें परख पाते हैं। जिस शक्तिसे आत्मा जानता है उसका नाम ज्ञान है, जिस शक्तिसे आत्मा देखता है उसका नाम दर्शन है। ऐसी बात सुनकर कुछ ऐसा लगता होगा

कि तब ये ज्ञान दर्शन आत्मासे कोई जुदी चीज हैं तभी तो इनमें करण लगाया गया है । जैसे कोई बच्चा चाकू से पेन्सिल छीलता है तो वहां देखो वह बच्चा अलग चीज है और वह चाकू अलग चीज है । अथवा जैसे कोई लकड़हारा कुल्हाड़ीके द्वारा लकड़ी काटता है तो देखो वहां लकड़हारा अलग है और कुल्हाड़ी अलग है । तो क्या ऐसे ही आत्मा ज्ञानके द्वारा जानता है ऐसा कहने से आत्मा अलग है ज्ञान अलग है ? क्या ऐसी बात है ? देखो कुछ दार्शनिक ऐसा मानते हैं कि ज्ञान अलग चीज है । आत्मा स्वयं नहीं है । ज्ञानवान आत्मा स्वयं अपने आप नहीं है, किन्तु ज्ञानका सम्बन्ध होनेसे आत्मा ज्ञानी कहलाता है, ऐसा कोई दार्शनिक मानते हैं, और उनके ऐसा माननेका कारण क्या बना ? उन्होंने सोचा कि जब ज्ञानका अर्थ जुदा है, आत्माका अर्थ जुदा है और ज्ञानके द्वारा आत्मा जानता है ऐसा उसमें कर्ता और करण लगाया गया है तो वह कोई जुदी चीज है, और, जब जैनी भी समझना चाहते हैं तो बोलते हैं नाकि आत्मा ज्ञान दर्शन आदिक उनके गुरुओंका पिण्ड है, तो इसमें भी कुछ ऐसा मालूम पड़ता है कि ज्ञान दर्शन आदिक अनेक चीजें हैं और उनका पिण्ड आत्मा है । तो मालूम पड़ा कि ज्ञान अलग है और आत्मा अलग है, लेकिन ऐसा नहीं है । अगर ऐसा मान लिया जाय कि ज्ञान जुदी चीज है आत्मा जुदी चीज है तो इसका अर्थ तो सही हुआ कि आत्मा ज्ञान बिना है स्वयं अपने आप और ज्ञान आत्माके बिना है । तब दो चीजें अलग-अलग मान ली गईं ज्ञान यहां पड़ा है आत्मा यहां पड़ा है तो ज्ञान बिना आत्मा हो गया और आत्मा बिना ज्ञान हो गया । जब ज्ञानका सम्बन्ध जुड़ा तब आत्मा ज्ञानी कहलाया । तो इसका अर्थ यही हुआ ना ? शंकाकार जो कह रहा है उसका यही भाव हो गया । तो इसका अर्थ यह है कि आत्मा ज्ञानस्वभावी न रहा । आत्मा आत्मा है । जब ज्ञानका सम्बन्ध जुड़ा तो आत्मा ज्ञानी हुआ तो क्या अर्थ निकला कि आत्मा ज्ञानस्वभावी न रहा । तो जब ज्ञानस्वभावी न रहा आत्मा, ज्ञान शून्य रहा, तो क्या वजह है कि ज्ञानका सम्बन्ध आत्मासे हो रहा । ज्ञानशून्य तो पुद्गल भी है, धर्म आदिक पदार्थ भी हैं, उनमें क्यों नहीं ज्ञान चला गया ? आत्मा में ही क्यों जोड़ा गया ? तो आत्माको अगर ज्ञानस्वभाव से रहित मानोगे तो पहिले तो हम यह न जान सकेंगे कि आत्मा है । कह तो ज्ञानशून्य होगया ।

दृष्टान्तपूर्वक आत्मामें ज्ञानकी अभेदताका दर्शन—यहां एक दृष्टान्त लो । अग्नि उष्णता के द्वारा ईंधनको जलाती है, ऐसा कोई बोले तो क्या वहां आप कहेंगे कि अग्नि जुदी चीज है और गर्मी जुदी चीज है ? अगर कोई ऐसा कह बैठे कि अग्नि गर्मी के द्वारा ईंधन जलाती है और इनमें अग्नि जुदी चीज है उष्णता जुदी चीज है तो उष्णता के बिना

अग्नि हो गई और अग्निके बिना उष्णता हो गई। तो हमें यह कैसे खबर पड़े कि यह अग्नि है? इस चौकी को ही अग्नि क्यों नहीं कह बैठते? जब उष्णताके बिना अग्नि नाम पड़ा तो फिर और किसी चीज का नाम अग्नि क्यों नहीं रखते? तो जब यह निश्चित ही न रहा कि अग्नि है तो फिर उष्णता का इसमें सम्बन्ध कैसे जोड़ा गया? तो इससे सिद्ध होता है कि उष्णता अग्निसे जुड़ी चीज नहीं। बल्कि सामने मानना पड़ता है कि अग्नि उष्णता में है गर्मी में है, वह अलग नहीं, ठीक इसी तरह आत्मा ज्ञानमय है, ज्ञानसे अलग आत्मा नहीं है। और, जैसे अग्नि गर्मीके द्वारा ईंधनको जलाती है, यह बोलते हैं, इसीतरह यह बोला जाता कि आत्मा ज्ञानके द्वारा जानता है। तो आत्मको ज्ञानसे अलग मानने पर कुछ निश्चय न हो सकेगा। यदि आत्मा ज्ञानस्वभावी न हो आत्मा ज्ञानशून्य हुआ। तो ज्ञानशून्य आत्मा कैसे समझा जाय कि इसमें ज्ञान है? इसका भी उत्तर दार्शनिकोंने सोच रखा है कि समवाय का सम्बन्ध होने से, परका सम्बन्ध होनेसे जाना जाता है कि आत्मा ज्ञानवान है, ज्ञानका सम्बन्ध जुड़ा हुआ है' जैसे कपड़ा तो सफेद है, पर नीलका रंग उसमें पुत गया तो कहते हैं कि कपड़ा नीला है, इसी तरह से कुछ लोग कहते हैं कि ज्ञानका सम्बन्ध जुड़ने से आत्मा ज्ञानी है। तो देखो जैसे नीले पदार्थके सम्बन्धसे कपड़ा नीला है यह ज्ञान करते हैं तो वहां बात ठीक है, क्योंकि सम्बन्धसे पहिले वह नीला रंग अलग था और कपड़ा अलग। दोनोंका मेल हुआ तब कपड़ा अलग हुआ। वहां तो बात बन जायगी पर वहां न बनेगी। अगर यहां भी किसी तरह बनने को जिद्द करते तो इसका अर्थ यह हुआ कि ज्ञान लग्नग रखा था और आत्मा अलग है। जब ज्ञान आत्मा में जुड़ा तो आत्मा ज्ञानी हुआ' अगर ऐसा मानोगे तो ज्ञानरहित आत्मा कोई वस्तु नहीं है। तो आत्मा कुछ न रहा। आत्माके बिना ज्ञान कोई चीज नहीं। निराश्रय ज्ञान कहा है तो ज्ञान ही न रहा। दोनों ही न रहे तब बात किसकी करते? तो समझ लीजिए कि आत्म-ज्ञानमय है। ज्ञानरूप ही आत्मा है' जैसे उष्णता स्वरूप ही अग्नि है ऐसे ही ज्ञानरूप ही आत्मा है।

ज्ञानस्वरूपकी भावनामें कल्याणका अवसर—अपने आप में विचार करें कि मैं ज्ञानस्वरूप हूँ, ज्ञान सिवाय मैं और कुछ नहीं। यह देह मैं नहीं, ये कषायें मैं नहीं हूँ। ये कषायें तो कर्मोद्भवा निमित्त पाकर इसमें हुई हैं। जब कर्मका उदय होता है तो कर्मरूप ही कषायें होती हैं। कर्म अचेतन है वे जान नहीं सकते और वे इस आत्मा में झलकते हैं तो आत्मा इन्हें अपना लेता है कि ये ही तो मैं हूँ। क्रोध अनुभाग तो कर्म में हैं यहां ये तो क्रोध झलकता है, मैं क्यों मानूँ कि मैं क्रोधरूप हूँ। क्रोध तो एक नैमित्तिक भाव है, मैं

कोटरूप नहीं हैं, मैं तो ज्ञानस्वरूप हूँ। देखो भाई यह ही अमृतपान है। अपने को अमर करना चाहते हो तो ऐसा अनुभव बनाओ कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञानके सिवाय मैं अन्य कुछ नहीं हूँ। ज्ञान ही मेरा वैभव है वही मेरा सर्वस्व है। ज्ञान हो रहा है बस इतना ही मात्र मैं करने वाला हूँ, ज्ञान हो रहा है बस इतना ही मात्र मैं भोगने वाला हूँ। यह श्रद्धा रहेगी, यह दृष्टि बनेगी जितने काल उतने काल शान्ति रहेगी, मुक्तिका मार्ग मिलेगा, भला होगा, और इससे हटकर जहाँ बाहर दृष्टि लगाया कि यह मेरा घर यह मेरी दुकान यह मेरी स्त्री, ये मेरे बच्चे... बस वहाँ रागद्वेष आये'गे, अनेक भ्रंशट आये'गे। आकुलता होगी। कल्याण नहीं हो सकता। बात भीतरमें देखना है। हम देखते हैं कि पदार्थ है, उसका परिणामन उसही पदार्थमें हो रहा है। तो मेरे आत्माका परिणामन भीतर जो हो रहा है दुःखका सुखका, वह सब मेरे उपयोगकी कला से हो रहा है। सुखी शान्त होनेके लिए बाहरमें कोई सुधार बिगाड़ करनेसे काम न चलेगा। उसमें तो अशान्ति ही मिलेगी। लोग सोचते हैं कि मैं इतने काम कर डालूँ, इतना इतना वैभव जोड़ डालूँ तो मैं शान्त हो जाऊँगा, पर उनका यह सोचना गलत है। इस तरह से करके अगर कोई अब तक शान्त हुआ हो तो बताओ? हां व्यवहारमें भले ही लोग कह देते हैं कि अमुक के पास बहुत अधिक धन है इससे वह बड़ा आदमी है बड़ा सुखी है... पर जरा उसकी वास्तविकता पर ध्यान दो क्या वह कभी शान्त हो पा रहा है अथवा क्या वह कभी वास्तविक आनन्द प्राप्त कर पा रहा है? ? अरे यह धन वैभव सुख शान्ति का कारण नहीं। और फिर यह सोचो कि वह तो उदयके अनुसार प्राप्त होता है। धन वैभव कमानेके लिए यह मानवजीवन नहीं मिला। वे तो बाहरी हैं, वे उदयाधीन हैं, उनके लिए अपना जीवन न समझें। जीवन इसके लिए समझें कि मेरा मुक्तिका उपाय बने, सभ्यदर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की उपलब्धि हो जिससे कि यह दुर्लभ मानव जीवन सफल होगा। अन्य बाहरी बातों से इस मानव जीवनकी कोई सार्थकता नहीं है।

ज्ञानमय आत्मामें ज्ञानके संयोग सम्बन्धकी चर्चाकी अनवकाशता—यहां यह बात समझना है कि आत्मा ज्ञानमय है। ज्ञान है सो आत्मा। ज्ञानस्वरूप आत्मा हैं। आत्मामें ज्ञान हैं। ऐसा तो समझने के लिए बोलतें हैं। इससे कुछ यह जाहिर होने लगता कि आत्मा अलग है, ज्ञान अलग है। जैसे कहते हैं कि घड़ेनें दही है। बोरेमें गेहूँ है, इस तरह आत्मामें ज्ञान नहीं है, किन्तु आत्मा ज्ञानस्वरूप है। कुछ दार्शनिक लोग ऐसा मानकर चले हैं कि आत्मा द्रव्य है, ज्ञान गुण है, और ये दोनों भिन्न-भिन्न पदार्थ हैं, जब ज्ञानका आत्मामें समवाय सम्बन्ध होता है तब यह आत्मा ज्ञानी कहलाता है, इसी सम्बन्धमें विचार

चल रहा है। यदि ऐसा माना जाय कि आत्मा पदार्थ अलग है और ज्ञान नामक पदार्थ अलग है और उनका फिर समवाय (सम्बन्ध) होता है तब आत्माज्ञानी कहलाता है तो ऐसा माननेमें ये दोनों ही नहीं ठहरते। ज्ञान अलग है तो आत्माके बिना, सहारेके बिना ज्ञानका ठिकाना ही नहीं। आत्मा अलग है तो ज्ञान बिना आत्माका क्या स्वरूप है? न आत्मारहा और न ज्ञान, रहा, देखो जैसे छतरीके सम्बन्धसे छतरी वाला कहा जाता-यह आदमी छतरी वाला है तो छतरी अलग है और वह छतरी वाला होनेसे पहिले ही अलग था। सम्बन्धसे पहिले छतरी अलग थी और यह पुरुष अलग था। फिर हुआ सम्बन्ध तो बोलाजायगा छतरी वाला। सम्बन्ध जिसका माना जाय उसका अर्थ ही यह होता कि सम्बन्धसे पहिले वे दोनों स्वयंसत् थे तब सम्बन्ध हुआ तों क्या ऐसा है? ऐसा तो नहीं है। यहाँ तो पुरुष के बिना छतरीकी सत्ता रह सकती है। छतरी के बिना पुरुषकी सत्ता बनी हुई है फिर सम्बन्ध हुआ है, लेकिन यहाँ आत्माके बिना ज्ञानका कोईअस्तित्व नहीं है, इसलिए सम्बन्धसे अगर आत्मा को ज्ञानी माना जाय तो न आत्मा रहेगा और न ज्ञान रहेगा।

ज्ञानमय आत्मामें ज्ञानके समवाय की चर्चाकी अनवकाशता—और भी इस विषयमें समझिये जैसे कोई कहे कि अग्नि उष्ण है, कैसे उष्ण है? उष्ण गुणका सम्बन्ध होनेसे अग्नि उष्ण है तो यह बतलावो कि उष्णगुणका जब सम्बन्ध नहीं हुआ, अग्निके सम्बन्धसे पहिले अग्निके बारेमें यह ज्ञान हुआ था कि नहीं कि अग्नि उष्ण है, उष्णका जब सम्बन्ध न हुआ अग्नि में उस समय ज्ञान हुआ कि नहीं कि अग्नि उष्ण है अगर कहो कि सम्बन्धसे पहिले भी अग्नि उष्ण है ऐसा ज्ञान होता है तो फिर सम्बन्ध करनेकी जरूरत क्या रही? अग्नि तो उष्ण है ही, तब फिर उष्णका सम्बन्ध बनानेकी क्या आवश्यकता रही? यदि कहो कि उष्णका अग्निमें सम्बन्ध होने से पहिले अग्नि उष्ण है ऐसा ज्ञान नहीं होता है तो देखो उस अग्निमें यह उष्ण है ऐसा ज्ञान नहीं हो रहा। ऐसे ही इन चौकी, दरी आदिकमें भी तो यह उष्ण है यह ज्ञान नहीं हो रहा। तब फिर क्या वजह है कि उष्ण गुण अग्नि में चिपका, चौकी दरी आदिकमें नहीं? तो उष्ण गुणका सम्बन्ध न हो सका अनुष्णसे और न अनुष्णगुणका सम्बन्ध हो सका उष्णसे। जैसे दरी चौकी आदिकमें उष्ण का सम्बन्ध न रहा। जब सम्बन्ध की बात मानोगे तो फिर न ज्ञान रहा न आत्मा रहा। आत्मा ज्ञानस्वरूप है। आत्महितके लिये तब ऐसा ध्यान करना है कि आत्मा ज्ञानमात्र है, ज्ञानमय है, ज्ञान-स्वरूप है। ज्ञानसिवाय मैं और कुछ नहीं हूँ। ज्ञानमें जब केलल ज्ञानस्वभाव रह जाता है तब ज्ञानानुभूति होती है, त्रिलक्षण आनन्द होता है, कर्म कटते हैं, मुक्तिका मार्ग मिलता है। तो यह मानो कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है। ज्ञानके सम्बन्धसे आत्मा ज्ञानी

है यह बात नहीं है। और भी विचार करके देखो—यदि वे यह मानते हों कि उष्ण गुणके सम्बन्धसे अग्नि उष्ण है तो फिर उष्ण गुणकी ही बात बतलावें कि उष्णगुण किसके सम्बन्धसे उष्ण गुण हुआ ? अगर वे कहें किसी दूसरे उष्ण गुणके सम्बन्धसे उष्ण गुण हुआ तो फिर वे यह बतलावें कि वह दूसरा उष्ण गुण किसके सम्बन्धसे उष्ण गुण हुआ ? यदि कहें कि तीसरे उष्ण गुणके सम्बन्धसे वह दूसरा उष्ण गुण हुआ तो फिर उनसे यह पूछो कि वह तीसरा उष्ण गुण किसके सम्बन्धसे हुआ ? तो वे चौथा पांचवा आदि का व्यापार थोपते चले जायेंगे। इसमें तो अनवस्था दोष आयगा। अरे उष्णमें स्वयं उष्णता है, उसमें किसी दूसरे की जरूरत नहीं। ऐसे ही यह मानें कि अग्निमें स्वयं उष्णता है, उसमें किसी दूसरे की जरूरत नहीं। ठीक ऐसी ही बात आत्मा में है। आत्मा अगर ज्ञानगुणके सम्बन्धसे ज्ञानी कहलाये तो फिर उस ज्ञानगुणमें किसका सम्बन्ध हुआ ? अगर वे कहे कि वह ज्ञान गुण किसी दूसरे ज्ञानगुणके सम्बन्धसे बना तब तो फिर वहीं उष्णता वाली बात आ जायगी। तो इससे यही मानना चाहिए कि आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है। मैं ज्ञानमात्र हूँ।

दुःखमुक्तिके उपायकी अदुर्लभताका कारण स्वयंकी सहज ज्ञानानन्दमयता—
देखो संसारके दुःखोंसे छुटने का उपाय बहुत सरल है, संसारमें रुकनेका उपाय तो कठिन है, पराधीन है, मगर मोक्षमार्ग तो बहुत सरल है, किसीके सम्बन्धकी जरूरत नहीं। किसीके लगावकी जरूरत नहीं। स्वयं स्वतन्त्र अपने आपका जैसा सहजस्वरूप है, निरपेक्षस्वरूप है उस रूपकी अपनी श्रद्धा करलें तो सम्यक्त्व होगा। मुक्तिका मार्ग मिल जायेगा। भलाई तो अपने आपके आत्मस्वरूपकी श्रद्धामें है। कोई कहता है कि मैं मनुष्य हूँ, कोई कहता है कि मैं व्यापारी हूँ, मैं अमुक लाल हूँ, मैं अमुक प्रसाद हूँ आदिक कितनी ही बातें अपने आपके बारेमें लोग बोलते हैं। लेकिन ये मैं कुछ नहीं हूँ। यद्यपि यह पर्याय और ये सब बातें आयी हैं, इनके बीचमें हम आप पड़े हुए हैं फिरभी जैसे जलसे भिन्न कमल है। इसी प्रकार हम सब बातोंसे—मैं आत्माभिन्न हूँ। ऐसी रुचि हो, ऐसी श्रद्धा हो, ऐसी धुन बने। तो भाई जगतमें कोई किसीका शरण तो है नहीं। ऐसा ज्ञान बनावें तो खुदके लिए खुद शरण हो जायगा। यह बात कहीं दूसरोंको जतानेकी नहीं है, प्रसार करने की नहीं है, अर्थात् सब लोग ऐसा समझ जायें तो मेरा उद्धार हो जायगा ऐसी बात नहीं है, समझ सकते भी हैं मगर मेरा उद्धार तो मेरी समझसे ही होगा दूसरे की समझसे नहीं। अपनी बात अपनी दया अपने आपमें देखो। तो बात यह बनी कि आत्मा स्वयं ज्ञानस्वरूप है। ज्ञान के समवायसे आत्मा ज्ञानस्वरूप नहीं है। यह दार्शनिक विषय है। बहुत लम्बा चलने पर

कुछ श्रोताओं को आकुलता भी हो सकती है। अब इस विषयमें आगे न बढ़कर, इतना समझ कर छोड़ देंगे कि जैसे दीपकमें प्रकाश है तो कहीं प्रकाशके समवायसे दीपक प्रकाशमान नहीं है। वह तो स्वयं प्रकाशरूप है। इसी प्रकार आत्माभी ज्ञानके सम्बन्धसे ज्ञानमय नहीं है, किन्तु आत्मा स्वयं ज्ञानमय है। देखो विडम्बना—जो समवाय सम्बन्ध मानते हैं, वे दार्शनिक यह कहते हैं कि जब कोई यह प्रश्न करे कि आत्मामें ज्ञानका समवाय हुआ तो यह तो बतलावो कि उस समवायका सम्बन्ध फिर किस सम्बन्धसे हुआ ? तो वे कहते हैं कि समवाय तो स्वयं प्राप्तारूप है, उसमें अन्य सम्बन्धकी जरूरत नहीं, लेकिन जब संयोगकी जरूरत होती है—कपड़े में रंगका संयोग हुआ, पुरुषमें छतरीका संयोग हुआ, तो यह सम्बन्ध कैसे हुआ ? संयोगभी प्राप्त है फिर उसके लिए क्यों सम्बन्ध मानते ?

एक द्रव्यकी विशेषताओंको भेदकर विशेषवादकी उत्पत्ति—ये विशेषवादी पदार्थ ७ मानते हैं—६ सद्भावात्मक और एक अभावात्मक। द्रव्य, गुण, पर्याय, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। क्यों मान लिया उन्होंने ऐसा कि उनकी समझमें आया कि द्रव्यका लक्षण तो यह है, गुणका लक्षण यह है, कर्मका यह है, सामान्यका लक्षण जुदा है, विशेष का लक्षण जुदा है, सामान्य किसे कहते हैं ? जो सबमें व्यापक रहे। जैसे वे मनुष्य बैठे हैं, तो मनुष्य सबमें व्यापक है। तो मनुष्यमें मनुष्यत्व 'सामान्य' हुआ और 'विशेष' यह ज्ञानी है, यह व्यापारी है, यह अमुक वर्णका है, यह विशेष हुआ। तो लक्षण जब जुदा है तो ये पदार्थ जुदे हैं ऐसा मान लिया, लेकिन तथ्य क्या है ? पदार्थ तो एक मात्र द्रव्यको ही कहते हैं ? उस द्रव्यकी ये विशेषतायें हैं। द्रव्यमें सदा रहने वाली शक्ति को गुण कहते हैं। गुण कोई अलग पदार्थ नहीं है। द्रव्यमें रहने वाले गुणकी परिणतिको क्रिया कहते हैं। क्रिया कोई अलग पदार्थ नहीं है। द्रव्यमें जो एक सामान्य बोध होता है—जीव जीव है, सब जीव एक जीव हैं। ऐसा जो सामान्य बोध होता है वह हुआ सामान्य ये नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य देव, गतिरहित, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदिक जो विशेष प्रतिभास होते हैं उसका नाम विशेष है। द्रव्यसे ये कोई अलग चीज नहीं, द्रव्यकी ही ये विशेषतायें हैं। समवायकी जरूरत नहीं, और अभाव कोई अलग पदार्थ नहीं है, किन्तु अभाव अन्यके सद्भावात्मक होता है। जैसे इस कमरेमें घड़ेका अभाव है, किसीसे कहा गया कि भाई इस कमरेसे घड़ा उठा लावो। वह जाकर देखता है कि वहाँ घड़ा नहीं है, तो वह कह देता है कि वहाँ तो घड़ेका अभाव है, तो घड़ेका अभाव है क्या चीज ? क्या उसे कोई पकड़कर दिखा सकता है ? घड़ेका अभाव का अर्थ है—घड़ारहित कमरा है तो घड़ारहित कमरेका नाम घड़ेका अभाव है। तो ये सारे पदार्थ एकही द्रव्यकी बात है। द्रव्यको छोड़कर अलग चीज नहीं। तो ऐसे ही अपने

आत्मासे भी देखो यह आत्मा स्वयं एक अपना स्वरूप लिए हुए द्रव्य है, उसकी ही ये विशेषतायें। उसको ही समझने के लिए भेददृष्टिका यह कथन है। उसमें अनेक गुण हैं, अनेक पर्याय हैं, सामान्य हैं, विशेष हैं। यह एक समझाने के लिए बात है। तो क्या मानें कि मैं ज्ञानमय हूं, ऐसी श्रद्धा करेंगे तो सम्यग्दर्शन होगा।

मोहान्धकारसे हटकर ज्ञानप्रकाशमें आनेकी सम्मति—यह जीव अनादि कालसे दुर्गतिमें भटक रहा है। इसका व्यवसाय अज्ञानदशामें यही चल रहा है कि जन्मे, मरे, फिर जन्मे फिर मरे इसके सिवाय और कुछ काम इस जीवने नहीं किया। कीड़े मकोड़े हुए, मनुष्य हुए, नारकी हुए, देव हुए, बस यही चक्कर अनादि कालसे लगाता हुआ यह जीव चला आ रहा है। आज बड़ी दुर्लभतासे मनुष्य हुए हैं। थोड़े जीवनके लिए मनुष्य हुए हैं। लोग तो यहां की प्राप्त चीजोंको ही प्राण समझ रहे, सर्वस्व समझ रहे, इन बाह्य पदार्थोंके लोभके रंगमें रंग रहे हैं। ऐसी बुरी दशायें इस संसारी जीवकी चल रही हैं। ऐसी लोभभरी दशाओंका फल क्या मिलेगा ? मरकर फिर जन्म होगा तो यहां का फिर कुछ खयाल भी रहेगा क्या ? तो सोचो कि मैं ज्ञानस्वरूप हूं, ज्ञानसिवाय मेरा कुछ नहीं है। ये पुत्र, मित्र, स्त्री आदिक कुछ नहीं है, और, यदि इनको कुछ मानते हो तो सिवाय कष्ट के आपको कुछ लाभ न मिलेगा मुनि नहीं बन सकते, निर्लेप नहीं हो सकते, उदासीन नहीं हो सकते। भूख प्यासका रोग लगा है सो उस परिस्थितिके लिए गृहस्थी बसा ली है। एक स्त्री परिणीत कर लिया है। वह भोजनादिककी व्यवस्था कर लेगी, खुद कमाईका काम कर लेंगे, दोनों के सहयोगसे जीवन ठीक चलेगा। बच्चे लोग भी बुढ़ापेमें काम देंगे। यों जरूरत के लिए राग लगाये हैं यह तो ठीक है, पर ये मेरे हैं इसके लिए राग न लगाये गृहस्थीमें रहना राग बिना नहीं हो सकता इसलिए विवशता समझकर राग करें, पर अपना समझकर उनसे राग न करें कि ये जो मेरे पास हैं, मेरे हैं, ये ही मेरे सर्वस्व हैं। ऐसा माननेमें तो अंधकार है, उसमें फिर मुक्तिका मार्ग नहीं मिल सकता। अपनी धुन बनावें कि मैं सहज ज्ञानस्वरूप हूं, आखिर चिन्तन ही तो करना है शुद्ध अन्तस्तत्त्वका। और और प्रकारका व्यवहार करना पड़ रहा है तो उसे करते हुए खेद तो मानें। जैसे एक कहावतमें कहा गया है कि गले पड़े बजाय सरे। जब कोई गले पड़ गया है, जब कोई बात अपने ऊपर आ गई है तो उसे यद्यपि निभावें तथापि उससे ही हमारा सुल्झेरा होगा यह भ्रम न रखें। इसकी वास्तविक घटना इसप्रकार है कि होलीके अवसर पर कुछ नवयुवक लोग आपसमें मजाक के खेल खेल रहे थे। (अनेकों प्रकारके मजाकके खेल होलीके अवसर पर खेले ही जाते हैं) तो मजाकके खेलमें कुछ नवयुवकों ने किसी एक नवयुवके गले में

एक ढोल (तास) डाल दिया। उन नवयुवकोंका ऐसा ख्याल था कि इसके गलेमें पड़ा हुआ ढोल देखकर लोग हँसेंगे। यह समिन्दा होगा पर वह नवयुवक बुद्धिमान था, उसने भट छोटी दो लकड़ियाँ उठायीं और उसे बजा बजाकर नाचना शुरू कर दिया। लो उनका मजाक अब मजाक न रहा। उसका ढोल बजाना खुद मजाक का खेल बन गया। तो ऐसे ही समझिये कि जब ये गृहस्थीके व्यापारादिक अनेक कार्य गले पड़ गए हैं तो फिर इन्हें निभानेमें ही आपकी शोभा है। इन्हें निभाइये, पर यह समझते रहिये कि ये सब भूतभट हैं। अपने आपको निहारना, अपने सहज ज्ञानस्वरूपका मनन करके अपनेको प्रसन्न रखना, इससे बढ़कर और कुछ बात न थी लेकिन गले पड़ा तो बजाय सरे। भैया यद्यपि राग करनेसे ही घरका काम सरेगा, छोड़कर नहीं, फिर भी यह मानें कि विवशता के कारण राग करना पड़ रहा है,। उनसे कोई नाता नहीं, उनसे कोई मेरा सम्बन्ध नहीं, वे कोई मेरे प्राण नहीं। ये कोई मेरी वस्तु नहीं। इस तरह यदि गृहस्थीमें जीवन हो, जैसे कहते हैं कि जलसे भिन्न कमल है। देखो कमल उगता है तो वह जलसे कितना ऊपर है। जब जलसे वह ऊपर है तभी वह कमल भी प्रफुल्लित हो रहा है। अगर वह जलसे मिल जाय तो वह सड़ जायगा। तो जलसे न्यारा रहकर ही कमल प्रसन्न रह सकता है। जो कमल जलसे पैदा हुआ, जिसकी जड़ उस जलमें ही है वह अगर अपनी उस जड़से प्यार करने लगे तो वह सड़ जायगा, प्रसन्न नहीं रह सकता। इसीतरह जिस घरमें उत्पन्न हुए, जो घर आपके पैदा होने की जड़ है उससे अगर न्यारे रहेंगे तो आप प्रसन्न रहेंगे और अगर उसे ही आप अपना सर्वस्व समझेंगे तो उससे तो जीवन बरबाद हो जायगा, दुःखी रहोगे। तो जलसे भिन्न कमल है, इससे यह शिक्षा लेना है कि हम जिस स्थितिपर हैं उससे हमें अलग रहना है, अलग रहनेसे ही मेरे को प्रसन्नता रहेगी, उसमें मोह रखने से नहीं।

संतोषका स्थान—देखो भाई सुखशान्ति तो सभी चाहते हैं। हर काम करके ध्येय तो यही रहता कि मेरे को शान्ति मिले और शान्ति अब तक मिली नहीं। तो क्यों नहीं ऐसी धुन बनायी जाती कि मेरे को तो जीवनमें शान्ति की ही धुन बनाना है। अनन्त भव पाये, विषयोंमें गमाये। जो काम करते आ रहे थे उसमें ही अनन्त काल व्यतीत हुआ पर उसमें कोई आनन्द न मिला। तो अब इसे छोड़कर मेरेको कोई अच्छी बात सोचना चाहिए कि मेरेको शान्ति प्राप्त हो। तो दुःखोंसे छुटकारा किस प्रकार मिलेगा वह उपाय इस प्रथम सूत्रमें कहा गया है—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणिमोक्षमार्गः। देखो रत्नत्रयधर्म है, क्षमा आदिक धर्म हैं, ऐसा सुन रखा है। कुछ भी व्रत उपवास आदिक करते, उसका

व्याख्यान भाँ करते और अगर उसका अंतस्तत्त्व समझमें नहीं आता है तो भी धर्मके नाम-पर कुछ काम करनेसे प्राप्त सन्तोष कुछ अच्छा है ना ? संसारके सारे काम काज करनेपर भी, स्वरूप न समझने पर भी धर्मके नामपर कोई काम करने पर भी एक सन्तोष आता है । जो सन्तोष समागम में नहीं है, और, यदि अन्तःस्वरूपकी समझ हो जाय और फिर वास्तविक ढंगसे धर्मका पालन हो तो फिर उसके सन्तोषका कहना ही क्या है ? तो ये बाह्य समागम ये तो छोड़ने लायक हैं, इनसे हटना चाहिये । न आप हटें अपनी समझ बनाकर तो समय हटा देगा । मरण हो जायगा, अपने आप हट जायगा, छूट जायगा । तेज बीमार हो जायेंगे तो अपने आप हलुवा पूड़ी छूट जायगी । खूब आशक्ति है इसलिए नहीं छूटते । तो भाई विवेक करके अब भी मानें कि ये बाह्य पदार्थ मेरे से अत्यन्त भिन्न हैं । बेदान्तकी जागदीशी टीकामें एक कथन आया है कि कोई एक भंगिन मलका टोकना लिए बाजारमें से जा रही थी तो वहाँ किसी सज्जनका मन घ्रणा से भर गया । सोचाकि इससे तो हमारे जैसे अनेकों लोगोंको कष्ट होगा । यह सोच कर उन्होंने एक बढ़िया साफ सुन्दर चमकीला तौलिया भंगिनको दिया, कह दिया कि इस तौलियेसे मल भरा टोकना ढाक ले । उसने ढाक लिया । जब वह भंगिन उस टोकने को लिये हुए चली जा रही थी तो उसके पीछे तीन लोग लग गए । उनके मनमें आया कि इस टोकनेमें बहुत बढ़िया चीज होगी, क्योंकि यह बहुत ही बढ़िया तौलिये से ढका है । उन तीनों पुरुषोंको पीछे लगा देखकर वह भंगिन बोली भाई तुम लोग क्यों हमारे पीछे लगे हो ? तो उन्होंने बताया कि हमलोग जानना चाहते हैं कि तुम्हारे इस टोकनेमें कौन सी चीज है । तो भंगिनने बता दिया कि इस टोकनेमें तो मल भरा है । इतनी बात सुनकर उनमेंसे एक व्यक्ति पीछे लौट गया । दो व्यक्ति अभी भी पीछे लगे रहे । फिर भंगिनने पूछा भाई तुम लोग क्यों पीछे लगे हो ? तो उन दोनोंमें से एकने कहा कि हम तो यों न मानेंगे । हमें तौलिया खोलकर दिखा दो तब हमें विश्वास होगा । भंगिनने तौलिया हटाया तो उसे देख कर दूसरा व्यक्ति भी लौट गया एक व्यक्ति अभी भी पीछे लगा रहा । भंगिनने फिर पूछा-भाई तुम क्यों पीछे लगे हो ? तो उसने बताया कि हम तो अच्छी तरह से सूँघ साधकर परख लेंगे तब हमें विश्वास होगा । भंगिन ने तौलिया हटाया, उस व्यक्तिके भली भाँति सूँघ साँघ कर समझ लिया कि वास्तवमें यह मल ही है तब वह पीछे लौटा । तो जैसे तीन तरह के लोग उस मलसे लौटे ऐसे ही तीन तरह के मनुष्य पाये जाते हैं जो विषयोंसे हटते हैं । जरा भी समझाया जाय कि विषयोंमें आनन्द नहीं, पराधीनता है दुःख है, पापका बंध हैं, तो कोई मनुष्य इतना ही सुनकर विषयोंसे विरक्त हो जाते हैं । कोई लोग कहते हैं कि आचार्य महाराज समझा

रहे पर हम नहीं मानते । अच्छा कहनेसे नहीं मानते तो गृहस्थीमें रहकर कुछ भोग भोगते, जब उन भोगोंमें कुछ अड़चन आयी तो उन्हें बुरा मान गए और उनसे विरक्त हो गए, अब तीसरे लोग इस तरह कहते हैं कि मैं इस तरह से न मानूंगा, मैं तो खूब भोगकर मानूंगा । आखिर मरण होता है तो छोड़ना पड़ता है ।

अन्तराधनका अनुरोध—ये समागम बाह्य हैं, स्विके लायक नहीं हैं । हमारे हितरूप नहीं है । हमारा हित है ज्ञानस्वरूपकी आराधनामें । मैं अपनेको ज्ञानस्वरूप देख पाऊँ, इतनाही मैं हूँ, इससे आगे मैं कुछ नहीं, मैं केवल ज्ञानमात्र हूँ, इसका ही अनुभव करें, यह बात तो सरल है । इसे छोड़कर अन्य आप कुछ भी काम करें तो कुछ भी सरल नहीं । लेकिन जब कोई दुःखमें पड़ जाता है, जब कोई आगे वश नहीं चलता है तब मानते हैं कि कुछ शरण नहीं । ज्ञानपूर्वक सुखमें, विपत्ति न आनेसे पहिलेसे ही कोई मानले तो ऐसा कोई बिरला ही ज्ञानी पुरुष होता है, जैसे एक दोहामें लोग कहते हैं ना - “दुःखमें सब सुमिरन करें, सुखमें करें न कोय । जो सुखमें सुमिरन करें, तो दुःख काहे का होय ।” अरे अभी तो आप लोगोंकी इन्द्रियां ठीक हैं, व्यापारादिकके कामकाज सब ठीक हैं, सब प्रकारके आरामके साधन हैं ऐसी स्थितिमें अगर ज्ञानकी आराधना बने तो भला है । अगर कोई दुःख आये, कष्ट आये तब सोचे तब भी भला है । मगर पता नहीं कि क्या होगा । जो सच्चा उपाय है उसको करनेमें विलम्ब न करना चाहिए ।

आत्मा और ज्ञानमें अभेद होनेपर भी प्रयोजनवश भेदोपचार—यहां यह प्रकरण चल रहा है कि आत्मा और ज्ञान भिन्न-भिन्न हैं अथवा एक ही तत्त्व है, इस सम्बन्धमें अभी यह उत्तर दिया गया कि आत्मा और ज्ञान अभिन्न हैं, ज्ञानमय ही आत्मा है, आत्मासे ज्ञान जुदा नहीं है । ज्ञान बिना आत्माका अभाव होगा, आत्मा बिना ज्ञानका अभाव होगा । इस उत्तरके देनेके बाद अब यह खयाल आ जाता है कि जब आत्मा और ज्ञान एक ही पदार्थ हैं तब फिर दुनियाके लोग आत्माका ज्ञान, आत्मामें ज्ञान, इस तरह कुछ भेदभरी बात अपने मुखसे क्यों निकालते हैं ? तो इस विषयमें स्याद्वाद पद्धतिसे देखो—तो एक दृष्टिसे आत्माका ज्ञान अभिन्न है, एक दृष्टिसे आत्माका ज्ञान भिन्न है । भिन्नका अर्थ यहाँ यह लेना कि आत्माको छोड़कर अन्य प्रदेशोंमें ज्ञान रहता है, किन्तु समझनेके लिए भिन्नता है और वस्तुतः ज्ञानमय ही आत्मा है । इसकी अपेक्षा बताने वाली दो दृष्टियां हैं—(१) द्रव्यार्थिकनय (२) पर्यायार्थिकनय । द्रव्यार्थिकनयका विषय है ध्रुव द्रव्यास्वभाव, पर्यायार्थिकनयका विषय है भेद । यहां पर्यायार्थिकनयके अर्थमें यह समझना कि पर्यायके मायने परिणामन नहीं,

किन्तु भेद विशेष । गुणभी पर्याय है, पर्यायभी पर्याय है, अर्थात् अखण्ड वस्तुमें भेद करके समझना, जो अंश बनाये बस उसीको पर्याय कहते हैं । अंशका नाम पर्याय है, पर्यायका भी पर्याय है, पर पर्यायके अनेक अर्थ होते हैं । जो अंशग्राही है वह है पर्यायाधिकनय और जो अखण्डग्राही है वह है द्रव्याधिकनय । जैसे सत्का लक्षण कहते हैं—उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्तं सत् । उत्पाद व्यय और ध्रौव्यसे जो युक्त हो उसे सत् कहते हैं । तो सत्के इस लक्षणमें तीन अंश ही तो बताये गये हैं उत्पाद व्यय और ध्रौव्य । उत्पाद और व्यय ये दोनों तो भूत समझमें आ जाते हैं । ये उत्पाद व्यय और ध्रौव्य तीनों ही अंश एक ही वस्तुके पर्याय माने गये हैं । उत्पाद व्यय और ध्रौव्यमें तीनों ही सत्के अंश हैं । सत् अंशी है, जैसे उत्पाद व्यय के बिना सत् नहीं रहता, इसी तरह ध्रौव्यके बिनाभी सत् नहीं रहता । जैसे द्रव्य केवल ध्रुव ही नहीं है, केवल ध्रौव्य ही हो उसमें ऐसा भी नहीं है । यह तो हो जायगा अपरिणामीवादी एकान्तपक्षका कथन । तो वस्तु उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है । जैसे उत्पाद वस्तुका अंश है उसी प्रकार ध्रौव्यभी वस्तुका अंश है । यहां पर्यायाधिकनयका कथन किया । इसी तरह यहां भी देखिये—आत्म, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अभिन्न स्वरूप है । कहीं ज्ञान अलग नहीं हो गया । दर्शन, चारित्र आदिक आत्मासे भिन्न नहीं हैं । लेकिन पर्यायाधिक दृष्टिसे ज्ञान दर्शन, चारित्र, आनन्द आदिक अंश कहे जायेंगे और यह अंश समुदायात्मक एक अखण्ड आत्मा कहा जायगा । फिर द्रव्याधिक दृष्टिसे देखते हैं कि जो ज्ञान है वह आत्मा, जो दर्शन है वह आत्मा, जो चारित्र है वह आत्मा । पर पर्यायाधिक दृष्टिसे देखते हैं तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र इन सबका जुदा-जुदा लक्षण है । तो इस तरह ज्ञानादिक पर्यायें गुण अंश इन सबकी एकता भी है और नानापनभी है । जब पर्यायदृष्टिको गौण करते हैं, द्रव्याधिकनयकी प्रधानता करते हैं तो पर्यायाधिककी विवक्षा न रहे और अनादि पारिणामिक भाव है यही दृष्टिमें रहे । तो यह द्रव्याधिकनयकी व्यवस्था है वहां सर्वत्र एकता है और जब उन गुणोंको पर्यायाधिक नयकी प्रधानतासे देखा जाता है द्रव्याधिक दृष्टि गौण होती है तो तब कि द्रव्याधिककी विवक्षा न रही तो अपने अपने कारण विशेष हुए, उनमें भेद जाहिर होता है और देखने पर उनमें नानापन सिद्ध होता है, क्योंकि ज्ञानपर्याय अन्य है दर्शनपर्याय अन्य है, चारित्र आनन्द आदिक पर्यायें अन्य हैं । इस तरह आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ज्ञान चारित्र आत्मामें हैं इस बात की यहां प्रसिद्ध हुई है ।

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानकी युगपत् वृत्ति होनेके परिचयमें अनेक समस्याओंका समाधान अब जरा प्रकृत प्रसंग देखिये—सूत्रमें दर्शन ज्ञान चारित्र इस क्रमसे तीन शब्द रखे गए हैं दर्शनका अर्थ विश्वास है । ज्ञान का अर्थ है जानना और चारित्रका अर्थ है उसमें

रम जाना । इस तरह के क्रममें एक शंका होती है कि ज्ञान बिना विश्वास कस होता है । ज्ञान विश्वास पूर्वक होता है, अर्थात् ज्ञानको प्रथम ही कहना चाहिए । दूसरी बात-ज्ञानमें दो स्वर है-ज्ञ में आ. न में अ और दर्शन में तीन स्वर हैं-द में अ, श में अ और न में अ । जैसे कभी किन्हीं चार बालकों को बुलाना हो तो उनमें जिस बालकके नाममें बहुत कम अक्षर होते हैं पहिले उसका नाम बोलनेमें आता है । सिद्धान्त विधिमें नियम है कि जो अल्पस्वर होता है पहिले उसे बोलते हैं । तो अल्पस्वर वाला होनेसे ज्ञानको पहिले कहना चाहिये । उसमें दो बातें समझना है-एक तो पहिले यह कहा था कि श्रद्धान ज्ञानपूर्वक होता है इसलिए ज्ञानसे पहिले कथन होना चाहिए सो यह बात उचित नहीं है कि ज्ञानपूर्वक दर्शन होता किन्तु होता क्या है कि ज्ञान और दर्शन दोनों की एक साथ ही प्रवृत्ति होती है । जैसे सूर्यका प्रकाश और प्रताप दोनों एक साथ होते हैं । जब सूर्यके नीचे बादल आड़े आ जाते हैं और वे बादल हटते हैं तो आवरण के हटते ही प्रकाश एक साथ प्रकट होता है । इसीतरह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एक साथ प्रवृत्त होते हैं, इस तरह दृष्टान्त लीजिए कि जब किसी पुरुषको यह इच्छा हुई कि मैं श्रवणबेलगोला जाऊँ, वहां जो बाहुबलस्वामीकी मूर्ति है उसके दर्शन करूँ तो वह दर्शनसे पहिले ही सब तरह की तपास करता है । कैसी मूर्ति है, फोटो भी देखता है, किसी पुस्तक में फोटो का नाप लिखा हो तो उसे भी पढ़ता है, उसकी वह बहुत बहुत जानकारी कर लेता है । वही पुरुष जब वहां जाकर उस मूर्तिके दर्शन करता है । तो भला बताओ कि वहां जाकर प्रत्यक्ष दर्शन करने के ज्ञानमें और यहां पढ़ सुनकर किये जाने वाले ज्ञानमें फर्क है कि नहीं ? है फर्क । वह अन्तर इसप्रकार का है कि जैसे एक हो अनुभवरहित ज्ञान और एक हो अनुभवसहित ज्ञान । ऐसे ही यहां परख करिये । ज्ञान बिना सम्यग्दर्शन न होगा । जब कुछ जानकारी हीनकी जाय तो विश्वास किसका किया जायगा । तो ज्ञान बिना विश्वास होता तो नहीं, लेकिन विश्वास से पहिले, अनुभवसे पहिले जो ज्ञान हुआ वह एक साधारण सा ज्ञान है, दृढ़ता रहित ज्ञान है । जैसे जीवस्वरूपके सम्बंधमें ज्ञान किया तो जाना तो सही परपदार्थ से उपेक्षा करके अपने आपके स्वरूपमें रमकर जो अनुभव किया जाता है, उस अनुभवके साथ जो ज्ञान होता है वह ज्ञान सम्यग्दर्शन सहित है । वह है सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शनसे पहिले जो ज्ञान हुआ वह वह कि अनुभवरहित है । है ज्ञान जरूर उस ही तरह का करीब करीब, अथवा पर्याय के कथन में वह पुरुष चल रहा है, लेकिन उसका ज्ञान अनुभव रहित है । इस तरह यह निर्णय करना कि सम्यग्दर्शन

सम्यग्ज्ञान की एक साथ प्रवृत्ति होती है। अब दूसरी बात कहते हैं कि ज्ञान अत्यन्तस्वर वाला है तो रहो, लेकिन यह भी तो परखिये कि सम्यग्दर्शन पूज्य है ज्ञानकी अपेक्षा, चारित्रिकी अपेक्षा। सम्यग्दर्शन की पुज्यता का अर्थ है सम्यग्दर्शन के होने पर ही ज्ञान और चारित्रिकी समीचीनता कहलाती है। जो ज्ञान और चारित्रिकी समीचीनताका मूल बनता है। सम्यग्दर्शन मूल होने के कारण उसका पहिले नाम दिया है। अब दूसरी बात देखो—बीचमें ज्ञानका कथन है। चारित्रिकसे पहिले ज्ञान है, उसका भाव यह है कि ज्ञान—पूर्वक चारित्रिक होता है और पूर्णताकी दृष्टिसे देखा जाय तो ज्ञानपूर्ण हो जाता है १३ वें गुणस्थानमें और चारित्रिक पूर्ण होता है योगरहित विधिसे १४ वें गुणस्थान में, जिसे यथाख्यातचारित्रिक कहते हैं। अब यह क्रम बना—दर्शन, ज्ञान और चारित्रिक

मोक्षमार्ग ध्वज—इस सम्बन्धमें एक और प्रसंग याद आ गया—आजका जो अपना राष्ट्रीयध्वज है उसमें तीन रंग हैं—पीला (केसरिया) सफेद और हरा। इनमें केसरिया रंग तो सम्यग्दर्शन की याद दिलाता है, सफेद रंग सम्यग्ज्ञान की याद दिलाता है और हरा रंग सम्यक्चारित्रिकी याद दिलाता है। साहित्यमें इन तीनों ही रंगोंका वर्णन किया है। सबसे नीचे जो हरा रंग दिया है उसका अर्थ है—भरा पूरा होना, ठोस विचार वाला होना, हरा भरा होना। आत्माकी उन्नति चारित्रिकसे होती है। तो इस चारित्रिकका सूचक हरा रंग हुआ। मध्यमें है सफेद रंग। तो ज्ञानका रंग सफेद बताया गया है। यह सफेदी ज्ञानका पोषक है, जैसे सफेदी पर ही पीला रंग चढ़ेगा इसीप्रकार यह ज्ञान भी दर्शन और चारित्रिकमें व्यापक है। समयसारमें तो एक स्थल पर इतना तक स्पष्ट किया है कि जीवादिक श्रद्धा ज्ञान होनेका नाम सम्यग्दर्शन है, जीवादिक ज्ञान स्वभावसे ज्ञान परिणामन का नाम सम्यग्ज्ञान है, रागादिक का परिणाम होने को स्वभावसे परिणामन का नाम सम्यक्चारित्रिक है। तो इस प्रकार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रिक व्यापक है।

सम्यक्त्वकी प्राथमिकता—अब इसी विषयपर जरा पुनः दृष्टि कीजिए—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रिकमात्र मोक्षमार्ग :। इसमें द्वन्द्वसमास किया जाता है। द्वन्द्व वहां होता है जहां सब प्रधान होते हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रिक इन तीनोंकी प्रधानता है। ये तीनों न हों तो मोक्षमार्ग नहीं बनता है। दर्शन, ज्ञान, और चारित्रिक ये तीनों ही अपने अपने रूपसे, अपने अपने स्थान में प्रधानता रखते हैं। सर्वप्रधान होनेसे द्वन्द्वसमास किया गया है। यहां दर्शनज्ञान चारित्रिकमात्र मोक्षमार्ग :। इनमें सम्यक्शब्द देनेका कारण है मिथ्यादर्शन, मिथ्याज्ञान और मिथ्या चारित्रिक यह अर्थ लिया जाय। सम्यक्त्व के

सम्बन्ध में कहा है कि यह सम्यग्दर्शन मोक्षमार्ग की प्रधान सीढ़ी है । इस सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान और चारित्र्य समीचीनता नहीं प्राप्त कर सकते हैं । देखिये-जिसका यह विश्वास है कि मैं देहादिक से पृथक् कषाय, वाञ्छा, विषयवासना आदिक से निराला ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्व हूँ, उस पुरुषको सम्यक्त्वी कहा जाता है । सम्यग्दर्शन की अनुभूतिमें उसके अनुकूल ज्ञान बनानेमें जो सन्तोष होता है वह सन्तोष किसी बाह्य प्रसंगमें नहीं हो सकता । ऐसा जानकर अपने आपपर दृष्टिपात कीजिये । अपने जीवनकी सफलता आत्महित में है, वह सम्यक्त्वके पाने पर ही हो सकता है । इसलिए सम्यक्त्वके प्रसंगमें सब झुझझट न्यौछावर करने पर भी यदि सम्यक्त्व प्राप्त होता है तो उसमें अपने आपको ऐसा माने कि मैंने बड़ी सरलता से सम्यक्त्वका लाभ लिया है ।

सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र्यकी महिमा—सम्यग्ज्ञानकी महिमा के सम्बन्धमें कहा है कि ज्ञानके समान सुखका कारण संसारमें कुछ नहीं है । धन समाज आदिक सब कुछ ये नष्ट हो जायेंगे किन्तु सम्यग्ज्ञान हो तो इस जीवको शरण भी है । वस्तु स्वातन्त्र्य निमित्त नैमित्तिक भाव का ये सम्यग्ज्ञानके ही प्रकार हैं जो आकुलतासे छूटकर सुख शान्ति में पहुँचाते हैं । व्यवहारमें देखो कि जब कभी रस्सीमें सर्पका भ्रम हो जाय तो उस समय वह कितना दुःखी होता है । और जब सम्यग्ज्ञान हो जाय कि अरे यह तो कोरी रस्सी है तो बस उसका वह सारा दुःख खतम हो जाता है । और इसी कारण अनेक दार्शनिकों ने ज्ञानको ही प्रधान कहा है । ज्ञानसे ही मोक्ष होता है । यद्यपि उस ज्ञानके साथ सम्यक्त्व और चारित्र्य गभित हैं फिर भी ज्ञानकी प्रधानता है । ज्ञानके साथ सम्यग्दर्शन सम्यक्चारित्र्य की वार्ता आती है । सम्यक्चारित्र्यका अर्थ है अपने आपके आत्मस्वरूपको जिसने समझा हो जाना हो, उस ही रूपमें ज्ञानप्रवृत्ति बनाये रहना सो सम्यक्चारित्र्य है । अर्थात् ज्ञानमात्र आत्मस्वरूपमें रमण करना सम्यक्चारित्र्य है । सम्यक्चारित्र्यकी अद्भुत महिमा है । इसकी पूर्ति बिनामुक्ति प्राप्त नहीं होती । केवल ज्ञान प्राप्त होने पर भी सम्यक्चारित्र्य की पूर्ति बिना लोकमें अरहंत भगवान् जीवनमुक्त कहलाते हैं । मुक्त ही हैं क्योंकि घातिया कर्मोंका विनाश होने से गुणका घात अब नहीं रहा । गुणोंपर पूर्ण विकास होता रहेगा । यद्यपि वे जीवन-मुक्त हैं लेकिन शरीरसे मुक्त नहीं हुए, घातिया कर्मोंसे मुक्त नहीं हुए । जहाँ योग भी नहीं रहे तब अन्तर्मुक्ति में मुक्ति हो जाती है । सम्यक्चारित्र्य की पूर्ण महिमा है । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य इन तीनों की प्रधानता है । इसी लिए द्वन्द्वसमाप्त किया गया है और उन्मेषमें बहुवचनका रूप दिया गया है ।

मुक्तिमें वास्तविक आनन्द—संसारके प्राणी संसारके दुःखोंसे कैसे छूटें, ऐसी करुणा करके आचार्य उमा स्वामी महाराजने इस तत्त्वार्थ सूत्रके आदि में मोक्षमार्ग की घोषणा की है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इनका एकत्व मोक्ष है। मोक्षमार्गका अर्थ है-समस्त कर्मों से छूट जाने की स्थिति पाना। मोक्षका अर्थ है मोक्षाणि अर्थात् कर्म, विषय, कषाय, शरीर, इन सबको अलग कर देना। सर्व कर्मों से सदाके लिए छुटकारा हो जाना इसका नाम मोक्ष है। कुछ लोग कहने लगते, वे अज्ञानमें कहते या कभी मजाक में कहते, यह तो वे जाने-कि मोक्षमें क्या सुख है? सिद्ध होनेमें क्या आनन्द है? अकेले रहते हैं। कोई परिवारका साथी नहीं, मित्र नहीं, रोजिगार नहीं, खाना पीना नहीं, वहां कैसे दिन कटते होंगे? पर ये सब बातें तो विडम्बना हैं। जो संयोग लगा, शरीर लगा, रोजिगार लगा, खाना पीना लगा, उनकी स्थिति तो एक दयनीय स्थिति है। देखो विडम्बना कि ५ इन्द्रिय के विषय और छठा मनका विषय ये छहों विषय रोज रोज लोग भोगते हैं। स्पर्शन का विषय है स्पर्श करना, ठंडा गर्म छू लिया, सुहा गया, मौज मानने लगे, रसना का विषय है खट्टा मीठा आदि स्वाद मानना, घ्राणका विषय है सुगंध दुर्गन्ध मानना, चक्षुका विषय है रूप देखना, श्रोत्रका विषय है राग रागनीके शब्द सुनना, तथा मनका विषय है यश आदि की चाह करना। इनमें यह जीव रोज रोज लगा रहता है, रोज रोज भोगते हैं फिर भी नया सा मालूम होता है। अरे वह तो सब एक कय की हुई भोगी हुई चीज है। कोई मनुष्य कय की हुई चीज फिर से भोगना चाहता है क्या? कोई नहीं चाहता लेकिन अज्ञानमें यह प्राणी उस जूठनको ही खाना पसंद करता है। कितनी इस भगवान आत्माकी विडम्बना है। विषय कषायोंमें चित्त जाना यह आत्माकी कितनी बड़ी विपत्ति है। यह है। यह ही तो क्लेश है। उससे छूटने का उपाय धर्म है। उस धर्मका वर्णन इस ग्रन्थमें किया जा रहा है।

धर्मकी एकरूपता—धर्म-आत्माका धर्म। देखो सम्प्रदाय या किसी जातिका या किसी कुलका धर्म वह हो तो वह धर्म नहीं, वह तो अधर्म है जहां जाति, कुल, सम्प्रदाय आदिक का सम्बंध लगाकर किसी बात से रिस्ता जोड़ा तो वह पर्याय बुद्धि की बात है। वह धर्म नहीं हो सकता है। सर्व जीवों में उस पदार्थ स्वभाव पर दृष्टि दें और वहां परख करें कि यह जीव इस निज चैतन्यस्वभावमें दृष्टि दे और इस चैतन्य स्वभावका ज्ञान करे, इस चैतन्यस्वभावमें ही मान हो तो इसका कल्याण है। ऐसी जो भावना

करा है आराधना रखता है उसको धर्मका मार्ग दीखा । धर्म है, आत्माका स्वभाव सर्व जीवोंमें पाया जाता है । कभी जीव स्वभावमें रम नहीं पाते । यह मन और बेमनका फर्क है लेकिन स्वभाव सबमें पाया जाता है । इस स्वभावको दृष्टिमें लेकर जो ऊपरके भेष हैं, नाना खटपटें हैं उनसे अलग हटकर दृष्टिको कोई स्वभावमें जमाये और सब आत्माओंको आत्माके नाते से परखे, क्योंकि आखिर रहना तो इस आत्माको आत्मामें ही है । जो आत्माको आत्माके नाते से परखें उसे धर्मका मार्ग मिलता है और जो इन बाहरी भेष, शरीर, जाति, कुल सम्प्रदाय आदिक बातोंपर दृष्टि दे और इस नाते से कुछ धर्मकी बात माने तो उसे धर्म नहीं हुआ, वह तो अधर्म है । धर्म तो वास्तवमें आत्मस्वभाव है और आत्मस्वभावका परिचय, श्रद्धान और उसमें रमण करना यह बात जिनके परिपूर्ण बन जाती है उनको मोक्षमार्ग प्राप्त होता है । मोक्षमें यह आत्मा केवल अकेला रहता है, शरीर नहीं है तो खाने पीनेका प्रश्न ही नहीं है, जन्म मरण का प्रश्न ही नहीं है । जहां सर्वज्ञता है और ज्ञान अपने आपके स्वभावमें रम गया है उसको फिर मित्रकी परिवारकी अन्य बातों की आवश्यकता ही क्या है ? कोई आवश्यकता नहीं, फिर उसे क्लेशका जीवनमें अभाव है । जहां क्लेश रंच भी नहीं है उसे मोक्ष कहते हैं । जहां आकुलता नहीं उसका नाम है मोक्ष । ऐसे मोक्षका नाम है यह आत्मस्वरूपका विश्वास, आत्मस्वरूपका ज्ञान और आत्मस्वरूपमें रमण करना । इसे कहते हैं मार्ग । जैसे कोई निष्कण्टक रास्ता हो तो उस मार्ग में बड़ी सुविधासे, बड़ी सावधानी से बड़े आराम से अपने इष्ट स्थानपर पहुंच सकते हैं इसी प्रकार सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र एक ऐसा मार्ग है कि जिसमार्ग से यह आसानीसे मोक्ष महल में पहुंच सकता है । तो मोक्षमार्ग है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप

ज्ञानकी प्रधानताका दार्शनिकोंका अभिप्राय—अब इस प्रसंग में कुछ दार्शनिक अपनी बात पेश करते हैं । प्रयोजन सब का एक ही है । इन दार्शनिकों ने कहा है कि मोक्ष का मार्ग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनों को मत कहो । मोक्ष मार्ग तो केवल एक है । वह क्या ? ज्ञान ! जब ज्ञान से उलटा चलता है तो इस जीव को बंध होता है । जब इसको अपने आत्मा का परिचय होता है, ज्ञान होता है तो बंध से मुक्ति हो जाते हैं इसलिए इस बंध का कारण भी एक है, विपरीतता और मोक्ष का कारण भी एक है—क्या ? ज्ञान । और यह बात कुछ दार्शनिक अपनी अपनी दृष्टि में पेश कर रहे हैं

यों देखिये—कुछ दार्शनिकों ने कहा है कि धर्म से तो ऊर्द्धगमन होता है, अधर्म से अधोगमन होता है, ज्ञानसे मोक्ष है और विपरीतता से बंध है। सांख्यसिद्धान्त में सांख्यकारिका में यह बात स्पष्ट कहीं गई है। यहां धर्म का नाम है पुण्य, अधर्म का नाम है पाप। पुण्य से ऊर्द्धगमन होता है। उनकी दृष्टि में ऊर्द्धगति है क्या? इन्द्र, गन्धर्व, यक्ष राक्षस, पिशाच आदिक देवगति में उत्पन्न होने का नाम ऊर्द्धगमन देते हैं। यह ऊर्द्ध स्थिति की प्राप्ति धर्म से होती है, और अधर्म से मनुष्य पशु पक्षी सांप, स्थावर आदिक तिर्यञ्च की प्राप्ति होती है। यह उन सांख्य सिद्धान्त वालों की दृष्टि से बात कही जा रही है। उनका कहना है कि पुण्य से तो ऊर्द्धगमन की स्थिति बनती है और पापसे अधोगमन की। तो देखिये—देवगति तक ही बात सोची इतने में तो यही भूत पड़ी है कि उन्होंने देव होने को ही ऊर्द्ध की स्थिति मान लिया और मनुष्य होने को अधो (नीच) की स्थिति मान लिया। फिर भी सामान्य प्रयोजन तो ठीक है। ज्ञान से होता है अपवर्ग, (मोक्ष) जहां प्रकृति और पुरुष में भेदविज्ञान हो। यह पुरुष चैतन्यस्वरूप है। यह प्रकृति पड़ी है ऐसा बोध हो उस ज्ञान से होता है मोक्ष, और जब उस ज्ञान से उल्टा चलते हैं तो होता है बंध। तो देखो—सांख्यसिद्धान्त का भी इसमें विवाद नहीं है। वे भी कहते हैं कि ज्ञान से मोक्ष होता है। इस सिद्धान्त में आदि क्या और अन्त क्या? इन्द्रिय द्वारा विषयों की प्राप्ति होना यह तो है इसकी आदि याने संसार इसकी प्राप्त अवस्था दुःखदायी स्थिति और गुण और पुरुष में प्रकृति और पुरुष में भेद विज्ञान होना यह है अन्तिम चीज। इससे संसार का अन्त (मोक्ष) होता है। देखिये मोक्ष, दुःखवृत्ति, आत्मकल्याण, सब दार्शनिकों को इष्ट था और अपने अपने अभिप्राय माफिक वे ज्ञान और वैराग्य की दिशा में बढ़े। सर्वथा असत्य हो सो नहीं कहा जा सकता, पर मूल द्रव्य क्या है और उस द्रव्य में स्थितियां क्या हैं? और किस तरह से द्रव्य समस्त परलेपों से रहित होता है। उस स्वभाव का स्याद्वाद प्रयोग न करके उनका एकान्त वर्णन करने की इच्छा रखी इसलिए अन्तर आया मगर आप देखिये जो कुछ कहा जा रहा है मोटे रूप से, इसमें क्या असत्य है? इन्द्रिय के द्वारा विषयों की प्राप्ति करता यह ही विडम्बना है, वहां ही भगड़ा हुआ, विरोध हुआ विवाद हुआ। इन इन्द्रिय विषयों के खातिर ही तो विवाद होता है समाज आदिक में। तो यह सब संसार है, और जहां यह दृष्टि आयी कि ये विषय कषाय इच्छा आदिक सब बातें ये प्रकृति के गुण हैं, इनसे मेरा सम्बंध नहीं। मैं तो एक चैतन्यस्वरूप मात्र हूँ! लो भेद-विज्ञान हुआ, मोक्ष हो गया। ज्ञान से आगे और कुछ करने की जरूरत नहीं, ऐसा सांख्य-

सिद्धान्त का अभिप्राय है। ज्ञान किया, मुक्त हो गए। देखिये स्याद्वादी भी यह ही कहते हैं कि ज्ञान ही करता है कि मुक्त हो गए। मगर ज्ञान की यह विशेषता है कि ज्ञान में स्वरूप में, स्थिरता से रमें तो मुक्त होंगे। इस स्थिरता ने सम्यक्चारित्र का स्थान ग्रहण कर लिया।

ज्ञान में ज्ञान की स्थिरता में ही ज्ञान का प्रताप—कोई ज्ञान ज्ञान के अनुकूल न चले और कहे कि मुक्त हो गए। तो यह सब बहाना है स्वच्छता है। गुरु जी सुनाते थे कि कोई दो तीन शिष्य एक गुरु जी से पढ़ते थे। गुरु थे ब्रह्मवादो। मैं ब्रह्मस्वरूप हूँ, ब्रह्म हूँ, मैं खाता नहीं, पीता नहीं, मेरे पाप नहीं विकार नहीं। मेरा कुछ नहीं होता। यह मैं पूर्ण ब्रह्मस्वरूप हूँ, और उनकी चर्चा क्या थी कि वे गुरु जी एक म्लेच्छ की दुकान पर रसगुल्ले खाया करते थे, जिसमें कि मांस भी पकता था। एक बार शिष्यों ने कहा कि गुरु जी आप इतनी ऊँची तो व्याख्या करते, हमारे आराध्य हो, गुरु हो, हम लोग आपसे पढ़ते हैं, और आप वहाँ म्लेच्छ की दुकान में जाकर रोज रसगुल्ले खाया करते हैं, यह क्या बात? तो गुरु जी ने कहा—अरे तुम लोग क्या जानो? वह तो शरीर में गया, प्रकृतिकी चीज है, प्रकृतिकी बात प्रकृति में गई। कौन खाता है? गुरु जी की इस प्रकार की बात सुन कर शिष्य हैरान हो गए कि देखो इतने बड़े विद्वान होकर भी इस तरहसे कहते हैं। यह ढंगसे नहीं चलते हैं। तो एक दिन एक शिष्य उसी दुकान पर पहुँचा जिसमें गुरु जी रसगुल्ले खा रहे थे। वहाँ पहुँचकर शिष्यने गुरु जी के दो तीन थप्पड़ मारे। गुरु ने कहा—यह क्या करते? तो शिष्यने कहा? करते क्या? हमारा हाथ भी प्रकृति की चीज है और आपका सिर भी प्रकृति की चीज है, प्रकृति में प्रकृति लगी, हमने आपका क्या किया? तो शिष्यका बात सुनकर गुरु जी समझ गए और बोले—बेटे तुम्हारा कहना ठीक है। अभी तक हम भूलमें थे। उस दिनसे गुरु जी ने उस दुकान पर जाना छोड़ दिया। तो ज्ञानसे मोक्ष होता है इसका अर्थ केवल इतना नहीं कि ज्ञानकर लिया मोक्ष हो गया। अरे जिस स्वभावका ज्ञान किया उस स्वभावको ही ज्ञानमें लिए रहें, ऐसी स्थिरतासे कि अज्ञानकी बात न आ पाये। चलो 'ज्ञानसे मोक्ष होता है यह मानते हो तो यह भी सिद्ध होता है। सिद्ध तब हो जब ज्ञानकी स्थिरता हो। स्वरूप सम्बोधनमें अकलंक देवने लिखा है कि मैं ज्ञाता हूँ, ऐसे ज्ञानकी स्थिरताका नाम चारित्र है। निश्चय चारित्र क्या है? वह है ज्ञानस्वभावमें ज्ञानकी स्थिरता होना।

और, व्यवहार में स्थिरता क्या है ? व्रत, समिति, गुप्ति आदिक मुनिव्रतका जो आचरण है वह चारित्र है । कोई कहे कि हम तो निश्चय चारित्र पालेंगे, व्यवहार चरित्र को क्या जरूरत है, तो वह पार न पा सकेगा । जहां विषय कषायों में इतने संस्कार लदे हैं कि ये विषय वासनायें इनपर हावी हो रही हैं, उनको दूर करने के लिए एकदम सीधी ज्ञानस्थिरताका होना अवश्य है । संस्कारसे संस्कार काटा जायगा । वह, व्रत, समिति, गुप्ति मुनिव्रत आदिकके जो संस्कार हैं उनको क्षय करने में कारण है ? और जब ऐसी योग्यता बनती है कि इस व्यवहार चारित्र में रहकर व्यवहारचारित्रका भी ख्याल नहीं रहता । व्यवहार चारित्रका ख्याल नहीं रहता इसीके सामने व्यवहारचारित्र सहज छूटा और वह अपने निश्चयस्वरूप में रम गया । लो हुई ना मुक्ति ? किससे हुई ? ज्ञानसे । और, उसीमें चारित्र भी प्रविष्ट है । तो कुछ दार्शनिक कहते हैं कि ज्ञानसे ही मुक्ति होती है तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र इन तीनोंका कथन करना अयुक्त है । लेकिन यह ध्यानमें लायें कि जिस ज्ञानसे मुक्ति होती है उस ज्ञानमें विश्वास और चारित्र अपने आप लगा हुआ है । कोरा ज्ञान नहीं है ।

वैशेषिक सिद्धान्तमें ज्ञानकी मोक्षसागं रूपा—यहां शंकाकार कह रहा है कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है, इसका समर्थन करने वाले अनेक दार्शनिक हैं । वैशेषिक सिद्धान्त है कि भाई इच्छा और द्वेषसे बन्ध होता है और इच्छा द्वेषका अभाव हो जाय तो मोक्ष होता है । वह किस तरह ? जीव में इच्छा और द्वेष उत्पन्न हुआ । उससे यह जीव पुण्य और पापमें लगा । या तो पुण्य बनेगा या पाप । सद्विच्छा है तो पुण्य बनेगा और खोटी इच्छा है तो पाप बनेगा । तो इच्छा और द्वेष होने से पुण्य पापमें प्रवृत्ति होती है । पुण्य पापमें प्रवृत्ति होगी तो इसका जीवन बनेगा, जन्म होगा । जन्म नाम बतलाते हैं शरीर, मन और आत्मा, इन तीनोंका सम्बन्ध होने का नाम जन्म है । जब पुण्य पाप में प्रवृत्ति हुई तो जन्म हुआ, द्वेष हुआ, शरीर मिला, इन्द्रियां, मिली, जब शरीर मिला तो सुख दुःख हुए । जब सुख दुःख हुआ तो उस माफिक इच्छा द्वेष हुए । फिर पुण्य पाप में प्रवृत्ति हुई । यह चक्र चलता है संसार में, इसीसे जीवको बन्ध होता है । इच्छा द्वेष न रहे ऐसी स्थिति तब बनती है जब मोह न रहे, इसका नाम है अज्ञान न रहा । इच्छा द्वेष, धर्म अधर्म, जीवन इन

सबके अभावका नाम मोक्ष है तो उनका मूल ज्ञान-रहा । ज्ञान होनेका नाम मोक्ष हुआ । तो वैशेषिक सिद्धान्त से भी यह सिद्ध हुआ कि ज्ञान से मोक्ष होता है । फिर हे स्याद्वादी तुम क्यों कहते हो कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य यह है मोक्षका मार्ग ? जब इस जीव के मोह नहीं रहता वह यही है । वैशेषिक सिद्धान्तमें मोहरहित पुरुषको यति कहते हैं और उस यति के जब छहों पदार्थोंका यथार्थ बोध हो जाता है तो वह ज्ञानी कहलाता है । ६ पदार्थ होते हैं-द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय । वैशेषिक सिद्धान्तमें ये ६ पदार्थ माने गए हैं । अब जरा अंदाज करलो कि ये छहो पदार्थ जैन सिद्धान्तमें एक नामसे एक पदार्थ में हैं बस । उनके यहां ये ६ पदार्थ हैं । तो जैन सिद्धान्तमें एक द्रव्य है । द्रव्यकी ही गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय आदिक विशेषतायें हैं । ये कोई जुद्धे पदार्थ नहीं, लेकिन विशेषवादियोंका तो यह संकल्प है कि जरा भी गुंजाइस मिले तो भट अलग पदार्थ मान लिया जाय । इसकी विशेषताको वहां महत्त्व है । इसी ज्ञानमें श्रेय, माना गया है । यह उनका एक मूल सिद्धान्त है ।

नयोंकी सापेक्षतासे दस्तुका यथार्थ परिचय—आप लोगोंने देखा होगा एक गणेश मूर्ति वह गणेशकी मूर्ति किस तरहकी बनी हुई है कि गणेश तो है एक पुरुष लेकिन मुंह है हाथी जैसा, उसके सूंढ़ लगी है और वह बैठा है चूहे पर । गणेशका वाहन चूहा है । भला कभी ऐसा गणेश हुआ है कि आदमी हो और उसपर सूंढ़ फिट हो और चूहे पर चढ़ा हो ? जरा सोचो । और अलंकारिक ढंगसे देखो तो यह किसी तथ्यका प्रकाश करता है । किस तथ्यका प्रकाश करता है ? निश्चयनय और व्यवहारनय । तो द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय की यह मूर्ति है । द्रव्यार्थिकनय अभेदको सिद्ध करता है, व्यवहारनय भेदसे देखता है । तो देखिये-यह मूर्ति समझा रही है कि वस्तु अभेद है, एक है । जैसे शरीरमें सूंढ़, ऐसी अभेद अखण्ड हो रही, वहां यह नहीं मालूम होता कि यह सूंढ़ अलग धरी है और यह आदमी अलग है । जैसे उस शरीरमें वह हाथी की सूंढ़ ऐसी अभेद है । एक भेद है कि जहां खण्ड नहीं है, ऐसा अखण्ड बताता है निश्चयनय । यह तो है ऊपर की चीज और नीचे की चीज है चूहा । जैसे चूहा कागज अथवा कपड़े को कुतर कुतर कर इतने बारीक खण्ड कर देता है कि जितने बारीक कैंची से भी नहीं किया जा सकता, अथवा जिसका दूसरा टुकड़ा न किया जा सके । तो यह चूहा द्रव्यार्थिकनयकी सूचना देता है कि ऐसी बात देखो कि जहां और फिर भंग न हो सके, ऐसे अंशपर जाके जिन्होंने सात नयोंके नाम जाना हैं वे समझते हैं ।

नेगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्दनय, समभिरूढ और एवंभूत ये ७ नय हैं। अब आप देखिये कि कैसा बड़ेकी ओर से हट हटकर छोटे अंशकी ओर आते हैं। नेगमनयका विषय है सत् और असत्। भला बतलावो—असत् पदार्थ कहीं ज्ञानका विषय होता है ? लेकिन नेगमनयमें ऐसी करामात है कि सत् असत् दोनों का विषय करता है। नेगमनयका उदार पेट है नेगमनयका कितना महान् विषय है। जैसे उत्तर देते हैं कि कोई आदमी चूल्हेमें लकड़ी जला रहा था, उससे किसी ने कहा कि भाई क्या करते हो ? तो वह कह देता कि भाई हम रोटियां बना रहे हैं।...अरे कहां रोटियां बना रहे ? तुम तो अभी लकड़ियां जला रहे। देखिये रोटियां अभी असत् है मगर कह रहे कि रोटियां बना रहे। इसको विषय किया नेगमनयने। संग्रहनय तो केवल सत्को विषय करता है। असत् छूट गया, सत् रह गया। जितने सत् हैं जगतमें उन सब सत्को संग्रह करता है संग्रहनय। आप देखिये सैद्धांतिक दृष्टिसे नयोंका प्रतिपादन हैं। जीव कहा, द्रव्य कहा तो उसमें सारे आ गए। संग्रहनय २ तरह के होते हैं (१) पर संग्रहनय (२) अपर संग्रह याने सबसे ऊँचा संग्रह जिससे और ऊँचा न बन सके उसका नाम है परसंग्रह और परसंग्रहका भेद करके उसके भेदमें संग्रह में लगे उसका नाम है अपर संग्रह। जैसे जीव अपर संग्रह हैं। सारे जीव तो आ गए मगर कुछ पदार्थ छूट गए। देखो संग्रहनय ने सत् को विषय किया तो व्यवहारनय उस सत् को भी व्यवहृत करता है। द्रव्य कहा तो द्रव्यमें दो भेद हैं—जीव और अजीव। द्रव्यके ६ भेद हैं— (१) जीव, (२) पुद्गल, (३) धर्म, (४) अधर्म (५) आकाश और (६) काल। भेद करना व्यवहारका काम है। यहां तक तो रहा द्रव्याधिक नया अब पर्यायपर चले तो ऋजुसूत्रनय एक समयकी पर्यायको ग्रहण करता है। ठीक है। अच्छा रहा काम। अव्वक्त तो इस सूत्रनयका विषय ही इतना सूक्ष्म है कि इस विषयको ही अड़कर रह जाय तो सब व्यवहार खतम, काम काज खतम। मुक्तिका मार्ग नहीं बन सकता। ऋजुसूत्रनयकी एक अड़ी पकड़कर रह जाय, इसको पकड़ा है क्षणिकवादी बौद्धोंने, जिसका, विषय क्या है ? एक समयमें होने वाली पर्याय। लो अगर ऋजुसूत्रनयकी अड़ीपर डट जाय तो अगर कपास में आग लग जाय तो भी वे क्षणिकवादी जन यह न कह सकेंगे कि देखो कपास जल रहा है। अच्छा बतलावो जो जल रहा है वह कपास है क्या ? अरे जो जल रहा वह तो आग बन गया, वह अब कपास कहां रहा ? जो कपास है वह जल नहीं रहा और जो जल रहा वह कपास नहीं रहा। तो वे क्षणिकवादी उस समय यह नहीं बोल सकते कि देखो कपास जल रहा। अब देखिये ऋजुसूत्रनयका विषय है तो सत्य, असत्य नहीं हैं पर और नयोंकी अपेक्षा न रखे और एक ऋजुसूत्रनयका ही कोई हठ करे तो यह तो उसके लिए

दुर्दशाकी बात है। प्रथम तो ऋजुसूत्रनय ही इतना सूक्ष्म है। फिर चलता है शब्दनय। ऋजुसूत्रनयने जिस विषयको ग्रहण किया है उस पर्यायको कहने वाले अगर १० शब्द हैं तो उन दशों शब्दोंके १० अर्थ हैं। एक न जाने जायेंगे। पहिले शब्दसे दूसरे विषयका ग्रहण न हुआ। दूसरेसे दूसरा तीसरे से तीसरा। तो शब्दनयने जिस पर्यायको ग्रहण किया उस शब्दने भी शब्दमें भेद डाल दिया। कैसे? जैसे कोई कहे—स्त्री, भार्या, दारा, ये सब महिला के ही तो नाम हैं। महिला है उसे चाहे भार्या कहलो, चाहे दारा कहलो, चाहे स्त्री कहलो, कलम कहलो। यह तो ऋजुसूत्रनय स्वीकार करता है। लेकिन शब्दनय कहता है कि जो स्त्री है वह दारा नहीं, जो भार्या है वह स्त्री नहीं, अरें स्त्री उसे कहते हैं जिसमें गर्भ ठहरे। कलमें नाम उसका है जो पति, पुत्रादिक के शरीरकी रक्षा करे। ऐसे ही जो भार्या है वह दारा नहीं। यह तो ऋजुसूत्रनय स्वीकार करता है कि चाहे जिस शब्द से कहो एक ही बात है, मगर शब्दनय तो इसे नहीं स्वीकार करता तो ऋजुसूत्रनयने जिस विषयको ग्रहण किया उस विषयमें भी भेदकर देना और अंश कर देना, वह है शब्दनयका काम। इतने अंश तक तो हम आ गए। अब आगे चलो—समभिरुद्धनय। एक शब्दके द्वारा एक अंशसे पकड़ा उसमें भी एक वह शब्द दशों अर्थोंसे कहता है। अभी तो ऋजुसूत्रनयमें यह था कि एक अर्थसे दशों शब्द कहते हैं, तो उनमें जिसे शब्दका जो अर्थ है उस शब्दसे वह अर्थ लेता शब्दनय। अब एक ही शब्द दशों अर्थों से कहता है। उनमें से जिसमें रुढ़ि बन गई हो उसको कहना समभिरुद्धनयका काम है। जैसे गो शब्द गायका भी नाम है। इन्द्रियका भी नाम है। मगर गो शब्दका अर्थ गाय से लेना यह शब्दनयसे भी और सूक्ष्मता लेता है। तो वो एवम्भूत नय और आया और वह बोलता कि हम इससे भी हल्के सूक्ष्म हैं। कैसे? इस बिना रूप परिणामो में ही हम उस शब्दसे बोलेगा। गो शब्दसे गाय कहकर जब चले तब गाय है' क्योंकि गो का अर्थ है जाना। तो एवम्भूतने भी अड़ पकड़ी। तो ये नय उत्तरोत्तर कितने सूक्ष्मको विषय करते हैं। वेशेषिक इससे भी आगे बढ़े। सो वह है अभेद पदार्थमें गुणादिकी भिन्नसूत मानना अज्ञान है।

ज्ञानमात्रसे मुक्ति मानने वाले विशेषबादान्दुयापियों की शंकाका समाधान—हां पदार्थ की कथनी चल रही है। आत्मा है, आत्मामें ज्ञान दर्शन, श्रद्धा, चारित्र आनन्द आदिक गुण हैं, तो आत्मा जुदी चीज है और ज्ञानादिक जुदी चीज हैं। कुछ समझ में आ गया। हां और देखो—उनसे क्रिया भी होती है, परिणति भी होती है। यह परिणति अलग पदार्थ है, और यह भी समझ में आता है कि अगर दसों पदार्थ पड़े हों तो उनमें सामान्य यह भी

रत्नत्रयके दिग्दर्शन के बल पर सांख्य सिद्धान्त से शिक्षा की संभवता—सांख्य

सिद्धान्त में तो यह बात कही गई थी कि जब तक इस जीव को प्रकृति और पुरुष का भेद विज्ञान नहीं होता तब तक इसका संसार में जन्म मरण है। इस सम्बंध में उनका यह स्पष्टीकरण है कि आदि तो है संसार और अन्त है मोक्ष। संसार है शब्ददिक विषयों की प्रवृत्ति का नाम। तो प्रचेन्द्रिय के द्वारा विषयों का जो उपभोग है वह संसार है और अन्त है गुण और पुरुष में भेद विज्ञान होने का नाम अर्थात् ये अहंकार कषाय और भौतिक पदार्थ

ये सब पुरुषों के नहीं हैं। मैं एक विस्मात्र हूँ, इस प्रकार के भेद से वह है ससार का अन्त । जब तक इस जीव के अन्तः प्रत्यय रहता है स्वयं और परम कि ये जो श्रोत्रादिक इन्द्रिय के व्यापार हैं सुमन, देखना, सूचना आदिक जो क्रियायें हैं, इनमें जब तक ऐसा प्रतिभंसी रहता है कि मैं सुनने वाला हूँ, मैं देखने वाला हूँ, मैं स्वाद लेने वाला हूँ, तब तक इस जीव के ससार है, तब तक यह जीव अज्ञानी है । इसी प्रकार पंचभूतसे बना हुआ जो यह शरीर है इस शरीर में जब तक आत्मबुद्धि रहती है, ये हाथ ये पैर, ये सिर इनका समूह जो शरीर है इनमें जब तक आत्मीयता की बुद्धि रहती है उनमें इस तरहसे अपने की प्रतीति से लेते हैं कि यह शरीर मैं हूँ, तब तक उसे ससार है, तब तक यह जीव अज्ञानी है । और जब यह जान जाता है कि एक इस ब्रह्म की छोड़कर बाकी सब यह माया-जाल यह अंकुशिका धर्म है । इससे रज तमो गुण वाली प्रकृति के ही ये सब धर्म हैं । आत्मा तो अर्कती है, अभोक्ता है, चेतन है । जो कुछ भी क्रियायें हैं वे सब प्रकृति के धर्म हैं । इस तरह जब भेद जानते हैं तो उसे कही मुक्ति प्राप्ति होती है ? इस सिद्धान्तसे कितनी ही शिक्षाएँ मिलती हैं, पर मूलमें इस आत्मा को अपरिणामी मान लिया गया अर्थात् इस आत्मामें कोई परिवर्तन ही नहीं होता, इससे यह सिद्धान्त अपूर्ण रह जाता है । जब आत्मा न ससारी है न मुक्त है तो किसके लिए धर्म की विधि बताते ? जब यह ससारी है, अज्ञानी है और अपनी अज्ञान अवस्था तजसकता है, मुक्त अवस्था पा सकता है तब ही तो जीवको उपदेश दिया जायेगा कि दुखसे दूरी और मोक्ष के मार्ग में लगे । लेकिन जहाँ प्रकृतिका संघ है । प्रकृतिका ही मोक्ष है, अचेतन में ही सब परिणतियाँ हैं इस चेतनको अपरिणामी माने तो यह सिद्धान्त फिट नहीं बैठता । प्रकृत बात यह कही जा रही है कि सांख्यों ने भी यह माना कि ज्ञानसे मोक्ष होता है । जब तक विपरीतता रहती है तब तक ससार है और जब विपरीतता मिट जाती है ज्ञान होता है तो उसे मोक्ष होता है । शंकाकार यहाँ यह कहता है कि ज्ञानसे ही मोक्ष है फिर सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र्य की साथ कहने की क्या आवश्यकता है ? लेकिन यह नहीं समझा कि ज्ञान जब दृढ़ हो, विश्वास सहित हो तब ही तो ज्ञान कार्यकारी है । जब ज्ञान ज्ञानके द्वारा ज्ञानप्रकृतिका आचरण करने लगे तब यह ज्ञान कार्यकारी है । तो ज्ञानके साथ लगे हैं ये श्रद्धान और चारित्र्य । इन तीनोंमें एक भी कम हो तो मोक्ष नहीं है ।

रत्नत्रयके दिग्दर्शनके बलपर विशेषवादासे शिक्षाकी संभवता—वैशेषिक व नैयायिकोंने कहा है कि इच्छा द्वेषसे बन्ध है । उनका अभाव हो तो वहाँ मोक्ष है । मोक्षके

मायने क्या ? शरीरका संयोग न रहना शरीरकी फिर उत्पत्ति न होना । यह ही मोक्ष कहलाता है । तो यह मोक्ष मिलेगा कैसे ? पुण्य पाप यह दृष्टि दूर हो तो मोक्ष मिलेगा । पुण्य पाप कैसे दूर हों ? जब इच्छा दूर हो तो पुण्य पाप दूर हों । अब द्वेष कैसे दूर हो ? मोह न रहे । मोहका नाम अज्ञान न रहे, ज्ञान हो तो मोक्ष होता है । इस सिद्धान्तमें स्पष्टीकरण और उसकी विधि यह बतायी गई है कि देखो भविष्यमें आने वाले कर्म तो उत्पन्न न हों और जो संवित कर्म हैं वे रुक जायें, दूर हो जायें तब मोक्ष होता है । बात तो ठीक है पर इन सबका कारण बताया है केवल ज्ञानमात्र जानकारी हो जानता, श्रद्धान और चारित्रकी बात नहीं कही गई, इसीलिए स्थूलतथा सम्बर निर्जरा को ही संकेत कर रहा है यह सिद्धान्त, फिर भी भूल में भूल करनेपर यह सिद्धान्त भी मुक्ति मार्गको दिखाने में असमर्थ है । इसने कहा है कि पापकी अनुत्पत्ति होती है पापके साधन छोड़नेसे । लो चारित्रकी बात तो कही जा रही है, पर सिद्धान्त मूलमें यह रखते कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है पुण्यकी अनुत्पत्ति होती है पुण्यके साधन न रखनेसे । पुण्यफल भोगनेके समय संसारसे उद्वेग होता है, संसारसे उद्वेग होनेसे पुण्य भी दूर हो जाता है । यों ६ पदार्थोंसे तत्त्वका निर्णय होना तो चाहिए, इससे धर्म अधर्म का नाश होता है और मोक्ष होता है । यह शंकाकार नैयायिकका उदाहरण देकर कहना हो रहा है । पर इसमें भी श्रद्धान और चारित्र साथ लगा हुआ है । यह उनके विवेचनसे ही सिद्ध होता है । यह वैशेषिक का कथन था । नैयायिक तो कहते हैं कि दुःख जन्मप्रवृत्ति दोष मिथ्याज्ञान ये दूर हों तो मुक्ति होती है । इनमें मूल है मिथ्याज्ञान । मिथ्याज्ञान दूर हो गया तो दोष दूर हो गए । दोष दूर होंगे तो धर्म अधर्मकी प्रवृत्ति दूर होगी । पाप पुण्यकी प्रवृत्ति दूर हो गई तो जन्म दूर होगा । जन्म न होगा तो दुःख भी न रहेगा । इस तरह दुःखका आत्यंतिक अभावका नाम मोक्ष है । और वह मिथ्याज्ञान की निवृत्ति होने से हुआ । अर्थात् ज्ञानसे हुआ । तो ज्ञानसे ही मुक्ति सिद्ध हुई । तत्त्वज्ञान किया तो मिथ्याज्ञान दूर हुआ । मिथ्याज्ञान दूर होनेसे उत्तरोत्तर पूर्व-पूर्वकी चीजें दूर हो जाती हैं । जब सुख दुःखका सर्वथा अभाव हो जाय तो उसीका नाम मोक्ष है । तो ज्ञानसे ही मोक्ष हुआ ना । शंकाकारका यह समर्थन चल रहा है । लेकिन यहां भी देखें तो जिस जानकारीके साथ विश्वास लगा है वही दृढ़ कहलाता है । जैसे जानकारी के अनुरूप कुछ भीतरमें ज्ञानकी वृत्ति चल रही है ऐसे ही ज्ञानसे तो मोक्षकी बात सिद्ध होती है । तो ज्ञानसे ही मोक्ष होता है, यह हठ करना ठीक नहीं किन्तु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रके मेलसे मुक्ति होती है ।

रत्नत्रयके दर्शनपर क्षणिकवादसे शिक्षा ले सकनेकी संभवता—एक और क्षणिकवादियोंका सिद्धान्त देखो—जिसमें यह सिद्ध किया गया है कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है। उनका सिद्धान्त है कि मूलमें बन्धका, बंधनका, विपत्तिका कारण है अविद्या। बात ठीक ही है। अज्ञान है उसके ऊपर ये सब झंझटलगे हैं। लेकिन ज्ञानसे मोक्ष होता है ऐसा कहनेमें जो ज्ञान इतना कमजोर है कि विश्वास और आचरणसे रहित है तो उस ज्ञानसे मोक्ष नहीं होता। जैसे अज्ञानसे बन्ध होता है ऐसा कहनेमें केवल अज्ञानसे बन्ध नहीं होता। उस अज्ञानके साथ विपरीत और विपरीत आचरण हो तो उससे मोक्ष होता है, इसीप्रकार जिस ज्ञानके साथ सही विश्वास और आचरण हैं उस ज्ञानसे मोक्ष होता है। बौद्ध सिद्धान्तमें कहा है कि सबकी मूल अविद्या है। अविद्याका अर्थ है कि जो अनात्मा है उसमें आत्मा का अभिमान करना। यह मैं हूँ, जो अपवित्र है उसमें पवित्रताका अभिमान करना जो दुःख है उसमें सुखका अभिमान करना यह तो अज्ञान है। जो अनात्मा है उसमें आत्मा की बुद्धि करना भ्रम है। सो यह कथन ऊपर तो ठीक है, किन्तु अन्तर कहां? जैन सिद्धान्त तो यो दिखाता कि शरीर अनात्मा है। उसमें आत्माका कोई भ्रम करे कि यह मैं हूँ तो उसे बन्धन होगा, दुःख होगा, लेकिन बौद्धोंका यों कथन नहीं है, उनका कथन है कि एक आत्माको ध्रुव मानना भ्रम है। दूसरे क्षणका आत्मा अनात्मा है। सो क्षणिकवादमें यहां पर्यायार्थिकनयका एकान्त कर डाला। यह एक अलग विषय है। प्रयास उसका यह है कि अविद्या से संसार व विद्यासे मोक्ष है।

पर्यायार्थिकनय के एकान्तमें आत्मतत्त्वके परिचय की असंभवता-क्षणिकवादियों का कहना है कि आत्मा क्षण-क्षण में नष्ट हो जाता है। नया-नया पैदा होता है। जैसे यह एक शरीर है। इस शरीर में आत्मा सुबह से शाम तक एक नहीं रहता। किन्तु सुबह से साय तक अनगिनते आत्मा बन जाते हैं। समय-समय में एक एक आत्मा कहलाता है, दूसरे समय में दूसरा आत्मा हुआ। पहिला आत्मा समाप्त हो गया। इस तरह से नया-नया आत्मा होता है, लेकिन यह आत्मा, यह जीव, यह संस्कार जब उनमें आत्मबुद्धि करता कि यह मैं हूँ, बस यह उसका भ्रम हुआ। जैसे सरसों के तेल का या मिट्टी के तेल का दीपक जल रहा हो तो वहां क्रम क्रम से नई नई बूंद ऊपर पहुंचती रहती है उससे वह दीपक जलता रहता है। मानो आध घंटे तक वह दीपक जलता रहा तो उसे देखकर अगर कोई कहे कि यह तो वही एक दीपक है जो आध घंटे से जल रहा है तो उसका यह कहता भ्रमपूर्ण है। क्योंकि

प्रतिक्षण में नया नया दीपक जल रहा है। यही दृष्टि करते हैं क्षणिकवादी कि आत्मा तो क्षण-क्षण में नया-नया बनता है लेकिन इसमें यह भ्रम करते कि यह वही आत्मा है जो सवेरे था। मैं वही हूँ, इस प्रकार का जो ज्ञान करता है वह अविद्या है। अब देखिये—जैन सिद्धान्त में इसे कहा है पर्याय। क्षण-क्षण में समय समय में नया-नया होता है उस पर्याय को द्रव्य मान लिया तो यह भ्रम है लेकिन क्षणिकवादियों का सिद्धान्त है कि समय समय में होने वाला पर्याय नहीं, वही पूर्ण द्रव्य है और समय-समय में पुराना द्रव्य मिटता रहता है, नया द्रव्य उत्पन्न होता रहता है, उनमें यह बुद्धि करना कि यह आत्मा है, यह मैं हूँ, इसी के मायने अविद्या है। जब कोई बोलता कि यह मैं हूँ, तो इतनी देर में कितने ही आत्मा पैदा हो गए। इसमें किसको लक्ष्य में देकर बोला। यह अज्ञान है। यह क्षणिकवादियों का सिद्धान्त है। उस अविद्याके कारण जीवमें संस्कार बनता है। जब उनसे पुछा जाता है कि भाई जब नया-नया आत्मा पैदा होता है तो फिर यह खयाल क्यों रहता है कि यह कार्य मैंने किया, मैं करूँगा। तो उनका उत्तर है—संस्कार से। जैसे दीपक में नया नया बूँद ही नया नया दीपक बन रहा। लगातार वह दीपक जल रहा इस संस्कार से भी ज्ञात होता कि यह वही दीपक है, इसी तरह नया-नया आत्मा पैदा होता है पर संस्कार लगा है उपयोग का। पहिला आत्मा नये आत्मा को अपना पूरा चार्ज देकर मरता है। फिर वह आत्मा अपने बाद उत्पन्न हुए नये आत्मा को अपने ज्ञान का सारा चार्ज देकर नष्ट होता है। इस तरह संस्कार से बात चलती रहती है।

क्षणिकवाद में अविद्या और विद्या को ही संसार व मोक्ष का हेतु सिद्ध करने का प्रयास—क्षणिकवाद का कथन है कि उस अविद्या के कारण वह संस्कार बना, और संस्कार के कारण विज्ञान चलता है। जो हमारी जानकारीयां चलती हैं—यह जाना वह जाना—तो यह विज्ञान संस्कार की वजह से चलता है। और विज्ञान के कारण नाम रूप चलता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, इनमें शरीर को भी पृथ्वी (मिट्टी) कहा है। मरने के बाद लोग बोलते हैं ताकि अब तो यह शरीर मिट्टी हो गया। यद्यपि शरीर पृथ्वी नहीं है, मनुष्य का शरीर त्रस काय है लेकिन मिट्टी जैसी है, पृथ्वी की तरह पिण्ड है। इस समानता से लोग इसे पृथ्वी कह देते हैं। उनका यह मत है अथवा संस्कार, विज्ञान, शब्द, उपभोग आदिक नाम रूप हैं। विज्ञान के कारण नाम रूप हो तो नाम रूप के कारण ६ आयतन होते हैं। ५ इन्द्रियां और

छठा मन इनका जो विषयोपभोग है उसे आयतन कहते हैं। जब इन्द्रियके द्वारा विषयका उपभोग हुआ, जब स्पर्श हुआ—स्पर्श कहते हैं विषय, इन्द्रिय, ज्ञान, इन तीनोंका सम्बन्ध जोड़ना। देखो अनेक बातें स्थल स्थलपर ठीक-ठीक प्रतीत होनी हैं। जैन सिद्धान्त भी तो यही कहता है कि द्रव्येन्द्रिय भावेन्द्रिय और विषय इन तीनोंका प्रसंग होता है विषयके उपभोगके समयमें। द्रव्येन्द्रिय द्वारा देखने का काम होता। भावेन्द्रियसे देखनेका ज्ञान बनाया और विषयका उपभोग यह तो स्पर्श हुआ। इन्द्रिय, विज्ञान और विषय, इनका सम्बन्ध जुड़ा और स्पर्शके कारण वेदना हुई, सुख दुःखका अनुभव हुआ। जब ये वेदनायें पहिले होती हैं तो उन वेदनाओं में, उन सुख दुःखादिकके उपभोगके समयमें फिर इसे बलेश हो जाता है। तो वेदनाके कारण तृष्णा हुई। मोटे रूपसे सब जानते हैं कि जब थोड़ा बहुत अनुभव कराया जाय जब आशक्ति होगी। किसीको बढ़िया रसीला भोजन कराया जाय, मानो हलुवा खिलाया जाय तब ही उसे हलुवा की आशक्ति हो सकेगी। जब अनुभव ही नहीं किया तो फिर आशक्ति कहां से होगी? तृष्णा बनती है वेदना के कारण। जब तृष्णा बन जाती है तो यह डेला है यह उपादान बन जाता है। अशुद्ध अवस्था वाला बन जाता है। और, उपादान के कारण फिर पुनर्भव होता है, कर्भबन्धन होने लगता है, इसीके कारण भय है। भवके कारण जन्म होता और जन्मके कारण बुढ़ाया मरण आदिक होता। इन सब दुःखोंका मूल कारण अविद्या है, अज्ञान है। अविद्या दूर हो तो ये सब विडम्बनायें दूर हो जाती हैं। तो यों उत्तर देकर शंकाकार यह कहता है कि देखो ज्ञानसे ही मोक्ष होता। तब यह क्यों कहा जा रहा कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य इन तीनोंके एकत्वसे मोक्ष मार्ग है।

ज्ञानसे मुक्ति होनेके कथनमें भी रत्नत्रयसे मुक्ति होनेके आशयकी निहितति—और, भी अन्तिम बात सुनो। जैन सिद्धान्तमें भी यही बात कहा कि मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये बन्धके कारण हैं। तो देखो मिथ्यादर्शन क्या है? पदार्थका जैसा स्वरूप है उस स्वरूपसे विपरीत अभिप्राय को ही तो मिथ्यादर्शन कहते हैं। तो यह विपरीत अभिप्राय मिथ्याज्ञान ही तो है, विपरीत अभिप्राय मोह में ही तो होता। जहां ज्ञान हुआ, अज्ञान दूर हुआ, वहां मोक्ष हो गया। तो जैन सिद्धान्त में भी किसी स्थलके कथनसे भी यह बात पुष्ट होती है कि ज्ञानसे मोक्ष होता है, फिर क्यों कहा जा रहा कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य का एकत्व ही मोक्षमार्ग है। एक दृष्टान्तसे भी परखलो देखो—मानो कोई सेठ कहीं जा रहा था। उसके साथ उसके मित्र भी थे। एक

जगह जंगल में देखा कि एक १०-१२ वर्षके बच्चेको हाथीने अपनी सूँढ़में पकड़कर पटक दिया। उस सेठका भी १०-१२ वर्षका वैसा ही बच्चा था, तो उसे यह भ्रम हो गया कि अरे इसे मेरे बच्चेको हाथीने उठाकर पटक दिया। सेठ मूर्छित होकर गिर पड़ा। बेहोश हो गया। उसके मित्रोंने भट उस बेहोशीका कारण समझ लिया। इधर तो उसकी बेहोशी दूर करनेका उपचार करना शुरू कर दिया और उधर खबर देकर सेठके बच्चेको बुला लिया। सेठके जब नेत्र खुले, अपने बच्चेको अपने सामने पाया तो भट बेहोशी खतम हो गई और उसका सारा दुःख दूर हो गया। सो ज्ञानसे ही मोक्ष है, दर्शन और चारित्र की बात क्यों कही जा रही है? देखो जैन सिद्धान्तका भी उदाहरण देकर शंकाकार यह कह रहा है कि मोक्ष तो ज्ञानसे ही होता है, लेकिन यह नहीं समझा कि इस ज्ञानके साथ दर्शन और चारित्र लगा है। मिथ्यादर्शन क्या है। मिथ्या विश्वास ही तो है। अविरत आदिक मिथ्या आचरण ही तो हैं। ये बंधके कारण हैं। ये मिटें तो मोक्ष हो। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र हो, बस यही मोक्षका मार्ग है। तो शंकाकारका जो मूल प्रश्न था कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है, तीनों बातें न बोलना चाहिए उसका समाधान करीब-करीब आ गया।

मोक्षमार्गके प्रसंगमें सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तीनोंकी अविनाभाविता—अब विशेष रूपमें भी विचार करें तो ये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र सब अविनाभावी हैं। इनमें से यदि एक भी न हो तो काम न बने। जब तीनों हों तब मोक्षमार्ग बनता है। उदाहरणके लिए लो-कोई पुरुष रोगी है, उसे औषधि दी जाती है तो उस रोगीको उस औषधिपर विश्वास रहता है। उसे पूर्ण विश्वास है कि इससे रोग दूर होगा। और, औषधिका ज्ञान भी है, कि किसके साथ यह औषधि ली जायगी, कब कब ली जायगी, किस ढंगसे ली जायगी। और, उस औषधिको वह खाता भी है। तो देखो इस घटना में भी दर्शन ज्ञान और आचरण ये तीनों आ गए। इसीतरह इस संसारका रोग इस प्राणीके लगा है तो पहिले विश्वास हो कि इस संसारका रोग मुझे लगा क्यों? निदान भी तो छोड़ना चाहिए। जैसे उन रोगियोंको समझाया जाता कि तुम्हारी यह बीमारी उर्दकी दाल खाने से हुई, कोई ठंडी चीज खानेसे हुई, तो उसे फिर कहा जाता है कि भाई अब ठंडी चीज मत खाओ। जो चीज अपथय है, जिससे यह रोग हुआ है पहिले उससे मुख मोड़ो। यों रोग मिटनेका हेतुभूत जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र है उसकी और उसे अभिमुख किया जाता है। यों ही यहां देखिये—सम्यग्दर्शन पाने में मोक्षमार्गका विषयभूत जो निज आत्मा है इस निज आत्माको मोक्ष दिलाना है तो आत्माका भ्रम दूर हो। यह मैं क्या हूँ? स्वयं निरपेक्ष

अपने आप अपने ही सत्त्व के कारण जो तत्त्व है उसका श्रद्धान होना चाहिए और इसमें जो ज्ञान वैभव है, आनन्द निधि है उसका परिज्ञान होना चाहिए, अपने ज्ञानको इस स्वभावके अनुरूप बनाना यह कहलाता है सम्यक्चारित्र । ये तीनों बातें हो तो जैसे रोगीका रोग विश्वास, ज्ञान, आचरण के कारण दूर हुआ इसीप्रकार संसारी रोगी प्राणीको यह जन्म जरा मरणका रोग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रसे दूर होगा । और, भी दृष्टान्तमें लो-जैसे जंगलमें आग लगी है और वहां दो आदमी फंसे हो-एक लंगड़ा और एक अन्धा । उनमें से लंगड़ा अपनी आंखोंसे देख रहा कि देखो वह आग लगी है, इधरको बढ़ती आ रही है, सब कुछ देखता है पर वहां से भाग कर जा नहीं सकता, और एक अन्धा पुरुष जिसको कुछ दिखता ही नहीं उसमें भागने की शक्ति होने पर भी वह किधर भागे । कहीं बढ़ती हुई आग में ही घुस जाय । । अब ऐसी स्थितिमें तो वे दोनों ही उस अग्नि में जल जायेंगे । उनमें अगर सुबुद्धि जग जाय, 'अन्धेके कंधेपर लंगड़ा बैठ जाय और उसे आगे बढ़नेके लिए दिशा बताता जाय तो इस तरह से वे दोनोंके दोनों अग्निसे अपनी रक्षा कर सकते हैं । इसी तरह से समझिये कि जो ज्ञान वाला है ज्ञान-ज्ञानकी ही बात रखता है, क्रिया नहीं है, आचरण नहीं है, प्रवृत्ति नहीं है, ऐसा ज्ञान वाला भी इस संसार आगमें जलेगा । बच नहीं सकता । और जो क्रियायें लगा है, आचरण करता है, महाव्रतपाले, व्रत, समिति पाले, पर ज्ञान नहीं है, विश्वास नहीं है, आत्मपरिचय नहीं है तो ऐसा पुरुष भी तो मुक्तिका पात्र नहीं होता । तो आचरणहीन ज्ञान भी कार्यकारी नहीं, ज्ञानहीन आचरण भी कार्यकारी नहीं, अतः श्रद्धान, ज्ञान और चारित्र इन तीनोंका एकत्व ही मोक्षमार्ग है ।

ज्ञानसे ही मोक्ष होनेकी हठमें तीर्थप्रवृत्तिकी असंभद्धता—यहां प्रकरण यह चल रहा कि शंकाकार का यह ख्याल बना कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है । जरा युवितसे विचार करो । यदि यह जाना जाय कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है तो ज्ञान तो १३ वें गुण स्थानमें पूर्ण हो जाता है । १३ वां गुणस्थान संयोग-केवली है । १२ वें गुणस्थानके अन्तमें केवलज्ञान हो जाता है । ज्ञानपूर्ण हो जाता है । तो ज्ञान पूर्ण होते ही मोक्ष हो जाना चाहिए । यहां बढ़ना न चाहिए । वहां फिर ठहर तो नहीं सकते । जब ठहर नहीं सकते तो फिर उपदेश कहांसे मिलेगा ? केवलज्ञान हुआ कि मुक्त हो गए । अरे केवलज्ञानी होने पर भी हजारों लाखों वर्ष या अग्रहंत भगवानकी अभी जितनी आयु शेष है उतने वर्ष वे बिहार करते हैं, उनकी दिव्यध्वनि खिरती है, समवशरथकी रचना होती है, गणधर देव उनकी

दिव्यध्वनिको भेलते हैं, फिर आचार्यों द्वारा उसकी परम्परा चलती है । यदि माना कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है तो जहां ज्ञान हुआ वहां ही मोक्ष हो जाना चाहिए । ठहर नहीं सकते । जब ठहर नहीं सकते तो फिर उपदेश कहां से होगा ? उपदेश न हो तो ये बातें कहां से आयेंगी ? इस कारण ज्ञानसे ही मोक्ष होता है, यह हठ करोगे तो फिर तीर्थ प्रवृत्ति नहीं हो सकती । कोई कहे कि ज्ञान हो तो मोक्ष हो, होने दो, यहांके जो और लोग बचे हैं वे उपदेश बना देंगे । तो भाई जिसकी जड़ अज्ञान है, असर्वज्ञता है उस मूलसे जो उपदेश परम्परा होगी वह समीचीन नहीं हो सकती । जिस परम्पराका मूल निर्दोष है उसमें तो प्रमाणीकता है । तो लोग ज्ञानसे ही मोक्ष होता है ऐसा मानने पर ज्ञान होते ही मोक्ष हो जायगा । अवस्थान न हो सकेगा, फिर उपदेश का अभाव हो जायगा । अब यहां कहें शंकाकार कि ज्ञान होने के बाद भी पूर्वसंस्कार जब तक रहता है तब तक वह लोकमें ठहरता है और उपदेश चलता है । जब संस्कार मिट जायगा तब मोक्ष होगा । तो सुनो- भाई-ऐस कहने में न्याय की ही तो बात कह दी, अन्यथा बतलाओ, संस्कार का विनाश भी कैसे हो ? ज्ञानसे मोक्ष होता है और कहते कि संस्कार का क्षय होनेसे हुआ तो संस्कार क्षयका कारण क्या है ? क्या ज्ञान । अगर ज्ञान है तो जिस समय ज्ञान हुआ उसी समय वह संस्कार भी मिट गया, तब तुरन्त मोक्ष हो गया । फिर न ठहरेंगे, उपदेश परम्परा न चलेगी । यदि कहो कि उपदेश के क्षयका कारण और है, ज्ञान नहीं, तो यह बात कैसे युक्त ठहर सकेगी । कि मात्र ज्ञानसे ही मोक्ष होता है । जब परम यथाख्यात चारित्र पूर्ण होता है तो इस जीवको मुक्ति प्राप्त होती है । तो यहां तक यह बात समझना चाहिए कि आत्माका मोक्ष मार्ग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका एकत्व है, मात्र ज्ञान नहीं । आत्म विश्वास हो, आत्मज्ञान हो और आत्मस्वभावके अनुकूल ज्ञानका आचरण हो तो यह ही मोक्षमार्ग है ।

सम्यक्चारित्रसे संस्कारक्षय होनेकी संभवतासे रत्नत्रयसे मुक्तिकी प्रसिद्धि-प्रकरण यह चल रहा है कि कोई शंकाकार कह रहा कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है, फिर सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र साथ में क्यों लगाये गए हैं ? इस प्रसंगमें बहुत प्रकारसे समाधान दिया गया । अन्तमें समाधान से हठकर शंकाकार यह कह बैठा कि भाई ज्ञान होने पर भी जब तक संस्कारका क्षय नहीं होता तब तक मुक्ति नहीं होती । सो यह प्रतिज्ञा तो कायम न रह सकी कि ज्ञानसे मोक्ष होता । अब तो यह बात आयी कि संस्कारके क्षयसे

मोक्ष होता है। और फिर संस्कारक्षयका कारण क्या है? यदि कहो कि ज्ञान है तो ज्ञान होते ही संस्कारकाक्षय हो जायगा। फिर तो मोक्ष हो जाना चाहिये। अगर संस्कारक्षय ज्ञानसे नहीं होता, कुछ अन्य चीज है तो वही तो चारित्र्य कहलाता है। चारित्र्यसे ही वह संस्कारक्षय होता है। अब और भी आपत्तियां देखिये—यदि इतना ही माना जाय कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है तब तो दीक्षा आदिक उपाय करना व्यर्थ हो जायगा। सारी क्रियाकाण्ड, सारे धार्मिक अनुष्ठान व्यर्थ हो जायेंगे, क्योंकि ज्ञानसे मोक्ष होता तो ज्ञान ही करना चाहिए। फिर दीक्षा या अनेक प्रकारके भेषोंमें, क्रियाओंमें क्यों प्रयत्न किया जाय? तब तो यम नियम आदिक सबका अभाव हो बैठेगा। यदि कोई यह कहे कि ज्ञान और वैराग्य दोनों हुए। तो मोक्ष हो गया। तो ठीक हैं। तब तो मोक्ष तुरन्त ही हो जाना चाहिए। फिर क्यों ठहर रहे हैं? फिर तो उपदेश भी कैसे होगा? तो इस तरह यह कहा कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है और उसमें विश्वास और चारित्र्यकी बात बिल्कुल हटा दिया सो यह बात युक्त नहीं है।

नित्यैकान्त व अनित्यैकान्तमें मोक्षप्रक्रियाही असंभवता—अब एक दार्शनिक विधिसे और भी देखिये—जो लोग यह कहते हैं कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है उनमें कुछ लोग तो हैं नित्यवादी और कुछ हैं अनित्यवादी। नित्यवादी नैयायिक आदिक हैं। उनका कथन है कि ज्ञानसे ही मोक्ष होता है। देखिये जो लोग मानते हैं कि पदार्थ सर्वथा नित्य है, अपरिणामी है, पदार्थमें किसी प्रकारकी दशा, अवस्था, परिणति, अदल बदल नहीं होती है, ऐसा जो नित्यपनेका एकान्त मानते हैं उनके यहां मोक्षका कारण ही सम्भव नहीं है, क्योंकि अपरिणामी है, किसका मोक्ष कराना हैं। मोक्षके कारण भी बनेंगे कैसे? कुछ भी परिणामन होता ही नहीं है। तब फिर नित्यपनेका एकत्व होनेपर जब वहां कोई प्रक्रिया ही नहीं हो सकती तो फिर ज्ञान और वैराग्य भी नहीं बन सकते। अतः जो नित्यावादी हैं उनको तो यह कहने का ही अधिकार नहीं कि मोक्ष होता है। ज्ञानसे मोक्ष होता है यह तो दूर रहो, पर मोक्ष होता है इतना भी कान्हेके अधिकारी नहीं। जो नित्य एकान्तवादी वस्तु है, परिणति है, चेतन है, ब्रह्मा है, पुरुष है, अपरिणामी है, जब यह बदलता ही नहीं है तो फिर ज्ञान कहां रहा? बन्ध कहां रहा? मोक्ष कहां रहा? बन्ध मोक्षकी कोई व्यवस्था नहीं। क्योंकि क्रिया दो तरह की होती है एक तो एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें जाना और एक उसी जगह रहते हुए परिणामन होना। जैसे पुद्गलमें

काला, पीला, नीला आदिक रूप परिणामन होना अथवा आत्मामें ज्ञान, शान्ति, अशान्ति आदिक परिणामन होते हैं। तो दोनों ही प्रकारके परिणामन सर्वथा नित्य माननेमें हो नहीं सकते। सर्वथा नित्य हैं, बदलते ही नहीं तो अपरिणामी कौन ? तो जो सर्वथा नित्यवादी हैं उनको तो एक कहनेका अधिकार ही नहीं। यहां तक तो कोई कार्य ही सम्भव नहीं हो सकता। किसी पदार्थका ज्ञान ही नहीं बन सकता। ज्ञान तब बनता है, उनके सिद्धान्तमें कि जब यह आत्मा मन, इन्द्रिय, पदार्थ इनका सम्बंध हो। उनके यहां सुखका अनुभव ही नहीं हो सकता। सुखका अनुभव तब होता है जब आत्मा, मन और पदार्थका सम्बन्ध हो। तो जब सब चीजें अपरिणामी हैं तो फिर संयोगी कैसे हो सकेंगी और परिणति भी कैसे बन सकेंगी ? ज्ञान भी नहीं हो सकता तो जो नित्य एकान्तवादी हैं उनको यह कहने का अधिकार नहीं कि ज्ञान से ही मोक्ष होता है। जो क्षणिकवादी हैं, क्षण क्षणमें नया-नया द्रव्य पैदा होता है, नया-नया आत्मा बनता है, जो ऐसा कहने वाले हैं वे इसके भी अधिकारी नहीं कि मोक्षकी बात कह सकें, क्योंकि आत्मा तो क्षणिक है, नया नया होता है। एक समयसे दूसरे समय भी नहीं ठहरता तो फिर किसे मोक्षकी पड़ी ? बन्ध करे कोई दूसरा आत्मा और मोक्ष हो किसी दूसरे आत्माका तो यह अन्धेरपना क्षणिक एकान्तवाद में हो जाता है। मोक्षकी कल्पना करना वहां व्यर्थ है, क्योंकि उत्पत्तिके अनन्तर ही विनाश हुआ। ज्ञान वहां नहीं ठहर सकता। न ज्ञान होता है न मोक्ष होता है। मोक्ष किसका हो ? क्षण क्षण में आत्मा नया-नया बनता है। तो जब ज्ञान नहीं ठहर सकता तो वैराग्यकी भावना कहां ठहरेगी ? आत्मा न रहा तो फिर ज्ञान वैराग्य कहां ठहरेगा ? निमित्त नैमित्तिक व्यवहारभी कैसे बनेगा ? फिर ये सब सिद्धान्त गढ़ना कैसे बनेगा कि अविद्यासे संस्कार होता, संस्कारसे विज्ञान होता। अरे निमित्त नैमित्तिक भाव जब बने तब ठहरे। जब क्षण क्षणमें पदार्थ मिटता जाता है तो फिर निमित्त नैमित्तिक भाव कहां से बनेगा ? इससे यह मानना कि ज्ञान से ही मोक्ष होता है, यह सिद्धान्त ठीक नहीं है।

नित्यैकान्त व अनित्यैकान्तमें सम्यग्ज्ञानकी प्रादुर्भूतिकी भी असंभत्ता अब जरा अज्ञानकी बात बिचारो। उनका यह भी कहना है कि अज्ञानसे बन्ध होता है, विपरीत से बंध होता है, तो देखो विपरीतता उनके यहां बन नहीं सकती। ध्यान देकर सुननेकी बात है। जैसे पड़ी तो हो रस्सी और जान गए सांप, तो यह विपरीतज्ञान कहलाया। तो यह

विपरीत ज्ञान नया तब बना जब वह पहिले से जानता था कि रस्सी तो यह कहलाती और सांप यह कहलाता । जब रस्सी और सांपका भेद-विज्ञान था और उसने किसी ऐसी रस्सीको देखा जिसमें उसके विशेष लक्षण न पाये गए । और जो सांपमें बातें हुआ करती हैं वे बातें इसके ज्ञानमें आयीं तब विपरीत ज्ञान हुआ । विपरीत ज्ञान होनेमें दो बातें आती हैं—पहिली तो उन दो पदार्थों का सही ज्ञान हो, बादमें फिर उस एक ही पदार्थ-को देखकर उसमें उसके विशेष की उपलब्धि न हो तब विपरीत ज्ञान होता है । जैसे रस्सी और सांप इन दोनों का ज्ञान जिस पुरुषको होता है, जानता हो कि रस्सी यह चीज है और सांप यह चीज है । किन्तु ऐसे जुड़े-जुड़े दो पदार्थों का ज्ञान हो वही पुरुष जब किसी दिन केवल रस्सीको देखकर सांपका चिन्ह जब दीखा तब विपरीत ज्ञान होता है कि यह सांप है । इस तरह से यह बतला रहे हैं कि आत्मामें और प्रकृतिमें भेद विज्ञान न होने को विपरीत ज्ञान कहते हैं । उस विपरीत ज्ञानसे बंध बताते हैं तो यह विपरीत ज्ञान तब ही तो सम्भव है कि पहिले जानते हों कि आत्मा जुदा है और प्रकृति जुदी है । और, फिर प्रकृतिको निरख करके आत्माके चिन्ह न पाये तब ही विपरीत ज्ञान हो सकता है । तो भला बतलावो कि जिसे विपरीत ज्ञान हो रहा है उसे विपरीत ज्ञानसे पहिले आत्माका ज्ञान हुआ था या नहीं ? अगर कहो कि विपरीत ज्ञानसे पहिले आत्माका ज्ञान न था तो जैसे रस्सी और सांप इन दोनों का अलग-अलग ज्ञान न हो जिस पुरुषको वह सांपका भ्रम रस्सीमें भी नहीं कर सकता है । इसी तरह जब आत्माका और प्रकृतिका अलग-अलग ज्ञान न था पहिले, तो यह विपरीत ज्ञान कैसे बना ? और अगर कहो कि उसको प्रकृतिका और पुरुषका पहिले द्वैत ज्ञान था, तो द्वैत ज्ञान होनेसे तो मोक्ष हो जाता, फिर विपरीत ज्ञान कैसे आयेगा ? तो विपरीत ज्ञानकी बात भी नहीं बन सकती । और, भी देखो-यह तो बतला रहे हैं नित्य-एकान्तवाद की बात । अब अनित्य एकान्तकी बात देखो-उनके यहां भी विपरीत ज्ञान नहीं बन सकता । क्षणिकवादी मानते हैं कि विशेषका ज्ञान जब होता तो इस ज्ञानकी उत्पत्ति वस्तुसे हुई है । जिस पदार्थका ज्ञान होता है उस ज्ञानकी उत्पत्ति उस पदार्थसे होती है, ऐसा जैन सिद्धान्त तो नहीं मानता । जैन सिद्धान्त तो अपने आपके आत्मासे अपने ज्ञानकी उत्पत्ति मानता है, पदार्थ से उत्पत्ति नहीं होती । पदार्थ तो विपरीत होता है, मगर क्षणिकवादी मानते हैं कि अगर कलमसे ज्ञान हुआ तो वे मानते कि यह ज्ञान कलमसे उत्पन्न हुआ था कपड़े से ज्ञान हुआ तो वे मानते कि कपड़े से यह ज्ञान

उत्पन्न हुआ। जो पदार्थसे पैदा हुआ ज्ञानको मानते हैं उनके यहां तो विपरीतपना कभी भी नहीं सकता। जो ज्ञान जिस पदार्थ से पैदा हो वह उसीको तो जानेगा। रस्सीसे ज्ञान हुआ तो रस्सी का ही तो ज्ञान होगा, सांपका नहीं। तो जो पदार्थसे ज्ञानकी उत्पत्ति मानते हैं उनके यहां विपरीत ज्ञान तो हो ही नहीं सकता। इस कारण यह बात कैसे मनेगी कि ज्ञान से ही मोक्ष होता है ?

मोक्षका प्राथमिक साधन भ्रमध्वंस—मोक्षका कारण क्या ? संसारके दुःखोंसे छूटनेका कारण क्या ? सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र्य। जो पदार्थ जिस स्वरूपमें है उस पदार्थका उस स्वरूपसे श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। प्रत्येक पदार्थ स्वतन्त्र है, अपनी अपनी सत्ता लिए हुए है। किसी का सत्त्व किसी दूसरेके दबावसे नहीं है। सत् है तो वह स्वतः सिद्ध सत् है ना। वह अपने आप से है, न हो और कोई दूसरा है बना दे, ऐसा कभी नहीं हो सकता। प्रत्येक पदार्थ स्वतः सिद्ध है, स्वतः सत् है अतः प्रत्येक पदार्थ स्वयमेव परिणामन किया करता है। कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका परिणामन नहीं कर सकता। प्रत्येक पदार्थ अपने आपका ही परिणामन कर पाते हैं, कोई किसी दूसरेका परिणामन नहीं कर पाते। तब ही तो स्वातन्त्र्य है, तब ही तो सत् रहेंगे। मानो दो पदार्थ हैं—चौकी और पुस्तक। कल्पना करें कि पुस्तकने चौकीको परिणामा दिया, मानों चौकी पुस्तक रूप परिणाम गई तो इस स्थितिमें न चौकी पुस्तक रूप रही और न पुस्तक चौकी रूप रही। जब एक पदार्थ दूसरे पदार्थ का परिणामन कर दे तो फिर कोई पदार्थ नहीं रह सकता। देखो जो स्वभाव है, स्वरूप है, वह त्रिकाल अवस्थित है, लेकिन कल्पना करें और विपरीत कल्पना करें तो क्या विपरीत विकल्प किया जानेसे वस्तुका स्वरूपभी बदल जायगा। प्रत्येक पदार्थ स्वयं सत् है, स्वयं परिणामनशील है, अपने आपकी परिणामन शक्तिसे परिणामता है। अनादि से अब तक और अनन्तकाल तक यही बात रहेगा। प्रत्येक पदार्थ स्वतःसिद्ध है, स्वतः परिणामी है। कुछ लोगोंको भ्रम हो गया है कि एक पदार्थ दूसरे पदार्थको परिणामा देता है, उस भ्रमका कारण है निमित्त नैमित्तिक भाव। वे बात सही न समझ सकें तब भ्रम हो गया कि एक पदार्थ दूसरे पदार्थको परिणामता है। देखों कुम्हार ने घड़ा बनाया—लोक व्यवहारमें जैसे कहते हैं ना, वहां अपना व्यापार करता हुआ कुम्हार निमित्त है। ऐसे कुम्हार की कोई चीज घड़े में जाकर घड़ा बनाती हों, ऐसा तो नहीं होता।

कुम्हारका द्रव्य, क्षेत्र, प्रभाव, असर कुछ भी घड़े में पहुंचा हो, ऐसा होता है क्या ? नहीं । वह तो अपना व्यापार करता है । उसका सन्निधान पाकर निमित्त पाकर मिट्टी अपने आपमें घटती बढ़ती है, अपने में अपना आकार बनाती है । हां यह अवश्य है कि निमित्त न हों तो ऐसा कार्य नहीं बन सकता । इतना होने पर भी निमित्त उपादान में याने जिसमें निमित्त कार्य हो रहा है उस पदार्थ में परिणति न करता । निमित्त नैमित्तिक पदार्थ भी सही है और वस्तुका स्वातंत्र्य भी सही है । जो वस्तु-स्वातंत्र्य देखता है, अपने आपकी स्वतंत्रताका परिचय करता हो, मैं हूं, सबसे निराला हूं, किसी पदार्थसे मेरा कोई सम्बंध नहीं है इस तरह जो अपने को स्वतंत्र सत् निरखता है उस पुरुषके मोह नहीं ठहर सकता मोह तब ही रहता जब यह जान रहे हों कि मेरा तो इससे कुछ सम्बन्ध है । मेरा यह कुछ लगता है । मैं इसमें कुछ करता हूँ, मैं इससे कुछ पाता हूँ, मैं इसे कुछ देता हूँ, जब ऐसा भ्रम रहता है तब जीवको मोह उत्पन्न होता है । अरे सभी जीव अपने आपकी परिणतिसे परिणामते हैं, अपने अपने पुण्य पापके उदयका निमित्त पाकर कोई सोचे कि मैं इन परिवारके लोगोंको पालता पोषता हूँ तो उसका यह सोचना भ्रम है । ऐसा सोचने वाले व्यक्ति को पद-पद पर दुखी होने का मौका मिलता है । परिवारका कोई व्यक्ति आपकी इच्छाके अनुकूल अपनी परिणति करे यह तो सम्भव नहीं । कदाचित् कभी आपकी इच्छा के अनुकूल वह चल जाय यह बात अलग है । जब आपके इच्छाके अनुकूल आप उनका परिणामन न पायेंगे तो आप दुखी ही होंगे । इससे यह जानो कि सब जीव स्वतन्त्रतासे अपनी अपनी परिणति से परिणामते हैं । सत् है, सभी स्वयंके कमाये हुए पुण्य पापका निमित्त पाकर स्वयं सुखी दुखी होते हैं । उनका सांसारिक सब कुछ उनके भाग्यसे होगा । ऐसा सही ज्ञान रहे तो वहां क्लेश न होगा । तो वस्तु स्वतन्त्रताका ज्ञान हो जाना, अपने आपके सहज स्वरूपका परिचय हो जाना, बस लोक में यह ही मात्र एक विभूति है, आपका जगतमें कहीं कुछ नहीं है । सभी दिखने वाली चीजें पौदगलिक हैं, उन्हें व्यर्थ ही आप अपनी मान बैठते हैं, जब आप उन्हें अपनी मान लेंगे तो उनके विघटने पर तो आप दुःखी होंगे ही । इन समस्त परद्रव्यों से भिन्न अपने आपके आत्माका स्वरूप है, उसे आत्मारूपसे श्रद्धान करना इसे कहते हैं सम्यग्दर्शन ।

अन्तस्तत्त्वके प्रकाशकी ही शरण्यता—जीवका साथी, शरण, मित्र । हितू सम्यक्त्व भाव है । सम्यक्त्वका भी तब बने जब वस्तुस्वरूपका सही-सही निर्णय हो । सम्यक्त्व हो गया तो फिर आपकी मुक्ति अवश्य होगी । सम्यक्त्व छूट जाय तो भी कभी न कभी

मुक्ति अवश्य होगी। उपशम सम्यक्त्व छूट जायगा, धायोपशमिक सम्यक्त्व छूट जायगा। तो सम्यक्त्व ही एक मित्र है। समन्तभद्राचार्य ने एक जगह कहा है कि “न सम्यक्त्व-समंकिञ्चित्तत्रैकालये त्रिगत्यापि, श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमनान्यत्तनूभूताम्” अर्थात् सम्यक्त्वके बराबर श्रेयस्कर और कुछ नहीं है और मिथ्यात्वके बराबर लोक में कष्ट करने वाली कोई चीज नहीं है। लेकिन इन मोही प्राणियों की क्या स्थिति गुजर रही कि इस मोह मोह में ही पगे चले जा रहे हैं और निरन्तर दुःखी बने रहा करते हैं। दुःखी भी होते जाते फिर भी उस दुःख से छूटना नहीं चाहते। जैसे एक घटना है कि कोई एक बुढ़ा अपने घर के चबूतरे पर बैठा हुआ दुःखी हो रहा था। उसके नाती पोते उसे हैरान कर रहे थे। कोई पोता हाथ झुकभोरता, कोई सिर पर चढ़ता, कोई मूछ पाड़ता, उससे हैरान होकर वह बुढ़ा रो रहा था। वहां से एक सन्यासी निकला। उस सन्यासी ने बुढ़े से पूछा—भाई क्यों रो रहे हो? तो बुढ़े ने बताया कि महाराज ये नाती पोते मुझे बहुत हैरान करते हैं, मुझे बड़ा दुःख पहुंचाते हैं। तो सन्यासी ने कहा—क्या मैं तुम्हारा सारा दुःख मिटा दूं? तो बुढ़ा बड़ा खुश हुआ। सोचा कि शायद सन्यासी जी कोई ऐसा मंत्र पढ़ देंगे कि ये नाती पोते मेरे चरणों में लोटते फिरेंगे, मेरी हूँ हज़ूरी में बने रहेंगे, तो बुढ़े ने कहा महाराज अच्छा है, हमारा दुःख मिटा दीजिए, आपकी बड़ी कृपा होगी। तो सन्यासी बोला—तुम घर छोड़कर हमारे साथ रहो, फिर तुम्हें कोई दुःख न रहेगा। यह सुनकर बुढ़ा झुंझला कर बोला—अरे क्या कहते सन्यासी जी? देखो हम इन बच्चों के बाबा ही रहेंगे, ये हमारे नाती पोते ही कहलायेंगे। तुम बीच में कौन सी दलाली की बात करने आ गए? तो देखिये जिस बात से दुःखी हो रहे उसे छोड़ना नहीं चाहते, उसी में रम रहे। जिस मोह के कारण दुःखी हो रहे उसी मोह को अपना रहे। पर वस्तुओं को अपनाने से दुःखी हो रहे फिर भी यह कुटेव बनाये हैं कि ये ही सब कुछ मेरे हैं। ठीक है खूब मानते रहो अपना, पर एक समय अवश्य ही ऐसा आयेगा कि सब कुछ छोड़ना होगा। मरण के बाद क्या दशा होगी इस बात पर कुछ भी विचार नहीं किया जा रहा है।

सम्यक्त्वसाधनाका साधन—भैया सम्यक्त्वका साथ लो, सम्यक्त्वलाभके लिए ही देव, शास्त्र, गुरुकी उपासना बतायी गई है। भगवान की भक्ति बड़े शुद्ध मनसे करें। कभी यह बात न विचारें कि मेरे को दूकानमें लाभ अधिक हो इसलिए मैं पूजा दर्शन करने आता हूँ। मेरे को कोई कुटुम्बका लाभ विशेष हो इसलिए दर्शन करता हूँ। मेरे को इस जीवन में इन्द्रिय सुख बर्तता रहे इसलिए दर्शन

करता हूँ यह भाव न आये, क्योंकि विदेशोंमें देखिये-रूस, अमेरिका, फ्रांस, आदिक के लोग तो तुम्हारे महावीर स्वामीके दर्शन करने नहीं आते फिर भी तो वे कितने धनी हैं, कितने सुखी हैं। तो यह ख्याल गलत है कि भगवानकी पूजा करनेसे हमको कुटुम्बलाभ होगा। धन लाभ होगा। बल्कि निरपेक्ष होकर यदि प्रभुकी भक्तिमें आयें तो ऐसा पाप रस घटेगा पुण्य रस बढ़ेगा। आपके माँगने से ये चीजें कभी नहीं मिलतीं, यह बात निश्चित है। कभी कोई महावीर जी अथवा शिखरजी गया तो वहाँ मनौती करने से कुछ नहीं होता हां होना होता है तो हो जाता है। तो भगवानकी भक्ति कोई निरपेक्ष होकर करे तो उससे पुण्य रस बढ़ता है। बल्कि प्रभुसे मनौती करने पर आपके सांसारिक सुख भी समाप्त हो जाते हैं। तो निरपेक्ष होकर प्रभुभक्तिमें लगो। संसार दुःखपूर्ण है मैं इस संसारसे मुक्ति चाहता हूँ और कुछ नहीं चाहता, ऐसा निरपेक्ष होकर शुद्ध बनकर प्रभुकी आराधनामें लगो। शास्त्रस्वाध्याय करो, तत्त्वज्ञान करो, वहाँ ऐसी रूढ़ि रखने से काम न चलेगा कि हमारा तो शास्त्र पढ़ने का नियम है इसलिए शास्त्र खोला, दो चार लाइन ब्रांचा और चल दिया। समझ लिया कि शास्त्र पढ़नेका हमारा नियम पूरा हो गया। तो इस रूढ़िसे काम न चलेगा। और शास्त्रका स्वाध्याय मनन पूर्वक हो, अपने आप पर घटित करते हुए हो। या शास्त्र की आराधना करें, ज्ञान सीखें। देखिए जो दर्शन में, ज्ञान में, चारित्र में हुए पुरुष हैं, ज्ञानी हैं, श्रद्धानी हैं, तपस्वी हैं, त्यागी हैं, उनमें श्रद्धा जिनको होगी उनका वह एक चिन्ह है कि इन्हें धर्म की श्रद्धा है। धर्मात्माओं में जिनकी भक्ति हो उसे कहा जायेगा कि इसे धर्म में श्रद्धा है। जो धर्मात्माजनों से दूर-दूर रहता है, उनके प्रति जिसे भक्ति नहीं जागती है, उसे कैसे कहा जा सकता है कि इसको धर्म की श्रद्धा है। कदाचित् कोई साधु या कोई धर्मात्मा पुरुष बिल्कुल ही गलत रास्तेपर चलता है तो उससे दूर रहें, पर उसे देखकर यह ख्यालमें आना चाहिए कि मोक्ष मार्गमें यह दशा हुआ करती है। एक व्यक्तिसे उपेक्षा हो गई मगर धर्मसे उपेक्षा तो न हुई, तो श्रद्धान करें, दर्शन करें, गुरुसेवा करें, पद-पद पर यही बात बतलावें कि उपयोगको आत्मापर श्रद्धा है, परका त्याग किये हैं, मार्ग तो यही है दुःखों से छूटने का। ऐसी भावना बनानेके लिए गुरुजनोंके लिए जो आवश्यक है, आहारदान, शास्त्रदान, औषधिदान और अभयदान, उनका दान कीजिए। यह गुरु आराधना, देवशास्त्र गुरुकी सेवा, यह सम्यग्दर्शन में हमारा व्यवहारिक कदम है। यह नहीं है तो हम आगे क्या बढ़ेंगे ?

अभेद अन्तस्तत्त्वके दर्शनका अनुरोध—तत्त्वज्ञान कीजिए और अपने आपमें अभेददर्शन कीजिए अखण्ड । मेरे में दर्शन, ज्ञान, चारित्र है, यह कल्पना भी छोड़ दें । एक अखण्ड अनुभव करने लगे । आता है अखण्ड अनुभव और भेदकी बात करेंगे तो आनन्दका खण्ड हो जायेगा । थोड़ा लोक में भी घटा लो:—बड़ी स्वादिष्ट चीज खा रहें हैं । मानो आप हलुआ खा रहे हैं तो जब आप इसका बड़ा ऊँचा आनन्द लेना चाहते हैं तो उससमय न किसीसे बात करते हैं, न उसका अधिक ध्यान देते हैं । यह शक्कर का बना है, घी से सिका है, इस इस तरहसे बना है । कुछ विकल्प नहीं करते । केवल खुश होकर खा रहे हैं तो बस उसका आनन्द ही आप लूट रहे हैं । तो देखिये जब आप अनेक प्रकारकी कल्पनायें लाते हैं तो उस समय वहां आनन्दमें कमी आयी कि नहीं । यह लौकिक उदाहरण दिया । यह जाननेके लिए जब कोई भी अपनी बुद्धि माफिक अधिक से अधिक लिया जाये तो उस समय बाहरी बातें सब भुला दें । जब लौकिक बातोंमें यह विधि देखी जा रही है तो अलौकिक बातमें तो देखो—अभेद तत्त्व तो अभेद होकर नितान्त ही करना होगा । देखो—आत्मीय आनन्द वहां बनता है जहां निर्विकल्प अवस्था होती है ।

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानकी एक साथ वृत्ति होने पर लक्षणभेदसे भिन्नता—मोक्ष-शास्त्रके इस प्रकरणमें यह बतलाया जा रहा है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्-चारित्रका एकत्व मोक्षका मार्ग है । यहां यह समझना कि ज्ञान और दर्शनकी पर्याय तो एक साथ चलती रहती हैं, क्योंकि यदि ज्ञान और दर्शन गुणकी पर्यायें एक साथ न रहें तो ज्ञान दर्शन गुणका अस्तित्व न रह सकेगा । केवल उपयोगमें दो पद्धति हैं कि छदमस्थोंका उपयोग ज्ञान दर्शन विषयक क्रमसे होता है । और केवल ज्ञानियोंका उपयोग दोनों एक साथ होते हैं । मगर ज्ञानगुणकी परिणति और दर्शनगुणकी परिणति सब जीवों में एक साथ है । छदमस्थ हों वहां भी ज्ञानदर्शनकी पर्याय एक है । उपयोग एक साथ नहीं । उस दर्शनगुणका यहां प्रकरण नहीं प्रकरण है सम्यग्दर्शनका सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानकी प्रवृत्ति एक साथ है । बताया गया है कि सम्यग्दर्शनके होते ही ज्ञान सम्यग्-ज्ञान हो जाता है । तो सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान चूंकि एक साथ प्रवृत्त हुए हैं इसलिए दोनों एक ही बात हैं । दोनों में एकत्व है । इनमें से एक कुछ भी कहो, दो क्यों कहे गए । समाधान इसका यह है कि एक साथ भले ही प्रवृत्त हुए, किन्तु इनमें लक्षणभेद है । तत्त्वका निर्णय करना सम्यग्ज्ञानका काम है और तत्त्वका विश्वास होना सम्यग्दर्शन का काम है ज्ञान और विश्वास ये दोनों बातें यद्यपि एक मोटे रूप में एक समान लगती हैं और अत्यन्त सूक्ष्मरूपमें देखो तो एक ही हैं, क्योंकि ज्ञानका ही वह सारा परिणामन

है। जीवादिक श्रद्धान् स्वभाव से ज्ञानके होने का नाम सम्यग्दर्शन है। जीवादिक पदार्थों के परिज्ञानके स्वभावसे ज्ञानके होने का नाम सम्यग्ज्ञान है, और रागादिक दूर रहें ऐसे स्वभावसे ज्ञानके होनेका नाम सम्यक्चारित्र्य है। लेकिन भेददृष्टिमें लक्षणभेदसे यहां भेद है, तत्त्वका श्रद्धान् और तत्त्वका ज्ञान। जैसे जब सूर्यके नीचे मेघ पटल आते हैं तो प्रताप और प्रकाश दोनों कम हो जाते हैं। और जब नीचेसे बादल हटते हैं तो एक साथ ही प्रकाश और प्रताप प्रवृत्त होते हैं, तो एक साथ होने पर भी प्रकाश और तापका लक्षण जुदा है, प्रताप संतापकारक नहीं है, ताप संतापकारक है, जैसे सूर्यके प्रकाश और तापकी एक साथ उपलब्धि होने पर भी लक्षणभेद दो हैं—तापका लक्षण है दाह करना, और प्रकाशका लक्षण है उद्योत करना। इसलिए वे एक न कहे जायेंगे। इसी प्रकार ज्ञान और दर्शन सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एक साथ प्रवृत्त होते हैं तो भी सम्यग्दर्शनका लक्षण है तत्त्वका श्रद्धान् और सम्यग्ज्ञानका लक्षण है तत्त्वका आवास इसलिए इन दोनों में एकत्व नहीं है, और भी देखिये—शंकाकारने कहा कि जो चीज एक साथ प्रवृत्त हो वह एक कहलाती है, उनमें भेद न बतलाओ। तो वे बतलावें—बछड़े के दो सींग होते हैं, वे एक साथ उगते हैं, कहीं ऐसा तो नहीं है कि दाहिना सींग पहिले उगता हो और बायां बादमें अथवा बायां पहिले दाहिना बादमें। वे एक साथ ही उगते हैं, एक साथ ही प्रवृत्त होते हैं तो क्या वे दो सींग एक हो गए? कोई एक सींग टूट जाये तो क्या उसी समय दूसरा सींग भी टूट जायगा? जैसे एक साथ प्रवृत्त होनेपर भी वे एक न कहलाये इसी तरह एक साथ प्रवृत्त होनेपर भी बहुत सी बातें हैं जो एक साथ नहीं हो सकतीं। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान एक साथ प्रवृत्त हैं फिर भी इनमें एकत्व नहीं है। दूसरी बात इसमें यह है कि इनमें नये विभागकी बात जोड़ो, जब एक नए स्वभाव द्रव्याधिकनयसे देखा जाए तो ज्ञान दर्शन आत्मा सब एक रूप है। वहां भेद नहीं है, पर्यायार्थिगयकी दृष्टिसे देखा जाय तो ज्ञानदर्शनमें भिन्नता है। देखिए पुद्गलमें रूप, रस, गंध, स्पर्श चारों गुण हैं, क्या चारों गुण भिन्न चीज हैं। जब पुद्गल द्रव्यमात्र पर दृष्टि दी जाय तो चार कहां, वे सब एक हैं, फिर भी रूप, रस, गंध, स्पर्शके लक्षण जुदे हैं। अगर एक हों तो जैसे आंखों से हम रूप देखते हैं, ऐसे ही आंखों से रस, गंध, स्पर्श भी समझमें आ जाना चाहिये। लेकिन चक्षुसे रूप ही समझमें आता, रस, गंध, स्पर्श आदि समझमें नहीं आते, इसका कारण क्या है? वह भेद है। जो जैसे रूप, रस आदिकमें परस्पर भेद है, इसी तरह ज्ञान दर्शनमें भी परस्पर भेद नहीं है ये एक नहीं हैं, इसलिए यह

सूत्र बिल्कुल सही है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका एकत्व मोक्षका मार्ग है ।

ज्ञान और चारित्रमें अभेद व भेदकी सिद्धि—अब एक शंका और हो सकती है कि दर्शन ज्ञानकी एक साथ प्रवृत्ति हुई फिरभी भेद है । ठीक है, यह तो समाधान दे दिया, लेकिन कालभेद व स्वरूपभेद दोनों ही ज्ञानचारित्रमें नहीं है यह बात कही जा रही है । तो ज्ञान और चारित्रमें कालभेद नहीं है, इसमें एकत्व हो जायगा । ज्ञान, दर्शन का तो समाधान दे दिया मगर ज्ञान और दर्शन जब हैं तब इनमें कालभेद नहीं है । साथ ही यह भी देखा जा रहा है कि ज्ञानकी स्थिरताका नाम चारित्र है । सो स्वरूप भेद भी नहीं है, ज्ञानकी स्थिरता ही चारित्र कहलाती है इसलिए उनमें एकत्व हो जायगा । यहाँ मुख्यतासे तो कालभेद नहीं है यहाँ शंकाकारका कहना है । इसके समाधानमें जरा सोचो ज्ञान और चारित्र इनमें कालभेद है कि नहीं ? तो कहीं नहीं है कहीं है । जहाँ कालभेद नहीं है वहाँ भी स्वरूप जुदा है और जहाँ अन्तर की बात है वहाँ ज्ञान और चारित्रमें कालभेद है । जैसे तत्त्वार्थराजवर्तिकमें एक दृष्टान्त दिया है कि कोई माता व्याभिचारिणी थी और उसका पुत्र भी व्याभिचारी था । पुत्रका सम्बन्ध दूसरे से था और माताका सम्बन्ध दूसरे से था । एक रात्रिको माता और पुत्र दोनों चले । अंधेरी रात्री थी, रात्रीमें दोनों एक जगह मिल गये । अब पुत्रने यह न जाना कि यह मां है और मां ने भी यह न जाना कि यह पुत्र है । पुत्रने भी वही समझा जिससे वह मिलता था और माताने भी वही समझा जिससे वह मिलती थी । दोनों ही स्पर्श करने को थे कि एकाएक बिजली चमकी । दोनों ने एक दूसरे को भट पहचान लिया और वे हट गए । अब देखिए—एक ही समयमें दोनों का वह ज्ञान हुआ और हटे सो यह चारित्र हुआ, तो देखो ये ज्ञान और चारित्र एक साथ हुए, यह शंकाकारका कहना है । तो ज्ञान और चारित्र एक साथ हैं । तब इनमें भेद न मानना चाहिए । समाधानमें पुनः देखिए—यहाँ पर भी यद्यपि ऐसा लग रहा कि ज्ञान और चारित्र एक ही समयमें हुआ, जैसे उस घटनामें देखा था कि माता और पुत्रको एक साथ ज्ञान हुआ और एक साथ हटे तो वहाँ मोटे रूपसे लगता तो यही है कि उसमें समय भेद नहीं है ? देखिये पान बड़े कोमल होते हैं । एक साथ ५० पान मानलो रखे हैं, उनपर जोरसे सूईका प्रहार कर दिया जाये तो वे सारे पान एक साथ छिद जायेंगे । तो भला यह बतलाओ कि क्या वे ५० पान एक ही समयमें छिदे या उनमें समयभेद है ? लगता तो यों है कि जोरसे सूई मारा और एक

साथ ही छिदे, लेकिन जब एक पानमें सूई छिदी दूसरे पानमें गई, दूसरे पानके बाद तीसरे पानमें गई, यों सभी पानोंको पार करके जब सूई बाहर निकली तो उसमें समय भेद रहा ना। एक ही समयमें तो नहीं छिद गए। तो दिखनेकी बात जुदा है मगर वास्तविकता जुदी है। वहां ५० पान एक समयमें नहीं छिदे, क्रमसे छिदे, इसीप्रकार ज्ञान और चारित्र एक समयमें नहीं हुए। जानना और हटना एक समयमें नहीं होता। उसमें भी समयभेद है इसलिए कालभेदकी दृष्टिसे ज्ञान और चारित्रमें एकता नहीं है।

ज्ञान और चारित्रमें अर्थभेदका प्रकाशन—दूसरी बात—ज्ञान और चारित्रमें अर्थभेद भी है, इसी कारण भी एकत्व नहीं है। ज्ञानका अर्थ है तत्त्वका जानना। चारित्र का अर्थ है कर्मका ग्रहण करने वाली क्रियाका विराम हो जाना, जिससे कि ग्रहणमें न आयें, बन्धनमें न आये, यह है चारित्रका लक्षण। तो अर्थभेदसे भी ज्ञान और चारित्रमें भेद है, इस पर भी यह बात और समझिये कि कालका भेद न भी हो तो भी वे एक नहीं हो जाते। कालका भेद न होनेसे दोनों एक नहीं हो जाया करते। मत रहो कालका भेद, जिसका जो लक्षण है उह उसका ही है, अभेद न हो जायेगा। जैसे इस समय एक ही साथ हम आपकी गति, जाति, शरीर, अङ्गोपाङ्ग आदिक अनेक कर्मोंका उदय चल रहा है। कालभेद तो नहीं है, जिस समय मनुष्यगतिका उदय है उसी समयमें पञ्चेन्द्रिय जातिका उदय है, और्दायिक नामकर्मका उदय है तो क्या वे एक साथ काल-भेद न होनेसे एक हो जायें, यह कोई नियमकी बात नहीं है। तो वहां भी जैसे ज्ञान दर्शनमें नयोंकी अपेक्षासे भेद और एकत्व किया गया इसी प्रकार ज्ञान और चारित्रके सम्बन्धसे नयोंकी दृष्टिसे एकत्व और भिन्नता समझ लीजिए। जब एक आत्मस्वभावको देखते हैं तो वह ज्ञानसे जुदा नहीं, चारित्रसे जुदा नहीं। आत्मद्रव्य एक है। द्रव्यार्थ दृष्टिसे ज्ञान और चारित्रमें भेद है। ज्ञान, चारित्र अपना-अपना लक्षण जुदे-जुदे पाते हैं। जैसे रूप, रसादि नहीं होते, गंध, स्पर्शादि नहीं होते आदि। इसीतरह ज्ञान, चारित्र भी एक पृथक् लक्षण वाले हैं।

एकत्व और अनेकत्वका एक अधिष्ठानमें दिग्दर्शन—तीसरी बात देखिए—क्यों परस्परमें भगड़ा करते ? अन्य दार्शनिकभी ऐसा स्वीकार करते हैं कि एक ही पदार्थमें तीन गुण, तीन शक्तियां, तीन परिणतियां जुदी-जुदी होती हैं, और तीनों एकमें होकर भी एक साथ होकर भी तीनों एक नहीं बन जाया करतीं। इसके अनेक उदाहरण आपको सुननेको मिल सकते हैं। जिसे पता है कि प्रधान याने प्रकृति और पुरुषका वह समझे प्रकृतिका तो नाम प्रधान है। सांख्य सिद्धान्तमें प्रकृति एक मानी गई है मगर

उसके गुण तीन हैं—सत्त्व, रज और तम । सत्त्व नाम उसका है जहां शान्ति हो, समता हो, कलह न हो और रज नाम है एक उन्नतिका अथवा विशेष एक विकारका और तम नाम है मिटनेका । यों तो सत्त्व, रज, तम ये तीनों गुण हैं । इन तीनों गुणोंकी समतासे तो प्रधान एक है और तीन गुणोंमें विषमता हो तो प्रधानमें तीनपना है । देखो भाई जो भी अन्य दार्शनिक कहते हैं उन सबकी दृष्टियां जैन दर्शनमें मिलेंगी । कोई भी अन्य मत जैन सिद्धान्तसे अलग होकर नहीं बनता । जैन सिद्धान्तकी एक-एक किरणको लेकर उसका एकान्त करके अन्य दार्शनिकों ने दर्शन बनाया । सत्त्व, रज, तम क्या आप नहीं मानते ? उसीका तो दूसरा नाम उत्पाद व्यय ध्रौव्य है, सत्त्व, रज, तम है, सत्त्व है ध्रौव्य, रज है उत्पाद और तम है व्यय । अब पदार्थमें देखो—जो भी पदार्थ है वह एक है, त्रिगुणात्मक है, लेकिन जब उसके तीनों गुणोंपर दृष्टि जाती है तो उसमें तीनों बातें मालूम पड़ती हैं, व्यवहारमें भी आती हैं, तो एक भी है, तीन भी हैं, इसीतरह वह आत्मस्वभाव एक भी है, और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र्य रूपसे तीन भी है । बौद्धजन एक रूप परमाणु मानते तो परमाणुमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चारोंके लक्षण आ गये पृथ्वीका लक्षण है कर्कस होना, जलका लक्षण है द्रव्य, अग्निका लक्षण है दाह और वायुका प्रसरण । तो यह चारों जो एकत्व हैं वह रूप परमाणुमें है । तो होने पर भी ये चारों बातें मानी गई ना । चार महाभूत बताये हैं । और भी देखिये—न्याय सिद्धान्तमें प्रमाण, प्रमेय, अवगम, यद्यपि विलक्षण हैं लेकिन इनके समुदायका नाम विज्ञान है अनेक प्रकारके सूत रेशमी, लाल पीले हरे आदिक एक ही कपड़ेमें लगाते हैं फिर भी कपड़ा एक है फिर भी वहां तंतुओंमें भेद है ना ? अनेक लौकिक दृष्टान्त ऐसे मिलेंगे कि एक पदार्थ होने पर भी उसमें अनेक गुण अपना अपना जुदा जुदा स्वरूप रखते हैं । इससे यह बिल्कुल सही कहा गया है कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्यका एकत्व मोक्षका मार्ग है ।

संसारण्डिम्बनाओंकी चिन्ता—संसारमें अज्ञानके कारण रलते रलते अनन्त काल व्यतीत हो गये, फिर भी इस मोही प्राणीमें ऐसी कुटेब लगी है कि जिस मोहको अनादि कालसे जकड़े चले आये हैं, जिस मोहमें रहकर यह जीव अनेक कष्ट पाता रहता है, फिर भी ऐसा अज्ञान लगा है कि मोहको छोड़कर अन्य कोई मार्ग इसकी दृष्टिमें नहीं आ रहा । तो जिस रफ्तारसे अनन्त काल व्यतीत किया वही अब भी करते रहे तो बतलावो इस मनुष्यजन्मके पानेसे लाभ क्या है ? धनी बन जाना यह मनुष्य जन्मकी

कोई लाभवाली बात है ? धन तो धनमें है, वह तो यहीं रह जाता, इसे अकेले जाना पड़ेगा। क्या लोकमें यश प्रतिष्ठा बढ़ जाना कोई कल्याणकी बात है ? यश प्रतिष्ठा नाम किसका ? कुछ मोही स्वार्थीजन कोई गुण गा दें, इसका नाम है यश। उससे लाभ क्या ? मरनेपर इसके साथ क्या है ? सब असार है। जितने समागम हैं वे सब विनाशीक हैं, बेकार हैं। मोह करके खूब दुःखी होते, कर्मबन्धन करते, विपत्तिमें अपने आपको डाल रहे हैं। और जितना समागम मिला है, जिसे कुटुम्ब कहते हैं वह समागम इसके मोह बढ़ाने में एक कारण बन रहा, आश्रय बन रहा, तो एक तो यह स्वयं मोहवश दुःखी है और बाह्य कारण ऐसा मिल रहा कि कुछ अगर यह शान्त सा भी बैठा हो तो उसको देखकर यह उनमें राग और लगाव लगाता। रागकी ज्वालामें जल रहा है। जरा अपने भीतर देखो तो सही कितनी विपत्ति है ? कितना घोर संकट है। मोहमें मान रहा है कि मेरे तो बड़ा मौज है। खूब खाने पीनेका, आरामका, दूकानका, समाजका, इज्जत पानेका बड़ा मौज है। अरे ऐसा भाव भ्रम है, मोह है। जहां मोह है वहां विडम्बना ही विडम्बना है। कहां सन्तोष करते ? तो यह मोह भाव छोड़नेकी चीज है। आत्मानुशासनमें बताया है कि एक कषायी एक बकरेको मारनेके लिए ले जा रहा था। रास्तेमें एक पेड़के नीचे बंठ गया। देखिये इन कुत्ते बकरीकी ऐसी आदत होती है कि जहां बंठते हैं वहां खरोचते हैं। तो वह बकरा उस जगह अपने पैरोंसे भूमि खरोचने लगा। कुछ ही खरोचनेपर उसमें से एक पैनी धारवाली छुरी निकल आयी। कषायीने देखा कि यह तो छुरी निकल आयी, साफ है, बस उसे क्या विलम्ब था। जहां आध घन्टे बाद उसकी हत्या करनेको था तहां उसने उसी समय वहीं हत्या करदी। जैसे उस बकरीने अपने पैरोंसे कुरेदकर अपने प्राण जल्दी ही गवां दिये, इसीतरह संसारके जीव अपने व्यवहारसे, अपने लगावसे अपने मन वचन कायकी चेष्टासे तुरन्त फसते हैं, तुरन्त अपनी बरबादी करते हैं। तो मोहमें अब तक यह जीव परेशान होता चला आया है। उस मोहको दूर करनेका अब उपाय करें। मोहको दूर करनेके क्या उपाय हैं ? वही इस तत्त्वार्थ महाशास्त्रमें कहा जा रहा है।

मोक्ष पदार्थमें राजी न होना मुक्तिका तन्त्र—मोक्ष कैसे मिलेगा ? मोक्षका मार्ग क्या है, मुझे क्या करना चाहिए ? ज्ञानमात्र अपनेको अनुभवना चाहिए। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य, इनकी ही धुन हो। भेदविवक्षासे तीन पर्याय हैं। द्रव्य एक है, परिणति अनेक हैं। भेदविवक्षामें गुण पर्याय समझाये जाते हैं। वस्तु है और परिणमती है। ज्ञानमात्र अनुभव करनेमें सब चीजें आ जायेंगी। कीजिए अपनेको ज्ञानमात्र अनुभव। मैं खण्डेलवाल हूं, अग्रवाल हूं, हूमड़ हूं, नरसिंहपुरा हूं, अमुक जातिका हूं,

अमुक लाल हूँ, अमुक व्यापारी हूँ, ऐसी-पोजीशन वाला हूँ, अमुकका बाप हूँ, बाबा हूँ। अदिक रूप आप अपनेको अनुभव न कीजिए। क्योंकि जिस रूपमें आप अपनेको अनुभव करेंगे उस रूप आपको व्यवहार करना पड़ेगा और उसके पीछे आपको दुःखी होना पड़ेगा। अपने आपको यह बोध श्रद्धा हो जाय कि मैं ज्ञानमात्र हूँ तो इसको उचित व्यवहार करना होगा। केवल ज्ञाता द्रष्टाको परिणति, जानना, यह परिणति होगी। तो एक ही काम है, मैं सबसे निराला एक ज्ञानमात्र पदार्थ हूँ। आकाशवत् निर्लेप हूँ। आकाशमें और हममें अन्तर यही है कि मैं चेतन हूँ और वह अचेतन है। जैसा आकाश है वैसा ही मैं हूँ। हम खुद अपने आप गड़बड़ी मचाते हैं, उस रूप बना लेते हैं, पर बाह्य वस्तुकी ओरसे कोई संकल्प करे कि मैं इसे मिटा दूंगा तो इसमें कौन समर्थ हो सकेगा? मैं ही राजी होऊँ तो अपने को बरबाद कर डालूँ। जैसे—देखा होगा कि होलीके दिनोंमें लोग परस्परमें रंग डालते हैं। तो उनमें जब खुद राजी होंगे तभी तो दूसरे लोग उसपर रंग डाल सकेंगे यह सज्जनों-की गोष्ठीकी बात कह रहे हैं, अन्धेर नगरीकी बात नहीं कह रहे ऐसे ही हम राजी हैं इसलिए शरीर सम्बन्ध, कर्मबन्धन आदि हमपर चल रहे हैं, अगर हम राजी न हों तो ये हटने लगेंगे।

मोक्षमार्गकी घोषणा—मोक्षशास्त्रके प्रथम सूत्रमें मोक्षमार्गकी घोषणा की है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका एकत्व मोक्षका मार्ग है। इस सम्बन्धमें बहुत कुछ विचार होनेके बाद अब अन्तमें कुछ थोड़ी सी और बातें आरही हैं। दर्शन, ज्ञान, चारित्र यह क्रम क्यों रखा गया है। दर्शन विश्वास, ज्ञान (जानना) और चारित्र (आचरण) यह बात यह दर्शनके लिए है कि सम्यग्दर्शन होने पर पूर्ण सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र हो अथवा न हो, दोनों बातें हैं। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान होनेपर सम्यक्चारित्र हो या न हो, यहाँ मतलब पूर्णता से है। सम्यग्ज्ञानके होनेपर ज्ञानकी पूर्णता हो अथवा न हो, सम्यग्दर्शन व ज्ञानकी पूर्णता होनेपर चारित्र पूर्ण हो जाय अथवा नहीं, यह भजनीय है, किन्तु जिसके चारित्र पूर्ण हैं उसके सम्यग्दर्शन और ज्ञान नियमसे परिपूर्ण है। जहाँ सम्यग्ज्ञान परिपूर्ण है उसका सम्यग्दर्शन नियमसे परिपूर्ण है। इससे अगली बात हो या नहीं, पर अगली बातके होनेपर पहिली बात नियमसे है, यह क्रम इस बातको बतलाता है।

उत्तरोत्तर भजनीयताके विषयमें एक शंका—अब रत्नत्रयमें उत्तरोत्तर भजनीयताकी बात सुनकर एक शंका हो सकती है कि विश्वास तो सदा ज्ञानपूर्वक ही होता है, फिर यह कबों कहा गया कि श्रद्धान पहिले, उसके बाद ज्ञानकी पूर्णता है। अरे ज्ञान हो तब ही तो विश्वास कर सकेगा, अन्यथा अज्ञानपूर्वक हुई श्रद्धामें दोष लगेगा, अज्ञानमें भी श्रद्धा बन

जायगी। यदि पहिले सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होने पर उत्तर अर्थात् ज्ञान भजनीय है, ऐसी बात कही जायगी, ज्ञानके अभावमें श्रद्धा कह बैठेंगे तो अज्ञानपूर्वक श्रद्धा कहलायगी तो फिर सब जीवोंके सदाकाल श्रद्धा रहो। अज्ञान तो सबके है। तो अज्ञानपूर्वक क्या विश्वास हुआ करता है? एक ऐसी शंका उत्पन्न होती है। इसी शंकाके समर्थनमें और भी सुनो। जिसने आत्मतत्त्वको जाना ही नहीं उसको श्रद्धा कैसे बन जायगी? जिस फलका ज्ञान ही नहीं है, जिस फलकी प्राप्ति ही नहीं है उस फलमें यह कैसे कहा जायगा कि उसके रसका उपयोग हो रहा है। तो अविज्ञात पदार्थमें, जिसे जाना नहीं है ऐसे पदार्थमें श्रद्धान तो बन नहीं सकता। ज्ञान पहिले माना ही नहीं तो श्रद्धान नहीं हो सकता। दोनों खतम हो गए। इसलिए यह मानना चाहिए कि पहिले ज्ञान होता है, फिर श्रद्धान होता है। यह शंकाकार कह रहा है, और लोकमें भी ऐसा ही देखा जाता है। तीसरी बात शंकाके समर्थनमें और विचारें। यदि सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होनेपर ज्ञान भजनीय रहे, या नेहो अथवा न हो, इस तरह अगर रहे तो ज्ञान तो पहिले था नहीं। पहिले क्या था? मिथ्या ज्ञान था। मिथ्या-ज्ञानके बाद हुआ सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शनके बाद मान लिया सम्यग्ज्ञान तो सम्यग्दर्शनसे पहिले तो मिथ्याज्ञान था। मिथ्याज्ञान हटा तब हुआ सम्यग्दर्शन। मिथ्याज्ञान हटा और सम्यग्ज्ञान न आ पाया क्योंकि सम्यग्ज्ञानको शंकाकारने माना कि सम्यग्दर्शन होनेके बाद होगा। इनका कथन है कि उससमय न सम्यग्दर्शन रहा, न सम्यग्ज्ञान रहा। जड़ हो गया। सम्यग्दर्शनसे पहिले सम्यग्ज्ञान तो है नहीं, मिथ्याज्ञान है। मिथ्याज्ञान दूर हुआ तब हुआ सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन दूर हुआ तब हुआ सम्यग्ज्ञान। तब कुछ समय आया ना कि न सम्यग्दर्शन रहा न सम्यग्ज्ञान। इसका अर्थ हुआ कि जड़ हो गया। इससे मानना चाहिए कि सम्यग्दर्शनसे पहिले ज्ञान होता है। अगर ऐसा न मानेंगे तो यह दोष आता है, और जब ज्ञान ही न रहा, जड़ हो गया तो मोक्षका उपदेश किसको देते? मोक्षमार्गकी किसे परीक्षा कराते? मोक्ष हो ही नहीं सकता। मार्ग बन ही नहीं सकता। तब यह कहना चाहिए कि सम्यग्दर्शनसे पहिले ज्ञान होता है। यह मत कहो कि सम्यग्दर्शनके बाद ज्ञान होता है। भजनीय है, हो भी, न भी हो, यह शंका हुई।

सम्यग्दर्शन होनेपर सम्यग्ज्ञानकी भजनीयताके विषयमें हुई आशंकाका समाधान—
अब उत्तरोत्तर भजनीयताका समाधान सुनो जो यह बात कही गई है—सम्यग्दर्शन होनेपर ज्ञान हो या नहीं, चारित्र्य हो या नहीं, इसका अर्थ है कि सम्यग्दर्शन होनेपर पूर्णज्ञान हो या नहीं! साधारणतया सम्यग्ज्ञान तो सम्यग्दर्शनके साथ ही हुआ, बल्कि जिस प्रकारका ज्ञान सम्यग्दर्शन होनेपर बन गया उस तरहका ज्ञान तो सम्यग्दर्शनसे पहिले भी होता, सिर्फ

सम्यक नहीं बनता। जैसे-किसीने मिश्री न खायी हो, आप उसे युक्तियोंसे बहुत-बहुत समाझाये कि देखो मिश्री गन्नेके रससे बनती है। गन्ना तो चूसा होगा ना ?—हाँ हाँ। तो उस गन्नेको अग्निमें तपाकर उसे गाढ़ा करके राव बना दिया गया तो वह रससे भी मीठा हो गया, उसे और तपाकर, जब गुड़ बनालिया गया तो वह उससे भी मीठा हो गया। गुड़से जब मैल निकालकर शक्कर लना ली गई तो वह और भी मीठी हो गई। उस शक्करका सारा मैल निकालकर जब मिश्री बना ली गई तो वह सबसे ज्यादा मीठी हो गई। तो समझ गए ना मिश्रीका स्वाद ?—हाँ समझ गए। अब जरा मिश्रीकी एक डली उसके मुखमें उठाकर रख दो तो उससे जो ज्ञान बना उसमें और पहिले की जानकारी वाले ज्ञानमें अन्तर है ना ? अरे मिश्री चखनेके बाद जो ज्ञान बना वह एक अनुभवात्मक ज्ञान है इस अनुभवात्मक ज्ञानसे पहिलेका जो ज्ञान था वह अनुभवबिना ज्ञान था। इसीतरह जीवादिक पदार्थोंका आत्माका जो श्रद्धान होगा तो वहाँ श्रद्धानसे पहिले ज्ञान तो होता है। कुछ भी उसका बोध न हो, तत्त्वाभ्यास न हो, आत्मस्वरूपके बारेमें जानकारी न हो तो श्रद्धान कहां से हो ? लेकिन श्रद्धान होनेपर यही ज्ञान निश्चय वाला ज्ञान कहलाने लगता है। जो अनुभव सहित ज्ञान हो उसे कहते हैं सम्यग्ज्ञान और जो अनुभवसे पहिले ज्ञान हुआ है उसे सम्यग्ज्ञान नहीं कहा। तो ऐसा सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शनके साथ-साथ होता है। लेकिन सम्यग्ज्ञान श्रुत ज्ञान और केवलज्ञान इन दो में समझिये तो श्रुत ज्ञानकी पूर्णता सम्यग्ज्ञान होनेके पीछे होती है और केवलज्ञानकी उपलब्धि सम्यग्ज्ञानके बाद होती है, इस कारणसे यह बात सही है कि पूर्व पूर्व होनेपर उत्तर उत्तर भजनीय है। जितनेमें ज्ञानकी पूर्णता समझी जाय उतने ज्ञानका यह जिकर है। श्रुतज्ञान पूर्ण कब होगा ? जब श्रुतकेवली होगा। श्रुतकेवली होगा तो सम्यग्दर्शनके अनन्तर होगा इसलिए यह बात ठीक बैठ जाती है।

शुद्धनयका पथ और सम्यक्त्व प्राप्ताद—अब सम्यग्दर्शनके बारेमें कुछ ध्यान लगाकर विशेष यह समझें कि सम्यग्दर्शनका जो विषय है वह अखण्ड एक ज्ञायकस्वरूप है। शुद्धनयका जो विषय है उसका जो आश्रय करता है ऐसा पुरुष शुद्ध नयकी कल्पनासे परे होकर सम्यक्त्व प्राप्त करता है। दो तरहके नय बताये गए—(१) शुद्धनय (२) अशुद्धनय। शुद्धनयका अर्थ है अखण्ड एक शाश्वतस्वरूप, जिसका विषय हुआ। अशुद्ध नयका विषय है कि उस अखण्ड वस्तुके भेद किए जा रहे हों। देखो इस प्रकरणमें अशुद्धनयका अर्थ विकार न लेवें। विकार भी है, स्वभाव भी है, गुण है, सब है। अशुद्धनयका अर्थ है जहाँ अखण्ड तत्त्व विषयमें न हो। किसी भी प्रकारका खण्ड हो उसे अशुद्धनय कहते हैं। जैसे शुद्ध दूध और अशुद्ध दूध। कोई पुरुष नया धोकर नूँचे कुल वाला अपने ही हाथसे

दूध दुहकर लाये और उसमें बड़ा शुद्ध अठपहरा गरम जल मिला दे तो बताइये वह दूध शुद्ध है कि अशुद्ध ? देखिये यह बात पूछ रहे हैं पदार्थकी दृष्टिसे, छुवाछूत वाले शुद्ध अशुद्धकी बात नहीं पूछ रहे । परखिये वह दूध अशुद्ध है । दूधमें पानी मिल जानेसे दूध अशुद्ध हो गया । शुद्ध दूधमें किसी अन्य चीजका मिश्रण नहीं होता । क्रीम बनाने वाले लोग जब मशीनसे उस दूधकी क्रीम निकाल लेते हैं तो वह दूध अशुद्ध हो जाता है, यदि दूध जैसा का तैसा रहे जैसा अपने आप है वैसा रहे तो वह शुद्ध दूध है । और उसमें कुछ जोड़े या उसमें से कुछ निकाले तो उसे अशुद्ध कहते हैं । छुवाछूत वाली बात नहीं कह रहे, यहां द्रव्य स्वयं अपने आपमें परिपूर्ण है, उसमें कुछ जोड़ा न जाय इसमें से कुछ न निकाला जाय तो उसे कहते हैं शुद्ध । इसीतरह आत्माकी बात देखो आत्मा एक चैतन्यस्वरूप ज्ञान-मात्र अखण्ड है । इसका अगर कोई यों वर्णन करे कि इसमें राग है, द्वेष है, कर्म इसके साथ हैं, शरीर इसके साथ लगा है तो यह कौन सा नय हुआ ? अशुद्धनय । और कोई यह कहे कि आत्मामें दर्शन, ज्ञान, चारित्र आनन्द आदि गुण हैं तो यह कौनसा नय है ? यह भी अशुद्ध नय है, क्यों कि अखण्ड ज्ञानस्वरूप आत्माका इसने भेद किया, खण्ड किया, यह भी अशुद्ध नय है । जब शुद्धनयकी बात बतावें तो शुद्धनयकी बात बताने लायक कोई शब्द नहीं हैं, फिर भी कुछ शब्द हैं—अखण्ड, एक, शाश्वत, पर्यायसे अतीत ऐसा जो एक द्रव्य है, स्वभाव है वह शुद्धनयका विषय है । ऐसा शुद्धनयका विषय बने तो सम्यक्त्वका लाभ हो । उसे ही सीखनेके लिए यह व्यवहार नय, पर्यायार्थिकनय, अशुद्धनय कहना होता है, और इनके कहे बिना काम भी नहीं चलता ।

व्यवहार और निश्चय नयकी आवश्यकताका दिग्दर्शन—व्यवहारनय आवश्यक है । किसलिए ? निश्चय द्वारा बताये गये विषयको समझनेकी पात्रता लानेके लिए, और करने का काम है कि व्यवहारनय भी छूटे और निश्चयनय भी छूटे । दो नय हैं । जैसे दो आंखें हैं । चाहे हम दाहिनी आंख बन्द करके बाईं आंखसे देख सकते, बाईं आंख बन्द करके दाहिनी से देख सकते, दोनों आंखें खोलकर भी देख सकते और दोनों आंखें बन्द करके भी देख सकते । दोनों आंखें बन्द करके देखनेमें आन्तरिक अन्तस्तत्त्वका सम्बन्ध है । तो चार तरह से देखना होता है, इसीतरह द्रव्यार्थिकनयको गौण करके पर्यायार्थिकनयसे भी देख सकते, पर्यायार्थिकनयको गौण करके द्रव्यार्थिक नयसे भी देख सकते । और यार्थिक तथा पर्यायार्थिक इन दोनों नयोंको सामने रखकर भी देख सकते । इसे कहते हैं प्रमाण । जो सभी नयोंसे समानतासे उसके विषयका निर्णय करे उसे कहते हैं प्रमाण । खाली कोई वस्तुके निश्चयनयकी बात रखे उसे, सर्वस्व माने, बाकी मिथ्या मानेतो अप्रमाण है । वस्तुके सर्वांश-

का ज्ञान करनेका नाम प्रमाण है। और कोई द्रव्यार्थिकनयको न मानकर केवल पर्याय पर्यायिकी बात समझाये तो वह ज्ञान अप्रमाण है, प्रमाण ज्ञान वह है जो सर्वनयोंसे सर्व-अंशसे समझाये। अच्छा, तो तुम द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय दोनों नयोंको हटाकर देख सकते हो क्या? देख सकते। वह है अन्तर्दर्शन, वह है आत्मानुभव। तो आत्मानुभव व्यवहारसे तो परे है ही मगर निश्चयसे भी परे है। दोनों नयोंके पक्षसे अतिक्रान्त है, पर इतना है कि निश्चयनयकी बातको समझनेके लिए व्यवहार सहायक है और अनुभव पथमें आनेके लिए निश्चयनयकी भूमिका बनाना सहायक है। तब सम्यक्त्व क्या हुआ? परद्रव्यसे भिन्न, कषाय भावसे भिन्न अपने आपके स्वरूपमें प्रतीति होना, अनुभूति होना सम्यग्दर्शन है। शुद्धनयका विषयभूत जो तत्त्व है उसका आलम्बन लें और ऐसा आलम्बन लें कि विकल्प दूर हों उस आलम्बनमें भी पक्ष न हो ऐसा स्वतंत्र हो जाय तो वहां सम्यक्त्वका लाभ है। तो जो भूतार्थनयका विषयभूत जो एक अरूण्ड अन्तस्तत्त्व है उसका परिचय जरा करें तो। क्या है वह? आत्मस्वरूप, जिसरूप अपनी श्रद्धा करे, आत्म प्रतीति करे तो सम्यक्त्वका लाभ हो।

अपनी बात परखनेमें कठिनता क्यों—भाई किसकी बात कही जा रही? दूसरेकी बात तो समझना कठिन होती है और अपनी बात समझना सरल होती। दूसरेका बुखार समझना कठिन है या अपना? दूसरेका बुखार समझना कठिन है, दूसरेकी निरोगता समझना कठिन है या अपनी? दूसरेकी। धन वैभव, दूकान फर्म आदिककी बात समझना कठिन है या अपने आत्माकी? भाई सही सही उत्तर दो, चाहे कर न सको, पर उत्तर देनेमें क्या संकोच करते? अरे बाहरी चीजोंकी बात समझना कठिन हैं, अपनी खुदकी बात समझना सरल है। लेकिन, अपनी बात समझना कठिन यों लग रही कि अपने आपकी ओर कुछ दृष्टि नहीं है, रुचि नहीं है। चित्तमें बसी हुई हैं वे धन वैभव आदिक बाहरी चीजें, सो अपने आपकी बात समझना तो कठिन है ही। जब कभी आपका ध्यान कमाईकी ओर विशेष रहता है उस समय आप भटपट भोजन भी कर जाते हैं, पर यह पता नहीं रहता कि हम क्या खा गए। जब चित्त कहीं बाहर लगा है तो जब भोजन जैसी मोटी चीजकी बात समझ न सके तो फिर आत्माकी बात कैसे समझमें आजायगी? अब इतना तो मोटा ज्ञानकर ही लें कि बाहरके जो जड़ पुद्गल हैं उनके मोहमें, लगावमें रुचिमें मेरी बरबादी है। यह तो मोटी बात है। क्योंकि देख ही रहे हैं। खूब धन जौड़कर रख गए, आखिर गुजर गए तो सब छूट गया। आपका आत्मा न जाने कहां जाय और वहां क्या करे? तो यह सारा समागम बेकार है मेरे लिए मेरा कोई सहायक नहीं है, अकेले ही कर्मफल भोगना पड़ता

है, अकेले ही बंध करना पड़ता और अकेले ही मरण करना पड़ता है, इसलिए मेरे लिए बाहरका कोई शरण नहीं है, यह बात चित्तमें लावें बाहरी धनवैभवकी क्या कीमत है ? अगर आपको आत्मतत्त्वका ज्ञान हो जाय, खि हो जाय तो तीन लोकका वैभव भी सामने पड़ा हो तो भी उसका क्या मूल्य ? चाहिये तो शान्ति और शान्ति मिलती है आत्मबोधसे, आत्मज्ञानसे । तो उसके लिए उद्यम न हो और जो अशान्तिके साधन हैं उनमें योग जुड़े तो यह तो बूत बड़ी भूल है ।

आत्मपरिचयमें आत्मदया—कुछ भी आत्माकी दया आये, आपको अपने आत्माकी दया आये, आत्मखि जगे तो आत्माकी निधिकी बात समझमें आ सकती है कि क्या है आत्मा ? अनंतज्ञान अनंत आनन्दका निधान है आत्मा । एक और मोटी बात मानलो—जैसे किसीने कहा कि मेरा मकान, तो देखिये—इसमें दो बातें जाहिर हो गई, मेरा और मकान, ये दोनों चीजें भिन्न-भिन्न हैं । मकान धन वैभव शरीर ये सब इस आत्मासे भिन्न हैं, जुदी चीज हैं, जड़ हैं, और कुटुम्ब परिवार ये भी प्रकट भिन्न हैं । तो इनसे निराला है मेरा आत्मस्वरूप ? और फिर जो क्रोधादिक कषायें हैं, इच्छा, ईर्ष्या आदिकके जो भाव उत्पन्न होते हैं उन भावोंसे भी भिन्न है मेरा आत्मा, क्योंकि ये नैमित्तिक भाव हैं, ये मेरे स्वभावसे नहीं उत्पन्न हुए, उपाधिका निमित्त पाकर हुए । नैमित्तिक भाव मेरे स्वरूपमें नहीं हैं, उन परभावोंसे मैं आत्मा भिन्न हूँ । यहां तक कितनी बात समझमें आयी कि जड़ वैभवसे मैं निराला हूँ, और विषयोंसे निराला हूँ । कुटुम्बसे न्यारा हूँ, और मेरे में जो परभाव उत्पन्न होते, विषय कषायके परिणाम होते उनसे भी मैं न्यारा हूँ ? ज्ञानस्वरूप । और, कैसा हूँ ? इनसे निराला हूँ । इतनी बात सुनकर कोई बोल उठा कि हम तुम्हारी बात समझ गए । कषायोंसे न्यारा है यह आत्मा । तो कैसा है ? समझ तो गए । बतलावो कैसा है ? मतिज्ञान, श्रुतज्ञान जो मैं जान रहा हूँ बस मैं उन रूप हूँ ! तो उससे कहो अभी तुम नहीं समझे । कषायोंसे निराला है यह आत्मस्वभाव । ठीक है, पर जो छुटपुट जानकारियां बन रही हैं, जो कुछ ज्ञान बन रहा है । यह भी मैं नहीं हूँ । अरे यह मैं क्यों नहीं हूँ ? यों नहीं हूँ कि ये ज्ञान अधूरे हैं । क्या तुम अधूरे हो तो अपनेको कोई अधूरा नहीं स्वीकार करता, पूर्ण ही स्वीकार करता । जो ये अधूरी जानकारियां चल रही हैं तो ये तुम हो क्या ? नहीं । मैं तो परिपूर्ण हूँ । तो फिर बोल उठा कोई सुनने वाला—अब हम समझ गए, जो पूरा हो, परिपूर्ण हो वह मैं हूँ । क्या समझे ? समझ गए, केवलज्ञान हूँ मैं, क्योंकि वह पूरा है, तो उसे भी समझाइये कि अभी तुम आत्मस्वरूप नहीं समझे । आत्मा तो आदि मध्य अन्तसे रहित है, केवलज्ञानकी तो आदि

है। “अच्छा तो आत्मा ज्ञान दर्शन आदि गुणरूप है। “नहीं, नहीं, आत्मा खंडरूप नहीं, आत्मा तो एकरूप है। “अच्छा अब जाना आत्मस्वभाव एक है। “नहीं नहीं, जब तक एक है इतना भी विकल्प रहेगा, तब तक आत्मस्वभावका परिचय न होगा। वास्तविक परिचय तो अनुभवमें हैं और अनुभव संकल्पविकल्पमुक्त है। सो आत्मस्वरूप विलीन-संकल्पविकल्पजाल है। ऐसे आत्माका परिचय सकल कष्टहारी है।

धर्मप्रवृत्तिका कारण अशान्तिपरिहारका प्रयोजकत्व—धर्मकी प्रवृत्ति किस कारणसे होती है? वह कारण है कि वर्तमानमें हम सब अशान्त हैं, इस अशान्ति को दूर करनेका हमें उपाय करना चाहिए। तो वह उपाय सिवाय धर्मपालनके और कुछ नहीं। धर्मपालन है स्वभाव दृष्टि। अपने आपको जो सहज निरपेक्ष स्वरूप है, जो इस तरह परखा जायगा कि मानो हमारे साथ किसी भी दूसरे पदार्थका सम्पर्क न हो, किसी भी उपाधिका सम्बंध न हो, ऐसी स्थितिमें हम किस तरह रह सकते हैं, वह है हमारी एक स्वभाविक स्थिति। वह है स्वभावके अनुरूप स्थिति। तो वह स्थिति तो शान्तिपूर्ण है। और उस स्थितिके अतिरिक्त अन्य जो स्थितियां हैं उपयोगकी उनमें आकुलता है। इसलिए जहां आकुलता न हो ऐसा पद प्राप्त करनेके लिए एक धर्मपालन ही साधक है, याने स्वभावदृष्टि करना शान्तिका साधक है। अपने आपको भी अनुभवसे देखो तो जब जब हम किसी पर पदार्थके सम्पर्क-रागमें रहते हैं तब तब हमें कोई प्रकारकी व्याकुलता ही रहती है और जब कुछ हम बाह्यसे हटकर एक अपने आत्माकी ओर होते हैं, बाह्यका सम्पर्क हमारे उपयोगमें नहीं होता है उससमय हमको शान्ति प्राप्त होती है, तो स्वभावदृष्टि ही एक उपाय है कि जितना हम अशान्तिसे हटें और शान्तिमें आयें। वह स्वभावदृष्टि बनती किस प्रकार है? उसके लिए हमें स्वभावके ज्ञानका अभ्यास चाहिये? स्वभावका ज्ञान हम किस प्रकार कर सकेंगे उसके लिए हमें प्रमाण नयका विशद परिज्ञान हो और उन उपायों द्वारा हम वस्तुकी परीक्षा रखें तो हम स्वभाव परिचय पा सकते हैं। शास्त्रोंमें जो कुछ भी कथन है उन सबका प्रयोजन है जीवमें स्वभावदृष्टिके लिए प्रेरणा करना। जो प्रथमानुयोग हैं, उनमें कथानक हैं, उन कथानकोंसे भी हमें प्रेरणा यह ही मिलती है कि बाहरी समागम छोटे और एक अपने अन्तःस्वरूपमें मग्न रहें। कारणानुयोग है वह तो एक निष्पक्ष निर्णायक रूपको बताता है, जो कुछ स्थितियां जिस-जिस परिणाममें होती हैं उनमेंभी यह शिक्षा मिलती है कि जहां कर्मभार न रहे, विकल्पजाल न रहे ऐसे पदमें आना चाहिए। चरणानुयोग भी हमें यह ही शिक्षा देता है कैसे चरणानुयोग कार्यकारी है और उसका स्वभाविकदृष्टिमें सहयोग है यह अभी कहेंगे। थोड़ा यह बतलाकर कि धर्मपालनमें हमको स्वभावदृष्टि करता है

और स्वभावदृष्टिके लिए स्वभावपरिचय करना है, और स्वभावपरिचय बनता है हमारा प्रमाण नयोंके द्वारा। प्रमाण तो उसे कहते हैं कि जो दोनों नयोंको प्रधानतया समझे। द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनय। बात ऐसी है कि जो भी पदार्थ है वह सदा रहता है अनादि अनन्त है, किन्तु उसकी स्थितियां प्रति समय नवीन-नवीन होती हैं। तो सदा रहने वाले तत्त्वको बनाने वाला द्रव्यार्थिक और क्षण-क्षणकी स्थितियोंको बनाने वाला पर्यायार्थिक। दूसरी बात समझिए। जो भी वस्तु है वह वस्तु अपने स्वभावरूप है, अखण्ड है, उसको समझनेके लिए शक्तिभेद, गुणभेद, करके हम उसे समझते हैं और प्ररूपण है। तो उसमें जो अभेदको बताने वाला नय है वह है पर्यायार्थिक। तो इन सब नयोंका उपयोग हमारी स्वभावदृष्टिमें सहायक होता है, इसलिए यह कहना कि द्रव्यार्थिक सत्य है, पर्यायार्थिक असत्य है या निश्चय सत्य है, व्यवहार असत्य है, ऐसा द्वैत युक्त नहीं है। जब द्रव्य और पर्याय दोनों ही वस्तुमें पाये जाते हैं। सदा रहे वस्तु और उसकी प्रतिक्षण परिणतियां हों, पर्याय बिना द्रव्य नहीं, द्रव्य बिना पर्याय नहीं, तो एक नयको असत्य कैसे कहा जा सकता है? और, फिर दोनों हैं सम्यक श्रुतज्ञानके अंग।

नयोंके प्ररूपणसे आत्महितकी बात निकलना—भैया हितकी बात तो इसमें है कि पर्याय अध्रुव है उसरूप अपनेको समझना, उसकी ही दृष्टि रखना, यह हमारे मोक्षमार्ग में साधक न बनेगा। और द्रव्यार्थिकदृष्टिसे जो हमने स्वभावपरिचय किया उसकी दृष्टि साधक बनती है। लेकिन फिरभी अगर सदुपयोगकी दृष्टि हो और एक स्वभावदृष्टिका प्रयोजन परिपूर्ण बन गया हो तो निश्चयनयके द्वारा हमको स्वभावदृष्टिमें मदद मिलती है उसी प्रकार व्यवहारनय द्वारा भी हमको स्वभावदृष्टिमें मदद मिलती है। इसको और स्पष्ट यों समझ सकते हैं कि बात दो समझलीं—वस्तुस्वतन्त्रय निमित्त नैमित्तिकभाव प्रत्येक पदार्थ अपने आप सत् है और अपने आपमें अपने आपकी परिणामन शक्तिसे परिणता रहता है। परिणामन स्वमेव उसमें चलता है, किसी अन्य पदार्थकी परिणति लेकर नहीं परिणता। इस दृष्टिसे वस्तु स्वतन्त्रय अभेद है। इसे कोई तोड़ नहीं सकता। जब विकारकी बात कहते हैं तो विकार होनेमें जिसमें विकार हुआ है वही पदार्थ खुद निमित्त नहीं हो सकता। कोई भी पदार्थ खुद ही अपने आपके परिणामनमें निमित्त नहीं बन सकता। इसलिए वह निमित्तपर संग ही है। तो जब हम विकार परिणतिका निर्णय बनाते हैं तो वहां यह ही निर्णय होता है कि यह पदार्थ परका सन्निधान पाकर ही विकृतरूप परिणम सकता, ऐसा होने पर भी वस्तु स्वातन्त्रय नहीं मिला, अर्थात् निमित्तकी परिणति लेकर यह परिणमा हो या निमित्तने

अपनी परिणति उपादानमें आकर परिणामाया हो, ऐसा तो नहीं है। वस्तुस्वातन्त्र्य कहाँ मिला? इतने परभी परसंग बिना विकार होता नहीं, अन्यथा विकार स्वभाव बनेगा। तो विकार होनेमें वस्तुस्वातन्त्र्यभी नहीं मिटा और निमित्त नैमित्तिक भाव भी नहीं मिटा। बात दोनों हैं। और हमको इन दोनों ही कथनोंसे स्वभावदृष्टिका प्रयोजन रखना चाहिए जैसे निश्चयनय की दृष्टिमें हमें प्रयोजन सिद्ध होता है कि एक ही पदार्थको निहारना, एक ही में उसके सर्वस्वको देखना, किसी अन्य पदार्थ निमित्तको न देखना, ऐसा जब हम एक निश्चयनयका आशय बनाते हैं उस समय कोई भी परपदार्थ हमारे उपयोगका विषय नहीं होता। हम उस विकारको लम्बा नहीं कर सकते। उस वक्त विकारको हम नहीं बना पाते, क्योंकि आश्रय-भूत पदार्थ पर भी दृष्टि न हो रही, अन्य कोई विकल्पभी न रहा, ऐसी स्थितिमें एक ही द्रव्यको निहार निहार कर हम उस विकारको गौण कर स्वभावदृष्टि पर आ सकते हैं ऐसा वहाँ ही अवसर है, और परमशुद्ध निश्चयनयका तो साक्षात् ही विषय है और जब हम निमित्त नैमित्तिक भावके वर्णनका सदुपयोग करते हैं तो देखिए कितनी सुगमतया मदद मिलती है। स्वभावको जब परखते हैं तब ये कषायें, ये विकार मेरे नहीं, मेरे स्वरूप नहीं, ये कर्मोदयका निमित्त पाकर हुए। यह कर्मलीलाकी छाया है, ये औपाधिक हैं, परभाव है, मेरे नहीं, मैं इन सबसे निराला एक ज्ञानमात्र ज्ञायकस्वभावरूप हूँ। तो इन औपाधिक भावोंके निर्णयने इस नैमित्तिक भावके निर्णयने हमको उससे हटने में मदद दी और अपने आपके स्वभावको परखने में मदद दी। तो निमित्त नैमित्तिक भावके वर्णनका भी जब हम सदुपयोग करते हैं तो स्वभाविक दृष्टिसे हमें बहुत अच्छी प्रकार मदद मिलती है, और इन दोनों पद्धतियोंसे मदद लेनेकी बात समयसारमें जगह-जगह बतायी गई है। ये नरनारकादिक भव, ये वर्ण, रस, गंध, शरीर आदिक, ये क्रोध, मान, माया, लोभ आदिक और यहां तक बताया कि गुणकी अवस्थामें गुणस्थानभी ये कर्मविपाकका निमित्त पाकर हुई है इसलिए ये मेरे स्वभाव नहीं, मेरे स्वरूप नहीं, ये पौद्गलिक बनाते हैं। पुद्गलकर्मसे निष्पन्न हैं याने अपने आपके स्वभावसे कितना अधिक विविक्त और कितना निराला समझा देनेमें यह व्यवहारनय निमित्त नैमित्तिक भाव कितना उपकारी बन रहा है।

निश्चयनय, व्यवहारनय व उपचारकी सत्यासत्यताका निर्णय—संक्षेपमें इतना समझना कि तीन बातें जाननेकी हैं--(१) निश्चयनय, (२) व्यवहारनय और (३) उपचार निश्चय तो एक द्रव्यको ही निरखने वाला होता है, व्यवहारनय निमित्त नैमित्तिक भाव सम्बंधसे बताने वाला होता है और उपचार निमित्त नैमित्तिक सम्बंधकी बात निरखकर उसकी सीमासे आगे बढ़कर कर्त्ताकर्म भावके रूपमें उपस्थित करना उपचार है।

उपचारमें जैसा जो कुछ कहा है उन्हीं शब्दोंमें कोई समझे तो वह मिथ्या है, पर व्यवहार-नय, और निश्चयनयने जो कुछ कहा है वह मिथ्या नहीं हैं जैसे कोई यह कहे कि घड़ा बना, मिट्टीने घड़ा बनाया, मिट्टीमें बना, मिट्टीमें परिणामन है। मिट्टी स्वामी है। तो यह कथन असल नहीं। कोई कहे कि उस प्रकारका व्यापार करने वाले कुम्हारका निमित्त पाकर यह घड़े रूप पर्याय हुई है यह व्यवहारकी बात, निमित्त नैमित्तिककी बात, यह भी मिथ्या नहीं है, और, कोई यह कहे कि कुम्हारने घड़ा बनाया। क्रियाका अर्थ सब जगह यह लेना कि यह परिणाम सकर्ता, अर्थात् जो परिणामें सो कर्ता। ऐसी परिभाषा मनमें रखकर ऐसा सोचना कि कुम्हारने घड़ा किया, ऐसे ही कोई समझे तो यह मिथ्या है, इसी प्रकार अपने आपके आत्मामें घटायें। आत्मा, यह जीव रागी बना, राग रूपसे परिणत हुआ, ऐसा निरखना, सो बात मिथ्या नहीं है और ऐसा निरखनेमें कि राग कि परिणतिके उदयका निमित्त पाकर जीव रागी बना, ऐसा भी मिथ्या नहीं है, किन्तु यह समझना कि कर्मने जीवको रागी किया तो यह मिथ्या है, इन तीनोंका अन्तर बिल्कुल स्पष्ट है। निश्चयनय तो केवल एक द्रव्यको निहारता। दूसरे द्रव्यकी बात ही नहीं करता। जीव रागी बना, राग रूपसे परिणत हुआ, यह निश्चयनयका विषय है, और, कर्मराग परिणतिका निमित्त पाकर जीव राग परिणत हुआ, यह व्यवहारका विषय हुआ ! इनका सम्बन्ध बताया। यह अपने आप रागी नहीं बना, किन्तु परसंगका निमित्त पाकर रागी बना। अब यहां कोई कहे कि कर्मराग परिणतिने जीवको रागी बनाया तो बनाया या किया इसका भाव है—यः परिणमति स कर्ता तो यह राग प्रकृति ही रागरूप परिणमे तो यह अपने आपके अनुरागरूप परिणामी, पर जीवकी कल्पनामें, उपयोगमें, विचारमें जो कुछ लगाव आया उस प्रकारका परिणामन तो वह जीवका है। उस परिणामको कर्मने नहीं किया। अर्थात् जीवके परिणामरूप कर्म नहीं परिणामा। आत्मार्थीकी, कल्याणार्थी की विशेषता यह है कि उसने यह निर्णय बनाया कि मेरेको स्वभावदृष्टि चाहिए, तब वह समस्त कथनोंका प्रयोजन स्वभाव दृष्टिको बनाता है।

चरणानुयोगकी उपयोगिता—अब इस प्रसंगमें यह भी देखिये—चरणानुयोग कैसे हमारे काम आया ? बात यह कही जा रही कि स्वभावदृष्टि करो, स्वभावमें मग्न हो, पर अनादि कालकी वासनासे बशीभूत हुआ यह जीव थोड़ा स्वभावका परिचय भी पाले तिसपर भी बारबार च्युत होता है, क्षण भर भी नहीं ठहर पाता, ऐसी अज्ञान वासनाका जो संस्कार है वह इस स्वभावदृष्टिमें आगे नहीं बढ़ पाता, क्यों नहीं बढ़ पाता कि व्यक्त विचारके साधन भूत बाह्य पदार्थोंका इतना सम्बन्ध है कि उनको निरखकर यह अपने

स्वभावसे च्युत रहता है। ऐसी स्थितिमें हैं ही सब जीव अनादिसे ही हैं। तो स्थिति हमको बाधक बन रही है। सम्यक्त्व करने भी बताया है ना कि नहि बाह्य वस्त्वनाश्रियाध्यवसानमात्मानमुपलभते” अर्थात् बाह्य वस्तुका आश्रय किए बिना अध्यवसान अपना स्वरूप नहीं बना पाता। विकार होनेमें तीन बातें प्रसक्त होती हैं—कर्मोदय, जीवका विकार और आश्रयभूत पदार्थका उपयोग। जैसा क्रोध हुआ तो कहां क्रोध प्रकृतिका उदय अन्तरङ्ग निमित्त हैं। और पुत्र, नौकर आदिक जिनको ध्यानमें लाकर क्रोध किया जा रहा वे बहिरङ्ग निमित्त हैं और क्रोध करने वाले जीव उपादान हैं। तो जब बाह्य वस्तुका आश्रय करके ही व्यक्त विकार बनता है और व्यक्त विकारसे ही संस्कार पुष्ट होता है तो उसके लिए जैन शासनमें यह उपदेश है कि आश्रयभूत पदार्थका त्याग करें, कोई थोड़ा कर पाता है तो उसकी वह श्रावक अवस्था है, कोई आश्रय भूतका पूर्ण रूपसे त्याग कर सकता है तो वह मुनि अवस्था है। तो इस आधारपर यह ही चरणानुयोग प्रक्रिया युक्तिसंगत होती है।

अन्तरङ्ग निमित्त व बहिरंग निमित्तका स्थान—अब इस सम्बन्धमें एक दो बातें और ज्ञातव्य हैं कि जैसे आजकल एक बात यह कहीं जाने लगी है कि निमित्तपर जब उपयोग दो तो वह निमित्त बनता है, उपयोग न दो तो निमित्त नहीं होता। और तभी निमित्त पर उपचार किया जाता है। कार्य बन गया तो निमित्त पर उपचार किया जाता है। उनका कथन सही है या गलत है, इसका एकान्त से निर्णय नहीं है। सही भी है, गलत भी है। सही तो यों है कि यह कथन बहिरङ्ग निमित्त पर घटित होता है, गलत यों है कि यह कथन अन्तरङ्ग निमित्त पर लागू तर्ही होता है यह भेद जानना है, और ऐसा भेद समझे बिना दोनों निमित्तोंसे एक निमित्त शब्द से कहकर इस कक्षा में रख देनेपर फिर विसम्बाद होने लगता है। जैसे दृष्टान्त दिया जाता कि देखो जिनप्रतिमा के दर्शन सम्यक्त्वका निमित्त लोग कहते हैं, और ग्रन्थोंमें भी लिखा है, तो कहते हैं कि जिनप्रतिमाका दर्शन करना यदि निमित्त है तो जितने दर्शन करने वाले लोग हैं उन सबको सम्यक्त्व क्यों नहीं होता ? इसलिए सम्यक्त्वके होने में तो जिन प्रतिमापर निमित्तका उपचार है। बात ठीक है मगर इस निमित्त की बात को अन्तरङ्ग निमित्त तक कोई ले जाय कि ७ प्रकृतियोंको क्षय, क्षयोपशम आदिक निमित्त जो अन्तरङ्ग हैं, उपचार वाला यह कथन मिथ्या हो जाता है। तब ही जो यह दोष नहीं आता कि यह अनेक बार समवशरणमें भी गया होगा लेकिन फिर भी सम्यक्त्व न हुआ तो देखो, निमित्त कुछ कर तो नहीं सकता ? उनके लिए यह समझना होगा कि कुछ कर न सके,

इसका अर्थ यदि इतना ही है कि यह उपादानरूप न परिणाम सके तब यह बिल्कुल सही बात है कि अकिञ्चित् कर है और निमित्त नैमित्तिक भावकी दृष्टिसे देखिये तो समव-
शरण जिनप्रतिमा आदिक ये निमित्त नहीं, किन्तु आश्रयभूत हैं याने अन्तरङ्ग निमित्त
नहीं, किन्तु बहिरङ्ग निमित्त हैं। बहिरङ्ग निमित्तका आश्रय करना, मेल करना जिस-
जिस परिणाम के लिए होता हुआ देखा जाता है उसका उपदेश है, पर अन्वय व्यतिरेक
नहीं है। जैसे कि कर्मोदयके साथ जीवके विभावका अन्वयव्यतिरेक है, क्रोध-प्रकृतिका
उदय होनेपर ही क्रोध हो सकता, उस क्रोध प्रकृति के अभाव में क्रोध नहीं हो सकता।
तो जैसा अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध अन्वय निमित्त के साथ है ऐसा सम्बन्ध बहिरङ्ग निमित्त
के साथ नहीं है। यही आश्रयभूत और निमित्तमें अन्तर है। जैसे जिन प्रतिमाके दर्शन
करने पर ही सम्यक्त्व होता या प्रतिमाके दर्शन न हों तो सम्यक्त्व नहीं होता ऐसा
अन्वय व्यतिरेक न लगा सकेंगे। वह आश्रयभूत पदार्थ है, पर वह सब क्षय क्षयोपशम
होने पर ही सम्यक्त्व हुआ, उसके होनेपर नहीं हुआ, तो निमित्त तो वास्तवमें कर्मोदय
है। ये बाहरी पदार्थ निमित्त नहीं कहलाते, इसीकारण एक दृष्टान्त दिया जाता है कि
कोई बेश्या मरी, और उसका शरीर जलाने के लिए लोग लिए जा रहे थे तो उसे
देखकर एक कामी पुरुषका विचार काम विषयक बना और एक साधुका विचार उस
वेश्याकी मूर्खता देखने का बना—देखो कितना दुर्लभ मानव जीवन पाकर भी इसने अपना
कोई कार्य न किया। मांस खाने वाले कुत्ते, स्याल वगैरह के और तरह के विचार बने।
ये इन्द्रिय और मनके विषय हैं। पदार्थ अगर निमित्त हो तो सबके लिए एकसा ही
नैमित्तिक भाव होना चाहिये था। पर बात क्या हुई कि मुनि महाराज के तो अनन्ता-
नुबन्धी, अप्रत्याख्यानवरण, प्रत्याख्यानवरण कषाय न थी, इस तरह का तीव्र उदय
और उदीरणा नहीं है। यह है अन्तरङ्ग निमित्त, तो देखो उसके अनुरूप मुनिका भाव
हुआ। और कामी पुरुषके वेदका तीव्र उदय और उदीरणा है तो कामीका उसके अनुरूप
भाव हुआ। तो अन्तरङ्ग निमित्त वास्तविक निमित्त है और बहिरङ्ग निमित्त आश्रयभूत
पदार्थ यह आश्रयभूत है। इसे कहो तो बहिरङ्ग निमित्त कहो, न कहो तो केवल नोकर्म
या आश्रयभूत कहो। तो आश्रयभूत का त्याग करना आवश्यक पड़ गया। इस जीवको।
अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध न होनेपर भी चूंकि इतना तो नियम है कि जीवके जब व्यक्त
विकार होता है तो आश्रयभूत पदार्थ कोई न कोई विकारमें हो तब ही हो सकता है।
तो व्यक्त विकार का साधन हटाने के लिए चरणानुयोग में उपदेश है। अब रही अव्यक्त
विकार की बात। कर्मोदय हुआ। और उपयोग हमारा ज्ञानबलके प्रसाद से किसी बाह्य

पदार्थकी ओर न जाय । जैसे स्वानुभूति की स्थिति हो या इस ही और चर्चा करने की स्थिति हो, ऐसी स्थिति में चूँकि नोकर्मका उपयोग न हो सका अतएव याने इतने मात्रसे विकार से हटेगा तो नहीं, पर वह अव्यक्त विकार होगा । और अव्यक्त विकार में विशेष आश्रव बंधका अवकाश नहीं । व्यक्त विकारमें विशेष आश्रव बंधका अवकाश है तो चरणानुयोग विशेष उपयोगी बना, उसीके अनुसार श्रावक धर्म और मुनिधर्म दो प्रकार से बनाये जाते हैं, तो इसके समस्त उपदेशोंमें प्रयोजन एक लेना है स्वभावदृष्टि । स्वभावदृष्टि के लिए जो हमारे मन, वचन, कायके प्रयास चलते हैं वे गृहस्थधर्म और मुनिधर्मके बताने वाले हैं । ऐसी वासनावश हुए ऐसे संस्कारमें रत हुआ पुरुष अपने आप को गृहस्थधर्म मुनिधर्मका एक व्यवहारमें आये बिना उसमें इसका संस्कार क्षीण हो नहीं सकता अतएव यह द्विविधधर्मका उपदेश है ।

व्यवहार किये बिना व व्यवहार छोड़े बिना आत्मप्रगतिकी असंभवता—बात यहाँ यह स्पष्ट आयी कि इन धर्मों में भी बात यह ही बतायी जा रही, व्यवहार छोड़ो, व्यवहार छोड़ो । और यह भी बात आयी कि व्यवहार को करो । व्यवहार छोड़ना और व्यवहार करना ये दोनों बातें करने को कहा । जैसे-जैसे आगे बढ़ें वैसे-वैसे व्यवहार छूटा । तो वह पद व्यवहार के बिना नहीं मिलता और व्यवहार छोड़े बिना नहीं मिलता । जैसे नीचेसे ऊपर की मंजिलपर आप आते हैं तो इस मंजिल-पर पहुँचना सीढ़ी ग्रहण किए बिना नहीं बनता और सीढ़ी छोड़े बिना भी नहीं बनता । इन दोनोंमें कोई एक ही बात का एकान्त करले कि सीढ़ी पकड़े बिना ऊपर नहीं आ सकते इस कारण मैं तो सीढ़ी पकड़कर ही रहूँगा, तो वह भी ऊपर नहीं आ सकता । और कोई यह कहे कि सीढ़ी छोड़े बिना ऊपर नहीं पहुँच सकते इसलिए मैं तो सीढ़ी छोड़कर ही रहूँगा । नीचे के नीचे खड़े हैं, तो वह भी ऊपर नहीं आ सकता । तो उनेक स्थितियों और दृष्टियोंसे स्पष्ट बात है बिसम्बाद की कहीं कुछ बात ही नहीं है । स्याद्वाद पद्धति से हमारे सारे बिसम्बाद समाप्त हो जाते हैं ।

विकारपर्यायोंके नियतत्त्व व अनियतत्त्वका विश्लेषण—एक बात और सुनिये—जैसे जब एक चर्चा होने लगती है कि जब जो होना है तब ही तो वह होगा उसमें कोई फेर फार तो नहीं हो सकता । तब किसीने यह कहा कि नहीं, जैसा करूँगा, वैसा होगा, फेरफार करूँगा तो फेरफार हो जायेगा, ये दोनों बातें सामने हैं । अब इन दो को एक दृष्टिसे खोजें तो इन दो बातोंको बताने वाली दृष्टियाँ हैं दो—(१) ज्ञप्तिनय और (२) उत्पत्तिनय । भगवानने सब जाना और कदाचित्त कोई यह कहे कि हम नहीं समझते हैं भगवानको कि वे

सब समझते हैं तो चलो अवधिज्ञाननियोंने जाना, उन्होंने सीमासे जाना । मानो वे करोड़वर्ष आगेकी बात जानेंगे और इतनी ही पहले की बात जानेंगे, विशेष न जानेंगे । इतनेसे ही चलो, तो जब उनके ज्ञानमें आया, जब जो होना है हुआ । ग्रन्थोंमें भी उपदेश है—अवधि-ज्ञानी मुनियोंने यह बताया, उनको भावोंका ज्ञान हुआ । जब विशिष्ट ज्ञानियोंने जाना, तो ठीक है, जैसा जाना वैसा होगा । इस दृष्टिमें आकर हम इस बातको मना कर सकते, लेकिन यहां समझना होगाकि भगवानने जाननेकी स्वतन्त्रता वया इस प्रकार की कि पहिले जाननेकी बात उठी, फिर जो जाना सो पदार्थमें होता है ऐसा तो नहीं है । जाननेका विषय है यह सब । जो होगा सो प्रभुने जाना, अवधिज्ञानीने जाना । तो अब होगाकि बातका निर्णय बनाना किस तरहसे होता है । उसका निर्णय उत्पत्तिनयसे होता है । ज्ञप्तिनय कार्य-कारण विधानको नहीं बताता । कार्यकारण विधान तो उत्पत्तिनयसे ज्ञात होगा । तब वहां यह बात विदित होती है कि उपादान प्रतिक्षण अपने आपमें एक पर्यायको लिए हुए रहता है, और अगले विकार परिणामनमें विकार होता, जैसाकि निमित्त सन्निधानमें होता है । योग्य उपादान निमित्त नैमित्तिक सन्निधान पाकर अपनी अकेले नवीन परिणति रूपता है और इसी तरहसे समाप्त कार्य होते जा रहे हैं । तो इस तरह होते हुए पदार्थ किसी विशिष्ट ज्ञानीके ज्ञानमें आये तो जससे कार्यकारण विधान न बनेगा । चूंकि भगवानने जाना इसलिए हुए ऐसा नहीं, बल्कि ऐसा तो कह सकते कि चूंकि ऐसा होगा सो भगवानने जाना । कार्य-कारण विधान ज्ञानकी ओरसे नहीं बनता, किन्तु वह निमित्त नैमित्तिक भावकी पद्धती पूर्वक बनता है । तो जब केवल ज्ञप्तिनयसे देखते हैं, एक जानकारीकी दृष्टिसे देखते हैं, तब ऐसा कहनेमें हर्ज नहीं, और कहते भी आये कि “जो जो देखा वीतरागने, सो सो होसी बीरा रे । अनहोनी नहि होती कबहुं, काहे होत अधीरा रे ।” जो बात जिस कालमें होती है उसे उस प्रकार प्रभुने जाना । इससे जिस विधानसे यह एक कार्य कारणको सिद्ध करने वाला एक खास वाक्य है । एकान्त करने वाले उनमें किन्हीं शब्दोंको छोड़ दें, किन्हीं शब्दोंको लें तब एकान्त बनता है ऐसा कहनेमें कहां आपत्ति आयी ? जो बात जिस प्रकारसे होनी है, होती है, उसे जाना है किसने, ठीक है । तो जब उत्पत्तिनयकी ओरसे देखते हैं तो यह नहीं कहा जा सकता कि द्रव्यमें पर्याय नियत है, और जब ज्ञप्तिनयसे देखते हैं तो यह कह सकते कि पर्याय जब जो होनी है सो होती है, यह नियत है । ज्ञप्तिनयका अर्थ यह है कि विशिष्ट ज्ञानीने जान लिया, इस आत्मानमें तीनों कालकी बातको जाननेकी सामर्थ्य है । और, जब किसी विशिष्ट आत्माने जान लिया तो विषय है तब ही तो जाना, विषय बिना नहीं जाना । तो जिस प्रकार होनेको है सो हुआ, किन्तु इसमें कार्यकारणविधान रंच भी नहीं है । किन्तु

जाना और देखा है। जैसे नेमिनाथ भगवानने बताया कि १२ वर्ष बाद यों होगा। हुआ, तो देखो ज्ञप्तिनयकी ओरसे बात कही जायेगी कि भगवानने जाना वही हुआ, पर इससे यह बात नहीं कही जा सकती कि भगवानने जान लिया इस कारणसे हुआ। होनेका कारण और ही है। वह निमित्त नैमित्तिक विधान और उत्पत्तिनयसे समझा जायगा। हां तो बात यह है कि जिसको स्वभावदृष्टिके प्रयोजनका निर्णय है वह समस्त नयोंसे सही उपयोग होता है। उसीको ही एक निष्पक्ष कल्याणार्थी कहते हैं कि किसी भी नयकी बातको वह असत् नहीं ठहराता, किन्तु उससे अपना प्रयोजन निकालता है।

मोक्षशास्त्रके प्रथमसूत्रमें मोक्षमार्गकी घोषणा की गई है, मानो सर्वप्रथम फहराती हुई ध्वजा बतला रही हो कि सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्रणिमोक्षमार्गः—याने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका एकत्व मोक्षका मार्ग है, इस सूत्रमें शब्दों द्वारा ही मोक्षमार्गके कारणोंका सामान्यरूपसे स्वरूप बता दिया गया है। अब इन तीनोंका विशेषरूपसे स्वरूप बताना चाहिए। उसमेंसे सर्वप्रथम सम्यग्दर्शनका स्वरूप बतानेका उपक्रम किया जा रहा है—तत्त्वार्थश्रद्धानंसम्यग्दर्शनम् ॥२॥

सूत्रमें सम्यग्दर्शनका स्वरूप कहनेकी आवश्यकताका दिग्दर्शन—वस्तुस्वरूपसे सहित पदार्थका श्रद्धान होना सम्यग्दर्श है। मोक्षशास्त्रका जिसने कुछभी अध्ययन किया है वह भी यह समझ सकता है कि मोक्षशास्त्रमें सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्रका लक्षण किसी सूत्रमें नहीं बताया है। सो प्रश्न हो जाता है कि केवल सम्यग्दर्शनका ही लक्षण क्यों कहा जा रहा है? ज्ञान और चारित्रका लक्षण जैसे नहीं बताया उसी प्रकार सम्यग्दर्शनका भी लक्षण न कहा जाना चाहिए था, क्योंकि मोक्षमार्ग तो इन तीनोंका समुदाय है। तो जो बात सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रके बाबतमें है वही बात सम्यग्दर्शनके बाबतमें है फिर क्यों सम्यग्दर्शनका लक्षण कहा और सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्रका लक्षण नहीं कहा। मोक्षशास्त्रके द्वितीय आदिक अध्यायमें भी कहीं भी सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका स्वरूप निर्दिष्ट करने वाला सूत्र नहीं है। तो जब इन दो के स्वरूपका सूत्र नहीं तो सम्यग्दर्शनके स्वरूपका सूत्र कहनेकी भी क्या आवश्यकता थी? यदि कहो कि सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका लक्षण किसी और रूपसे आ जाता है तो भेद प्रभेदके कहनेसे या अन्य प्रकारसे तो इसीतरह सम्यग्दर्शनका भी लक्षण शब्दोंसे या उनके भेद आदिकसे समझ लिया जाता है। इसमें कारण क्या है कि आचार्य महाराजने केवल सम्यग्दर्शनका स्वरूप सूत्रमें बांधा है, इसके समाधानमें यह समझना चाहिए कि आचार्य महाराजका जो प्रतिपादन होना है वह मर्मको लिए हुए होता है। देखिये—ज्ञान और चारित्रका लक्षण कहनेकी यों आवश्यकता नहीं हुई कि जो जाना जाय—

जिससे जाना जाय । ज्ञायते इतिज्ञानं, इसी प्रकार चारित्रकालक्षण है चर्यते इतिचारित्रं, जो आचरण किया जाए सो चारित्र । इन दोनोंका स्पष्ट अर्थ धातुसे ही निकल आता है इस कारणसे चारित्र और ज्ञानके स्वरूपका निर्देश करनेके लिए अलग सूत्रकी आवश्यकता नहीं होती । सम्यग्दर्शनका लक्षण धातु और शब्दमें नहीं बन पाता । क्यों नहीं बन पाता ? सम्यग्दर्शनमें जो दर्शन शब्द है वह जिस धातुसे बना है उसका अर्थ अवलोकन है, तो वहां विसम्बाद हो जाता है क्या अच्छा देखनेका नाम सम्यग्दर्शन है ? जो बड़ी अच्छी तरहसे खूबसूरतीसे देख लेता हो, क्या उसे सम्यग्दर्शन हो गया ? तो सम्यग्दर्शनका अभिप्राय शब्दसे व्यक्त नहीं हो पाता इसलिए सम्यग्दर्शनका लक्षण कहने की आवश्यकता पड़ी । सम्यग्दर्शन का अर्थ यह नहीं कि अच्छा देखना—किन्तु सम्यग्दर्शनका अर्थ है—वस्तुस्वरूप जैसा है उस प्रकारसे श्रद्धान करना । अच्छा देखनेकी बात तो मिथ्यादृष्टिके भी होती, अभव्यके भी होती है । अभव्य कोई पुरुष है, उसकी आंखें अच्छी हों तो क्या वह अच्छा नहीं देख रहा ? तो प्रशस्त अवलोकनका नाम सम्यग्दर्शन नहीं किन्तु तत्त्वार्थ श्रद्धानका नाम सम्यग्दर्शन है ।

सम्यग्दर्शन शब्दका अर्थ—अब जरा सम्यग्दर्शन शब्द पर सम्यग्दर्शनका भाव निरखें । सम्यक् शब्दका अर्थ है प्रशंसावादी अच्छा दर्शन । पूज्यका दर्शन । सो सम्यग्दर्शनमें सम्यक् शब्द जो है वह निपात शब्द है अथवा व्युत्पन्न भी शब्द है । संस्कृत व्याकरणसे शब्दकी निष्पत्ति दो तरहसे होती है—एक तो होती है निपात, जिसके बारेमें कुछ सोच ही नहीं सकते कि कैसे बना, कौन धातुसे बना ? और, एक होता है प्रत्यय लगाकर, तो यहां दोनों तरहके शब्दोंकी सिद्धि है—निपात भी और प्रत्यय लगाकर भी है । उपसर्ग है अञ्च धातु है और प्रत्यय लगा है क्विप् । सम्यक्, यह प्रशंसावाचक शब्द है । अच्छा रूप, अच्छा कुल, अच्छी जाति, अच्छा ज्ञान आदिक जो लोकके अभ्युदयवाची शब्द हैं उनका और मोक्ष का प्रधान कारण है सम्यग्दर्शन, इसलिए इसमें सम्यक् शब्द देना ठीक है । लोकके बड़े से बड़े वैभव सम्यग्दृष्टि ही पा सकता है । मिथ्यादृष्टि तो लोकके उत्कृष्ट वैभव भी नहीं पा सकते । तीर्थंकर होते हैं, चक्रवर्ती होते हैं, नारायण होते हैं, प्रतिनारायण होते हैं, बलभद्र होते हैं या और भी पद होते हैं, जो भी और ऊँचे-ऊँचे पद हैं उनमें भी प्रायः आप यह ही पायेंगे कि सम्यग्दर्शनके रहते हुए इतना पुण्य बना कि जिससे तीर्थंकर हुए । तो सम्यग्दर्शनके रहते हुए कोई विश्वकल्याणका राग करता है तो इससे बड़ा से बड़ा पुण्यका बन्ध होता है । सम्यग्दर्शनके होते हुए जो राग रहता है पुण्य बन्धतो उस रागके कारण होता है, सम्यक्त्व के कारण पुण्यबन्ध नहीं होता । सम्यक्त्व तो निर्जराका कारण है, पर सम्यक्त्वके होते हुए जो रागभाव रहता है उसका निमित्त पाकर विशिष्ट पुण्यका बन्ध होता है । आप देख लो

जिस सम्यग्दर्शनके साथ रहने वाली गलतीसे मिला लोकका बड़ा भारी वैभव, (राग तो गलतीका नाम है) इतना महत्त्व हो गया, फिर जिसका निमित्त पाकर इतना विशिष्ट पुण्य-बन्ध होता है कि चक्रवर्ती आदिक जैसे बड़े-बड़े वैभव प्राप्त होते हैं और तीर्थकर पदवी तक प्राप्त हो जाती है। फिर सम्यक्त्वके होते संते अगर पुण्यबन्ध हो तो विशिष्ट पुण्यबन्ध होता है, इससे महीमा जानी गई सम्यग्दर्शनकी। मोक्षकी बाततो स्पष्ट ही है। इसलिए यह सम्यग्दर्शन प्रशस्त दर्शन है, अथवा सम्यक् शब्दका अर्थ तत्त्व लगा लीजिए। तत्त्वदर्शनसम्यग्दर्शन अर्थात् परम यथार्थ विषय करने वालेको तत्त्व कहते हैं और ऐसा तत्त्वस्वरूप है उस प्रकारसे श्रद्धान होनेका नाम सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शनमें सम्यक् शब्दका तो अर्थ है वास्तविक, तथार्थ। जैसा वस्तुस्वरूप है वैसा और दर्शनका अर्थ है श्रद्धान। यद्यपि दर्शनका प्रसिद्ध अर्थ देखना है, अवलोकन है, लेकिन धातुके अनेक अर्थ होते हैं, उन अनेक अर्थोंमें यहां श्रद्धान अर्थ उचित बैठता है। इस प्रकार वस्तुस्वरूप सहित अर्थका श्रद्धान होना सम्यग्दर्शन है।

दर्शनका अर्थ श्रद्धान किया जानेमें प्रकरणकी कारणता :--कभी यहां ऐसा सोच सकते कि जब दृशि धातुमें अनेक अर्थ हैं तो उसमें से श्रद्धान अर्थ ही क्यों लिया तुमने ? इसका समाधान तो स्पष्ट है कि जिस प्रकरणमें जो बात कही जाती है उससे फबता हुआ अर्थ लिया जाता है। एक शब्द हैं सैंधव, उसके मायने हैं नमक और सैंधव मायने है घोड़ा। अब कोई भोजन कर रहा हो और वहां कोई मांगे कि भाई सैंधव लावो, वहां यदि घोड़ा खड़ाकर दिया जाय तो वह अच्छा लगेगा क्या ? और, जब कहीं जा रहे हों, जाने की तैयारीमें हों, मकानके बाहर हैं और कहें कि सैंधव लावो, वहां यदि कोई नमककी डली ला दे तो वह अच्छा लगेगा ? तो जिसके अनेक अर्थ हैं उसका वह अर्थ लिया जाता जो प्रकरणमें रहता है, और, प्रकरणमें बैठे और लगे दूसरा अर्थ लगे तो इसमें दोषकी बात आती है। प्रकरणके अनुसार अर्थ लिया जाता है। यहां मोक्षका प्रकरण है। मोक्षकी बात कही जा रही है तो मोक्षका कारण देखना नहीं है, बल्कि देखना तो मोक्षके लिए उल्टा हो जाता है। देखने से रागद्वेष, मोह विकल्प आदि होते हैं, ये तो विपरीत मार्गमें ले जा सकते हैं, तो अच्छा देखनेका नाम सम्यग्दर्शन नहीं, किन्तु वस्तुस्वरूप सहित पदार्थका श्रद्धान होनेका नाम सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शनका एक सामान्त्या अर्थ किया गया है, उसका विश्लेषण क्या है ? तत्त्वरूप श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं। अथवा तत्त्वार्थश्रद्धानका नाम सम्यग्दर्शन है। इसमें तीन शब्द पड़े हैं--तत्त्व, अर्थ और श्रद्धान। तत्त्वका अर्थ क्या है ? तस्यभावः तत्त्वं। वस्तुके स्वरूपको तत्त्व कहते हैं, यह सामान्यभाव हो गया। जैसे मनुष्यस्यभाव=मनुष्य

अर्थात् मनुष्यके भावको मनुष्यत्व कहते हैं। जो सब मनुष्योंमें पाया जाय इसे कहते हैं मनुष्य। तो तत्त्व शब्दने भावसामान्यका बोध किया। तत्त्व प्रत्यय संस्कृतमें जो लगता है वह भावमें लगता है। तत् शब्दमें समग्र वस्तु आ गई, उसका जो भाव सामान्य है उसे कहते हैं तत्त्व। जो वस्तु जिस तरह है उस तरहके होनेका नाम तत्त्व है। अगर यह तत्त्व शब्द न लावे तो, उल्टे अर्थका श्रद्धान करे तो वह भी श्रद्धानमें आ जाता है, तत्त्वसे पदार्थ का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। और यों भी लगा सकते कि अर्थ मायने पदार्थ नहीं, किंतु जो निश्चित किया जाय। देखो शब्द अनेक होते हैं और उन शब्दोंका जो अर्थ है वह उस पदार्थकी विशेषता बताया करते हैं। अर्थ, पदार्थ, वस्तु ये सब एक ही चीज तो कहलाती हैं उसीको यहां अर्थ कह दो, चाहे पदार्थ कह दो, चाहे वस्तु कह दो, किसी शब्दसे कह दो। ये शब्द उस एकको ही कहने वाले हैं, मगर जो नाना शब्द हैं उनके अर्थ भी नाना हैं और उनसे उस पदार्थकी विशेषता ही जानी जाती है। जैसे—अर्थ मायने क्या? जो निश्चित किया जाय उसे अर्थ कहते हैं, जिसका निर्णय किया जाय उसे अर्थ कहते हैं, क्या मतलब हुआ? जो पदार्थ जानने में आता है वह अर्थ है, यह विशेषता है। जहां कहा वस्तु, जिसमें अनेक गुण बसे हैं उसका नाम वस्तु है। अनेक गुण कब रह सकते? जब अपने स्वरूपसे तो वे हों और पररूपसे न हों। तो वस्तुस्वरूप कहकर दूसरी बात चित्तमें आ गई। ग्रहण किया उस सबको, मगर दूसरे नातेसे ग्रहण हुआ। पदार्थ जो भी कुछ पद बोला गया, शब्द बोला गया उसका वाच्यभूत जो हो सो पदार्थ। जैसे मनुष्यके कई नाम हैं कि नहीं? मनुष्य, मानव, जन आदिक, इनमें जनका अर्थ है—जो उत्पन्न हो, मनुष्यका अर्थ है जहां विवेकशील मन है, मानवका अर्थ है जो मनुकी संतान है, तो एक ही चीजको कहने वाले जितने शब्द हैं उन सबके अर्थ जुड़े-जुड़े होते हैं। जैसे अनेक शब्द दे सकते। पुत्रके नाम कितने हैं? पुत्रका नाम सुत, पुत्र, मगर देखिये इन दोनों शब्दोंमें कितना अन्तर है? सुत उसे कहते हैं जो पैदा हुआ हो, सारे सुत हो गये, और पुत्र उसका नाम है जो वंशको पवित्र करे, उज्ज्वल करे, सुत तो सारे हैं, पर पुत्र तो कोई बिरला ही होता है। तो जितने शब्द हैं उतने ही उसके अर्थ हैं, और उन शब्दोंसे यह बात सही आती है। यहां अर्थका अर्थ है जो निश्चित किया जाय वह अर्थ है, तत्त्व—याने यथार्थ स्वरूप जो वास्तविक स्वरूपसे निश्चित किया जाये उसे कहते हैं तत्त्वार्थ, उसका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

सम्यग्दर्शनकी मौलिकता व वचनागोचरता :—सम्यग्दर्शनका जो सही अर्थ है उसको बतानेके लिए शब्द नहीं हैं। जितने भी शब्द हों सम्यग्दर्शनको बताने वाले उनका सही अर्थ या तो ज्ञान परिणति है या चारित्र्य। सम्यग्ज्ञानकी चीज है, जिसके होनेपर वस्तुका यथार्थ

ज्ञान हो और यथार्थ आचरण बने वह है सम्यग्दर्शन । तो सम्यग्दर्शन शब्द अवक्तव्य है, इसका स्वरूप वचनों द्वारा नहीं बोला जा सकता है, मगर सम्यक्त्व एक ऐसी स्वच्छता है कि जिसके होनेसे ज्ञान और चारित्र्य समीचीन हो जाते हैं । इस बातको एक नियोजित विषयसे बताना कठिन है किन्तु नैमित्तिक पद्धतिसे बताना सरल है, पुरुषार्थ सिद्धियुपायमें बताया है कि विपरीत अभिप्रायके होनेका नाम सम्यग्दर्शन है । सम्यग्दर्शन एक ऐसा प्रकाश ऐसी स्वच्छता है कि जिससे विपरीत अभिप्राय ठहर नहीं सकता । तो यह सिद्धान्त आत्मा का स्वरूप, आत्माका स्वभाव, आत्माका परिणाम, वह है श्रद्धान । देखिये विश्वास बिना मोक्ष नहीं रहता है । विश्वास ज्ञान और आचरण प्रत्येक जीवमें पाये जाते हैं । अब यह बात जुदा है कि कोई कैसे विश्वास करे कोई कैसे ? सच्चा करे, झूठा करे, मगर विश्वास बिना कोई जीव रहा क्या ? एकेन्द्रीयसे लेकर सिद्ध भगवान तक समग्र जीव सब विश्वास, ज्ञान आचरण वाले हैं । किसीका किसी ढंगसे । सिद्ध भगवान अपनेमें रम रहे हैं । विश्वास तो कर लीजिये, और जिसका जो विश्वास है उसीकी भक्ति भी समझना चाहिये । जिस तरह धुन लगी हो, जिसकी ओर विश्वास हो यह मेरेको हितकारी है, शरण है, मेरे लिए सार यह ही है, जिस पदार्थमें यह प्रतीति जग रही हो भक्ति उसीकी होती है । तो भगवान जिनेन्द्रकी भक्ति तब कहें जब भगवान जिनेन्द्रके प्रति ऐसी भक्ति हो कि बस मंगल हैं तो यह, शरणभूत हैं तो यह, जो काम इन्होंने किया बस सारभूत तो वही है, यह ही हितकारी है, यह ही मेरेको प्राप्त हो, ऐसी अगर धुन बनी हो तो आपकी जिनेन्द्रभक्ति है, और धुन तो बनी है स्त्री, पुत्रादिककी, स्त्री बड़ी आज्ञाकारी है, पुत्र बड़े अच्छे हैं, और भगवानके आगे बोलते ऊँचे स्तवन तो झूठ क्यों बोलते ? सच बोलनेमें सरम आती है इसलिए झूठ बोलते । अगर वहां बोलें कि मेरी स्त्री, पुत्रादि खूब सुखी हों तो इसमें सरम आयेगी । मनमें धुन बनी है कि पुत्र ऐसे हों, कमाई ऐसी हो, तो देखो जो खोटी बात है उसे सबके बीच बोलनेमें सरम आती है । सब आदमियोंके बीचमें यों नहीं बोला जायगा कि मेरे स्त्री पुत्रादि बड़े अच्छे रहें, उनको खूब सुख मिले । जब मनमें परिवारके लोग बसे हैं, धनवैभव बसा है बाहरी बातें बसी हैं तो फिर प्रभुभक्तिकी बात चित्तमें कहां समायेगी ? अरे जिस बातकी धुन लगी हो वही बात भगवानके सामने क्यों नहीं निकालते, और और कुछ क्यों कहते ? तो मालूम होता है कि वे बातें सारभूत नहीं हैं । जिनेन्द्रभक्ति तब कही जायगी जब यह धुन हो कि जिनेन्द्रकी जो अवस्था है वह मंगल है । वही शरण है, जो इन्होंने किया वही मेरे कर्तव्यकी बात है यह बात चित्तमें बसी हो तो यह जिनेन्द्रभक्ति है ।

व्यवहारकी श्रद्धानसारिता :—भैया ! ज्ञान विश्वासके अनुसार होता है । जिस

तरहका विश्वास हो उस तरहकी बुद्धि जगती है। देहमें आत्मरूपका विश्वास हो तो उस देहको पालने पोषने, सुख दिलाने, आरामके लिए आपकी प्रवृत्तियां बनेंगी। जहाँ यह विश्वास हो कि मैं आत्मा तो यह केवल ज्ञानमात्र हूँ, इसके लिए केवल एक यह ही शरण है, यही उत्तम है, यही तत्त्व है, अगर यह बात समायी हुई हो तो आत्माके अनुकूल आचरण चलेगा। हर जगह देख लो, विश्वासके अनुसार ही फल मिलता है। जब चित्तमें यह समायी हुआ है कि मैं तीन चार पुत्रोंका बाप हूँ तो फिर उन पुत्रोंके प्रति जो व्यवहार करना चाहिए वैसा करना पड़ेगा। और, जिसे पुत्रोंसे अरुचि होती है वह कहता है कि मेरा इन पुत्रोंसे कोई मतलब नहीं, तो फिर वह पुत्रोचित काम तो नहीं करता। देखिये—सुकौशलके पिता कीर्तिधर जब विरक्त हुए उस समय सुकौशल गर्भमें था। तो कीर्तिधरके विरक्त होते ही उसकी स्त्री (सुकौशलकी मां) को उनपर बड़ा क्रोध आया, उसने कीर्तिधरको बहुतसी भली बुरी गालियां भी दीं, मुनियोंसे भी उसे पृणा हो गई। पहरेदारोंको भी आगाह कर दिया कि यहां कोई मुनि न आने पाये, और दूसरा कारण यह था कि मुनिमुद्रा देखकर सुकौशल विरक्त हो जायगा यह भी किसी ज्ञानी महात्माने बता दिया था। दोनों कारणोंसे रानीने यह निर्णय दिया कि कोई भी मुनि यहां न आये। एक दिन वही कीर्तिधर मुनि बिहार करते करते वहां आ गये। उसे देखकर रानी (सुकौशलकी मां) ने अपशब्द कहे—घरखोजू, घरमिटानू यहां आ गया। रानीकी ऐसी बातें सुनकर धायको बड़ा दुख हुआ। आखिर धायसे सब वृत्त जानकर सुकौशल भी विरक्त हो गया। तब संव्लेशसे मरकर मां सिहनी हुई। खैर तो यहां यह देखिये कि जब सुकौशलकी मां मोहवश सुकौशलको अपना पुत्र मान रही थी तो वह उस तरहका पुत्रवत् व्यवहार कर रही थी और कीर्तिधर अपना पुत्र न मान रहा था इसलिए उसका दूसरे ढंगका व्यवहार था, कुछ विकल्प नहीं, आत्महित का ही लक्ष्य था। सब जीवोंका व्यवहार श्रद्धाका अनुसारी है।

परमें आत्मबुद्धिकी अशान्तिमूलता :—हम आप सब जीवोंको ए शान्ति ही अभीष्ट है। प्रत्येक जीव चाहता है कि मेरेको शान्ति हो, सुख हो, आकुलता न हो, कष्ट न हो, और जितने भी हम प्रयत्न करते हैं वे सब इसीलिए करते हैं कि हमको शान्ति मिले। मगर एक बात समझो कि इस जगतमें यह मैं अकेला ही आया, अकेला ही जाऊंगा, अब भी अकेले ही सुख दुःख भोगता हूँ, मेरा मात्र एक मैं ही हूँ, मेरा जगतमें कोई दूसरा नहीं है, ऐसा सोचनेपर शान्तिपथमें गति गति प्रारम्भ हो जाती है। जब किसी दूसरेमें आत्मबुद्धि करके, शरणबुद्धि करके, उसे सहाय मानकर, उससे हितकी आशा रखकर उसमें जो दिल लगाया जाता है वह सब बेकार है। कुछ अपनी दयाकी बात सोचना चाहिये। देखिये—एक

बार लक्ष्मण और परसुराम जब आमने सामने मिले तो परस्परमें बड़ा बाक्युद्ध हुआ। जब परषुरामने क्रोधभरे वचन कहे कि तू हट जा मेरे सामनेसे, तो लक्ष्मणने कहा था—“करि विचार देखहु मन माही, मूढ़हु आंख कितऊं कुछ नाहीं।” अर्थात् हे परषुराम जी, आप अपनी आंखें मीचलें, फिर आपके लिए कहीं कुछ नहीं है। यह एक बहुत सरल सा उत्तर दिया। यही बात आप अपने लिए घटायें—आंखें मीचकर देखें तो कहीं कुछ नहीं है, और जब आंखें मुद जाती हैं, मरण हो जाता है तब तो सारा प्राप्त समागम छूट जाता है। तो मतलब यह है कि इस प्राप्त समागमका भी क्या विश्वास? जो यह विश्वास बना रखा है कि मेरी हवेली, मेरी फर्म, मेरा वैभव, मेरे स्त्रीपुत्रादिक परिजन, ऐसा जो विश्वास बना रखा है, ये सब बातें तो तेरे लिए कलंक हैं, दोष हैं, कीचड़ हैं, इनमें हितबुद्धि मत करें। गृहस्थावस्था है, करना सब होगा, घरकी व्यवस्था, आजीविका, पालन पोषण, कमाई, सामाजिक व्यवस्था आदिके सारे काम तो करने होंगे, पर सही विश्वास तो रखें कि मेरे आत्माका तो यह देह भी नहीं है। मेरे आत्माका तो केवल मेरा ज्ञानस्वरूप ही है, अन्य कुछ नहीं है। इतना अगर विश्वास बना रहे तो वह पवित्रता चित्तमें रहेगी कि मोक्षमार्ग आपका चलता रहता है। संसारमें रहते हुए भी मुक्तिकी ओर आपका कदम। अगर यह विश्वास रहे कि मैं तो एक ज्ञानस्वरूप हूँ, और किसी रूप नहीं, यह है अपनी दयाकी बात। यह चीज कहीं देख लिया, सुन लिया, ऐसी रूढ़िकी बात नहीं है, किन्तु अपने आपके चित्तमें बसा लेनेकी बात है। कल्याण करें, हित हो आत्माका, वह बात सोचें। मेरे आत्मका हित है तो अपने आपका ज्ञान हो, श्रद्धान हो, अपने आपमें ही मग्नता हो, इसमें मेरा हित है, बाहर कहीं कुछ देखनेमें हित नहीं है।

अन्तस्तत्त्वमग्नतामें विपदाकी समाप्ति :—एक बहुत बड़ी नदीमें कोई कछुवा रहता था। वह तो पानीके अन्दर रहता था। एक बार उसके मनमें आया कि मैं एक बार पानीके ऊपरभी तो तैरकर देखूँ। तो उसने पानीके ऊपर अपनी चोंच बाहर निकाल लिया तो कोई पक्षी पूर्व दिशासे आकर उसकी चोंच चोटने लगा कोई पश्चिम दिशासे। यों हजारों पक्षी उसकी चोंच चोटनेका प्रयत्न कर रहे थे। वह कछुवा उनसे हैरान होकर अपनी चोंच इधर उधर डुलाता फिरता था, दुःखी होता था, पर उसे कोई समझा दे कि अरे कछुवे, तू क्यों व्यर्थमें दुःखी हो रहा है? अरे तेरे अन्दर तो एक ऐसी कला है कि जिस कलाके कारण ये हजारों पक्षी तेरा कुछ भी बिगाड़ न कर सकेंगे। वह कौन सी कला है? ...अरे जरा एक बालिष्ठ पानीमें अपनेको डुबा तो दे, बस सारे पक्षी तेरा क्या बिगाड़ कर सकेंगे। तेरे सारे दुःख खतम हो जायेंगे। इसी तरह हम आप जीव चर्चयें तो करते हैं, अपने उपयोगरूपी चोंचको

बाहर निकाले हुए है और अपना जो उपयोग है, जाननेकी दशा है, लगता है ना ऐसा कि जब हम कुछ जानते हैं तो ऐसा लगता है कि मेरा मुख ही वस्तुकी ओर गया है, मैं उसकी ओर अभिमुख हो गया हूँ तो हमारी उपयोगरूपी चोंच हमारे ज्ञानसमुद्रसे बाहर चल रही है, खिंची खिंची फिर रही है, हम अपने उपयोगको अपने इस ज्ञानस्वरूपमें नहीं रमा पाते हैं, तो ऐसी स्थितिमें होता क्या है ? जब हम अपना उपयोग बाहर की ओर लगाये हैं, परिजनोंकी ओर, वैभवकी ओर, तो उसमें अनेक विघ्न आते हैं। सबकी प्रवृत्ति मेरे अनुकूल हो जाय तो ऐसा हो नहीं सकता, प्रतिकूल बातें बहुत कम आती हैं तो यह परेशान होता है, और उस परेशानीमें अपना उपयोग फिर दूसरेकी ओर लगता है। अगर भैयाने कष्ट पहुंचाया तो अपने रिस्तेदारोंकी ओर उपयोग लगता, और अगर रिस्तेदारोंने कष्ट पहुंचाया तो वह अन्यकी ओर अपना उपयोग बदल-बदलकर दुःखी रहा करता है। इसे कोई समझाये कि रे भव्य आत्मन् ! तू क्यों व्यर्थ दुःखी हो रहा ? अरे तेरे अन्दर तो एक ऐसी कला है कि जिसके द्वारा तू सारे दुःख एकसाथ मेट सकता है। वह कला क्या है कि तू अपने आपके स्वरूपको दृढ़तासे श्रद्धापूर्वक जान। ऐसा निर्णय रख कि मेरे आत्माका तो यह मैं ही हूँ, मेरा स्वभाव तो यह मेरा ज्ञानस्वरूप है। तू बाहरकी ओर मत देख। अपने आपमें बिहार कर अपनेको, उपयोगके अपने निज ज्ञानसागर स्वरूपमें मग्न कर तो संकट तेरे दूर हो जायेंगे। देखिये जितने जो कुछभी संकट हैं उनमें यह आत्मा स्वयं अपने आप निमित्त नहीं है, स्वयं ही ये कारण नहीं बने हैं, किन्तु साथमें उपाधि लगी है, कर्मविपाक है, उसका उदय है। उसके उदयमें जैसे कि कर्मोंमें गड़बड़ी हो रही है वैसे ही यह भी गड़बड़ी कर लेता है, तो अपना उपयोग सम्भालें, कर्मकी दशाको अपने उपयोगमें न लगायें, अपने आपके स्वरूपकी ओर आयें तो शान्ति मिलेगी, अशान्ति दूर होगी। अधिक नहीं तो २४ घण्टेमें एक आध घण्टा तो अपने आपकी दयाके लिए रखना ही चाहिये, सुबहका समय, सामका समय जहाँ आत्माकी चर्चा हो, आत्माका चिन्तन हो, यहांके इन विषय कषायके प्रसंगोंमें रह रहकर हितकी बात कहां से मिल सकेगी ?

आत्मदृष्टिमें यथार्थ विश्राम :—देखिये—बड़े-बड़े देव, सर्वांसिद्धिके देव ३३ सागर तक तत्त्वचर्चामें रहते हैं, वे सारा जीवन तत्त्वचर्चामें ही बिताते हैं, और और भी जगह-जगह अनेक श्रीमान, बुद्धिमान अपनी ऐसी गोष्ठी बनाते हैं कि तत्त्वचर्चामें रहते हैं। देखो जैसे कोई थका हुआ पुरुष आराम करनेकी बात सोचता है, वह अपने शरीरको कुछ ढीला सा करके लेट जाता है, विश्राम करता है, थकावट दूर करने के लिए विश्रामकी आवश्यकता है कि नहीं, इसी तरह इस दिलकी थकावट कबसे करते चले आये। अपने जीवनकी बात

देखो—जबसे जिन्दगी हुई है इस मनुष्यभवकी तबसे समझलो दिलकी थकावटका काम करते चले आये, विकल्प किया, मोह किया, राग किया, कल्पनायें क्रीं, दिलको थकाते चले आये और दुःखी भी हो रहे, तो इस थकावटको मिटानेके लिए कुछ विश्रामकी बात सोची कि नहीं? दिलको जो इतनी थकावट हुई, उससे जो अपनेको तकलीफ हुई उस थकावटको दूर करनेका क्या उपाय है, वह उपाय है मन, वचन, कायकी, चेष्टायें रोकें। मत विचारें, परका विकल्प न करें, कुछ मत बोलें, कहीं कोई चेष्टा न करें, अपने आपके स्वरूपमें मग्न होनेका भाव रखें, ऐसा उपाय बनानें तो एक विश्राम मिलेगा। होता क्या है? अगर संसारके वैभवकी ही इच्छा है, यहां वैभवमें अगर मोह रखा तो अगले भवमें वैभव न मिलेगा, और यहां उदारता है, ज्ञान है, विवेक है, धर्मबुद्धि है, त्यागबुद्धि है तो ऐसा विशेष पुण्यबंध होगा कि अगले भवमें वैभव भी होगा याने जिस मोह रागद्वेषमें, कषायोंकी तीव्रतामें न यहां भी आनन्द है और न परलोकमें आनन्द है ऐसे कषायकी बात क्यों की जा रही है। कुछ ध्यान देना चाहिये, कहां मेरेको शान्ति मिले? इस ओर अगर ध्यान दिया जाय तो आपका बड़प्पन है यह ध्यान न हो तो कोई बड़प्पन नहीं। बहुत-बहुत वैभव भी जोड़ लिया तो कुछ पड़प्पन नहीं और एक आत्मज्ञान किया, यहां ही रमनेकी बात आये, हम बड़े-बड़े ऋषी संतोंके चरणोंमें नमते हैं, बड़े पुरुषोंकी आराधनामें रहते हैं तो वहां क्या है? यह ही चर्चा है। यह ही आत्माकी बात वहां व्यवत हो रही है इसलिए नमन करते हैं। सो वह बड़प्पन है। तो अपने आपको सोचो अपना बड़प्पन क्या है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्यका जो विकास है वह ही हमारा बड़प्पन है, उसे छोड़ और कुछ हमारा बड़प्पन नहीं। भले ही कोई लोकमें बड़ा हो गया, राष्ट्रपति हो गया, प्रधान मन्त्री हो गया, या संयुक्त राष्ट्रसंघका मन्त्री हो गया, कोई बड़ेसे बड़ा पद मिल जाय पर यहाँ शान्तिकी सम्भावना नहीं, क्योंकि वहां तो विकल्पोंका ही भार निरन्तर बना रहता है। मूढ़ आंख कितहु कछु नाहीं, मेरा कहीं कुछ नहीं, मेरा कोई सहाय नहीं, यह भी भ्रम है कि इतने लोग मुझे जानते हैं। अरे भाई जितने लोग इसे देखते हैं यह भी मैं नहीं हूँ। मैं तो इस शरीरसे परे ज्ञानज्योति स्वरूप हूँ, मुझे कौन जानता है? मुझे कौन समझता है? मेरे लिए किसका कौन है? लोग जानते हैं तो इस नाक, आंख, कान वाले शरीरको जानते हैं। यह शरीर मैं नहीं हूँ, अपने आपके स्वरूपनिर्णयमें गम्भीरतासे चलें तो विदित होगा कि यह संसारका माया जाल, व्यवहार यह सब भ्रम है।

भ्रम त्यागकर निजधर्मके अभिमुख होनेमें ही शान्तिका लाभ—भैया! भ्रममें ही अपने आपको बनाये रखा और ऐसे ही जीवन अगर व्यतीत कर दिया तो दुर्लभ अवसर

व्यर्थ ही खो दिया, जैसे किसी के हाथ रत्न लग जाय और कौवा उड़ानेके लिए फेंके और फेंकनेके साथ वह समुद्रमें गिर जाये, सो बड़ी मुश्किलसे रत्न पाया हो और यों ही काग उड़ानेमें फेंक दिया जाय तो जैसे इसे मूर्खता कहेंगे, ऐसे ही इस दुर्लभ मानवजीवनको पाकर यदि विषय कषायमोह रागद्वेषमें ही इसने सारा जीवन लगा दिया, सारा जीवन यहां ही खो दिया तो उससे भी बड़ी मूर्खता और क्या है ? ढंगसे न रहे, ज्ञान करके न रहे, आत्म-बुद्धि करके न रहे, रागद्वेष मोहमें ही चित्त बनाये रहे तो मरकर मानो कीड़े मकोड़े हो गये, पेड़ पौधे हो गए तो फिर क्या कर लिया जायगा ? क्या इनकी कोई जिन्दगीमें जिन्दगी है ? पेड़ पौधे आदिकका कोई महत्त्व भी है क्या ? वे विवश हैं मगर करें क्या ? ऐसा ही भव उन्हें मिल गया । यहां तृष्णा लगाये हैं और यहांसे मरकर मानो हो गए कीड़े मकोड़े तो फिर यहांका क्या रहा ? या यहाँ ही पापका उदय आ जाय, निर्धनता आ जाय तो फिर क्या रहा अपना ? तो भाई तृष्णा मत रखो, अपनेको शान्तिमें रखो । जहां शान्ति है वहां आनन्द है । जहां तृष्णा है वहां महान वेदना है । तृष्णा एक महान पाप है तृष्णासे अपने आपको दुःखी करना, इस तरह मारना है जैसे कोई किसीको तड़फाकर मार दे, इसी तरह कोई अपने आपको वलेशमें डालकर अपने आपका घात करता है । विचार पवित्र बने, व्यवहार हमारा शुद्ध रहे, सब जीवोंका हम सम्मान करें और यहां पाई हुई जो अवस्था है उसे हम सार न मानें, दूसरेकी पर्यायको देखकर यह मानें कि यह तो पर्याय है, यह स्वयं आत्मा नहीं है, यह तो मायाजाल है, नष्ट हो जाने वाला है, इसके अन्दर कोई सारकी बात नहीं है । सार तो एक अपने आपमें अपने ज्ञानस्वभावका श्रद्धान, ज्ञान और आचरण करने में है । तो आत्मदयाकी बात बहुत-बहुत सोचना चाहिए । चन्द दिनोंकी कल्पित मौजकी बात सोचनेसे पूरा न पड़ेगा । इससे भाई कल्याणका मार्ग आचार्य महाराजने रत्नत्रय धर्म बताया है । आत्मविश्वास करें, तत्त्वार्थश्रद्धान करें, प्रत्येक वस्तुका यथार्थ स्वरूप निरखें, प्रत्येक पदार्थ अपने आप सत् है, अपने आप अपनेमें अपना उत्पाद व्यय करता है, अपनी दशा अपने आप बनाता है, किसीका कोई परिणामन कर सकनेका नहीं है, सब स्वतन्त्र हैं, सबका अपनेपर ही उत्तरदायित्व है । मेरा किसी भी अणुमात्रसे सम्बन्ध नहीं है । वास्तविकता तो यह है, निज वास्तविकतापर दृढ़ रहें, ज्ञान बनायें, श्रद्धान बनायें । सभीको जैसे अपने नामकी इतनी दृढ़ श्रद्धा होती है कि चाहे कोई किसी काममें व्यग्र भी हो रहा हो, अथवा सो रहा हो तो भी अपने नामकी श्रद्धाका संस्कार उसके भीतर चल रहा है । चाहे कोई किसी हिसाब किताबके काममें बड़ा व्याग्र हो रहा हो फिर भी कोई जरा सा नाम ले तो ले, भट्ट कान रुड़े हो जाते हैं । तो जैसे भीतरमें नामका संस्कार बसा है ऐसे

ही मैं ज्ञानमात्र हूँ, ऐसी ही श्रद्धाका संस्कार बस जाय तो बस संसारसे पार हो गए। यह ही तो उपाय बनाना है, श्रद्धान ही तो सही बनाना है। मैं मनुष्य नहीं, स्त्री नहीं, मैं व्यापारी नहीं, सेवक नहीं, मालिक नहीं, जो जो भी बातें मान रखी हैं लोगोंने वे सब मैं नहीं हूँ, मैं तो एक सहज ज्ञानस्वरूप हूँ, मैं तो वह हूँ जैसे कि सब हैं, मैं तो वह हूँ, जैसे कि भगवान हैं, मैं इन पर्यायोंरूप नहीं हूँ, मैं ज्ञानमात्र हूँ, देखो यह श्रद्धा बना लें जिस किसी भी उपायसे। इस उपायको बनानेमें तन, मन, धन, बचन, प्राण तक भी न्यौछावर होते हों तो हो जायें और एक यह श्रद्धा बन पाती है कि मैं तो ज्ञानमात्र हूँ, मेरा अन्य कुछ भी वैभव नहीं है, केवल ज्ञानज्योति स्वरूप हूँ, मेरा मेरेसे काम है, अगर यहांकी इज्जत मिटती है तो मिटने दो, कोई कैसा ही चलता, चलने दो, मेरा उससे क्या? मेरा तो मेरे ही रत्नत्रय धर्मसे पूरा पड़ेगा, तो यही एक उपाय है कि मैं संसारके दुःखोंसे छूट सकूँ, उसीकी इस सूत्रमें चर्चा है, सम्यग्दर्शन क्या चीज है? सम्यग्दर्शनकी कितनी अपूर्व महिमा है। जिसे सम्यक्त्व हो गया वह नियमसे सिद्ध भगवान बनेगा। सबके चित्तमें यह रहती है कि मैं यह बनूँ, अमुक बनूँ, करोड़पति बनूँ, राष्ट्रपति बनूँ, ऐसी सब बातें मनमें रहती हैं। ये सब बातें बेकार हैं, पहिले एक ही प्रोग्राम बना लो कि मैं तो सिद्धभगवान बनूँ, और कुछ न बनूँ, जिस किसी भी उपायसे बनूँ, एक ही बात चित्तमें बसावें कि मुझे तो सिद्ध होना है, शुद्ध होना है, मैं जैसा हूँ वही मात्र रह जाऊँ, यह मैं चाहता और कुछ नहीं चाहता, इतनी दृढ़ता लावें। भले ही लोग मुझे पागल कहें, कहने दो, वे स्वयं पागल हैं, जिस बातको वे नहीं समझते। भले ही लोग कायर कहें, कहने दो, वे स्वयं कायर हैं। १४ गुणस्थानोंमें एक छटवां गुणस्थान प्रमत्तविरत है। मुनि तो हो गए मगर अभी प्रमाद हैं, कहीं यहां प्रमादका अर्थ आलसीसे न लेना कि बस पड़े रहे, किंतु दीक्षा दे रहे, उपदेश दे रहे यह है प्रमाद। यह पुरुषार्थ नहीं है मोक्षका, यह प्रमाद है, कायर बन रहे। तो प्रमाद न रहे वह दशा क्या है? आत्मश्रद्धान, आत्मज्ञान और आत्मरमण। याने मोक्षमार्गका काम जहां न चले वह प्रमाद है, कायरता है, बेकार बात है और मोक्षमार्गमें कदम बढ़ता रहे, वही हमारा पौरुष है।

संसारतारक पौरुषके लिये अनुरोध—देखिये जो कहते हैं कहने दें। व्यर्थके विचार क्यों लाते कि मैं काम न करूँ तो कैसे काम होगा? ऐसा ही सभी लोग विचार लें तो फिर संसारका काम कैसे चलेगा?" अरे भाई जैसे भाड़में चने भूजे जाते हैं तो उससे सभी चने तो नहीं उछल जाते। कोई बिरले ही चने उछल पाते हैं। तो यों क्यों चिन्ता करते? वे अपनी एक उद्विग्नताके अपराधको ढाकनेके लिए कहते हैं कि वाह सभी लोग अगर व्रत नियम आदिमें लग जायें तो फिर संसार कैसे रहेगा? अरे सबकी क्या सोचते?

अपनी सोच लो। क्या करना है, यहाँ तो धर्ममें लगते लगते भी, धर्ममें चलते चलते भी पिछड़ते रहते हैं, मुश्किलसे सफल हो पाते हैं, ऐसा एक वासनासंस्कार जीवमें लगा है। तो एक धर्म ही शरण है। अपने आत्माकी बातको समझिये। मेरा शुद्ध यथार्थ ज्ञानस्वरूप, ज्ञानमात्र सदा एक स्वरूप रहने वाला जो एक सामान्य ज्योति स्वरूप है, उसको यह समझना कि यह मैं हूँ, बाकी सब मैं कुछ नहीं हूँ, यह ही मेरा वैभव है और कुछ मेरा वैभव नहीं, ऐसी अपने आपकी बुद्धि रखना, ऐसी श्रद्धा रखना, बस यह ही संसारसे पार कर देने वाला पुरुषार्थ है। तो ऐसे स्वरूपका सही परिचय पालें, ऊधम छोड़ दें, उहण्डता छोड़ दें। ऊधम क्या है ? अनेक प्रकारकी खटपटें बनाना, बाह्य पदार्थोंका संग्रह विग्रह करना, बाह्य पदार्थोंकी तोड़ फोड़ करना आदिक ये सब ऊधम हैं। जैसे कोई ऊधमी बालक स्कूलमें बड़ी खटपटें करता है। स्कूलके टेबुल, ब्रेञ्च आदिको तोड़ता है, बड़ा हो हल्ला मचाता है तो यह उसका ऊधम हुआ। उस ऊधमके फलमें वह बालक मास्टर द्वारा पीटा जाता है ठीक ऐसे ही जो जीव खटपटें करता है, बाह्य पदार्थोंके संग्रह विग्रह आदिके नाना खटपटोंमें पड़ता है उसके लिए ऋषिजनों की आज्ञा है कि तुम निजमें रहो, किसी तरहकी खटपट न होगी, पर यह मोही अज्ञानी प्राणी उन ऋषिजनोंकी आज्ञाका उल्लंघन करता है, बाह्य-पदार्थोंमें अपना उपयोग लगाता है तोड़ फोड़का भाव करता है तो उसका फल क्या है कि यह चिरकालतक बहुत ही अधिक सांसारिक क्लेश पाता है।

आत्माके अभेदपरिणाममें निर्देशस्वामित्वादि घटित न हो सकनेसे पुद्गलश्रद्धा-नमें सम्यक्त्वलक्षणत्वकी आशंका होनेका समाधान—मोक्षशास्त्रके दूसरे सूत्रमें सम्यग्दर्शनका लक्षण किया जा रहा है। तत्त्वार्थश्रद्धानसम्यग्दर्शनं तत्त्वसहित अर्थके श्रद्धानका नाम सम्यग्दर्शन है, अथवा वस्तुस्वरूपसहित पदार्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। इस लक्षणको सुनकर और आगेके कहे जानेवाले सूत्रोंका स्मरण करके शंकाकार एक आशंका रख रहा है कि आगे पदार्थके परिचयकी विधि बताई गई है, यह कि निर्देश, स्वामित्व, अधिकरण स्थिति व विधान इन उपायोंसे वस्तुका ज्ञान होता है, जैसे एक इस चौकीको जानना है तो चौकी यह निर्देश है, चौकीका स्वामी कौन है ? यह काठ। बाह्य साधन क्या है ? हथियार, औजार। अधिकरण क्या है ? जिस जगह बनाया हो वह जगह, यह है चौकीका आधार। कितनी देर तक टिकेगी आदिक उपायोंसे पदार्थका ज्ञान होता है अब जब कि सम्यग्दर्शनको, आत्मपरिणामरूप कह दिया और आत्मासे वह है अभिन्न दर्शन, याने सम्यक्त्व आत्मासे अभिन्न है, आत्माका ही परिणामन है तो आत्म-

परिणाम मात्र सम्यग्दर्शन है और वह है अभेद । तो फिर उसका परिचय कैसे बनेगा ? निर्देश, स्वामित्व आदिक बातें इस सम्यग्दर्शनके साथ कैसे घटित होगी ? इससे मालूम होता है कि सम्यग्दर्शनका जो लक्षण किया गया-तत्त्वार्थश्रद्धान, वह पुद्गलके श्रद्धान के लिए ही है । आत्माकी उसमें कोई बात नहीं । ऐसी कोई शंकाकार शंका कर रहा है । यदि आत्मश्रद्धानका नाम सम्यक्त्व कहा जाता तो उसमें निर्देश, स्वामित्व, सत्, संख्या आदिक का परिचय नहीं बन सकता । इस शंकाके समाधानमें कुछ भेददृष्टिसे सोचना पड़ेगा । निर्देश स्वामित्व आदिकके परिचयकी बात बताई गई है वह आत्मपरिणाममें भी लग जाता है । सम्यग्दर्शन आत्माका एक अभेद परिणाम है, उसमें भी ये सब प्रक्रियायें घटित हो जाती हैं । जैसे सम्यग्दर्शनका निर्देश यह है कि तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन है, लो निर्देश बन गया । सम्यग्दर्शनके स्वामी हैं नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, देव आदिक चारों गतियोंके जीव व सिद्ध । साधन क्या है ? अन्तरङ्ग साधन तो आत्माका पूर्व परिणाम है और बाह्य कारण ७ प्रकृतियोंका उपशम, क्षय, क्षयोपशम है आदिक रूपसे सम्यग्दर्शनमें भी ये प्रक्रियायें घटित हो जायेंगी । इससे यह भी शंका न करना कि तत्त्वार्थ श्रद्धान केवल मनुष्योंके लिए कहा गया । सबके लिए कहा गया । प्रयोजन आत्मतत्त्वसे है, उसको प्रधानरूपसे देखना, यों वस्तुस्वरूपसे सहित पदार्थका, आत्मस्वरूपका श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है ।

सम्यक्प्रकृत्युदयकी सम्यग्दर्शानोत्पत्तिसाधनताकी आशंका का समाधान—निर्देश, स्वामित्व, साधन आदिक की कुछ घटनायें सुनकर एक आशंका और आ सकती कि यह जो बताया गया कि मोक्षका कारण सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र्य है, सो हमें तो ऐसा विदित होता कि मान लो यह भी है, लेकिन कर्मका उपशम, क्षय, क्षयोपशम अथवा सम्यक्त्व प्रकृतियोंका उदय भी कारण है । शंकाकारकी शंका यह बात अभिप्रायमें होकर है कि सम्यग्दर्शन जैसे मोक्षका कारण है तो सम्यग्दर्शनके साथ कहीं सम्यक्प्रकृतिका उदय भी चलता है । सम्यक्त्वप्रकृतिमें वेदक प्रकृतिका उदय चलता है । सम्यक्प्रकृति चल रही तब मोक्षमार्ग चन रहा । तो मोक्षका कारण सम्यक्प्रकृतिका उदय भी है । फिर क्यों कहा जा रहा कि सम्यक्त्व मोक्षमार्ग है ? यहाँ सम्यक्प्रकृति कर्मका उदय भी मोक्षमार्ग है । ऐसी एक आशंका की गई है । समाधान स्पष्ट है कि शंकाकार सम्यक्प्रकृतिके लक्षणसे अनभिज्ञ है । सम्यक्प्रकृति उसे कहते हैं जिसके उदयसे सम्यक्त्वमें चल मलिन अगाढ़ दोष उत्पन्न हो । यद्यपि इस प्रकृतिके उदयमें इतना सामर्थ्य, अनुमाग नहीं है कि सम्यग्दर्शनका घात कर सके तो भी इनका कार्य सम्यग्दर्शन नहीं, किन्तु दोष है । सम्यक्त्वका धात न कर

अत्यल्पदोषमात्रका कारण होने से इसका नाम सम्यक् पड़ा है । सम्यक्त्वका साधन सम्यक्त्वघातप्रकृतियोंका उपशम क्षय क्षयोपशम कहा है सो उपशम व क्षयके प्रति तो आशंका नहीं, किन्तु क्षयोपशमके प्रति ही आशंका उठ सकती है । सो वहां यह समझना कि उपशम व क्षय तो सम्यक्त्वका साधन है । किन्तु साथ जो सम्यक्प्रकृतिका उदय चल रहा है वह दोषका कारण है । इसीकारण क्षयोपशमको वेदक सम्यक्त्वका साधन कहा है सम्यक्त्वका नहीं । अल्प दोषपर ध्यान न दिया जानेके कारण विशेष विश्लेषण की विवक्षा न होनेसे उपशम व क्षयकी भांति क्षयोपशमको भी सम्यक्त्वका साधन कहते हैं ।

भूलको भूल न समझ सकनेकी बिडम्बना—आत्मापर जो एक अनादिकालीन वासनाका संस्कार बुरा जो लग रहा है, देखिये कितनी बड़ी आफत इस जीवपर पड़ी है तिस पर भी यह आफत नहीं समझता तो इससे भी बड़ी आफत तो यह है भूल भी कर रहे और भूलको भूल नहीं मान रहे और भूलको चतुराई समझ रहे तो इससे बढ़कर मूढ़ता और क्या हो सकती है ? एक गाँवमें कोई बढ़ई रहता था । उसका घर गाँव में सबसे किनारे शुरूमें पड़ता था । उसके द्वारसे दूसरे गाँवोंको जानेके लिए रास्ता भी था । वह बढ़ई बड़ा चालाक था । उसके द्वारसे जो भी मुसाफिर निकलता था उसे वह गलत रास्ता बता देता था ? मानो रास्ता गया हो पूरबको और वह पश्चिमको बता दिया करता था । और साथ ही यह भी कह दिया करता था कि देखो इस गाँवके सभी लोग मजाकिया हैं, उनके कहनेमें न आ जाना, वे सब तुम्हें उल्टी रास्ता बतावेंगे । ऐसी उस बढ़ई की आदत थी । तो एक बार कोई मुसाफिर उसके द्वारसे निकला, बढ़ईसे रास्ता पूछा तो था वह गाँव पूरब दिशामें और बता दिया पश्चिमकी ओर । जब वह आगे बढ़कर गाँवके भीतर पहुँचा तो सोचा कि जरा लोगों से रास्ता पूछकर देखें तो सही कि वह बढ़ई सही कहता था या झूठा सो जब उसने पूछा तो सभी ने पूरब दिशाकी ओर बताया । सोचा कि देखो बढ़ई ठीक ही कह रहा था, सचमुच गाँवके सब लोग मजाकिया हैं । सो वह मुसाफिर उल्टा ही रास्ता चलता गया, किसीकी बात न मानी । जब वह आगे के किसी गाँवमें पहुँचा और वहाँ अपने निर्दिष्ट गाँवका रास्ता पूछा तो उन्होंने बताया कि देखो उस गाँवका रास्ता तो तुम पीछे ही छोड़ आये । पीछेके गाँवसे पूर्व दिशाकी ओर वहाँ से रास्ता जाता है । आखिर उस मुसाफिरको पुनः वापिस लौटना पड़ा, हैरान होना पड़ा । तो मतलब यह है कि जैसे कोई भूल करे और उस भूलको भूल न समझे, सच्चाईकी बात माने तो जैसे वह बड़ी मूढ़ता है इसी तरह हम आपपर

रात दिन विपत्तियां छा रही हैं, विकल्प उठते हैं, पर द्रव्यके विकल्प चलते हैं, बाह्य पदार्थोंकी धुन रहती है, यश, प्रतिष्ठा आदिककी बात चित्तमें आ जाती है। बाहरी पदार्थोंके राग, बाहरी पदार्थोंके सम्बन्धकी बुद्धि यह कितनी बड़ी भारी विपत्ति है। तो आकुलताका नाम ही तो विपत्ति है। अब यह देखो कि हम आपके जो रातदिन मानसिक चर्या चलती है इस चर्यामें आकुलता कितनी बसी रहती है। आकुलता तो रहेगी ही। आकुलताका साधन, धाम, उपाय, आधार तो एक निज सहजज्ञानस्वरूप आत्माकी बेसुधी है। अपने आपका यदि यह विश्वास हो कि मैं तो ज्ञानज्योतिमात्र हूँ, इसके अतिरिक्त मेरा और कोई वैभव नहीं, और मैं कुछ नहीं, इस शुभ ज्ञानस्वरूप आत्माको कोई दूसरा पहिचानने वाला नहीं, किसीसे मेरा मतलब नहीं। यह तो इस प्रकार एक ध्रुव अवस्थित है, जिसकी निगाहमें रहकर वेदान्तियोंने अपरिणामी, अद्वैत, एकस्वरूप ब्रह्म कह डाला है, है यह द्रव्यदृष्टिका एकान्त।

परमब्रह्म स्वरूपका दिग्दर्शन—परमब्रह्मके अपरिणामित्वकी बात दृष्टिमें ठीक है, लेकिन वस्तुका सत्त्व सर्वथा द्रव्यदृष्टिसे जाना गया मात्र नहीं हैं। इनसे अन्तर आ गया। मगर जिसको हम शरण समझना चाहते हैं वह तत्त्व है एक तुरीययाद, जैसा कि वेदान्तियोंने माना है। वेदान्तमें जागृति, सुषुप्ति, अतः-प्रज्ञ और तुरीययाद इन चारकी व्यवस्था की। जागृतिके मायने है अज्ञान, मिथ्यादृष्टि। जो व्यवहारमें जग जाय, बाहरी पदार्थोंमें जो सावधान बना रहे उसे कहते हैं जागृत। यद्यपि धर्मशास्त्रमें सोया हुआ कहते हैं अज्ञानीको और जागृत हुआ कहते हैं ज्ञानीको, लेकिन यहां यह विवक्षा है कि जो व्यवहारके काममें जगा हुआ है वह है जागृत। तो जागृत कहा बहिरात्मस्वरूपको और सुषुप्ति कहा अन्तरात्मस्वरूपको। जैसे सोये हुएको देखते हैं कि उसकी कोई चेष्टा नहीं होती है इसीप्रकार जो व्यवहारमें सोया है उसे कहते हैं सुषुप्ति, यह है एक ज्ञानी जैसी दशा। यहाँ वेदान्त की सिद्धान्त विधिसे बात कही जा रही हैं, और, अन्तः प्रज्ञ है एक सर्वज्ञता, प्रभुता। एक इस आत्माने प्रभुता पा ली। और, तुरीययाद है, जो इन तीनोंसे निराला है। तीनमें जिसका अन्वय है फिर भी इन तीनरूपमें नहीं है किंतु अपरिणामी है, ध्रुव है, वह तुरीययाद। अब देखिये—क्या अन्तर आया बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा और आत्मस्वभाव इन चारोंके वर्णनमें क्या अन्तर आया? अन्तर तो आया केवल इस दृष्टिसे कि वहाँ ये चारों भिन्न हैं। तुरीययाद कोई निराला ही हैं और ये तीन जीवके परिणामन हैं। यहां एक द्रव्य है चेतन और ऐसे अनेक चेतन हैं। सब चेतनका स्वरूप एक समान है किसी भी चेतनका बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा ये परिणामन होते हैं

फिर भी वह चेतन इन तीनमें ही रहता है, तीनसे निराला कहां बाहर जायगा ? किसी न किसी अवस्थामें यह रहता है, यह है एक वस्तुस्वरूप । उसकी दृष्टि नहीं हुई ।

सहजस्वरूपके अपरिचयमें संसारजाल—अज्ञानसे संसारमें रलना चल रहा है । परम ब्रह्मका दर्शन चहुगति दुःखहारी, ऐसा जो अपने आपमें विराजमान शरणभूत अपना सर्वस्व सार जो एक अन्तः भगवान् आत्मा है, उसका प्रेम नहीं, उसकी रुचि नहीं, उसकी धुनि नहीं, उसकी चर्चा नहीं सुनी, उसका अनुभव नहीं किया, उसका परिचय नहीं हो रहा और हो रहा है बाहरके इस जड़ भौतिक पुद्गलका परिचय, जो दिख रहे उनको ही सर्वस्व माना जा रहा है, बस यह ख्याल होनेसे ऐसा अभिप्राय जगनेसे आकुलता ही उत्पन्न होती है । वह मेरा धाम नहीं जो मेरा स्वरूप नहीं, जो वास्तविक परमार्थ द्रव्य नहीं उसका कोई शरण गहे तो उसको तो चोट लगेगी, आकुलता होगी । जो मायाजालरूप है उसमें कोई पड़े, गिरे, उसमें लगाव रखे तो वह तो पतित होगा । बच्चे लोग कभी कभी ऐसी भी बच्चेसे मजाक कर बैठने हैं कि बिना बुना हुआ पलंग हो, जिसमें केवल चार पाये हों, चारों पाटी सिरे हों, सिर्फ रस्सी या निवाड़से बुना हुआ न हो, खाली हो, उसपर एक चद्दर खूब तानकर लगा दी जाय और पायेसे बड़े कच्चे धागेसे बांध दिया जाय और किसी बच्चेसे कहा गया कि आइये महाशय जी इस पलंगपर बैठिए—जब वह अचानक ही उस पर बैठ जायगा तो उसके सिर और पैर एक हो जायेंगे याने वह अपने पंगोंको नमस्कार करने लगता है । देखिये धोखे वाली चीजमें बड़ी दृढ़तासे रुचिपूर्वक बैठनेसे क्या हालत हुई । इसी प्रकार यह सब मायाजाल जो कुछ दिख रहा है इसपर कोई शानसे, रुचिसे, प्रेमसे लगाव रखे, उपयोग रखे तो उसकी दशा क्या होगी ? उसकी बरबादी ही है, देखो यह सब मायाजाल है । जो कुछ दिख रहा है यह क्या परमार्थ है ? परमार्थ तो वह है जो शाश्वत है, जो कभी मिटता नहीं है, इसमें जो एक एक अणु है वह है परमार्थ, और जो ये दिखने वाले स्कंध हैं, मायारूप हैं, अभी मिलकर ऐसा दिख रहा है, किसी कालमें बिछुड़ जायगा । तो जो दिखता है वह सब माया है, धोखा है, उससे मेरे आत्माका हित नहीं है, लेकिन प्रायः करके सभी मनुष्य एक इस मायाजालमें लगे हुए हैं । इसे ही अपना शरण समझते हैं, तो देख लो क्या हालत हो गई ।

भूलको भूल न समझ सकनेसे होनेवाली दुर्दशाका दिग्दर्शन—भूलको भूल न समझने वालेकी क्या दशा होगी ? यह समय बताता है । मरण होगा, इसके बाद जैसी परिणतिका उपयोग बनाया उसके अनुसार गति होगी, वहां जन्म लेना होगा यों बड़ी दुर्दशा है । आज सुन्दर अवसर पाया, पञ्चेन्द्रियां श्रेष्ठ हैं, श्रेष्ठ जाति मिली है, सभी श्रेष्ठ चीजें मिली हुई

हैं तो इस श्रेष्ठताका उपयोग क्यों न कर लिया जाय ? यदि विषय कषायोंमें ही रमा जायगा जो कि पशु पक्षी कीड़े मकोड़ेको भी मिल सकते, इन विषय कषायोंमें ही रमा जायगा तो दशा बुरी है। इससे चेतना चाहिये। श्रद्धा करें आत्मतत्त्वकी। मैं क्या हूँ, इसके निर्णयमें सारा कल्याण बसा हुआ है। बात तो छोटी सी है, विडम्बना बहुत बड़ी है। कोई यह कहे कि इस जीवने ऐसी क्या गलती की कि इसको पेड़, पृथ्वी, जल, अग्नि, कीड़ा मकोड़ा, पशु पक्षी आदिक नाना दशाओंमें पैदा होना पड़ रहा है ? इस जीवको इतना बड़ा दण्ड किस अपराध पर दिया गया ? तो देखो जितने बड़े भगड़े होते हैं उन भगड़ोंका मूल याने भगड़ेकी जड़ बहुत छोटी हुआ करती है। आप भगड़ोंपर दृष्टि डालें। जैसे मानो भाई-भाईमें बटवारा हुआ और उनमें इतनी लड़ाई हुई, भगड़ा हुआ, बात बढ़ी, कोर्ट कचेहरी हो गई और बरबादी दोनोंकी हुई। फिर भी वह सब कुछ सुलभनेमें नहीं आ रहा, वे दोनों बड़े गरीब हो गए। उन दोनोंसे अगर पूछा जाय कि भाई तुम दोनोंके इतने बड़े भगड़ेका मूल कारण क्या है ? तो बतायेंगे कि इसने मुझे मारनेका षड्यन्त्र रचा था ? क्यों रचा था ? (सब सुनते जाइये) अन्तमें कोई क्षुद्र ही बात निकलेगी जैसे कि एक फिट चबूतरेकी जगह थी उसपर लड़ाई हुई थी कि यह मुझे मिले, देखो उतने बड़े भगड़ेकी जड़ निकली जरा सी। घरमें भी जब सास बहूमें देवरानी जेठानीमें भगड़ा चलता है तो उसमें भी मूल बात बहुत छोटी होती है, गाली हुई फिर पार्टी बनी, फिर मार पीट हुई, फिर बहुत बड़ी बात बढ़ गई, पर मूलमें बात कितनी थी ? तो कहेंगे कि मूलमें बात इतनी थी कि सासने कहा कि जरा पानी ला दो, बहूने कहा ला दूंगी। बहुत तुरन्त न लायी, वह किसी काममें लगी रही, बस यह भगड़ेकी जड़ बन गई। इसीतरह यहां भी देखो कि इतना बड़ा जो भगड़ा बन गया- पशुपक्षी कीटपतंगा, आदिकी नाना पर्यायोंमें पैदा हो रहे, दीन हीन बन रहे, तो ऐसे जो अनेक प्रकारके भगड़े लग गए-मरे जिन्दा हुए, आकुलतायें हुई, इष्ट अनिष्ट आदिककी नाना विडम्बनायें हुईं तो इनकी जड़ क्या है। यह जीवसंकलेश परिणाम करता है ना ? तो संकलेश क्यों करता है ? संकलेश यों होता है इस जीवको कि इसने बहुत परिग्रह बांध रखा है। बहुत जायदाद बना रखा है इसलिए संकलेश होता है। इतना बड़ा भारी परिग्रह क्यों बनाया ? इसलिए कि अज्ञानीके विकल्पोंमें इसके बिना कुछ आराम, चैन नहीं मिलती शान नहीं रहती। तुम्हें इतने आराम, शान आदिककी क्यों जरूरत पड़ी ? अजी जब घरमें रह रहे तो चाहिए ये सब बातें ? घरमें क्यों रह रहे ? अजी भूख प्यास आदिकी वेदनायें चल रही हैं, शरीर साथ लगा है इसलिए घरमें रह रहे। शरीर साथ क्यों लगा ? इस लिए कि इस शरीरको मान लिया कि यह मैं हूँ, देखो मूलमें कितनी गलती आयी ? न

किसीको सताया, न मारा, न पीटा, न कुछ किया, केवल यह भाव किया कि यह शरीर मैं हूँ। भला सुनने वाले यह सोचेंगे कि यह तो कोई बड़ी गलती नहीं मालूम होती, फिर क्यों इतना बड़ा दण्ड दिया गया। बस इतनी भर गलती की कि इस शरीरको मान लिया कि यह मैं हूँ। इतना भर मानने का दण्ड इतना बड़ा तो न मिलना चाहिए।...अरे भाई यह तो बहुत बड़ी गलती है, यह तो बड़े भारी पापकी बात है, शरीरमें अहंबुद्धि करना। देखनेमें ऐसा लगता कि यह कोई ज्यादा कसूर नहीं है! कोई ज्यादा गड़बड़ी नहीं की, बस इतना ही सोचा कि यह मैं हूँ।...हां सोचा तो जरूर मगर यह सोचनेका फल इतना बड़ा मिला कि ८४ लाख योनियोंमें, चार गतियोंमें इसे जन्म मरण करना पड़ रहा है और यह दुःखी हो रहा है। तो समझिये यह मिथ्यात्व कितना बड़ा पाप है, शरीरमें आत्मबुद्धि करना कितना बड़ा पाप है, जिसका फल यह संसार है

अनात्मतत्त्वकी अविश्वास्यता—भैया जो समागम पाया इनमें विश्वास करके मत रहो, इनमें विश्वास करनेके फलमें खुदसे ही संसारके महान कष्ट भोगने पड़ेंगे। इसे पाये हुए समागममें मोह मत करो। समागम भी क्या चीज है? सब मायारूप है। पुद्गल-स्कंध मायारूप है, और जो घरमें लड़का लड़की आदिक उत्पन्न होते हैं वे सब भी मायारूप हैं। दो या और अधिक अनेक द्रव्योंका मिलकर जो एक ठाठ सा बनता है वह उसका रूप है जो बिछुड़ जायगा, वह मायारूप है। इस मायारूप चतुर्गति अमरण से, इस कष्टको बनाया किसने? इसने ही अपनी गलती से बनाया। इसे मिटायेगा कौन? खुद ही अपनी गलतीके सुधार से। बच्चे लोग रेतमें घर बनाते हैं। पैरमें कुछ मिट्टी रखी, उसे दोनों हाथोंसे थपथपाया, पैरको धीरेसे निकाल लिया तो वह भदूना एक घर जैसा बन गया। अब उसे देखकर बच्चे लोग बड़े खुश होते हैं...मेरा घर अच्छा बना, मेरा ऊँचा बना...। अगर कोई दूसरा बच्चा उस भदूनेसे लात मारकर मिटा दे तो वह बच्चा उससे लड़ता है, बड़ा दुःखी होता है। इसीतरह यहां की बात है। अपना मायाजाल बनाते हैं, अपना परिणाम बनाते हैं, उसे कोई मिटा दे तो उसपर आप कितना लड़ते हैं। वह बालक जिसने अपना कल्पित घर बनाया था वह यदि खुद ही लात मारकर मिटा दे तो उससे तो वह प्रसन्न ही रहता है। उसमें उसे रंघ दुःख नहीं होता। इसी-तरह जो ज्ञानी जीव है इसने पहिले यह घर बनाया, शरीर बनाया, ठाठ बनाया और अपने ही ज्ञानबलसे उसी पर लातमार दे तो वह तो प्रसन्न रहता है, और अज्ञानी घर बनाये तो वह घर तो मिटेगा ही, चाहे खुद मिटे, चाहे कोई लातमार कर मिटा दे, तो उसके मिटनेपर वह दुःखी होता है, और जो खुद लात मारकर मिटा देता है वह

प्रसन्न रहता है। तो खुदका बनाया हुआ जो घरबूला यह शरीर, ये समागम, ये चीजें, यह भीतरका राग, जो इन चीजोंमें राग बनाया, जो इन चीजोंमें विकल्प बनाया, लगाव बनाया, मोह बनाया, ऐसा लगाव यह खुदने बनाया, भीतरका घर खुदने बनाया, तो खुद ही मिटायेगा तो प्रसन्न हो जायगा और खुद न मिटा सके तो फिर दुःखी होना पड़ेगा। तो कुछ विवेक करना चाहिये और मात्र ऐसा धर्मकि पूजा कर ली। आज भी करली, रोज पढ़ते हैं, आज भी पढ़ लिया, एक दिन चर्या सी बना ली, ऐसा जानकर पढ़ना सुनना, ऐसे धर्मसे तो वह लाभ न मिल पायगा जो लाभ इस आत्माको अनाकुलता—की ओर ले जा सकता है। श्रद्धान करना होगा कि यह बात मेरे लिए ही तो कही गई है। अभी देखो यहां बहुत से श्रोता बैठे हैं, यहां हम कोई ऐसा वर्णन करने लगे कि परस्त्रीसेवन बड़ा पाप है, कलंक है, महा दुष्ट है, महा अधम है, नीच है ऐसी बातका अगर वर्णन करने लगे और यहां कोई परस्त्रीगामी पुरुष बैठा हो तो वह तो उस वर्णनको सुनकर यही सोचेगा कि आज तो महाराज बस हमीको फटकार रहे हैं, इन्हें हमारा कुछ पता हो गया है क्या? इन्हें न जाने क्या हो गया सो आज हमी हमी को कह रहे हैं, यों वह अनेक प्रकारके विकल्प बनायेगा। यह विकल्पबुद्धि की बात चल रही है, यह महा अनर्थ है, असार है, दुःखदायी है, बरबाद करने वाला है, इसमें अज्ञान है, मूर्खता है। राग कर रहे, विकल्प कर रहे, कड़े शब्दोंमें अगर बोले तो ऐसा न सोचना कि आज तो महाराज हमारे लिए कह रहे, और अगर हम सभीकी बात कह रहे तब फिर क्यों नहीं समझ पाते कि यह सब मेरे लिए कहा जा रहा है? सचमुच मुझपर विडम्बना है, क्लेश है, इसे मिटाना चाहिए। इसका उपाय सोचना चाहिए। तो भाई कल्याण मार्ग में चलना चाहते हो तो सबसे पहिला कदम यही है कि इस पाये हुए समागममें सुख का विश्वास मत करो

साधारण विवेकसे हितका प्रारम्भ—यहां बतला रहे है कि सम्यग्दर्शन न भी हुआ हो, ज्ञान न भी हुआ हो, तत्त्वाभ्यास न भी हुआ हो तो भी अपने जीवनकी घटना—ओके आधार पर इतनी श्रद्धा की जा सकती है कि पाया हुआ समागम बेकार है। असार है। भिन्न है, नष्ट हो जाने वाला है। इतना कौन नहीं जान सकता? नहीं अधिक ज्ञान है, नहीं सातों तत्त्वोंका श्रद्धान है, नाम भी नहीं सुना, थोड़ा भी कोई विवेक करे तो इतना जान सकता कि ये पाये हुए समागम अनर्थ हैं। इन समागमों से आत्माकी कोई भलाई नहीं है। तो यह असार है इतनी बात मनमें लायें। फिर आगे बढ़ें। सार क्या है, शरण क्या है? अन्तस्तत्त्वकी बात निरखिये अपने आप सहज अनादि अनन्त अन्तःप्रकाश-

मान है, विराजमान है, यह ही मैं हूँ, अन्य नहीं हूँ। यह श्रद्धा हुई हो, फिर कोई उसे गाली दे तो भी वह बुरा न मानेगा। इसकी गाली मेरेमें नहीं आती। मैं तो अमृत हूँ। इससे मेरा क्या सम्बन्ध ? बल्कि वह विकल्प यों करेगा उसपर दया करने का। कैसा अज्ञान छाया है कि यह अपना सत्यस्वरूप नहीं समझ पा रहा है, बाह्यमें फंसा है, बड़ी विपत्ति में है, बड़ा कष्ट पा रहा है। जिससे आकुलित होकर उसकी कुछ चेष्टा हो रही है। वह तो दयाकी बात सोचेगा। बुरा न मानेगा। यहां भी देखो-जो बड़े पुरुष होते हैं वे लोगों द्वारा बोले गए अपशब्दोंपर विशेष ध्यान नहीं देते, बल्कि उनपर दया करते हैं। तो जो परमार्थसे बड़ा है वह तत्त्वज्ञानी पुरुष अपने आत्माके विशुद्ध अन्तः स्वरूपकी श्रद्धा करने वाला पुरुष उसपर दूसरों की गाली, दूसरोंके अविनयके व्यवहार, दूसरेके प्रतिकूल व्यवहार उनका उसपर कोई प्रभाव नहीं। जो होता है सो हो। वह देख रहा है कि जो होता है सो भला, क्योंकि अगर न हो तो पदार्थकी सत्ता न रही, पदार्थ तो उत्पादव्यय और ध्रौव्यमय है तो उसमें परिणामन तो हुआ ही करेगा। तो परिणामन हो रहा है यह तो सत्त्वकी रक्षाके लिए है, न परिणामन हो तो सत्त्व नहीं रह सकता, इसलिए जो हो रहा है वह ठीक, वह हो रहा। यह तो एक बात इस दृष्टिसे कहा और लोक दृष्टिसे देखो-जो होता है सो ठीक, भलेके लिए। आखिर भूले लोग कहने लगते हैं ना कि नरक जाना भी अपने भलेके लिए है, और इस दृष्टिसे सोचें, जो पाप कमाया था वे पाप मेरे खिर जायेंगे तो देखो भला हुआ ना ? ऐसा होता है कि नरकसे निकल करके कोई भी नारकी पेड़ पौधा आदिमें न उत्पन्न होगा, वह पञ्चेन्द्रियमें ही उत्पन्न होगा तो देखिये वह भी भलेके लिए हुआ। तो हर बातमें बात ठूँटना है अपने भलेके लिए। अगर किसीको हर बातमें भलापन दिखता है तो यह उसकी समझदारी हुई, विवेक हुआ। एक राजा था और एक मन्त्री। मन्त्रीकी ऐसी आदत थी कि वह हर बातमें यही कहता था कि यह भी भलेके लिए, यह भी भलेके लिए। तो एक बार वह राजा और मन्त्री कहीं घूमने जा रहे थे। रास्तेमें राजाने पूछा कि मन्त्री जी बताइये-मेरे जो ६ अंगुलियां हैं, लोग मुझे छंगा कहते हैं सो कैसा ? तो मन्त्रीने कहा—महाराज यह भी अच्छा है, भलेके लिए है सो राजाको गुस्सा आया, सोचा कि देखो कहां तो मैं छंगा और यह कहता कि यह भी भला सो मन्त्रीको राजाने एक कुवेमें ढकेल दिया। खैर वह कुवेमें पड़ गया, जिन्दा रहा। उधर वह राजा आगे बढ़ता गया। वहां एक घटना यह घटी कि किसी दूसरे देशमें नरमेघ यज्ञ हो रहा था सो अग्निमें होमनेके लिए कुछ पंडालोग किसी सुन्दर नरकी खोजमें निकले हुए थे। उन्हें वह राजा दिख गया। वह राजा सुन्दर, हृष्टपुष्ट तो था ही, सो पंडालोग उसे पकड़कर

ले गये, अग्निके पास एक खूंटमें बांध दिया। अग्निमें होमने को ही थे कि किसीको यह दिख गया कि इसके तो ६ अंगुलियां हैं। सो कहा—अरे पुरोहित जी ठहरो, यह पुरुष हवन-कुण्डमें होमने लायक नहीं है, इससे तो यज्ञ खराब हो जायगा। सो दो-चार डंडे मारकर वहांसे भगा दिया। राजा बड़ा खुश होता हुआ उसी जंगलमें आया। वह सोच रहा था कि देखो मन्त्री ठीक ही कह रहा था कि छंगा होना भी भलेके लिए है। यदि मैं छंगा न होता आज अग्निमें होम दिया जाता। भट वह राजा मन्त्रीके पास गया, उसे कुर्वेसे निकाला और अपना सारा हाल कह सुनाया। बादमें राजाने उस मन्त्रीसे पूछा कि बताइये मन्त्री जी हमने आपको कुर्वेमें ढकेल दिया सो कैसा रहा? तो मन्त्री बोला—यहभी भलेके लिए रहा। कैसे?—सुनो, आप तो बच गए छंगा होनेसे, यदि आप मुझे कुर्वेमें न ढकेल देते तो वे पंडालोग मुझे ही पकड़ ले जाते और मैं अग्निमें होम दिया जाता, इसलिए वह भी भलेके लिए हुआ। तो भाई हर जगह हम अपने भलेकी बात निकाल सकते हैं।

मोक्षमार्गकी आत्मपरिणामरूपता—मोक्षका मार्ग क्या है? इसका उत्तर प्रथम सूत्रमें आया था कि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका एकत्व मोक्षका मार्ग है, सम्यग्दर्शन क्या है? इसका उत्तर द्वितीय सूत्रमें कहा गया है। तत्त्वार्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है, मोक्षका कारण जो सम्यग्दर्शन है वह आत्माका परिणाम है, इस बातको सुनकर शंकाकारने यह शंका की थी कि मोक्षका कारण जैसे सम्यक्त्व नामक आत्मपरिणामको कहते हो इसीतरह मोक्षका कारण सम्यक्त्व नामक प्रकृतिके उदयको भी कहो। देखो—क्षयोपशम सम्यक्त्वमें सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय है, फिर भी सम्यक्त्व बना हुआ है, इसका उत्तर दिया गया था कि मोक्षका कारण तो आत्मपरिणाम ही विवक्षित है, क्यों है? आगे खुलाशा कहेंगे, पर सम्यक् प्रकृति तो पर पदार्थ है, कर्म है, पौद्गलिक है, वह तो बाह्य है अतः किसी विकारका ही साधन हो सकता है। पर पदार्थकी परिणति मोक्षका कारण नहीं होती, औपशमिक आदिक जो सम्यग्दर्शन हैं वे ही आत्माके परिणाम हैं, और इसीकारण मोक्षके कारण हैं, पर सम्यक्त्व नामक कर्म प्रकृति पौद्गलिक है। परकी पर्याय है, परकी परिणति है, वह आत्माके मोक्षका कारण कैसे हो सकती हैं? इस विषयपर शंकाकार पुनः कह सकता है कि देखिए—जितने भी कार्य होते हैं वे स्वपर निमित्तक होते हैं, तो उपादान कारण और निमित्त कारण दो कारण हुआ करते हैं कार्यमें। जैसे घड़ा बना तो उसमें मिट्टी तो उपादान कारण है और दंडचक्र आदिक निमित्त कारण हैं। तो जैसे स्वपर निमित्तक कार्य लोकमें होते हैं उसीतरह ये जो सम्यग्दर्शनरूप कार्य है वह आत्मा उपादानके कारणसे हुआ और सम्यक्प्रकृति कर्मके कारणसे हुआ सम्यक्प्रकृति निमित्तके कारण है। ऐसी शंकापर

उत्तर देते हैं कि भाई यह मोक्षमार्गका प्रकरण है, अभिन्न और उपादान कारणभी विवक्षा है। जब आत्मा सम्यग्दर्शनरूप आत्मपरिणामसे परिणामता है उस समय सम्यक्त्वप्रकृति भले ही निमित्तरूप बाह्य कारणरूप सामने रहे तो भी क्षयोपशम सम्यक्त्व वेदक सम्यक्त्वमें रहता है, अन्यमें नहीं, उसे कैसे कारण कहा जायगा ? सम्यक्त्व नाम प्रकृतिको कारण क्यों नहीं कहा ? एक तो वह पर्याय है दूसरे वह उपकरणमात्र है। बाह्य साधनमात्र है, तीसरे सम्यक्प्रकृतिने सम्यक्त्वको सहयोग नहीं दिया किन्तु सम्यक्त्वका मत्त उत्पन्न करनेमें कारण है। तीसरी बात यह है कि मुख्यता तो आत्मपरिणाम की है। आत्मपरिणामके कारण उस मिथ्यात्वके रसका घात हुआ है जिससे सम्यक्त्वप्रकृति बनी है।

वस्तुस्वातंत्र्य होनेपर निमित्तनैमित्तिकयोग बिना विकार पर्यायकी असंभवता—यहाँ यह कर्म सिद्धान्त की बात चल रही है। सहसा यह प्रश्न हो सकता कि दुनियामें जो इतनी विडम्बनायें दिखती हैं—धनी होना, गरीब होना, मूर्ख होना, पंडित होना, दुःखी होना, सुखी होना आदिक ये विडम्बनाये क्यों हुई ? आत्मा तो एक समान स्वरूप वाला है, ये विडम्बनायें किस कारण से हुई ? आत्माकी ओर से स्वयं ये विडम्बनाये नहीं हो सकती, क्योंकि ये विडम्बनायें विनाशीक हैं, क्योंकि विनाशीक चीजमें स्वयं उपादान निमित्त नहीं होता तब कोई परउपाधि यहाँ कारण हैं देखो परउपाधिसबको मानना पड़ा। कोई मानता है कि इस जीवके सुख दुःखको ईश्वर करता है। कोई मानता है कि जीवके सुख दुःखको कोई बाहरी लोग करते हैं। तो सिद्धान्त कहता है कि जीवके सुख दुःखका निमित्त कारण कर्म है। कर्म यद्यपि अपनी परिणतिसे जीवके सुख दुःख नहीं कर सकता, क्योंकि वह परपदार्थ है। जीव भिन्न चीज है लेकिन ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक योग है कि जिसप्रकारके कर्मका निमित्त हो उसप्रकार का आत्मामें परिणाम होता है। देखो अनेक दृष्टान्त सामने हैं—आगपर रोटी धरते हैं तो रोटी सिक जाती है। वहाँ यह बात कहना कि जब रोटी सिकने की पर्याय आयी तब आग हाजिर हुई, यह बात तो एक हँसी की है। निमित्त नैमित्तिक योग होनेपर भी वस्तुकी स्वतंत्रता को निरखो। वस्तुस्वातंत्र्य होनेपर भी विकार परसंग बिना नहीं हो सकता है। रोटी अपने आपमें उस गर्म पर्यायको प्राप्त हुई, पक्व पर्यायको प्राप्त हुई आगने अपना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रोटीमें डालकर उसकी परिणति नहीं की। यह बात सही है, पर उसमें यह कहना कि उसमें यह पर्याय पैदा होती है तब आग हाजिर हो जाती है। ऐसा होनेमें क्या होता कि रोटी सिकना हो गया निमित्त कारण और आग का हाजिर होना हो गया नैमित्तिक कार्य ! उल्टी बात हो जाती है। जब आगका सन्निधान हुआ तब रोटीमें पक्व पर्याय होता है। इससे

स्पष्ट है कि आग है निमित्त और रोटी सिकना है उपादान और उल्टा जब तब बतलाये कि जब रोटी बनती है तब आग हाजिर होती। इससे यह जाहिर है कि रोटी बनना हुआ निमित्त और आगका आना हुआ नैमित्तिक कारण। फिर निमित्त नैमित्तिककी कोई व्यवस्था नहीं रहती। यद्यपि निमित्त और उपादान दोनों एक साथ हैं। एक साथ होनेपर भी उल्टा निमित्त नैमित्तिक नहीं घटाया जा सकता। वह सही घटाया जा सकता और लोककी यह बात प्रिद्ध भी है। तो बात क्या हुई कि वस्तुकी स्वतंत्रता न मिट जाय इस डरके कारण निमित्त नैमित्तिक भावका खण्डन करना पड़ा। लेकिन यह नहीं समझा कि निमित्त नैमित्तिक भाव बराबर रहते हुए वस्तुकी स्वतंत्रता पूर्णतया ठीक रहती है। स्वतंत्रताका कोई घात नहीं कर सकता। वस्तु स्वातंत्र्य मिटने के भयसे निमित्त नैमित्तिक का खण्डन करना भी ज्ञानकी निर्बलता है। बात यथार्थ है। तो ऐसा नहीं है कि जब आत्मामें सम्यग्दर्शन पर्याय होनेको होगी तब कर्मका क्षयोपशम हाजिर हो जायगा। यों नहीं किन्तु अपनी-अपनी योग्यतासे दोनों की दोनों पर्यायें हो रही हैं। आत्मामें आत्माकी योग्यता से सम्यग्दर्शन पर्याय हो रही है। कर्ममें कर्म की योग्यतासे कर्मकी क्षयोपशम पर्याय हो रही है, पर निमित्त नैमित्तिक भाव यह है कि कर्मके क्षयो-पशमका निमित्त पाकर जीवके सम्यग्दर्शनरूप पर्याय हुई। स्वतंत्रता नहीं मिटी। वह तो वस्तुका सत्त्व है, प्राण है। स्वतः सिद्ध वस्तु है। सत् परिणामनशील है। पर प्रत्येक वस्तु अगर स्वतः परिणामे, अपने आपके उपादान निमित्तसे परिणामे तो वह शुद्ध रूप परिणयेगी। कभी विकार रूप नहीं परिणम सकती। विकाररूप परिणामनमें परपदार्थ निमित्त होता है।

आत्महितप्रयोजनकी दृष्टिसे नयोंके उपयोगकी बुद्धिमानी—अब दूसरी बात प्रयोजन की देखिए—प्रयोजन क्या है? मेरेको शान्ति मिले, मुक्ति मिले, मोक्षमार्ग मिले, लेकिन वह मिलती है स्वभावदृष्टिसे। तो आपको एक स्वभावदृष्टिकी शिक्षा लेना है। स्वभावदृष्टिकी बात प्राप्त करना है। कैसे मेरेको स्वभावदृष्टि हो, तो स्वभावदृष्टिके लिए परमशुद्ध निश्चयनयकी दृष्टि करके आत्माके उस ज्ञानमात्र स्वभावको एकदम सामने उपयोगमें ले लेना यह तो उसका एक डाइरेक्ट (सीधा) काम है। परमशुद्ध निश्चयनयके आलम्बनसे आत्माके परमशुद्ध स्वरूपका दर्शन होता है और व्यवहारनयसे जहां निमित्त नैमित्तिक भावका वर्णन किया जाय उस वर्णनसे कैसे स्वभावदृष्टिकी शिक्षा मिलती है सो सुनो। जहाँ यह देखा कि परिणति तो विकार रूप है, यह इस मुक्त आत्माकी योग्यतासे हुआ, आत्माकी पूर्व पर्याय मिलकर नवीन पर्याय हुई, ठीक है, पदार्थ स्वयं सत् है, स्वयं परिणामनशील है इसी कारण

उसमें अपने आप उत्पाद व्यय होता है, पर स्वभावके प्रतिकूल किसी पर्यायिका उत्पाद तब होता है जब कोई परउपाधि सामने रहती है। यहां एक अवधिज्ञानियोंकी दृष्टिसे या सर्वज्ञने जाना इस दृष्टिसे यह कह सकते कि पदार्थमें जब जो कार्य होता है, देखा गया है, जब वह कार्य होता है और उस समय जो निमित्त होता है वह निमित्त भी होता है तो निमित्तका होना भी निश्चित है उपादानमें पर्यायिका होना भी निश्चित है। ऐसा कहने पर भी यहाँ यह बात देखें कि यह वृत्त घटनाकी ओर से, व्यवस्थाकी ओरसे नहीं कहा गया है, घटना और व्यवस्थाकी ओरसे तो यह बात है कि जब जिसका निमित्त सन्निधान पाता है तब उसके अनुकूल द्रव्यमें वह बात होती है। मतलब यह है कि यह बात भी ठीक, वह बात भी ठीक। इसमें से एक बातको ओझल करना यह एक नयचक्रसे वहिष्कृत बात है। निमित्त नैमित्तिकके वर्णनसे हम स्वभावदृष्टि किस तरह पाते हैं यह देखिये—ये विकार कर्मप्रकृतिका निमित्त पाकर हुए, ये मेरे स्वभाव नहीं हैं। ये नैमित्तिक हैं, निमित्तका सन्निधान पाकर हुए इसलिए ये मेरे नहीं हैं, इसलिए इन्हें दृष्टिमें न लें, ये पौद्गलिक हैं, विकार हैं, मैं तो एक ज्ञानमात्र स्वभावी हूँ, इसमें निमित्त नैमित्तिकके वर्णनसे स्वभावदृष्टिसे हमें प्रेरणा मिली और जब हम यह दृष्टि करते हैं कि आत्मामें आत्मपरिणतियां होती रहती हैं, बस यह ही हमें देखना है, इसतरह भी कोई देखे तो भी उसे स्वभावदृष्टिकी बात आ सकती है। प्रयोजन है स्वभावदृष्टिका वस्तुस्वातंत्र्यके कथनसे भी स्वभावदृष्टिको प्रेरणा मिलती है। निमित्त नैमित्तिकदृष्टिसे भी हमें स्वभावदृष्टिकी प्रेरणा मिलती है।

प्रमाणसे विज्ञात अर्थ किसी भी नयसे निहारनेका श्रृङ्खार—जब हम एक निश्चय दृष्टिकी बात करें अर्थात् जीवमें पर्याय हो रही है, होती जा रही है, जब जो हो रही है। यों एकके वर्णनमें निश्चयदृष्टि की बात करें तब, निश्चयदृष्टि की बात करके हम स्वभावदृष्टिकी प्रेरणा लें, उस समय बीचमें निमित्तकी बात कह देना अनुयुक्त बात है। उस प्रसंगमें विधिया निषेध किसी भी रूपमें निमित्त न बोलें क्योंकि तुम उस समय निश्चयके मूडमें चल रहे हो। अगर निमित्तकी बात वहां बोलते तो तुम्हें व्यवहार दृष्टिमें चलकर बोलना चाहिए। निश्चयकी दृष्टिमें चलकर निमित्त की कथा न करें। वह भी एक नय है, आप उस नयसे केवलका दर्शन करते रहें, व्यवहारकी बात न चले, निमित्त नैमित्तिककी बात न करें। क्योंकि उस समय दृष्टा निश्चयके मूडमें हैं, लेकिन एक बात यह ख्यालमें रखनी होगी कि प्रमाणसे ग्रहण किये गये पदार्थके बारेमें एक दृष्टि लेने का नाम नय है न कि एक दृष्टिका निर्णय करके उस दृष्टिमें अटल रहनेका नाम नय है। वह कुनय है। पहिले प्रमाणसे ग्रहण करो पदार्थ, फिर एक दृष्टिसे निरखते रहें तो कोई

हानि नहीं, सर्व नयोंसे, प्रमाणसे कि वस्तुका स्वरूप क्या है, समझनेके बाद आप केवल परमशुद्ध निश्चयकी दृष्टि ही बनाये रहें, निरन्तर बनाये रहें वह तो बड़ी उत्तम बात है, यह तो बड़ी पूज्य बात है। अथवा अशुद्धनयकी दृष्टि भी बनाये रहें, कोई बात नहीं है, अशुद्ध निश्चयकी दृष्टिमें यह बात आती है कि जीवमें जो विकार होता है वह जीवके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे होता है, किसी परपदार्थकी परिणतिसे नहीं होता है, जीवके परिणाम जीवके ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे होते हैं। वह क्रोध, वह विकार, वह मलिनता किसी कर्मकी परिणतिसे नहीं हुई, यह भी समझनेके लिए बोला है। अशुद्ध निश्चयकी दृष्टिसे इतना भी नहीं कर सकते। निश्चयकी दृष्टिसे दूसरेकी बात करना मना है, बात असलमें यह है, क्योंकि निश्चयदृष्टि केवल एक पदार्थको ग्रहण करती है। तो अशुद्ध निश्चयदृष्टिसे जब तक रहे हों तब तक एक ही को तका, जीवमें विकार हुआ, जीव द्वारा हुआ, जीवकी पूर्व पर्याय बिलीन हुई, उत्तर पर्याय निष्पन्न हुई, जीवमें ही होती चली जा रही है, निरखते जावो, कोई दोषकी बात नहीं है, क्योंकि वह एक निश्चयदृष्टिसे मूड बना। मगर निश्चय-दृष्टिका तो मूड बना और इतनी बात कहें कि लो जब यह विकार होनेको हुआ तब कर्म हाजिर हो गए। अरे दूसरेकी चर्चा करना निश्चयदृष्टिमें होती ही नहीं। जैसे किसी गाड़ीमें ऊंट और गधा जोड़ दिया जाय तो वह असंगत बात है, मना नहीं है। जैन सिद्धान्तका कितना स्पष्ट वर्णन है। यहां यह वर्णन चल रहा है कि निमित्त नैमित्तिक भाव होनेपर भी वस्तु स्वतन्त्र है। वस्तुस्वरूपकी बात दिखाने वाला निश्चयनय है। निमित्त नैमित्तिककी बात कहते तो फिर व्यवहारकी बात न करो। श्रद्धामें रखो उस बातको, क्योंकि प्रमाणसे जाना हुआ है, इसलिए उस बातको धारणामें रखो कि यह भी एक तथ्य है, मगर बात करना केवल एक द्रव्यकी, जबकि तुम निश्चयदृष्टिके मूडमें आये हो। शुद्ध निश्चयके मूडमें हो या अशुद्ध निश्चयकी दृष्टिमें आत्मामें विकार हो, आत्मासे हो, आत्माकी परिणतिसे हो, आत्मा की पूर्व पर्याय बिलीन हो, विकारको देखो-अशुद्ध निश्चयसे देखो, एक आत्मामें देखो, आत्मासे ही सब बातें जोड़ो, उसमें दूसरे पदार्थका नाम न लो, क्योंकि निश्चयनयके मूडमें हो अगर प्रसक्तका नाम लेते तो वह बन गई व्यवहारकी दृष्टि। विरोध किसी बातमें नहीं आ रहा, लेकिन बातके पीछे विरोध है। बातमें विरोध नहीं है, विरोध कहाँसे आया? बतलावो जब कि अन्य दार्शनिकोंके द्वारा कही हुई बातोंसे भी जब नयचक्र सिद्ध कर सकते हैं तो बतलाओ जैन जैनमें जो बातें हो रही हों, उन बातोंको सिद्ध करनेमें कोई कठिनाई है क्या? तो जरा न्यायसे चलें, अन्याय न करें। न्याय यही है कि जिस दृष्टिके मूडमें हों उसकी ही बात निरखें। कोई मूड बनाकर बोले तब कुछ और बतलावें साथमें दूसरी दृष्टि करें तो यह

बात ठीक नहीं बैठती, हां लावें दोनों बातें, पर दोनों लावें तो प्रमाणका मूड बनावें तो बात ठीक बैठ जायगी ।

स्वभावदर्शन और धर्मपालनसे आत्माकी शोभनता—आपको चाहिये क्या ? स्वभाव दर्शन, इसमें तो कोई विवाद नहीं । जब संसारके दुःखोंसे छूटनेकी अभिलाषा है तो स्वभाव-दर्शनके बलसे ही हम दुःखोंसे छूट सकते हैं । परिजन, धन सम्पदा वैभव इनके लगावसे हम दुःखोंसे छूट नहीं सकते । जो सामने एक समस्या बनाये रहते कि भाई जब निर्धन थे तब सोचते थे कि कुछ धन हो जाय तो फिर सुखसे रहेंगे । अब धन हो गया तो शान्ति तो कुछ मिली नहीं, बल्कि पहिलेसे भी अधिक दुःखी हो गए । इन बाह्यपदार्थोंसे लगाव लोग क्यों रखते हैं ? यों रखते कि उनके अज्ञान है, उन्होंने भ्रम कर रखा है कि बाह्यपदार्थोंके लगाव से, सम्बन्धसे, समागमसे सुख शान्ति होती है । सुख शान्तिका कारण तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्य है । सुख शान्तिका कारण बाहरी पदार्थोंका लगाव नहीं । देखो शोभा भी धर्मके सम्बन्धसे है इस जीवनकी, मोटा दृष्टान्त ले लो, विवाह शादी होती है, एक दो दिन बारात ठहरती है । वहां विवाह शादियोंमें नेगचार होता है । अब अमुक काम हुआ, अब अमुक काम हुआ, अब तैल चढ़ाते, अब टीका लगाते, भावर भी करते, विवाहके सब काम भी करते और धर्मकी दो चार बातें भी उस प्रसंगमें चलती हैं । मन्दिरमें जाना, कुछ चढ़ाना, विधान करना आदिक जो भी धर्मके काम चलते, उनमें धर्मका काम यदि बिल्कुल निकाल दिया जाय, केवल विवाह-विवाहकी ही बात रखी जाय तो उस कामकी शोभा नहीं जंचती । धर्मकी एक भी बात अगर बीचमें आ गई तो उसकी शोभा बन जाती है । कोई भी काम हो । घरमें रहते हुए आप कितने ही बड़ेसे बड़े काम करते जाइये, रातदिन वही कमाई धमाई खाना पीना ऐश आराममें ही अगर जीवन बीते, मन्दिर जाने, जाप जपने, भगवानकी भक्तिमें रहने आदिके काम न करें तो इससे यह समझिए कि हमारा जीवन अंधेरे में है, उस जीवनकी कोई शोभा नहीं है, न वहां जीवनका कोई श्रृंगार है । एक बात और समझिये—इस तरहसे कोई जी भी नहीं सकता । जितने मनुष्य हैं, भिखारीसे लेकर राष्ट्रपति तक सबका जीवन किसी न किसी रूपमें कुछ न कुछ समय धर्मके प्रसंगोंमें बीतता है । अगर धर्मके प्रसंगमें न आये तो जीना कठिन हो जायगा । एक भी ऐसा मनुष्य बताओ जो धर्मके प्रसंगमें एक भी बात किसी भी क्षण न करता हो ? चाहे ढंगसे न करे । बात यह चल रही है कि जीवनकी शोभा धर्मसे है ।

सम्यक्त्वकी मोक्षमार्गरूपता—मूलमें यह बात चल रही थी सम्यग्दर्शन होता है, मोक्षका कारण बनता है, सो सम्यक्त्व प्रकृति भी तो साथ रहती है उदयमें तो वह भी

कारण कहलायगा तो उसके उत्तर अनेक होंगे। वह सम्यक् प्रकृति कारण यों नहीं कि वह परपदार्थकी पर्याय है, सम्यक्प्रकृति कारण यों नहीं कि वह बाह्य उपकरण मात्र है, निमित्त मात्र है। सम्यक्त्वप्रकृति मोक्षका कारण यों नहीं कि वह तो सम्यक्त्वमें दोष लगानेका कारण है, न कि सम्यक्त्वकी उत्पत्तिका है। सम्यक्त्वप्रकृति कारण यों नहीं कि सम्यक्प्रकृति तो खुद आत्मपरिणामके कारण रसघातसे बनती है, मूलमें कर्म तो न हैं, पर उनके और भेद करनेसे १४८ भेद हैं, उन १४८ प्रकृतियोंमें ७ प्रकृतियां सम्यक्त्वके घातकी निमित्त हैं। अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति और मिथ्यात्व ये ७ प्रकृतियां सम्यक्त्वके घातकी निमित्त हैं। इनका उदय आदिक होने पर सम्यक्त्व नहीं होता। अब ये ७ प्रकृतियां हैं तो इसमें से इस जीवके द्रव्यसे अनादिसे ७ प्रकृतियां न रहीं, ५ रहीं—मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ। ७ नहीं रहतीं गांठमें, फिर ये ७ आती कैसे हैं? जिस समय इन ५ प्रकृतियोंका उपशम होता है, अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके उस कालमें औपशमिक सम्यक्त्व होता है, तो पहिले समयमें यहां ही रहा औपशमिक सम्यक्त्व और यहां ही हो रहे मिथ्यात्वके टुकड़े। जैसे चक्कीमें चने दले जाते हैं तो उन चनोंकी तीन हालतें होती हैं—कुछ दालके रूपमें और कुछ आटा, भुसीके रूपसे निकलने हैं। तो जैसे चना दलनेपर चनेकी तीन बातें हो जाती हैं इसीतरह उपशम सम्यक्त्वके परिणामके द्वारा मिथ्यात्वके दले जानेपर तीन भाग हो जायेंगे। कुछ तो मिथ्यात्व ही रह जाते हैं, कुछ दलकर सम्यग्मिथ्यात्व हो जाते, यों दो भाग हो गये और कुछ आटा रूप हो गए, वह हो गई सम्यक्प्रकृति। तो सम्यक्प्रकृति बनी कैसे? उस मिथ्यात्वमें जो रस पड़ा था उमका घात हुआ तब सम्यक्प्रकृति बनी, तो सम्यक्प्रकृति बननेमें निमित्त है आत्मपरिणाम, फिर तो उस सम्यक्प्रकृतिको सम्यक्त्वका कारण क्यों न कहा? रसघात हुए सम्यक्त्वके परिणाममें जातित्व तो मिथ्यात्वका है, दर्शनमोहका है। इस कारण यह नहीं कह सकते कि सम्यक्त्वप्रकृति कारण है मोक्षका। सम्यक्प्रकृति मोक्षका कारण नहीं है, क्योंकि सम्यक्प्रकृति तो हेय है, भिन्न है, छूट जाती है मगर आत्मपरिणाम सम्यग्दर्शनरूप परिणाम नहीं छूटता। साथ रहता है, जीवसे अभिन्न है इसलिए जीवके मोक्षका कारण सम्यग्दर्शन परिणाम है। सम्यक्त्व परिणाम ही मोक्षका कारण है, सम्यक्प्रकृति मोक्षका कारण नहीं है, क्योंकि प्रधान तो सम्यग्दर्शन परिणाम है। बाहरी चीज तो केवल बाह्य साधन है, सो वह सम्यक्प्रकृति तो दोषका उपग्राहक है न कि सम्यग्दर्शन उत्पन्न करनेमें उपग्राहक है। आखिरी बात यह है कि सम्यग्दर्शन है निकटकी चीज, आत्मासे अभिन्न वस्तु, वह तो मोक्षमार्ग है, वह मोक्षका कारण है, किन्तु सम्यक्प्रकृति मोक्षका कारण नहीं है। इस तरह यहां तक यह बात आयी कि

वस्तुस्वरूप सहित पदार्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। जो पदार्थ जिस तरहसे अवस्थित है उसका उस रूपसे श्रद्धान करना सम्यग्ज्ञान है, इस बातको संक्षेपमें इतना मान लीजिए कि निजके रूपसे निजका श्रद्धान करना, परके रूपसे परका श्रद्धान करना यह सम्यग्दर्शन है। जब समाविशतकमें पूज्यपाद स्वामीने मंगलचरण किया तो उन्होंने कहा कि जिसने आत्मा को आत्मा रूपसे जाना और परको पररूपसे जाना ऐसे अक्षय अनन्त ज्ञान वाले सिद्ध भगवानको मैं नमस्कार करता हूँ। तो निजको निज, परको पर जान, फिर दुःखका नहीं लेश निदान।

आत्मश्रद्धान बिना परतंत्रताके बलेशसे छुटकाराका अभाव—प्रयोजनभूत वस्तुका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। अपनी शान्तिके लिए प्रयोजनभूत वस्तु कौन है ? स्वयं यह निज आत्मा। उस निज आत्मामें भी प्रयोजनभूत है शाश्वतस्वभाव, उसका दर्शन होना, परिचय होना, अनुभव होना, अर्थात् ज्ञानमें यह चित्स्वभाव आये और यही ज्ञान में कुछ क्षण बना रहे, ऐसी स्थितिमें जो स्वयं अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है वह कहलाया प्रयोजनभूत वस्तुका यथार्थ अनुभव। तो साक्षात् प्रयोजनभूत है यह समयसार और उसके परिचयके लिए प्रयोजनभूत है—जीव, अजीव, आश्रय, बंध, सम्बर, निर्जरा, और मोक्ष तत्त्वका श्रद्धान, इसलिए ये ७ तत्त्व भी मोक्षमार्गके प्रयोजनभूत हैं। प्रयोजनभूत में ही प्रयोजनभूत है। जो अपना प्रयोजनभूत आत्मतत्त्व है उसके परिचयके लिए जो प्रयोजनभूत है वह भी प्रयोजनभूत कहलाता है। ऐसे आत्मवस्तुका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। आत्मतत्त्वके श्रद्धान बिना यह जीव अनादिसे अब तक परतंत्र रहा आया है। बाह्य वस्तुमें आत्मरूपसे इसका श्रद्धान रहा। जिस परवस्तुमें इसने आत्मरूपकी श्रद्धा की, उसके आधीन रहा। जिसको परिवारसे, घरसे, वैभवसे मेरेको सुख है, बड़प्पन है, हित है, मौज है इसीमें उसका महत्व है, ऐसी जब श्रद्धा हो तो यह परिजन आदिकके आधीन हो गया। निश्चयसे तो आत्मा परके आधीन होता ही नहीं है अपने आपके कषायभावके आधीन है, पर कषाय भावका जो आश्रयभूत परवस्तु है उसकी ओर चूँकि उपयोग लगा है और अनुभव करता है परवस्तुके लगावमें परतंत्रताका इसलिए उस आश्रयभूत परवस्तुके भी यह आधीन रहता है। यों अज्ञानमें यह जीव आश्रयभूत वस्तुके आधीन है, अथवा आश्रयभूत वस्तुको विषय करके जो उपयोग बना, कषाय बनी, राग बना, विकल्प हुआ उस विकल्पके आधीन है, ऐसी परतंत्रता यह जीव अनादिकालसे भोगता चला आया है। कभी इसने स्वरूपका अनुभव नहीं किया। मैं स्वयं आनन्दस्वरूप हूँ, स्वयं सर्वस्व कल्याणस्वरूप हूँ। मेरा किसी परवस्तुसे सम्बन्ध नहीं है, किसी परवस्तुकी

मेरेमें आधीनता नहीं, ऐसा अपने आपमें कभी विचार नहीं किया। पराधीनता अनर्थ है, व्यर्थ है और बरबादी एवं कष्टका कारण है। पराधीन भावमें सार कुछ नहीं है। जिस परवस्तुकी ओर दृष्टि देकर हम पराधीन हो रहे हैं वह असार है, विनश्वर है।

किसीका दूसरेसे लगावकी वस्तुतः अशक्यता—परवस्तु विनाशीक है, वह अपनी ही योग्यतासे अपने आपके अनुकूल परिणामेगा। मेरेको कौन चाहता है? मेरे लिए कौन क्या है? सबकी अपने आपकी शान्तिके लिए धुन रहा करती है। वहां जिस किसी पुरुषको जिसमें अधिक विश्वास हो कि मेरा लड़का आज्ञाकारी है, मेरेको चाहता है, वह भी धीरतासे विचार करेगा तो मालूम होगा कि कोई लड़का किसी दूसरेकी आज्ञा नहीं मान सकता। वस्तुस्वरूप ही ऐसा है। आप मिथ्या कल्पनायें बनाते हैं कि यह लड़का मेरी बात मानता है। अरे उस लड़केको खुद अपने आपमें विकल्प है, स्वार्थ है, कषाय है, भावनायें हैं, वासनायें हैं, वह समझता है कि मेरेको सुख मेरेको शान्ति इस प्रकारकी बात माननेमें ही मिलेगी। ऐसे विश्वासके कारण वह बात मानता है। कहीं आपके नातेसे वह आपकी बात नहीं मानता। प्रत्येक पुरुष अपनी अपनी कषायसे अपने आपकी चेष्टा करता है। कोई भी किसीको चाहने वाला नहीं है। यह तो व्यर्थका ख्याल है कि अमुक कोई मुझे चाहता है। यह तो कह रहे पर्यायिकी बात और द्रव्यकी बात देखो तो इसका तो किसीको परिचय ही नहीं! चाहेगा क्या। और चाहेगा तो उसका अर्थ हुआ कि उसने अपने ही स्वरूपको चाहा। कोई वस्तु किसी अन्य वस्तुसे कोई सम्बन्ध नहीं रख पाती, क्योंकि सबका सत्त्व अपने आप स्वतःसिद्ध है। तो जब ऐसा वस्तुस्वरूप है कि कोई भी पदार्थ उसका कुछ नहीं लगता, फिर क्यों किसी परवस्तुमें लगाव और धुन की जा रही है? यह सब मोहमें करना पड़ रहा है। मोहकी शराबमें बेहोश हुआ यह प्राणी अटपट काम करता है। जैसे शराब पीकर बेहोश हुआ मनुष्य बड़े अटपट कार्य करता है। वह स्वयं तो नहीं समझ पाता, पर जो शराब नहीं पिये हैं वे जानते हैं कि देखो यह कैसा अटपट कार्य कर रहा है, इसीतरह ये संसारके मोही प्राणी मोहरूपी शराबका पान करके अटपट कार्य कर रहे हैं, वे स्वयं तो नहीं यह बात समझ पाते, पर सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष जानते हैं कि अहो—संसारके ये प्राणी मोहमें कैसा अटपट कार्य कर रहे हैं। तो यहाँ ही ये परतंत्र हो रहे हैं। पंचेन्द्रियके विषयोंकी ओर अपनी दृष्टि लगाना, बस इसीमें पराधीनता है। वास्तविक स्वतंत्रता तो तब है, जब विषयोंकी आशा न रहे, किसी भी परपदार्थकी आधीनता न रहे, किसी प्रकारका चित्तमें विकल्प न रहे, मोह न रहे, केवल ज्ञाता द्रष्टा रहे, अपने ज्ञानस्वरूपका अनुभव करे, ऐसी ही स्थिति कहलाती है

वास्तविक स्वतंत्रता । ऐसी स्वतंत्रता इस जीवने अब तक नहीं पायी । इसका परिचय न हुआ, अनुभव न हुआ इसी कारण यह प्राणी बाह्य वस्तुओंमें, काम भोगोंमें अपना लगाव रखता है और यह उसमें परतंत्र होकर अपनेको सुखी अनुभव करता है ।

विनश्वर समागममें अविनश्वर प्रभुताका दर्शनकर वास्तविक आजादी पानेका प्रयास—मनुष्यदेह पाया, श्रेष्ठ मन पाया तो इस बड़ी विभूतिका कब सदुपयोग किया जायगा ? इसका सदुपयोग यह कि समग्र बाह्य वस्तुओंको भिन्न आसार जानकर उनमें प्रीति न करें, उनमें मोह न बनायें, उसको अनर्थ समझें । यदि बाह्य वस्तुमें मोहदृष्टि होती है तो उसे अनर्थ समझें, उस परसे लगावको हटाकर निज आत्मतत्त्वमें अपनी अनुभूति बनायें, यह हो गई वास्तविक आजादी । देखो जैसे देशवासियोंने आजादी प्राप्त की है तो उस आजादीके लिए इन्हें क्या करना पड़ा ? तो नेताओंको दो उपाय बनाने पड़े थे—(१) सत्याग्रह और (२) असहयोग । देखो जिन्होंने उस आजादीके आन्दोलनका समय देखा है उन्हें भली प्रकार विदित है कि ये आजादी इन्हीं दो उपायोंसे प्राप्त कर सके । सत्याग्रह क्या ? जो सत्य है उसका आग्रह करना, देशके लिए जो हितरूप था, जो सत्य था, उसका आग्रह था, मुझे आजादी ही पाना है, और असहयोग क्या कि जो विदेशी धन है, विदेशी चीजें हैं उन्हें न अपनायेंगे, अपनी स्वदेशी चीजें अपनायेंगे । यह था उनका असहयोग । ये देशवासी उस समय और कुछ तो कर नहीं सकते थे, सभी ब्रिटिश शासनके आधीन थे, उनका कुछ अधिकार न था, वे किसीसे लड़ सकते नहीं थे । तो उन्होंने ये दो उपाय काममें लिए थे—सत्याग्रह और असहयोग । इसीप्रकार कर्मशासनमें पराधीन हुए इस जीवको इस परतन्त्रतासे बचने और आजादी हासिल करनेका उपाय हो सकता है तो सत्याग्रह और असहयोग । सत्याग्रह क्या ? जो सत्य है उसका आग्रह करके रह जाना । यह हूं मैं, यह है मेरा, यह ही मुझे चाहिए, सत्य ही चाहिए । सत्य क्या है ? सति भवं सत्यं । जो सत्में हो सो सत्य है । सत् हूँ यह मैं आत्मवस्तु । इस निज आत्मवस्तुमें जो सहज है उसका नाम है सत्य । इस निज वस्तुमें सहजभाव क्या है ? सहजभावमें यह आता ज्ञानस्वभाव, यह चित्स्वभाव, यह अखण्ड चैतन्यभाव । इसका आग्रह करना होगा । यह हूं मैं । यह ही है आनन्द धाम । यह ही है मेरा शरण । मैं तो इसमें ही रहूँगा, और मुझे कुछ न चाहिए । यह तो हुआ सत्याग्रह और असहयोग क्या हुआ कि जो मैं नहीं हूँ, जो अनात्मवस्तु है, जो नैमित्तिक है, जो परवस्तु है, मानो कर्मकी दयापर जो चीज प्राप्त हुई है ऐसे ये वैभव, परिजन, यश देह, विषय साधन, सांसारिक सुख, जो कुछ भी ये वैदेशिक चीजें हैं, नैमित्तिक चीजें हैं, परभावकी चीजें हैं इनमें हो जाय असहयोग, यह मुझे न चाहिए, और वस्तु जो आये हों उनको दूर करें तो ऐसा

परवस्तुओंसे असहयोग हो तो इस जीवको स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकती है। जैसे आजादीके जमानेमें कई लोग केवल मुखसे बोलने वाले थे, वे करना धरना कुछ नहीं चाहते थे तो उनका क्या हाल हुआ ? जब वे गिरफ्तार हुए तो जरा सी देरमें माफी माँगकर आ गए। वे अपने संकल्पमें दृढ़ न रह सके, ऐसे ही समझिये कि जो केवल मुंहसे बोलने वाले हैं, उस पर चल नहीं पाते, चित्तमें उसकी रुचि नहीं, उस मार्गकी मनमें भावना नहीं, वे बोल बोल कर ही रह जाते हैं और पद-पद पर फिसल जाते हैं, तो जिनका एक दृढ़ संकल्प है कि मेरे को तो सत्यकी प्राप्ति करना ही है वे असहयोग और सत्याग्रहके प्रतापसे अपने आत्माकी आजादी पा सकते हैं। वह आजादी मिलती है वहाँ इस आजादीका प्रारम्भ होता है जहाँ, उस भावको कहते हैं सम्यक्त्व। अब आजादीका उपयोग प्रयोग, जिसे करनेमें वर्षों लगते हैं, जैसे भारत आजाद हो गया यह मानो निर्णय तो हो गया, १५ अगस्तसे, लेकिन उपयोग प्रयोग तो नहीं हुआ। उपयोग प्रयोग होनेमें अनेक वर्ष लगे। प्रैक्टिकल काम करना पड़ा। इसीतरह सम्यक्त्व होनेपर आजादीका निर्णय हो गया कि यह मुक्त होगा, सदाके लिए शुद्ध होगा, अब इस आत्माकी यह चर्या रहगी, अब यह अपने आनन्दधाममें बसा करेगा, अपना स्वयं शासन सम्हाल लेगा, आजादीका निर्णय हो गया, सम्यक्त्व भाव होनेपर किन्तु अभी उपयोग प्रयोग होनेमें विलम्ब है। उसके लिए मनको केन्द्रित करना, संयम रखना, चारित्र्यमें चलना, बढ़ना, बाह्य अन्तरङ्ग चारित्र्य सभी तरहके प्रयोग चलेंगे, तब जाकर इसे वास्तविक आजादी प्राप्त होगी।

स्पर्शन रसना घ्राणइन्द्रियके विषयोंकी आधीनताकी विपत्ति—देखिए—यह ध्यान करें, यह निर्णय रखें कि मेरे को जो परतन्त्रता आज बन रही है यह मेरे पर बहुत बड़ी विपत्ति है। स्पर्शनका विषय है स्पर्श होना। अगर कोई कोमल, कड़ी, ठंडी, गरम चीज छू लिया तो इस प्रक्रियासे आत्माका उद्धार क्या हुआ ? कौन सा आनन्द मिला ? क्या शान्ति मिली ? पर यह मोही जीव अपनेको मौज मानता, कृतार्थ मानता। रसनाका विषय है खट्टा मीठा, कड़वा, कषायला आदिक रसोंका स्वाद लेना। जहाँ इसकी कल्पना हुई कि इसका स्वाद उत्तम है, इसमें बड़ा आनन्द आ रहा, बस उस मौजमें आ जाता है। अभी देखो करेला कड़वे होते हैं मगर एक ऐसी बात बन गई कि यह भी एक साग है, और बड़ा अच्छा है, सो उसे खाते हैं, कड़वापन आता जाता है और मौज मनाते जाते हैं। और कहीं कोई बादाम कड़वी निकल आयी तो उसे थू थू करेंगे क्योंकि उसमें यह श्रद्धा बनी है कि यह प्रकृत्या कड़वी चीज नहीं है। अरे कड़वाहट दोनोंमें है लेकिन भाव बना लिया सो करेला खूब खाते हैं, तो यह क्या है ? जहाँ जैसी कल्पना बना ली बस उसकी ओर बढ़ चले। तो कोई चीज खट्टी अच्छी लग

रही है, कोई चीज मीठी अच्छी लग रही, कोई कड़वी अच्छी लग रही, कोई कषायली अच्छी लग रही। देखिये ऊँटको तो नीमकी पत्तियाँ ही अच्छी लगती हैं। वह उनसे ही आनन्द मानता है। तो जिसे जो रस जचा बस उस रसमें वह आशक्त हो गया। भला बतलावो रसकी आगत्तिसे इस आत्माको शान्ति क्या मिली? उद्धार क्या हुआ? खाया, अच्छा लगा। ज्यादा खाया तो नुकसान कर गया तकलीफ हुई। तत्काल भी व्याकुलता है, बादमें भी व्याकुलता है। आसक्ति हो गई तो उसके फलमें तो तकलीफ ही मिलती है। एक विषय है सुगन्धका। अच्छी गन्ध आयी तो उसे अच्छा मान लिया, दुर्गन्ध आयी तो उसे बुरा मान लिया। जैसे इत्रोंमें अच्छी गन्ध होती है, लोग मानते हैं कि इत्रकी गन्धसे स्वास्थ्य अच्छा बनता है, मगर इत्र सूँघने वालोंको देखा होगा, वे कोई स्वस्थ तो नहीं दिखते। बल्कि अधिक गन्धमें रहनेके कारण वे कमजोर हो जाते हैं। आप लोग तो कभी कभी थोड़ा सा इत्र सूँघ लेते हैं इससे आपको पता नहीं पड़ता, पर इत्र के गन्धसे स्वास्थ्य सम्बन्धी लाभ कुछ नहीं है। लोग जरा जरा सी बातोंमें घृणा करने लगते। पर इस सुगन्ध दुर्गन्धसे इस आत्माका क्या सम्बन्ध है? उससे क्या सिद्धिका मार्ग है, लेकिन यह जीव मोहवश इस गन्धमें आसक्त है।

चक्षु और मनके विषयकी आधीनताकी विपत्ति—चक्षुका विषय है रूप। रूप देखा, सुन्दर रूप जचा, चित्र देखा, सनीमा के लोग स्त्री पुरुषोंके शरीर देखें, कुछ सुहावने लगे, अरे उससे मिला क्या? रूप कोई हाथमें पकड़कर उपयोगमें लेने वाली चीज तो नहीं, सिर्फ आँखोंसे देख लिया। यह रूप अन्य इन्द्रिय मनके ग्रहणमें आता नहीं, केवल बाहर-बाहर से इसने आँखोंसे देखा, और मिला क्या इसमें आत्माको? मगर परतंत्रता है, पराधीन बन रहा है, और है क्या? वैसे देखो तो जो सुहावना रूप लग रहा वह है क्या? शरीरका रूप है क्या? हड्डी, मांस, खून आदिक जो अशुचि पदार्थ हैं उनका यह एक घर बना हुआ है, यह है रूप। और फिर सुन्दर रूपके मायने क्या? देखो इसपर चमडियाँ लगती हैं। जहाँ तीन चमड़ी लग जायें वह सावला, काला जैसा रहता है और एक चमड़ी कम हो तो वह गोरा और दो चमड़ी कम हो तो वह इंगलैण्डका आदमी हो जाता है। क्या है? बल्कि गैर ठोस की बात है। और जिसे कहते हैं काला, वह ठोस रूप है। पक्का रंग है मगर मनका ऐसा उद्दण्ड भाव है कि जिस चाहे में जैसी कल्पना कर लेता है। तो आँखका विषय क्या है? रूप। रूपको देखा, पराधीन हो गए। देखिये पराधीनता रूपसे नहीं होती। पराधीनता पदार्थसे नहीं होती। पराधीनता कोई स्त्री पुत्रसे नहीं होती। पराधीन तो हुआ है वह अपने ख्यालसे, अपने विचारसे।

विचारमें इतना तीव्र मोह है, विकारमें इतना मोह है। परवस्तुमें मोह है, यह तो उपचार कथन है। कोई भी पुरुष परवस्तुमें मोह नहीं कर सकता। जब बतला ही रहे है कि परवस्तुसे मेरे आत्माका सम्बन्ध नहीं है तो मोह कैसे कर सकते ? परवस्तुमें कोई राग नहीं कर सकता। जो कोई राग करता है, जो मोह करता है वह अपने आपमें उत्पन्न हुए विषय, विचार, विकल्प इन भावोंसे मोह करता, इन भावोंसे राग करता, परवस्तुसे राग कोई कर ही नहीं सकता।

एक वस्तुके स्वरूपका अन्यमें अप्रवेश—जैसे कहते हैं ना कि जिस पदार्थमें जो चीज है, पदार्थकी परिणतिमें जो बात है बस वही चीज उस पदार्थकी है, उससे बाहरमें पदार्थकी कोई चीज नहीं है। जैसे हाथ, हाथमें रूप है तो यह हाथकी चीज है, रूप है, हाथकी चीज है, क्रिया है, हाथकी चीज है। हाथसे बाहर हाथकी कोई चीज नहीं जाती। दर्पणके सामने हाथ किया। दर्पणमें फोटो आया वह हाथकी चीज नहीं है। हाथकी चीज हाथके प्रदेशोंमें रहेगी, हाथसे बाहर नहीं, दर्पणमें जो प्रतिबिम्ब आया, यद्यपि वह आया हाथका निमित्त पाकर, हाथका निमित्त सन्निधान बिना वह नहीं हो सकता, तिसपर भी हाथने उसमें कुछ नहीं किया। हाथकी समग्र बात हाथके प्रदेशोंमें है, पर ऐसा निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध है कि हाथका निमित्त पाये तो वह दर्पण अपनी स्वच्छता तजकर उतने अंशमें वह प्रतिबिम्बरूप परिणम जाता है। हाथकी चीज दर्पणमें नहीं गई, इसीतरह यहां पर भी परिवार स्त्री पुत्रादिक जिन जिनमें मोह बस रहा उनकी कोई चीज मुझमें नहीं आयी, मेरी कोई चीज उनमें नहीं गई। मेरी क्रिया, मेरा ज्ञान वह सब मेरे प्रदेशोंमें चल रहा है। मेरे प्रदेशोंसे बाहर नहीं जा सकता। जब मेरे प्रदेशोंसे बाहर मेरी कोई क्रिया, प्रयोग, उपयोग आदिक कोई चीज नहीं जा सकती तो मैं कैसे कहूँ कि मेरा अमुकमें मोह है, अमुकमें नहीं है। तब तो अपने विचारमें मोह है और उस विकारके विषयभूत हैं स्त्री पुत्रादिक इसलिए उपचारसे कहा जाता है कि मेरा पुत्रादिकमें मोह है। तो कहां रही परतंत्रता ? जीव अपने आपके भावसे अपने आपकी स्वतंत्रतासे परतंत्र है। परतंत्रमें भी स्वतंत्रतासे परतंत्र हुआ न कि परवस्तुकी जबर-दस्तीसे। ऐसी परतंत्रता इस जीवकी अनादिकालसे चली आ रही है, उस परतंत्रताको दूर करनेका मूल उपाय है सम्यग्दर्शन। यह निर्णाय है। सम्यक्त्वका निर्णाय हो गया तो आजादी मिल गई अब आजाद होकर रहेगा। सम्यग्दर्शनका इस सूत्रमें स्वरूप कहा जा रहा है। प्रयोजनभूत वस्तुका वस्तुस्वरूप सहित श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन आत्माका परिणाम है, आत्मासे अभिन्न है। आत्मामें तादात्म्यरूपसे रहता है।

आत्माके साथ इसकी निकटता है ऐसा यह विपरीत अभिप्राय रहित आत्मपरिणाम सम्यग्दर्शन कहलाता है । ।

उपलब्धसम्यक्त्व जीवोंकी अपेक्षासे अल्पबहुत्वकी संभवता होनेसे अधिगमोपाय-प्रदर्शक व सम्यक्त्वलक्षणनिदेशक सूत्रकी उपयुक्ततामें संदेहका अनवकाश—आत्मपरिणामकी बात सुनकर शंकाकार कहता है कि जब सम्यग्दर्शन आत्मपरिणाम है तो वह तो एक ही रूप रहेगा । आत्मा तो एकस्वरूप है । तो जब पुरुष ब्रह्म एकस्वरूप है और उसका परिणाम ही सम्यग्दर्शन है तो सम्यग्दर्शनके बारेमें कोई अल्पबहुत्वका अनुयोग नहीं बन सकता । जैसेकि अगले सूत्रोंमें बताया है—निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति, विधान सत् संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल अन्तर, भाव, अल्पबहुत्व आदि, इनसे पदार्थका ज्ञान होता है । तो मालूम होता है कि ये जो दो सूत्र रचे गए हैं वे पुद्गलका परिचय करानेके लिए रचे गए हैं, क्योंकि पुद्गलमें ही अल्पबहुत्वकी बात बनेगी, इस आत्मपरिणामसे कैसे बनेगा ? जब अल्पबहुत्वकी बात इसमें नहीं बनती तो यह जाहिर होता है कि इस सम्यग्दर्शनका लक्षण बताने वाले इन सूत्रोंका लक्ष्य है पुद्गल और पुद्गलका श्रद्धान करना सो सम्यग्दर्शन है, ऐसी बात जाहिर होती है, ऐसी एक आशंका है, उस आशाकी निवृत्तिमें सोचें कि सम्यग्दर्शनमें अल्पबहुत्वकी बात आ सकती है कि नहीं । सम्यग्दर्शन याने सम्यग्दृष्टि जीव । धर्मात्माओंको छोड़कर धर्म और कहां रहेगा ? जो सम्यग्दृष्टि जीव है वह ही सम्यग्दर्शनकी मूर्ति है । अब देखो सम्यग्दर्शनका प्रादुर्भाव कैसे होता है ? जिसके सम्यग्दर्शन नहीं है उसके कर्मका ऐसा उदय होता है कि सम्यक्त्व नहीं हो पाता, उसके कर्मका क्षय हो, क्षयोपशम हो तब सम्यक्त्व प्रकट होता है । ७ प्रकृतियोंका उदय होनेपर औपशमिक सम्यक्त्व, ७ प्रकृतियोंका क्षयोपशम होनेपर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और ७ प्रकृतियोंका क्षय होनेपर क्षायिक सम्यक्त्व प्रकट होता है । देखो पहिले तो इस सम्यक्त्वमें भिन्नता हो गई कारणभेद से, क्योंकि कारणभेद से भेद जाहिर होता है । अगर कारणभेदसे भेदकी बात नहीं मानते तो सब जगह एकरूपता हो जानी चाहिए, क्योंकि भेदका उपाय तो कारणभेद है, उस भेदके होनेपर भी यहां भेद नहीं माना तो सब जगह भेद न मानें । सब एक हो गए । न कोई अलग आत्मा रहा, न अलग नाम रहा, न अलग बात रही तो इस सम्यक्त्वमें कारणभेदसे भेद पड़ा, अब अल्पबहुत्व लगा लो । दुनियामें सबसे कम जीव तीनों सम्यक्त्वोंमें उपशम सम्यग्दृष्टि मिलते हैं, उसका कारण क्या है ? एक तो उपशम सम्यक्त्व अन्तर्मुहूर्तको होता है और वह अन्तर्मुहूर्त मी ३०—४० मिनटका नहीं किन्तु अधिद से अधिक दो चार सेकेण्ड । इसके बाद उपशम सम्यक्त्व मिट जाता है । अब इस नातेसे देखें कि दुनियामें उपशमसम्यक्त्व करने वाले भी

थोड़े हैं। उपशमसम्यक्त्वका भी समय थोड़ा है तो उपशमसम्यक्त्व करने वाले भी थोड़े ही होंगे। उससे अधिक होते संसारमें रहने वाले क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव। उपशम सम्यग्दृष्टिसे असंख्यातगुणों हैं संसारके क्षायिकसम्यग्दृष्टि, उनसे असंख्यातगुणों क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव। क्षायोपशमिक सम्यक्त्वका समय है अधिकसे अधिक ६६ सागर। तो देखिए—इतने समय तक क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि रहे, तो उनकी संख्या ज्यादा बन जायगी। इसलिए क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणों हैं। वैसे अगर संसारकी विवक्षा न रखें तो सबसे कम उपशमसम्यग्दृष्टि उससे अधिक क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि और उससे अधिक अनंतगुणों क्षायिक सम्यग्दृष्टि होते हैं। क्योंकि सिद्ध भगवान तो अनन्त हैं, वे सब क्षायिक सम्यग्दृष्टि हैं। यहां संसारमें रहने वाले क्षायिक सम्यग्दृष्टिकी बात कह रहे हैं, उनसे असंख्यातगुणों हैं और उनसे असंख्यातगुणों हैं क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि। लो देखो अल्पवहुत्व बन गया ना। तो यह समझना कि यह तो अनुयोगद्वार है जिससे पात्रका परिचय कराया है, वह आत्म-श्रद्धानेके लिए है, और परको पररूपसे समझनेके लिए भी कहा गया है।

भूतार्थनय व अभूतार्थनयका विषय—मोक्षमार्गका प्रारंभिक साधन सम्यग्दर्शन है, उसका लक्षण इस द्वितीय सूत्रमें कहा जा रहा है। प्रमाणभूत वस्तुका, तत्त्वका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। जो पदार्थ जिस रूपसे है उसका उस स्वरूपसे विश्वास हो जाना यह कल्याण के लिए अत्यन्त आवश्यक बात है, इसको संक्षेपमें कहें तो निजको निज, परको पर जान, यह ही एक मूल उपाय है। निजको जान लें कि यह मैं हूँ, परको जान लें कि ये पर हैं। अब जरा इस विषयको गहराईसे विचारें, वस्तुके जाननेकी मूलमें दृष्टियां दो होती हैं। (१) शुद्धनय (२) अशुद्धनय। इनका दूसरा नाम है भूतार्थनय और अभूतार्थनय। शुद्धनयका अर्थ है सहज शाश्वत अखण्डस्वरूपको निहारना यह शुद्धनयका काम है, और शुद्धनयके विषयभूत अखण्ड वस्तुमें क्रमवर्ती या सहवर्ती विशेषोंका भान करना अशुद्धनयका काम है जिसे कहो जोड़ तोड़, यह तो अशुद्धनयका काम है। और अखण्ड ज्यों का त्यों, न कुछ जोड़, न कुछ तोड़, यह शुद्धनयका काम है, जैसे आत्मा ज्ञानवाला है, दर्शनवाला है, चारित्र्य वाला है, आनन्दगुणवाला है, इस तरह गुणोंकी बात कहना यह आत्माको तोड़नेकी तरह है। आत्मा तो एक अखण्ड तत्त्व है। इसमें तोड़ क्या है? यद्यपि ये शक्तियां हैं और इसकी समझसे आत्माकी समझ बतनी है। व्यवहारके आश्रय बिना निश्चयकी समझ हम कहाँसे उत्पन्न करें? है, तो भी वस्तु तो एक अखण्ड है। जैसे अग्नि जो है सो है, अखण्ड है, अब उसको समझानेके लिए हम दो भेद करते हैं। देखो जो जलाये सो अग्नि, जो प्रकाश दे सो अग्नि। जो अनेक वर्णन कर देते हैं, किन्तु अग्नि जो है सो है। उसमें ये भेद नहीं पड़े हैं।

अग्नि क्या है यह समझनेके लिए भेद किया गया है। और यह भेद सत्य है, व्यवहार असत्य नहीं, किन्तु वस्तु स्वयं अभेद अखण्ड है। उसके समक्ष भेदकी बात कहना स्वयं सहज न होनेके कारण अभूतार्थ है, स्वयं सत्में न होनेके कारण असत्यार्थ है। अब आत्माको देखिये—भूतार्थनयसे, शुद्धनयसे, आत्मा एक अखण्ड वस्तु है। उसमें तत्त्वोंके भेद करना यह अभूतार्थ है, गुणके भेद करना अभूतार्थ है, पर्यायके भेद करना अभूतार्थ है, पर अभूतार्थ उपकारी है।

अभूतार्थका द्विविध प्रयोग—अभूतार्थ दो प्रकार के हैं—कोई अभूतार्थ होते हैं औपचारिक और कोई अभूतार्थ होते हैं सत्य। जो उपचारवाला है उसे उन्हीं शब्दोंमें समझें तो वह मिथ्या है। उपचारका भी अभिप्राय समझें तो मिथ्या नहीं, पर उपचारकी जो भाषा है उसीको सत्य समझें तो वह है मिथ्या अभूतार्थ। देखो जैसे जिस घड़ेमें घी रखा है उस घड़ेको लोग यही तो कहकर पुकारते हैं कि घीका घड़ा ले आवो। भला बताओ घी का भी कोई घड़ा होता है क्या? कदाचित् कोई घी का घड़ा बना भी दे तो वह थोड़ी देरमें पिघल जायगा, घीका घड़ा नहीं होता। घड़ेमें चूँकि घी भरा है, उसे ही लावे, अन्य न लावे इस लिए उस घड़ेमें घी का उपचार है, अगर कोई उसी को ही सत्य समझले तो वह मिथ्या है।

भूतार्थनय व अभूतार्थनयकी उपयोगिता—आत्मा एक अखण्ड ज्ञानानन्दमय वस्तु है, उसमें कोई भेद करे, पर्यायभेद करे तो वह कहलाता है अभूतार्थ और भेद न करे तो वह कहलाया भूतार्थनय (शुद्धनय), तो इस शुद्धनयका जो आश्रय करते हैं वे सम्यक्त्व पाते हैं। पर शुद्धनयका आश्रय करने लायक हमारी पात्रता कब बने, जब हम शुद्धनयका बहुत-बहुत परिचय कर लें। एक वेदान्तकी जागदीशी टीकामें कथन आया है कि एक बार एक पुरुष किसी साधुके पास गया तो कहा—महाराज मुझे कुछ उपदेश दीजिए। तो साधुने कहा—ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूँ, दुबारा गया तो फिर साधुने वही कहा—मैं ब्रह्म हूँ, चितस्वरूप हूँ, तो वह पुरुष बोला—महाराज मुझे तो और कुछ समझाइये। तो साधु बोला—भाई अगर तुम्हें बहुत कुछ समझना है तो अमुक गांवमें एक विद्वान् ब्राह्मण रहता है, उसके पास जावो, वह तुम्हें बहुत कुछ बता देगा। वह पुरुष उस ब्राह्मणके पास पहुँचा बोला—महाराज मैं अपना कल्याण चाहता हूँ, मुझे कुछ विद्या सिखलाइये। तो वह ब्राह्मण बोला—ठीक है देखता हूँ, अगर कोई सेवाकार्य तुम्हें मिल जायगा तो विद्या सिखा दूँगा...देखो तुम हमारी गौशाला की सफाईका काम प्रतिदिन कर लिया करना हम तुम्हें विद्या पढ़ा देंगे। ...ठीक है। अब वह ब्राह्मण उसे विद्या पढ़ाने लगा और वह पुरुष प्रतिदिन गौशालाकी सफाईका काम करने लगा। इस तरहसे १२ वर्ष व्यतीत हो गये। बहुत-बहुत विद्याध्ययन करनेके पश्चात् उस पुरुषने कहा—महाराज अब मैं अपने घर जा रहा हूँ, कृपा करके आप मुझे वक्षिणा रूपमें

अन्तिम शिक्षा दीजिए। तो ब्राह्मणने कहा-ब्रह्मास्मि, मैं ब्रह्म हूँ, तो वह बोला-अरे इतनी सी बात तो १२ वर्ष पहिले हमें एक साधुने भी बतायी थी, फिर बताइये क्या १२ वर्ष मैंने व्यर्थ ही गोबर उठाया। तो वह ब्राह्मण बोला-ठीक है, बताया था गुरुने, मगर तुम्हीं बताओं कि इस ब्रह्मास्मिका मर्म तुमने १२ वर्ष पहिले समझा था या अब १२ वर्षमें समझमें आया? तो वह बोला-हाँ मर्म तो अब समझे। ऐसे ही भैया! एक मूलभूत निश्चयनयकी बात समझानेके लिए व्यवहारनय, अशुद्धनय, अभूतार्थनय भेदनय इन सबका आलम्बन लेकर, इनके सहारे समझना होता है, तब समझमें आता है।

अभूतार्थनयकी उपयोगिताका एक दुष्टान्तपूर्वक कथन—और भी एक दृष्टान्त लीजिए, जैसे आत्मा राजा अपने दरबारमें बिराजा है, उसका दर्शनार्थी पुरुष उसके दर्शन करने चलता है तो पहिले एक पहरेदार मिलता है। मानो उस पहरेदारका नाम था मन। मन पहरेदारसे वह पुरुष बोला कि मुझे आत्मा राजाके दर्शन करना है, कृपा करके कराइये तो मन पहरेदारने उस पुरुषको साथ लिया और कहां तक ले गया, जहाँ तक आत्मा राजाके दर्शन कर सकने का स्थान था। पहरेदार राजाके पास तक नहीं ले जाता, उसे वहां तक नहीं ले जाता, उसे वहां तक जाने की इजाजत नहीं होती। अब वह मन पहरेदार वहां से लौट आया। अब मिलने वाला पुरुष आत्मा राजासे मिले।—तो क्या मतलब हुआ इसका? मन कहो व्यवहारनय कहो, यह व्यवहारनय इस पुरुषको वहां तक ले गया जहां तक कि उस अखण्ड तत्त्वके बारेमें भेदनयसे बात करनेका प्रसंग था। जहां जान लिया कि यह है अखण्ड तत्त्व, समझ लिया व्यवहारनयसे, अब उस अखण्ड तत्त्वको अनुभवमें उतारनेके लिए ज्ञानमें उसे विषयभूत बनानेके लिए जो एक अनुभवके समय वाली स्थिति है उस स्थितिमें मन काम नहीं करता, व्यवहारनय ज्ञान करता, व्यवहारनयके बाद निश्चयनयका स्वाद लिया और निश्चयनयके बाद उसका भी सहारा छोड़ा और एक समस्त ज्ञान द्वारा उस ज्ञानके द्वारा उस आत्माका अनुभव किया। ऐसा अनुभव जिसने पाया वह जो कुछ इस आत्मतत्त्व के बारेमें समझता उसका साधन है व्यवहार, वह है तो सही बात, तभी वहां होता है इसे सम्यक्त्व। उस सम्यक्त्वका लक्षण इस सूत्रमें कहा जा रहा है कि तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं, अर्थात् तत्त्वार्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। तत्त्वका अर्थ है वस्तु स्वरूप सहित अर्थका याने पदार्थका, आत्मवस्तुका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

“अर्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्” ऐसा सूत्रलाघव करनेमें आपत्तिका दर्शन—इस प्रसंगमें एक शंकराचार्य अपनी बात रख रहा है कि यह सूत्र अगर इतना ही बनता कि अर्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं, तो क्या हानि थी सूत्रलाघव ही होता। तत्त्व शब्द न बढ़ाते तो कुछ हानि तो

थी। बल्कि सूत्र और भी लघु हो जाता। सूत्र अगर छोटा हो तो उसमें तो व्याकरणके विद्वान बड़े प्रसन्न होते हैं, सो अर्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं, इतना ही सूत्र कहना चाहिए था। तत्त्वशब्द बोलना अनर्थक है, क्योंकि अर्थ पदार्थ है। पदार्थका श्रद्धान किया, वह सम्यग्दर्शन हो गया। अब इसके उत्तरमें विचार करें कि यह तत्त्वशब्द न लगाया जाय, केवल अर्थश्रद्धान ही कहा जाय तो क्या दोष आता है? देखिये-अर्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। तो अर्थमें सभी अर्थ आ जायेंगे। समस्त अर्थके मायने क्या है कि जहां तत्त्वग्रहण नहीं है, वस्तुस्वरूपकी बात नहीं है ऐसा मिथ्यावादियोंके द्वारा बताया गया, व्यवस्थित किया गया जो पदार्थ है जो स्वरूप है उसका भी श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन हो जाता, इस लिए अर्थ करना कि वास्तविक स्वरूपसहित पदार्थके श्रद्धान करनेको सम्यग्दर्शन कहते हैं। यहां कोई सोच सकता है कि अर्थ तो वह कहलाता है जो वचन और विकल्पका विषयभूत हो। तो वचन और विकल्पका विषयभूत जो कुछ है वह सही अर्थ है तो क्या बात है! सभी अर्थोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन कह लीजिए। अर्थ वही है जो वचनका विषयभूत हो और विकल्पका विषयभूत हो। तब अर्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन इतना ही कहा जाय तो इसमें क्या हानि है? उत्तर—यहां यह दोष आता है कि जो यह कहा है कि जो वचन और विकल्पका विषयभूत हो, सो वचन विकल्पका विषयभूत तो अनर्थ है, लोग अनर्थ शब्द बोलते हैं उसके बारेमें कुछ सोचते भी हैं तो विकल्पका विषयभूत हो गया। जैसे कोई बच्चा ऊधम करता है तो उसको डराने के लिए या चुप करनेके लिए मां या बहिन कहती है कि बेलो होवा आ जायगा, चुप रहो। अच्छा यह तो बतलावो—वह होवा किसीने देखा है क्या? उसकी कोई सकल है क्या? वह होवा कोई चीज भी है क्या? अरे वह कुछ भी तो वस्तु नहीं है, लेकिन वचनका विषयभूत है, विकल्पभूत भी हैं। तो अनर्थ भी वचनके विकल्पके विषयभूत होते। सोअगर इतना सा सूत्र कहा जाय 'अर्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' तो उसमें अर्थका अनर्थका सबका श्रद्धान करनेकी बात आती है, और मिथ्या जो तत्त्व हैं उनके श्रद्धानको भी सम्यग्दर्शन कहना पड़ेगा। इसलिए तत्त्वार्थश्रद्धानं यह शब्द बिल्कुल ठीक कहा गया है। और भी समझ लीजिए, केवल अर्थ श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते हैं, इतना ही कहा जाता तो अर्थमें तो बड़ा संदेह हो जाता। अर्थके अनेक अर्थ हैं। अर्थके मायने धन भी हैं। कहते हैं ना आर्थिक स्थिति मायने धनसम्बंधी स्थिति। अर्थके मायने प्रयोजन भी है। अर्थ सिद्धान्त की भाषामें द्रव्य, गुण, कर्मको भी माना है। वैशेषिक लोग मानते हैं कि द्रव्य, गुण, कर्म ये तो अर्थ हैं और सामान्य, विशेष समवाय ये अर्थ नहीं किन्तु ये कुछ चीज हैं, सत्त्वका अर्थ भी अर्थ होता है। तो अर्थ शब्दसे क्या मतलब लेना चाहिए, यह सन्देह होगा, होगा ना सन्देह?

फिर कैसे अर्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। कोई सोचता होगा कि धनका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है तो शायद लोग राजी हो जायेंगे, जल्दी समझते चले जायेंगे (हंसी) तो किस अर्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है ? तो बताना होगा कि तत्त्वभूत अर्थका श्रद्धान करना, सम्यग्दर्शन है।

मोक्षभागमें यथार्थ उदारतासे ही सिद्धि-अर्थ अनर्थ सबके श्रद्धानके बारेमें कोई बात रख सकता है कि क्या हर्ज है ? आज कल तो उदारताका जमाना है। अरे सभीके अर्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन हो जाय तो यह तो बड़ा मेल खा जायगा। जो अन्य मत वाले हैं वे भी और आप भी सब एक जगह आ जायेंगे। कह दो सबके ही अर्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। इसमें तो सबका गुजारा होता है। आपको ईष्या क्यों हो रही है कि जो एकान्तवादी है उनके अर्थको सम्यग्दर्शन नहीं कहो। अरे उनका अर्थ भी सम्यक्त्व बोल लो। अरे सारे लोग उन्नतिमें लग जायें तो आपको क्या हर्ज है। नित्य एकान्तवादी जो कहे उसका भी श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। वेदान्ती जो कुछ कहें उनका भी श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है, स्याद्वादी जो कुछ कहें उनका भी श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। तो सबके अर्थको अच्छा कह दो। सब भला। सबके अर्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। और देखिये लोकमें उसकी बड़ी महिमा गायी जा रही है जो सब सब देवताओंको माने सब मन (मनहब) माने, सबका विनय करे सबकी पूजा करे उसे लोग आजकल बड़ा उदार मानते हैं तो तुम तो उदार बनो सबके माने हुए तत्त्वके श्रद्धानको सम्यग्दर्शन कहते हैं ऐसा कह दो, क्यों नहीं उदार बनते ? तो देखो भाई यह बहुत बड़ी बात एक शंकाकारने रखी समझो किन्तु हितके लिए जरा सोचो तो क्या चाहिए आपको ? मोक्ष, मोक्ष कैसे मिलेगा ? मोक्ष नहीं है तो क्या है ? बन्धन। बन्धनके मायने क्या हैं कि जो पर पदार्थ हैं जो मेरे साथ नहीं रह सकते जो मायारूप हैं उनसे मोह बनायें लगाव बनायें, यह ही तो बन्धन है। यही बन्धन मिटे तो मोक्ष हो। तो ऐसा मोह कैसे मिटे कि सत्य बात समझले तो या असत्य बातका झुठका लगाव करे समर्थन करे तो ? मुक्तिके मार्गकी बात कभी भी वस्तुस्वरूपके विपरीत भाव से नहीं हो सकती। जो एकान्तवाद है वह आसत्य अर्थ को विषय करता है तो असत्य अर्थ का विषय करनेपर इसको मुक्तिका मार्ग नहीं मिल सकता। भले ही मोहकी दुनियामें मोहभरा जीवन बितानेके लिए यह लोकसंघ सत्य असत्य सबका मेल कर रहा। मोह असत्य है, मायारूप है फिर भी घुल मिलकर रहते हैं ये तो संसारमें रहनेका मार्ग अलग है और मोक्षमें पहुँचनेका मार्ग अलग है यहां यह सत्य अर्थका ही विषय बने तब इस जीव को सम्यक्त्व ही, मोक्षमार्ग मिले। हमारी ईष्यां नहीं है ? एकान्तवादियोंसे। यह मुक्तिका

सवाल है, यहमोक्षमार्गका प्रयत्न है। इस संसारके रहने वाले जीवको मोक्षका मार्ग कैसे प्राप्त हो यह उपाय कहा जा रहा है। तो यह सही है कि असत् अर्थका श्रद्धान करना तो संसारका कारण है और तत्त्वरूप भूतार्थ वस्तुका श्रद्धान करना मोक्षका कारण है सब जीवोंका उपकार हो, इसलिए यह बात कही जा रही है कि तत्त्वार्थका श्रद्धान करना सम्यग् दर्शन है। अगर दूसरोंको खुश करनेके लिए सबकी बातमें हां में हां मिलाया जाय तो इससे काम न बनेगा। मोक्षका काम तो मोक्षके ढंगसे बनेगा। इसमें भी संसारके सब जीवों के उपकारकी भावना है कि सब जीव तत्त्वकी बात समझ लें और संसारके दुखोंसे छूट जायें। तो समस्त जीवोंके अनुग्रहके लिए यह कहा जा रहा है कि तत्त्वार्थ श्रद्धासम्यग्दर्शन अर्थात् तत्त्वार्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है।

विपरीत अर्थके श्रद्धान का निवारण करनेके लिये तत्त्व शब्दके निबंधनकी आवश्यकता— मूल शंकाकी यह बात चल रही थी कि अर्थ श्रद्धानसम्यग्दर्शन इतनी बात कहना चाहिए, तत्त्व श्रद्धान क्यों लगाते ? तो समाधान काफी मिल चुका होगा लेकिन जिस किसीको अभी सन्तोष नहीं हो सकता तो उसके मनमें एक बात यह आ सकती कि केवल अर्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शन कहनेसे वह ही अर्थ बनता कि जो तत्त्वार्थ कहनेसे बनता पहिले अर्थका अर्थ समझ, अर्थते इति अर्थः अर्थात् जो निश्चित किया जाय वह अर्थ है। निश्चित कौन होता है जो सत् है। असत् का निश्चित नहीं किया जाना। मिथ्यावादियों द्वारा कहा जो पदार्थ है वह अर्थ नहीं हो सकता क्योंकि वह असत् है। तब अर्थग्रहणं सम्यग्दर्शन इतनी बात कहनेसे ही प्रकृत बात हो जाती है फिर क्यों तत्त्वका ग्रहण किया ? तो यह एक आखिरी समस्या सी रखी कि अर्थग्रहण कहनेसे ही यह बात आ जायगी कि अर्थका अर्थ है खद्भूत। जो निश्चित किया जाय, असत् का निश्चित नहीं होता फिर तत्त्व शब्द डालकर सूत्रको लम्बा क्यों किया। अब समाधानमें चलो। देखो बात तो ठीक कह रहे कि अर्थ जो है वह सत् होता है और सत् का ग्रहण करना सम्यग्दर्शन है, लेकिन कोई असत् को ही सत् मानकर चले और कह दे कि सत् तो बही है। तो क्या उसका श्रद्धान करना भी सम्यक्त्व हो जायगा। बात तो ठीक है—दूध पीने से शरीर पुष्ट होता है, अगर कोई आक के दूध को भी दूध कह कर उसे पात्र भर पी ले तो क्या वह पुष्ट होगा। अरे वह तो मर जायगा। तो सत्काग्रहण करना सम्यग्ज्ञान है, ठीक है, किन्तु कोई असत् को ही सत् मानकर उसके श्रद्धानमें चले तो उसके सम्यक्त्व न होगा। तो विपरीत ग्रहण न हो जाय इसके लिए तत्त्व शब्द लगाया गया है कि प्रयोजनिक तत्त्वार्थका ग्रहण हो, श्रद्धान हो तो सम्यक्त्व होता है। जैसे गन्ना मीठा होता है, लेकिन जिसको पित्तका रोग हो वह गन्ना चूसता है तो उसे वह रस

कड़वा लगता है मोठा होनेपर भी पित्तरोगवालेको वह कड़वा लगता है। उसकी इन्द्रियां पित्तसे आकुलित हो गई हैं तो वह मोठे रसको भी कड़वा मानता है, इसी तरह आत्मामें मिथ्यात्व कर्मका उदय होनेसे उस व्यामोही जन उस दोषके कारण वस्तुको एकान्तरूपसे सही मानते हैं तो उस दोषका कैसे निवारण हो उसका भी अर्थ समझें। तो ऐसे विभरीत अर्थका निराकरण करनेके लिए तत्त्व शब्द दिया है कि जो भाव सूत्रमें कहा गया है वह कितना नया तुला है कि जिसका कोई शब्द कम कर दिया जाय तो उसका शब्द अर्थ सही न निकलेगा। जिसमें कुछ जोड़ा जाय तो यह व्यर्थकी चीज रहेगी। ऐसी सूत्रों की रचना होती है। सूत्र वह कहलाता कि जिसमें थोड़े अक्षर हों, मगर स्पष्ट अर्थका प्रतिपादन कर सके।

यथाथ पदार्थको अपेक्षा न करके कल्पनाभिमत तत्त्वोंके श्रद्धानके निवारणार्थ सूत्रमें अर्थ शब्दका निबन्ध—अब यहां कोई यह भी शंका कर सकता कि चलो तत्त्वशब्द जोड़ते हैं ठीक है, मगर तत्त्व इतना ही बोले, तत्त्वश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं। अर्थ कहनेकी क्या जरूरत? जो तत्त्व है उसका ग्रहण हो जाय श्रद्धान हो जाय उसी को ही सम्यग्दर्शन कहते हैं तो उसका तत्त्व तो सभी लोग अपना अपना कहते। जो एकान्तवादी हैं वे भी कहते कि यह तत्त्व है उत्तर यह है कि अथवा यह अर्थ किया जाय कि तत्त्व है इस तरह का श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है तो एकान्तवादी भी अपनी मानी हुई चीजमें तत्त्व है इस प्रकारसे श्रद्धान कर ले वह भी सम्यक्त्व हो जायगा। आत्मा नहीं है यह ही तत्त्व है ऐसा भी कहने वाले लोग हैं चार्वाक तो आत्मा नहीं है ऐसा श्रद्धान करने तो यह तत्त्व है इस तरहका श्रद्धान भी सम्यक्त्व हो जायगा। है कोई ऐसे दार्शनिक और उनकी युक्तियां ऐसी हैं कि जिसका खण्डन करनेको भी कुछ बुद्धि चाहिए। एक क्षणिकवादी लोग हैं जो आत्माको तो मानते हैं, पर इस तरह मानते हैं कि आत्मा क्षणक्षणमें नया नया उत्पन्न होता रहता है एक शाश्वत आत्मा नहीं है जो अनादिसे अनन्तकाल तक रहता है लाखों करोड़ों आत्मा इस शरीरमें एक ही घंटेमें निरन्तर नये नये पैदा होते जाते हैं। कोई कहे कि यह मैं आत्मा हूँ तो वह संसारमें रुलेगा। क्षणिकवादियोंकी युक्ति देखो जो आत्मा पैदा हुआ वह तो तुरन्त मिट गया तो जो श्रद्धा करे कि भाई मैं आत्मा हूँ इतने समयमें दूसरा आत्मा पैदा हो जायगा तो उसे दूसरा आत्मा मानते कि यह मैं हूँ तो बताओ वह मिथ्या हुआ कि नहीं? क्षणिकवादियोंका दर्शन कह रहे हैं। तो जो यह मानले कि आत्मा नहीं है क्योंकि जो आत्मा हुआ दूसरा तो पहिला मिट गया फिर दूसरा हुआ तब वह भी नहीं तो यह श्रद्धा जो कर ले कि आत्मा यहीं है उसका मोक्ष न होगा। यह तात्थागत दर्शन है। तो यह भी तो एक दर्शन है। तो योंभी श्रद्धान कर-

ना सम्यक्त्व हो जायगा। चार्वाक तो खुलकर कहते हैं कि पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु यदि ये मिल गए तो ऐसा एक करेन्ट आया कि यह जानना बोलना आदिक चलने लगा। जापानी लोग भी तो ऐसे खिलौने बनाते हैं गुड्डा गुड्डिया आदिक कि उनमें कोई मसाला भर दिया, बटन दबा दिया और खिलौने हाथ, पैर, मुख आदिसे अनेक प्रकारकी क्रियायें करने लगते हैं। ऐसे ही पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु इनके मेलसे एक करेन्ट आ जाता है, जिससे अनेक क्रियायें होने लगती हैं। वह आत्मा है कहां? वे बिखरे तो आत्मा भी बिखर गया। अब बताओ इसके निराकरणके लिए भी बुद्धि चाहिए। लोगोंको जहां आराम मिले और विषय भोगनेमें उनको एक सामर्थ्य मिले उस धर्मकी श्रद्धा करनेमें, उस धर्मके मानने वालोंको देर नहीं लगती। वे तो चाहते हैं कि हमें कुछ संयम आदिकके कष्ट न करने पड़ें और ऐसा धर्म मिल जाये कि बात बातमें गप्प गप्पमें मोक्ष हो जाय, तो ऐसे धर्मका प्रचार तो बहुत जल्दी हो सकता है। तो चर्वाकमतके अनुयायी प्रायः सारी दुनिया है। तो हाँ ऐसे भी लोग तत्त्व मानते हैं, तो ऐसे एकान्तका भी श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन हो जाता यदि यहाँ अर्थ शब्द न होता, तत्त्व तो सभीमें निकलता है। हां, अगर तत्त्व हो और वहां पदार्थ जैसा है तैसा मानते हैं तो वहां श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। और भी देखो—तत्त्व सामान्य, विशेष, सम-वाय इनको भी लोग तत्त्व कहते हैं। द्रव्यादिक भी जुदे हैं, वे भी और पदार्थ हैं। जो चीज ही नहीं है उसे भी पदार्थ मानें क्या? तो क्या ऐसे असत्का श्रद्धान भी सम्यग्दर्शन होगा? नहीं हो सकता। इसलिए तत्त्वार्थश्रद्धानं बिल्कुल ठीक कहा है।

‘तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं’ इन शब्दोंमें सम्यक्त्वलक्षणकी युक्तता—अच्छा एक बात और, इसमें शंका, भी हो सकती कि यदि उसका एक विग्रह कर दिया जाय कि तत्त्वेन श्रद्धानं याने तत्त्वके मार्गसे तत्त्वका श्रद्धान करनेका नाम तत्त्वश्रद्धान है, तब तो अनर्थकी बात न आयगी। तो उसमें यह बात सोचनेकी है कि ऐसा कहनेपर भी यही तो पूछा जायगा कि किसका श्रद्धान करना? तत्त्वसे श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। किसका श्रद्धान करना, किसमें श्रद्धान करना, यह बात समझना बाकी रह जाता है उसका नाम है अर्थ। तो तत्त्वसे अर्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। बात आखिर यह ही आयी, इसलिए यह लक्षण बिल्कुल ठीक कहा गया है। तत्त्वार्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। वह तत्त्वार्थ क्या है? आत्माका ब्रह्म सहजस्वरूप, अपनेको बारम्बार इस तरहसे विचारें कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञान ज्ञान ही हूँ, ज्ञानसिवाय और कुछ नहीं हूँ। ज्ञानमें ज्ञानस्वरूपको ही लीजिए, अन्य सबका ख्याल भुला दीजिए। जब ज्ञानमें यह सहज ज्ञानस्वरूप ज्ञेय बन गया उस समय ज्ञान और ज्ञेय एक हो गये। ज्ञानसे भिन्न ज्ञेय न रहा। तो वहाँ एक निर्विकल्प स्थिति उत्पन्न होती

अनुभूति होती। उस अनुभूतिपूर्वक जो श्रद्धान है उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं।

श्रद्धानका इच्छासे विलक्षण अर्थ—संसारके दुःखी जीवोंको संसारके दुःखोंसे छुटाने का आशय रखने वाले आचार्य इस मोक्षशास्त्रके द्वितीय सूत्रमें कह रहे हैं कि तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं। प्रयोजनभूत अर्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है, इस विषयमें बहुत कुछ विश्लेषण हो चुका है। अब यहां एक बात रखी जा रही है कि श्रद्धानका अर्थ इच्छा ठीक बैठ रहा है, क्योंकि किसी वस्तुके त्याग करनेकी इच्छा, हेयको छोड़नेकी इच्छा हो, उपादेयको ग्रहण करनेकी इच्छा हो तो यह इच्छा तो बहुत अच्छी चीज है और यह ही कहलाता है धर्मपालन। तो इच्छाका ही नाम श्रद्धान है और इच्छारूप श्रद्धान ही सम्यग्दर्शन है। शंकाकारने बात एक मोटे शब्दोंमें रखी है, जैसे कि लोगोंका भाव बना रहता है कि हेयका त्याग करें, उपादेयका ग्रहण करें, व्रत नियम आदिक करें, इस प्रकारकी जो इच्छा हुई, बस यह ही तो श्रद्धान है। शंकाकारने अपनी बुद्धि अनुसार कहा तो है यह, लेकिन यह युक्त नहीं बैठता, क्योंकि यदि इच्छाका ही नाम श्रद्धान रखा जाय तो जिनके मोह नहीं हैं उनके इच्छा भी नहीं है। तो जो मोहरहित हैं ऐसे पुरुषोंमें फिर श्रद्धान न बन सकेगा, क्योंकि उनके इच्छा तो है ही। इच्छा तो मोहका ही कोई परिणाम होता है। तो इच्छा श्रद्धान है ऐसा कहनेपर मोही जीवके श्रद्धान नहीं रह सकता। और जब श्रद्धान नहीं रह सकता तो फिर ज्ञान और चारित्र्य कहाँ ठहरेंगे? फिर तो मोक्षमार्ग ही नहीं मिल सकता। जो मोहरहित जीव हैं उनके इच्छा नहीं, क्योंकि इच्छा तो मोहका कार्य है, अगर मोहरहित जीवके भी इच्छाका प्रसंग हो गया, और जब इच्छा स्वभाव ही बन गया तो फिर मुक्ति नाम ही किसका? मुक्ति तो उसे कहते हैं जहां विकार नहीं रहा। जब इच्छा मान ली गई तब तो मुक्ति कुछ न रही, न आत्मीय सुखका कोई उद्भव रहा। हां शंकाकारकी बात लोगोंको कुछ भली जवती है। त्याग करने वाली चीजकी इच्छा करना इसका नाम श्रद्धान है, और ऐसी इच्छा मोहरहित साधुओंकी, त्यागियोंकी इच्छा यह सब मोहका कार्य नहीं है, वह तो उनका कार्य है। ऐसा यदि अभिप्राय रखेंगे तो यह भी युक्त न बैठेगा, क्योंकि इच्छाको यदि मनका कार्य समझा जायगा तो जैसा साधुओंके मन है और उनको हेय, त्याज्य, अनुचित पदार्थोंके छोड़नेकी इच्छा जगती है, तो जिन जिनके मन है उन सबको भी ऐसी इच्छा जग जानी चाहिए, क्योंकि मन इनके भी है और मन असाधुओंके भी है, लेकिन देखा तो नहीं जाता। कोई बिरला ही उदासीन पुरुष हेयको छोड़ने और उपादेयको ग्रहण करनेकी इच्छा रखता, बाकी तो मन वाले जीव ऐसे पड़े हैं कि जिन्हें हेयके त्यागकी इच्छा नहीं जागती। तो कैसे जाना जाय कि यह मनका कार्य है। यदि मात्र मनका कार्य हो तो ऐसी इच्छा

सबके जगनी चाहिए थी। तो मालूम होता है कि मात्र मनका कार्य नहीं, किन्तु उसके साथ जो मोहभाव लगा है उसका कार्य है। इच्छा मोहका कार्य है वह मुक्त जीवोंमें या निर्मोह साधुओंमें कैसे सम्भव हो सकता है, फिर उनका श्रद्धान ही न माना जायगा और श्रद्धान नहीं, तो ज्ञान और चारित्र कुछ न रहा, यों मुक्तिमार्गका अभाव हो जायगा।

सम्यग्ज्ञानसापेक्ष मन-कार्यरूप इच्छामें भी श्रद्धानार्थत्वका अभाव—यदि कोई ऐसे मनकी आशंका रखे कि सभी जीवोंके मनका कार्य नहीं है यह इच्छा, किन्तु सम्यग्ज्ञानके साथ—साथ मनका कार्य चले तो ऐसी इच्छा होती है कि हेयको त्याग दिया जाय तो ऐसी इच्छा जो फैली है, इसीका नाम श्रद्धान होता है, तब तो सभी मन वालोंके इच्छा जगे ही जगे, यह तो अनिष्ट आपत्ति नहीं आती। ऐसी आशंका रखने वाले यह सोच विचार करें कि देखो किन्हीं—किन्हीं मिथ्यादृष्टि जीवोंके मिथ्याज्ञान हो रहे हों तब भी उदासीन अवस्था हो जानेपर हेयको छोड़नेका और उपादेयको ग्रहण करनेकी कोई इच्छा हो जाती है, अतः यह भी नहीं कह सकते कि वास्तविक सम्यग्ज्ञानके साथ ही ऐसी इच्छा होती है, और फिर यह भी तो देखिये कि कई सम्यग्दृष्टि जीव जो गृहस्थ हैं, घरमें रहते हैं ऐसे श्रावकके है तो सम्यग्ज्ञान, लेकिन जब रागद्वेषकी तीव्रता होती है तो कैसे वे कुटुम्ब, धन आदिकको छोड़ सकते हैं ? और कुटुम्ब धनके आरम्भसे जो हिंसा होती है उनको त्यागनेकी इच्छा ही नहीं है, और रागद्वेष विशेष होनेपर दीक्षा ग्रहण करनेकी भी इच्छा न हो तो यह नहीं कह सकते कि सम्यग्ज्ञानके साथ इच्छा होनेका कार्य है यह। कहीं ज्ञानके बिना भी इच्छा देखी जाती, कहीं ज्ञानके होनेपर भी इच्छा नहीं पायी जाती। इससे यह भी नहीं कह सकते कि सम्यग्ज्ञानसापेक्ष मनका कार्य है इच्छा, जिसे श्रद्धान कहा जा रहा। श्रद्धान इच्छाको नहीं कहते। सम्यग्दर्शनका वास्तविक स्वरूप तो अवक्तव्य है। यों कहो कि जिस शुद्ध भावके होने पर ज्ञान समीचीन हो जाता है, चारित्र समीचीन हो जाता है उस शुद्ध भावको सम्यग्दर्शन कहते हैं। उस सम्यक्त्वका जिसके सद्भाव हुआ है ऐसे पुरुषका अन्दरमें मन संसारसे उदासीन है और विरक्त हो जाता है। तो इच्छाका नाम श्रद्धान है। यह बात युक्त नहीं जचती, किन्तु तत्त्वार्थकी प्रतीति सहित जो ज्ञानकी दृढ़ता है वह सम्यग्दर्शनका कार्य है।

सम्यग्दर्शन अर्द्धात्म परिणाम—अब इस समय एक उल्भन यह रखी जा सकती है कि मोक्ष जीव और कर्म दोनों का कार्य मालूम होता है। जब मोक्ष हुआ तो मोक्षका अर्थ यह है कि जीव और कर्म दोनों अलग हो गए, तो मोक्ष नामका जो कुछ तत्त्व है वह दो में रहा। एक में कहाँ मोक्ष होता। मोक्ष शब्द वहाँ घटित होता है जहाँ संयोग

पहिले दो का हो और फिर उसका वियोग हो जाय । तो जैसे मोक्षरूप परिणामन जीव और कर्म दोनोंमें घटित होता है इसीप्रकार मोक्षका कारणभूत जो श्रद्धान है उसे बहुत से लोग कह भी बैठते हैं कि इनका भाग्य अच्छा नहीं है, सम्यक्त्व नहीं हो पा रहा, इस कारण जीव और कर्म दोनोंकी पर्याय मानना चाहिए सम्यग्दर्शनको । समाधान—यह बात यों युक्त नहीं बैठती कि यदि सम्यग्दर्शनको जीव और कर्म दोनोंकी प्रकृति मान लिया जाता है तो मोक्षमें सम्यग्दर्शनका अभाव हो जायगा । मोक्ष होनेपर भी खाली एक जीव ही जीव है, कर्मका तो वियोग हो गया । जब कर्मका सद्भाव नहीं तो कर्म और जीव दोनोंमें रहने वाले शंकाकारके अभिप्राय वाला सम्यग्दर्शन एक जीवमें कैसे हो सकता है ? तो मोक्ष अवस्थामें भी उसका अभाव हो जायगा, क्योंकि जब कर्म नहीं हैं तो कर्मका परिणाम कहाँ से हो ? तो भले ही मोक्ष जीव और कर्म दोनोंके विकारका निमित्त होने से दोनोंका अपना अपना मोक्ष कह लीजिए । वस्तुतः तो जब एक जीवपर दृष्टि डालो तो मोक्षका अर्थ यह हुआ कि यह जीव अकेला रह जाय । जो अकेलेपन है वह ही मोक्षस्वरूप है । अकेलापन का अर्थ है कि शरीर न हो, कर्म न हो, विषय कषाय न हों, किसी प्रकारका विकार न हो, ऐसी जो एक जीवकी स्वभावदशा है उसका नाम मोक्ष है । यह स्वभाव दशा कहीं बनानेसे नहीं बनती । यह तो जो है सो ही प्रकट हो गया, यों कहो । तो मोक्ष बनता नहीं है, किन्तु जो है सद्गज सत्त्व इस पदार्थका अपने आपका निज स्वरूप वही प्रकट हो गया । इसीके मायने है मोक्ष ।

दृष्टान्तपूर्वक आत्मविकासमें मोक्षरूपताकी सिद्धि—देखिये जैन शासनकी परम्परामें कि पाषाणमूर्ति बनाते हैं, जिसमें प्रभुकी, तीर्थंकर की स्थापना करते हैं, उसका निर्माण भी इसी बातको पुष्ट करता है कि भगवान बनानेसे नहीं बनते, किन्तु जो है सो ही व्यक्त हो गया इसीके मायने है भगवान । मूर्तिभी तो इसीतरह बनती । मूर्ति बनायी नहीं गई, किन्तु जो पाषाणमें मूर्ति व्यक्त हुई, लोगोंको दिखी उतने अंशमें, स्कंधमें पाषाण पहिले उसमें था वही प्रकट हो गया, इसके मायने प्रतिमा है । कारीगरने उस प्रतिमामें कुछ लगाया नहीं, किन्तु प्रतिमापर आवरण करने वाले जो पाषाण खण्ड थे उनका हटाना ही हटाना है । पहिले बड़े छेनी हथौड़ेसे बड़े आवरण हटाया, बादमें छोटे छेनी हथौड़ेसे छोटे—छोटे पाषाणखण्ड हटाया और उसके बाद अत्यन्त छोटे छेनी हथौड़ेसे अत्यन्त छोटे पाषाण खण्ड हटाया । लो मूर्ति जो थी सो प्रकट हो गई । तो वहां उस कारीगरने किया क्या ? केवल उस मूर्तिका आवरण करने वाले पाषाणखण्डों को हटाने हटानेका ही काम किया । तो यही बात सिद्ध भगवानके विषयमें समझना । जो स्वभाव हैं अनादि अनन्त वस्तुका

प्राण, अपने आप जो वस्तुमें है वही प्रकट हो गया उसको कहते हैं सिद्ध भगवान । तो मोक्ष भी क्या है ? भले ही शब्द दृष्टि से यह कहा जायगा कि कर्म और जीवका सम्पर्क हटना सो मोक्ष है, पर मोक्ष होनेपर जीवकी स्थिति क्या होती है इस बात पर विचार करो तो वहां भी एक स्वरूप की ही बात समझ में आयगी ।

सम्यग्दर्शनकी केवलात्मपरिणामरूपता—अद्वैतात्यविकासरूप मोक्षका कारण जो श्रद्धान है वह तो जीव और कर्म दो की पर्याय है ही नहीं, बल्कि आत्माके शुद्ध परिणामके निमित्त से कर्मकी सामर्थ्यका घात होता है । तो कर्मका कहीं अकर्मत्व पर्याय होगा । सम्यग्दर्शन तो स्वयं कर्मका विनाश करनेका निमित्त है । वह क्या कर्मको साथ लेकर अपनी परिणति बनायगा ? कर्मका पर्याय या कर्म व जीव दो का मिलकर सम्यग्दर्शन पर्याय नहीं है । सम्यग्दर्शन तो जीवका ही एक अभिन्नपरिणाम है । क्योंकि सम्यग्दर्शन तो मोक्षका प्रधान कारण है । सम्यग्दर्शन तो आत्मासे कभी दूर होगा ही नहीं । जैसे सम्यग्ज्ञान प्रकट हो गया तो क्या ज्ञानावरण कर्मका कार्य है ? ज्ञान तो आत्माका स्वरूप है । कर्मका अभाव होनेपर आत्मामें ज्ञान प्रकट हुआ है । जो था वही परिपूर्ण सामर्थ्यके साथ प्रकट हुआ है । यों ही सम्यग्दर्शन जो सम्यक्त्वपूर्ण है वही आवरण हटनेपर स्वयं परिपूर्ण सामर्थ्यमें प्रकट हुआ है । मोक्षका प्रधान कारण सम्यग्दर्शन है, क्योंकि वह असाधारण आत्माका धर्म है । सम्यग्दर्शन आत्माको छोड़कर अन्य कहीं नहीं पाया जाता । तो यह सम्यग्दर्शन असाधारण धर्म है । निजधर्म है क्योंकि मुक्त होनेवाले पुरुषके अन्य कुछ हो ही नहीं सकता मोक्षका कारण । आत्माका श्रद्धान, ज्ञान, आचरण ही मुक्तिका कारण हो सकता है । तो श्रद्धान जीवरूप है, आत्मासे अभिन्न परिणाम है, ऐसे सम्यक्त्व परिणाममें भेदनयसे देखनेपर निर्देश स्वामित्व आदिक सब घटित हो जाते हैं, पर यह सब समझानेके लिए हैं । वस्तुतः तो आत्मा एक अखण्ड है और उसका जो कुछ शुद्ध परिणाम है । वह भी आत्मा से अभिन्न परिणाम है ।

सरागसम्यक्त्व व वीतराग सम्यक्त्वमें भेद—वर्षादिष्ट होनेपर भी सम्यक्त्व लक्षणकी समानता अबसम्यग्दर्शनके लक्षणको निर्दोष बताने के बाद जरा सम्यक्त्वकी विशेषताओंपर भी ध्यान दीजिए । सम्यक्त्व तो वस्तुतः एक ही है, पर अपेक्षा-भेदसे सम्यक्त्वके दो भेद कहे जा सकते हैं । (१) सरागसम्यक्त्व और (२) वीतरागसम्यक्त्व । सराग सम्यक्त्व तो वह है जहां प्रशम, सम्वेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य आदिकी अभिव्यक्ति है । सराग सम्यक्त्व तो वह है जहां वीतराग सम्यक्त्वकी भांति कोई बाहरी चिन्ह नहीं है, जितने में सम्यक्त्वकी परख की जाय । सराग सम्यक्त्व में मन, वचन, कायकी ऐसी चेष्टा होती है कि जिस

लक्षणसे सम्यक्त्वका अन्दाज कर लिया जाता है। सरागसम्यक्त्व और वीतरागसम्यक्त्वके लक्षण इस प्रकार कहे गए हैं कि जो रागी जीवके सम्यक्त्व है वह सराग सम्यक्त्व है और जो वीतरागके सम्यक्त्व है वह वीतराग सम्यक्त्व है। दोनों प्रकारके लक्षणोंमें विरोध कुछ नहीं आता, पर एक समझनेके लिए प्रधान लक्ष्य देनेका फर्क है। सम्यग्दर्शन तो विशुद्ध निर्मल सबके हुआ करता है, जिसका जितने अंशमें प्रकट हो। औपशमिक और क्षायिक तो एक समान प्रकट होते हैं, क्षायोपशमिकमें कुछ भेद है। कारणमें भी अंतर उनका यह है कि औपशमिक और क्षायिक तीन करण परिणामके बाद होते हैं और क्षायोपशमिक दो करणपरिणामके बाद होता है। अगर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व जग गया तो उसमें कुछ दोष सूक्ष्म हो सकते हैं। सम्यक्त्व प्रकृतिका उदय होनेसे चल, मलिन, अगाढ़ आदिक हो जाते हैं। फिर भी सम्यक्त्व जितने अंशमें प्रकट है वह तो सम्यक्त्व एक सा ही है। सम्यक्त्वमें सबसे भिन्न अन्यपदार्थोंसे निराला, विकारोंसे भी परे आत्माके सहजस्वभावका विश्वास होता है। सरागसम्यक्त्व और वीतरागसम्यक्त्वके ये लक्षण कहे जा रहे हैं। लक्षण समीचीन वह होता है जो लक्षण अपने लक्ष्यमें पूर्णतया व्यापकर रहता है। सम्यग्दर्शनका निर्दोष लक्षण सरागसम्यक्त्व और वीतराग सम्यक्त्व से स्पष्ट प्रतीत हो जाता है। सम्यग्दर्शन जिसे कहते हैं वह बात दोनों सम्यक्त्वोंमें है, फिर भी सराग जीवके जो सम्यक्त्व पाया जाता है वहां प्रशम, सम्बेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य, इसतरहका परिणाम देखा जाता है, जिससे सराग सम्यक्त्व की प्रसिद्धि होती है। यहाँ उन चिन्होंको लिया जो चिन्ह रागभावके बिना नहीं होते, और रागभाव बिना जो परम दर्शन है उसका कोई चिन्ह नहीं प्रकट होता। भले ही यह कहें कि जब वीतराग मुद्राके दर्शन किए जाते हैं तो कभी वह हसंती हुई मालूम होती और कभी वह प्रतिमा उदास मालूम होती है। तो वहां बात क्या है कि जब आप स्वयं प्रसन्न चित्त होकर प्रतिमाके दर्शन करते हैं तो वह प्रतिमा प्रसन्न मालूम होती है, और जब आप उदास होकर दर्शन करते हैं तो आपको वह प्रतिमा भी उदास मालूम होती है। तो वहां प्रतिमाकी तरफसे कोई बात नहीं है। वह तो आपकी कल्पनासे प्रसन्न और उदास दिखी, उस प्रतिमाकी ओर से कोई चिन्ह मिले यह बात नहीं हो सकती। ऐसी बात तो सराग जीवके ही हो सकती है। सरागसम्यक्त्वका लक्षण है प्रशम, सम्बेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य ये प्रकट हुए। और वीतराग सम्यक्त्व का लक्षण है—आत्मामें विशुद्धि मात्र। अब यहां कोई यह दोष नहीं ला सकता कि दर्शन मोहनीय का उदय जहां नहीं है ऐसा किसी महान आत्माका जो स्वाभाविक श्रद्धान है, जैसा वह ठीक सराग सम्यग्दृष्टिमें पाया जाता है, वीतराग जीवमें तो आत्मरूप श्रद्धान ही तो है।

तो सराग सम्यक्त्वका जो लक्षण कहा है वह तो उचित नहीं होता। वह लक्षण वीतराग सम्यक्त्व में भी लगा, सराग सम्यक्त्वमें भी लगा। तो जो लक्षण लक्ष्यमें सबमें प्रकट हो वह तो निर्दोष होता और लक्ष्यको छोड़कर अन्यमें प्रवेश न हो वही तो निर्दोष कहलायगा। यह कैसे निर्दोष है? तो यहां बात यह समझना है कि एक ओर से नियम लगावें। प्रशम, सभ्वेग, अनुकम्यादि जहां प्रकट होते हैं वह तो सराग सम्यक्त्व है ही। चाहे सब जीवों में यह चिन्ह नहीं दिख सकता, पर जहां यह चिन्ह दिख जाय नियमसे वह सराग-सम्यग्दृष्टि है।

सरागसम्यक्त्वके चिन्होंमें प्रशमभावका निर्देश—चिह्नोंके लक्षण देखिये—प्रशमका अर्थ है-किसी जीवने चाहे तुरन्त अपराध किया हो या पहिले, जानी पुरुष सम्यग्दृष्टि जीव उन अपराधोंकी प्रतिक्रिया नहीं करता अर्थात् उसके अहितकी भावना नहीं रखता। जैसे मां बच्चेको दूध पिलाये अथवा दवा पिलाये, और वह बच्चा पीना नहीं चाहता, तो मां उसे थप्पड़ भी मारती है तिसपर भी उस बच्चेके प्रति उस मां के अहितका भाव नहीं होता इसीतरह जानी जीव अपने किसी शिष्य का प्रतिकार करे, दण्ड दे, इतने पर भी उसका उस पुरुषके प्रति अहितकी भावना रंच नहीं है, वह तो एक व्यवस्था है। प्रशमभाव उसे कहते हैं, जहां क्षमाका भाव प्रकट होता है। देखिये-जिसने सब जीवोंमें एक उस स्वभावको निरखा है, जो सबमें है, भगवन्तों में है, उस स्वभावका आश्रय करने वाले पुरुषको सर्व जीवोंके प्रति क्षमाका भाव रहता है। क्रोध और ऐबका रंच परिणाम नहीं होता। प्रशम उसे कहते हैं कि चाहे तुरन्त अपराध किया हो चाहे पहिले किया हो तो भी उस अपकारी जीवपर अहितका भाव न लाना और उसे क्षमा कर देना यह है प्रशमभाव। आप समझिये कि जिसने अपने आपके अन्तः प्रकाशमान उस सहज ज्ञानस्वभावका अनुभव किया है, जिसने उसे अनुभवके आनन्दको पाया है, ऐसा अनुपम आनन्द पा लेने वाला पुरुष बाहरी बातोंमें क्या उपयोग फसाये? उसके सहज प्रशमभाव होता है। प्रशमभावमें अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व-का उदय नहीं रहता। सम्यक्त्व प्रकृतिका भी किमी किसीके उदय नहीं है। क्षयोपशम (वेदक) सम्यक्त्वमें सम्यक्त्वप्रकृति का तो उदय हैं तो वह सम्यक्त्वप्रकृति भी इस जीवका बिगाड़ नहीं कर पाती, सम्यक्त्वका विनाश नहीं कर पाती। यद्यपि मिथ्यादृष्टि जीवके भी कुछ क्षमा शान्ति जैसी बात कहीं कहीं पायी जा सकती है लेकिन अनन्तानुबन्धी और मिथ्यात्वादिक प्रकृतियोंके उपशम अनुदय जहां न हो, वहां भले ही प्रशमभाव ऊपरसे जच रहा हो वास्तविक प्रशम नहीं है। सम्यग्दृष्टि के वास्तविक प्रशमभाव है, क्योंकि

अनन्तानुबन्धी आदिक प्रकृतियोंका अनुदय होने से वहां वास्तविक प्रशमभाव प्रकट हुआ। यद्यपि बाहरी दृष्टिसे प्रशम और प्रशमाभास कहे गए। अज्ञानी जीवके प्रशमाभास है, ज्ञानी जीवके प्रशमभाव है, लेकिन प्रशमका वास्तविक अर्थ किया गया है कि जहां अनन्तानुबन्धी आदिक की प्रक्रिया न हो वह प्रशमभाव है। तो यह अज्ञानियोंमें सम्भव नहीं। भली प्रकारसे परीक्षा की जाय तो प्रशम और प्रशमाभासका अन्तर भी समझा जा सकता है। तो सम्बद्धदृष्टिमें यह स्वभावमे गुण प्रकट होता है। वह दूसरे जीवोंपर क्षमाका भाव रखता।

सरागसम्यक्त्वके चिन्होंमें संवेगभावका निर्देश—सम्बेग—जो सम्यग्दर्शनका, सराग-सम्यक्त्वका चिन्ह है उसका लक्षण है कि संसारमें भयभीतपना होना सो सम्बेग है। संसार नाम है द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, और भवपरिवर्तनका इनमें सब ही संसार आ गया, भावसंसार आया, द्रव्यसंसार आया। जहां, अज्ञानमय परिणाम है, भ्रमभरा भाव है वहां संसारमें कुयोनियोंमें सर्वत्र जन्ममरण होता रहता है। वह रागद्वेष रूप संसार है। रागद्वेषादिक भाव परिवर्तनमें जितने प्रकारके भाव हैं वे सब इस परिवर्तन के कारण बनते रहते हैं, तो वे सब विकार संसार हैं, उन विकारोंसे भीतता होना याने विकारोंसे दूर होनेका भाव रखना सो सम्बेग है। जितने भी उपद्रव हम आप पर हैं वे सब रागद्वेष मोहसे हैं। मोहसे बढ़कर और विपदा क्या? किसी जीवसे लेनदेन नहीं, सम्बंध नहीं, प्रत्येक जीव अपने कर्म लिए हैं, अपनी परिणतिसे उसका परिणामन होता है। अनन्तानन्त जीव हैं, उनमें से कोई दो चार जीव आपके घरमें आ गए तो आपका उनसे क्या सम्बन्ध? सबका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अपने आपमें है। किसी का किसीसे कुछ सम्बंध नहीं, लेन देन नहीं, फिर भी उनमें इतना लगाव है जिससे इतने कष्ट पा रहे हैं, यह विपत्ति नहीं है तो क्या है? तो इन विपत्तियोंसे दूर होनेका परिणाम होना सम्बेग है याने विपत्तियोंसे हटनेके परिणामका नाम सम्बेग है। ऐसा सम्बेग ज्ञानी जीवके प्रकट होता है। जिसने अपने आपके स्वाभाविक आनन्दका अनुभव किया है, सत्य ज्ञानानन्दस्वरूप को तका है उस पुरुषको बाहरी सुख दुःख में क्या लगाव होगा? तो संसारसे अलग होने, हटने, उपेक्षा होनेका नाम सम्बेग है।

सरागसम्यक्त्वके चिन्होंमें अनुकम्पा व आस्तिक्यका निर्देश—अनुकम्पा—सर्व जीवोंमें दया उत्पन्न होना अनुकम्पाभाव है। वास्तविक दया यह है कि इन प्राणियोंको जो व्यर्थका दुःख हो रहा है उनके प्रति ऐसा भाव हो कि अहो, ये प्राणी कैसा अपने

आत्मस्वरूपाको भूत गए, उसका श्रद्धान नहीं किया, आपने स्वरूपकी ओर दृष्टि नहीं किया। ये अपने निज स्वरूपाको जान जायें तो इनका यह माग दुःख मिट जाय। इस प्रकारका कहणाका भाव जानो जीवके उत्पन्न होता है। कारण यह है कि दुःख सहनेपर, संक्लेश करनेपर इस जीव की अधोगति होती है। क्यों हुई ऐसी निम्न दशा ? इनका दुःख दूर हो, प्रशम भावका अनुभव करें और अपनेको मोक्षमार्ग में लगायें, ऐसी सद्भावनासे श्रोतप्रोत होकर संसारके प्राणियोंकी दया करना यह है अनुकम्पा। वास्तवमें अनुकम्पा तो जीव अपने आप पर ही कर पाता है मैं दूसरे पर दया करता हूँ ऐसा विश्वास करना मिथ्या है। कोई कि गो दूरे पर दया नहीं कर सकता। जो भी दया करता है वह अपने आप पर करता है। जब किसीका दुःख देखकर चित्तमें वेदना होती है तो वह अपने आपकी वेदना शान्त करनेके लिए ही चेष्टा किया करता है। तो किसपर दया की ? अपने आप पर। कोई बड़ा भूखा हो, भूख से विल्ला रहा हो तो उसे देखकर किसी गृहस्थको उसके दुःखका अन्दाज ही तो हुआ और उस अन्दाजके आनेसे स्वयंमें किसी न किसी रूपमें दुःख उत्पन्न हुआ। अब अपने दुःख की शान्तिके लिए वह एक चेष्टा करता है, उस भूखेको भोजन कराता है। तो वास्तवमें अनुकम्पा अपने आपकी भलाईके लिए ही तो है। सम्यग्दृष्टि जीवमें एक नैसर्गिक गुण ऐसा आता है कि उसके अनुकम्पा जगती है। ऐसी अनुकम्पाका चिन्ह लखकर कोई भी ज्ञानी पुरुष समझ लेता है कि इसके सम्यक्त्व है। यों सराग सम्यक्त्वका चिन्ह है अनुकम्पा। आस्तिक्य—जीव, अजीव, आश्रव, बंध सम्बर आदिकका श्रद्धान करना, विश्वास रखना युक्ति और आगमसे अविरोध जो कुछ भी पहिचान है उसमें यथार्थताकी दृष्टि रखना यह ऐसा ही तत्त्व है। लोक है परलोक है, आत्मा है, पुण्य पाप है, संसार है मोक्ष है, ऐसा भाव रखनेको आस्तिक्यभाव कहते हैं। जिस पुरुषके आस्तिक्यभाव है उस पुरुषके परिणाम निर्मलताकी ओर बढ़ते हैं, और जो कहते हैं कि आत्मा फात्मा कुछ नहीं है, यह सब एक बहाना है, भौतिकतत्त्व है, तो वे आत्माका बन्धन क्या तर्केंगे ? और आत्मामें मुक्तिकी बात क्या जोड़ेंगे ? सम्यग्दृष्टि पुरुषके सब यथार्थ निर्णय है। जीवका निजस्वरूप क्या है। वर्तमानमें जीव किस दशामें चल रहा है ? उसका क्या परिणाम बन रहा है ? इस बन्धन परिणामसे जीव कैसे हट सकता है ? जीवका कल्याणमय परिणाम क्या है ? सब पर उसे विश्वास है। उसके आस्तिक्यभाव प्रकट होता है। तो ये चारो ही गुण सम्यक्त्वकी पहिचान है।

प्रशमादिलक्षणोंकी सम्यक्त्वानुमायकताका निदर्शन—वस्तुतः तो प्रथम, सम्बेग, अनुकम्पा और आस्तिक्यसे अपने आपके सम्यक्त्वका अनुमान होता है, क्योंकि सम्यग्दर्शन

तो परोक्ष है। सर्वज्ञदेवके अतिरिक्त अन्य जीवोंको तो अनुमानसे ही ज्ञात हो सकता। तो इन चारो गुणोंमें से १, २, ३ या ४ जो भी गुण स्वुसम्बेदन प्रत्यक्षसे जाने गए, खुदमें खुदका प्रत्यक्ष किया गया उससे ज्ञात यह चिन्ह सम्यक्त्वका अनुमान करा रहा है फिर जब अपने ही चिन्ह से सम्यक्त्वका अनुमान किया तो ऐसा चिन्ह जब दूसरेमें दिख गया तो वहां उस सम्यक्त्वका अनुमापक होता है। तो इस अतीन्द्रिय सम्यग्दर्शन गुणको सिद्ध करने वाला जायक हेतु, पहिचान करा देने वाला लक्षण सम्यक्त्वका प्रख्यापक है। प्रसम, सम्बेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य इन चार गुणोंका जो स्वरूप है और उसका जो एक मर्म है वह सब सम्यग्दृष्टिमें पाया जाता है लेकिन जो इन चिन्होंमें अभिव्यक्ति होती है वह होती है किसीमन, वचन, कायको चेष्टा से। तो उस अभि व्यक्तिसे सराग सम्यक्त्वका अनुमान होता है। यद्यपि किन्हीं—किन्हीं अज्ञानियोंमें भी प्रशम आदिकके चिन्ह दिखाई देते हैं, फिर भी वे वास्तविक प्रशमादिक नहीं हैं। कारण यह है कि उन अज्ञानियोंको अपने माने हुए एकान्त में ऐसी हठ हुई है कि वे वस्तुके सत्य अनेकात्मक स्वरूपको नहीं समझते और वे अपनेमंतमपर मान कषाय बभाये हुए हैं। तो वह वास्तविक प्रसम नहीं है। वास्तविक प्रशम ज्ञानी जीव के ही सम्भव हो सकता है।

सम्यक्त्वके प्रकृतिपरिणामताका अभाव—अब यहां कोई आत्माके निरपेक्ष स्वरूपका एकांत करने वाले लोग ऐसी आशंका रख सकते कि आत्मा तो एक निरपेक्ष चैतन्यमात्र है। सम्यग्दर्शन तो एक प्रकृतिकी पर्याय होगी ! क्योंकि अपरिणामी है। प्रकृतिका हा विकार है यह श्रद्धान। और आत्मा तो एक शुद्ध चैतन्य चैतन्यमात्र है। ऐसा अभिप्राय रखने वाले कुछ विचार कर चले तो उन्हें विदित होगा कि श्रद्धान प्रधान का परिणाम नहीं हो सकता। अगर मान लिया कि सम्यग्दर्शन तो प्रकृतिका परिणाम है तो मोक्ष भी प्रकृतिका ही करावें, पुरुषके आत्माके मोक्षकी बात फिर क्यों कहते यदि कोई यह कहे कि आत्माका जो वास्तविक स्वरूप है शुद्ध चैतन्य, उसमें न समीचीनता होती है न मिथ्यापन। वह तो केवल संसार अवस्था में है। इस आत्माके साथ प्रकृतिका सम्बंध चल रहा है, इसलिए प्रकृति की समीचीनता होनेसे चेतन भी समीचीन माना जाता और प्रकृति के विकृत होनेसे चेतनको विकृत मानलिया जाता। इस तरह प्रकृतिधर्म का आत्मामें उपचार किया जाता, तब प्रकृतिका ही उपयोग सम्मयग्दर्शन हुआ। यह बात माननेसे आत्माके सत्यस्वरूपकी रक्षा हो सकती है। इस समस्या पर भी कुछ विवेक पूर्वक देखें तो यह विदित होगा कि प्रधान चूंकि अचेतन है, इसलिए अचेतन पदार्थ में श्रद्धान, ज्ञानचेतना जैसी बात कैसे आसकती है ? सम्यक्त्व की बात तो चेतना में ही सम्भव हो सकती है। ऐसा मानने-

पर भी कि प्रकृतिका धर्म महान अहंकार आदि चेतनमें प्रतिभासते हैं, वहां चेतन स्वयं कषायरंग नहीं करता, वहां यह तो मानना पड़ेगा कि चेतन चेतना है और अनेक प्रकारोंमें चेतता है, विरुद्धचेतनेका परिणाम न रहे जब, किसी भी प्रकार हो, प्रकृतिकी निवृत्तिसे हो, उस सम्यक संचेतनके आधारको ही तो सम्यक्त्व कहते हैं। यह सम्यग्दर्शन प्रकृतिका परिणाम नहीं, किन्तु आत्माका अभिन्न परिणाम है।

मोक्ष शास्त्रके द्वितीयसूत्रमें सम्यग्दर्शनका लक्षण बताया है। प्रयोजनभूत तत्त्वका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। देह विषय कषायसे निराले आत्मतत्त्वका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। वस्तुस्वरूपसे सहित पदार्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। भूतार्थनयसे तत्त्वोंको जानकर परमतत्त्वका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शनके कितने ही लक्षण किए जायें सबका लक्ष्य है निज सहज ज्ञानस्वभावका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है सम्यग्दर्शनका लक्षण कहने के बाद अब एक जिज्ञासा यह हो सकती है कि वह सम्यग्दर्शन क्या अपने आप होता है या अनादि अनन्त नित्य ही है, या नित्य कारणसे होता, किस प्रकार उमकी सत्ता होती है, ऐसी एक जिज्ञासा सम्यग्दर्शन सम्बन्धमें हो रही सम्यग्दर्शन किस तरह होता है या अपने आप ही पहिले से है, उसकी क्या विधि है उसका समाधान करने के लिए सूत्र कहते हैं तन्निसर्गादधिगमाद्वा।

सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिविधिका विचार—तत निसर्गात् अधिगमात् वा यहां ४ पद दिए गए कि सम्यग्दर्शन निसर्गसे अथवा परोपदेशसे होता है निसर्गका अर्थ है अपने आप यने उपदेशके बिना। कहीं निसर्गका अर्थ यहां यह न समझना कि जैसे स्वभावसे कोई स्वभावपर्यायें होती रहती है यों स्वभावसे सम्यक्त्व होता यद्यपि सम्यग्दर्शन स्वभावपर्याय है, लेकिन यह अनादि कालसे आखरणसे ढकी हुई है अतएव इसकी उत्पत्तिका कोई कारण है। तो कारण वस्तुतः ७ प्रकृतियों का उपशम, क्षय, क्षयोपशम है, पर बाह्यकारणों का, जाति, स्मरण वेदना, ऋद्धिमदर्शन, दूसरोंका उपदेश श्रवण, ये सब बाह्य साधन हो गए। तो जैसे सम्यग्दर्शन के उत्पन्न होनेमें, उम भावमें दूसरेका उपदेश तो साधन जुड़े किन्तु जातिस्मरण से, वेदनानुभवसे ऋद्धि दर्शन से सम्यक्त्व उत्पन्न हो तो उसे नैसर्गिक सम्यग्दर्शन कहते हैं। निसर्ग शब्दका अर्थ क्या है? नि उ नर्ग है, सृजो धातु है और क प्रत्यय लगा हुआ है, जिसका अर्थ होता है निसर्जनं निर्गमः। यने स्वभाव। स्वाभावसे जो सम्यग्दर्शन हो उसे नैसर्गिक कहते हैं। स्वभाव का अर्थ यहां सहज स्वभावसे मतलब नहीं, याने, कोई बाहरी, प्रसंग यहां आये नहीं और सम्यग्दर्शन हो सो मतलब नहीं, किन्तु परोपदेश बिना जातिस्मरण आदिक अन्य साधनपाकर जो सम्यक्त्व हो उसे नैसर्गिक कहते हैं।

तन्निर्गमिदधिगमाद्वा इस सूत्रमें 'उत्पद्यते' क्रियाके अध्याहारकी युक्ता—सूत्रमें क्या कहा गया है ? तन्निर्गमिदधिगमाद्वा, इस सूत्रके शब्दोंसे जो अर्थ पाया जाता है वह इतना ही है कि "वह स्वभाव से और अधिगमसे" इतना ही चार शब्दोंका अर्थ है। अब इससे आप क्या समझे ? वह स्वभासे अथवा परोपदेशसे, इसके आगे और अर्थ नहीं भरा है। क्यों उत्पन्न होना है। ऐसी क्रियाका अध्याहार किया जायगा, जिसका अर्थ बन गया कि वह निर्गम अथवा अधिगमसे उत्पन्न होता है। तो यहाँ उत्पद्यते लिखना पड़ेगा। सूत्रमें यह नहीं लिखा है, किन्तु ऊपरसे लगाना होगा। अब कोई यह शंका कर सकता है कि तुमने ऊपरसे क्या लगाया ? उत्पन्न होता है उत्पद्यते। और, हम यदि यह लगा दें—न उत्पद्यते, अर्थात् नहीं उत्पन्न होता है तो अर्थ यह बन जायगा कि वह सम्यग्दर्शन निर्गमसे अथवा उपदेशसे उत्पन्न नहीं होता। ऊपरसे माननेका इसका भी अधिकार है। तो न उत्पद्यते यह क्रिया क्यों नहीं लगायी जा सकती ? और जब यह क्रिया शब्द लगा दिया जाय तो यह अर्थ हुआ कि सम्यग्दर्शन उत्पन्न नहीं होता किन्तु मदा है, जैसे जीव उत्पन्न नहीं होता, न निर्गम से न अधिगमसे, न किसी पर पदार्थसे संगसे तो जैसे जीव उत्पन्न नहीं होता ऐसे ही सम्यग्दर्शन उत्पन्न नहीं होता, किन्तु वह सदा शाश्वत, विराजमान रहता है, यह अर्थ बन जायगा अब समाधानमें सोचें कि शंकाकार जब यह कह रहा है कि तन्निर्गमिदधिगमाद्वा इस सूत्रमें न उत्पद्यते और लगाना चाहिए तो इससे सम्यग्दर्शन नित्य सिद्ध हो जायगा। यह ही तो शंकाकार कह रहा। समाधानमें उससे पूछें कि तुम जो सम्यग्दर्शनको नित्य कहते हो तो द्रव्यदृष्टिसे कहते हो या पर्याय-दृष्टि से ? अगर द्रव्यदृष्टिसे सम्यक्त्वको नित्य कहते हो तो वह बात हमें भी इष्ट है। द्रव्यदृष्टि से जैसे जीव नित्य है ऐसे ही द्रव्यदृष्टि से जैसे जीव नित्य है ऐसे ही द्रव्यदृष्टिसे सम्यक्त्व गुण नित्य है। सम्यक्त्व भी गुण है। पर्याय रूप सम्यक्त्व को बात तो कहते नहीं, द्रव्य सम्यक्त्वकी बात कह रहे हैं। द्रव्यसे सम्यक्त्व सदा काल रहना है, इसमें कोई विवाद नहीं। यदि पर्यायदृष्टिमें कहते हो तो पर्यायदृष्टिसे अगर सम्यग्दर्शनको नित्य कहोगे तो हमेशा सम्यग्दर्शनका अनुभव होना चाहिए। अनुभव होता है पर्यायका, गुणका नहीं। गुण तो एक शक्ति है, उस शक्ति की जो दशाएँ होती हैं उन दशाओंका अनुभव होता है। सम्यक्त्व नामक गुण जो कि द्रव्यदृष्टिसे निरन्तर है, अनादि अनन्त है, उसकी पर्याय बने, विराट् बने तो अनुभव होगा। अनुभव होता है परिणामन-का। तो सम्यग्दर्शनको यदि पर्यायदृष्टिसे नित्य समझ लिया जायगा तो सम्यग्दर्शन का सदा अनुभव होना चाहिए। किन्तु है क्या ऐसा ? नहीं है। अगर सम्यग्दर्शन अनादि ज्ञानसे हो और उसका अनुभव अनादि ज्ञानसे जीवको हो तो संसार क्यों रहे ? मोक्ष क्यों

नहीं हो जात ? तो सम्यग्दर्शनका सम्वेदन सदासे नहीं है, वह कभी से होता है। तो जब कभीसे सम्वेदन होता है तो है तो उसकी अद्रभूति पर्याप्त दृष्टिमें आयी है, सो ही इस सूत्रमें बताया कि वन्न सम्यग्दर्शन उत्पन्न कैसे होता है।

परद्रव्योंसे भिन्न आत्मतत्त्वमें रुचि करनेका संस्करण—यहां तक क्या बात सिद्ध हुई कि सम्यग्दर्शन किसी जीवके तो परोपदेश बिना हो जाता और किसी जीवके परोपदेश के कारणसे होता है। इस तरह से सम्यग्दर्शन दो प्रकारका है। सम्यग्दर्शन का अर्थ क्या तो सरलसे सरल शब्दोंमें पहिचानें। जैसे छहठालामें बताया है—“परद्रव्यन तं भिन्न आपमें रुचि सम्यक्त्व भला है।” अर्थात् पर द्रव्योंसे भिन्न अपने आपके आत्मस्वरूपमें रुचि करना सम्यग्दर्शन है। देखिये-सम्यग्दर्शन एक अपूर्व निधि है। सम्यक्त्व अगर न प्राप्त हुआ और इस जावन से जाते रहे तो चाहे लवणी करोड़पती हो जाय चाहे राज्यपद मिल जाय चाहे कितने ही विषयों के साधन जुट जायें लेकिन वह सब बेकार है। व आगामी कालमें दुर्गति के ही कारण बनेंगे, और अगर सम्यक्त्व लाभ हो जाता है अपने इस निज ज्ञान स्वभावमें दृष्टि जाती है तो फिर चाहे कंस ही दद्रिता की स्थिति क्यों न हो पर उसे सब कुछ मिल गया। सदाके लिए संसारसे छूट, जाये ऐसा कारण बन जा यतो इससे बढ़कर और क्या निधि हो सकती है ? सम्यक्त्वमें क्या बात पायी जाती है ! परद्रव्योंसे निराले अपने आत्मस्वरूपमें रुचि हो जाना, श्रद्धान होना, प्रतीति होना, उसकी दृष्टि होना यह सम्यग्दर्शन है। अब उस परद्रव्यकी बात समझिये क्या क्या वे पर द्रव्य हैं धन मकान आदि जो जो प्रकट भिन्न क्षेत्रमें रहते हैं उनसे मेरा आत्मा बहुत दूर है, वे तो प्रकट भिन्न हैं। और कुटुम्ब परिवार ये जीव ये भा प्रकट भिन्न हैं, और शरीर, यह भी प्रकट भिन्न है। जैसे दूध और पानी मिले हुए हो, एकमेक हो रहे हों फिर भी दूध दूधमें हैं और पानी पानीमें है। दूधमें पानी नहीं चला गया और पानीमें दूध नहीं चला गया। पारखी लोग उस मिले हुए दूध और पानी में यंत्रों द्वारा या यो ही किसी सोखता आदिमें डालकर परख लेते हैं कि इसमें इतना तो दूध है और इतना पानी है। अथवा और भी उदाहरण तो हैं, पानी उस रंगका बन जाता है। वहां भी यही बात है कि पानीमें पानी है और रंगमें रंग है। आप और भी देखिये जैसे इस भीटमें यह सफेदी (कलई) पुती है तो बताइये भीट सफेद है या कलई ! अरे कलई सफेद है भीट तो ज्यों की त्यों है। जो कलई पहिले उसीके रूपमें थी वह अब पानी का सम्बंध पाकर इस रूपमें फैल गई। वहां भीटमें भीट है और सफेदीमें सफेदी। तो ऐसे ही समझिये हम आपका शरीर और आत्मा ये दोनों एकक्षेत्रावगाही बन रहे हैं फिर भी शरीरमें शरीर है और आत्ममें आत्मा है। शरीर

जड़ है, शरीर जानता नहीं, आत्मा जानने- वाला है । तो आत्मा इस शरीरसे न्यारा है ।

विभावपरिणतियोंसे विविक्त अन्तस्तत्त्वकी रुचि करनेका अनुरोध—विविक्तका में और आगे चलें तो आत्मामें जो रागद्वेष होते हैं, विषय कषायके भाव होते हैं उन विषय—कषायके भावसे भी आत्मा न्यारा है । वे विषयकषायके भाव आत्माके स्वरूप हैं क्या ? आत्माके स्वभाव हैं क्या हैं ? आत्मामें सहज ही पैदा हो गए क्या ? क्या आत्मामें निमित्त कारण हैं ? दर्पण तो अपने स्वभावसे स्वच्छताको लिए हुए है और उसमें परिणामनेका स्वभाव हड़ा हुआ है, मगर दर्पण स्वयं ही छायाका निमित्त नहीं बनता सामने कोई चीज हो तो हाथ छायाका निमित्त बना और यहां दर्पण में दर्पणकी परिणतिसे छाया परिणामन हो गया अब बतलावो वह छाया क्या दर्पणकी चीज है ? एक दृष्टिसे तो एक द्रव्यकी परिणति हीतो है, तो कह दीजिए, दर्पणका चीज है, लेकिन यह भी आप क्षणिक बता पायेंगे । और घटनायें और निर्माण विधिसे देखकर आप यह कहेंगे कि यह छाया दर्पणकी नहीं है, यह नैमित्तिक है, परद्रव्यकी छाया है, परद्रव्यका निमित्त पाकर हुई है । तो चूंकि उस छायाका अन्वयव्यतिरेक हाथके साथ है, हाथ आया तो छाया हुई और हाथ हटा तो छाया हटी । तो कैसे आप सम्बंध जोड़ेंगे ? छाया हाथ के प्रति जाय दर्पणमें मत रहे । दर्पण तो शुद्ध स्वच्छ है । दर्पण उस छायासे निराला है । जैसे हम यहां यह परख करते हैं ऐसे ही विषय, कषाय, विकल्प जो उत्पन्न होते हैं वे कर्मोदयका निमित्त पाकर होते हैं । एक बात और खास समझनेकी है, जैसे दर्पणके सामने लाल कपड़ा किया जाय तो दर्पण में लालिमा आ जाती है तो वह कपड़ा स्वयं लाल है । तो दर्पणमें लालिमा आयी इसी तरह उस उस तरह के कर्मोदय समाने है, क्रोध, मान, माया, लोभ प्रकृति उस उस प्रकार की प्रकृति शरीर कर्म सामने हैं, तो उसका निमित्त पाकार इस उपयोगमें झलक हुई और झलकके साथ अज्ञानी मोही आत्माने उसमें अपना उपयोग जुटाया और उसे अपनाया । तो वह विवेक करें कि ये क्रोधादिक विकार परद्रव्य हैं, ये मैं नहीं हूं, उनसे भी निगला समझना है और जो भीतर कल्पनायें विचारतरंगें हुई ये भी कर्म क्षयोपशमका निमित्त पाकर हुई, मन इन्द्रियका साधन पाकर हुई, अतः ये परद्रव्य हैं, मेरी चीज नहीं हैं । अहोज्ञानकी परिणति होकर भी परद्रव्य देखे जाते हैं, ऐसा परमात्मतत्त्वसे मैत्री भाव भेदविज्ञानीके शुद्ध ज्ञानी पुरुषके होता है । सबसे निराला मैं हूं, तब क्या रहा ? क्या बताया जाय । जो है । लेकिन बतानेको अगर चलेंगे तो कहेंगे टंकोटकीर्णवत निश्चल एक ज्ञावक स्वभाव है, याने जो अनादिसे अनन्तकाल तक अन्तः प्रकाशमान है, जिसको लक्ष्यमें लेनेके प्रयासमें वेदान्तियों-

ने ब्रह्मस्वरूप माना है उस प्रकारका कोई अविकार स्वरूप वह मैं हूँ। देखिये अन्तः एक ज्ञानकी ही बात है। परम ब्रह्म माना तो है, अद्वैतवादियोंने, मगर सर्वथा अपरिणामी माना है। और जो सर्वथा अपरिणामीहो वह तो सत् हो नहीं हो सकता। फिर और बात सोचना व्यर्थ है। इसलिए वह नित्यत्वैकान्तमें ब्रह्मस्वरूप मिथ्या बन गया, और जैन शासनमें परम ब्रह्मस्वरूप बनाया है अविकारी शाश्वत एकस्वरूप सहज, लेकिन एकान्तवाद नहीं किया है। द्रव्यदृष्टिसे देखा जानेपर ऐसा ज्ञात होता है मगर वस्तु तो उत्पाद व्यय ध्रुव्य युक्त है। उसमें परिणाम होता है, पर्याय होती है, अन्यथा सम्बेदन नहीं हो सकता, अनुभव नहीं हो सकता। उसका कोई प्रयोग ही न हो सकेगा। जैसे आपको किसाने बहुत बढ़िया भोजन तो दिखाया और कहा-साहब इसे देख लो मगर खाना मत, तो भला बतलाओ वह भोजन आपके किसी काम का है क्या? किसी भी कामका नहीं, इसीतरह वह परमब्रह्म जिसका कि परिणाम नहीं, पर्याय नहीं, दशा नहीं, अनुभव नहीं हो सकता प्रयोग नहीं हो सकता वह परमब्रह्म किस काम आयगा? उसका फिर सत्त्व ही क्या रहेगा?

शंकाकार द्वारा निसर्गज सम्यग्दर्शनकी असंभवताका पूर्वपक्ष—अनादि अनन्त अहे-
तुक सहजज्ञानमात्र आत्मतत्त्व दृष्टिमें आये तो समझिये कि सम्यग्दर्शन है। वह सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है दो प्रकारसे (१) निसर्गसे (२) अधिगमसे, ऐसी बात सुनकर एक जिज्ञासु कह रहा है कि सम्यग्दर्शनमें निसर्गजता होना अनुचित जच रहा है, क्योंकि जिम पुरुषने इस ज्ञानस्वभावी आत्माका समझा नहीं, जाना नहीं, उसके वह सम्यग्दर्शन कैसे होगा? जो पदार्थ कभी जाननेमें आयाही नहीं उसका विश्वास कैसे हो सकता है? तो निसर्गज कहोगे तो वहां यह ही बात समझमें आयगी कि जिस आत्माको अब तक कभी जाना ही नहीं उसका अपने आप दर्शन हो रहा है। यह ही तो निसर्गज सम्यग्दर्शनका अर्थ हो गया तो ऐसा कभी हुआ नहीं। मूल तत्त्व कभी जान नहीं पाया तो उसका श्रद्धान कभी हो नहीं सकता। जैसे औषधि, कोई रसायनकी वस्तु अत्यन्त परोक्ष हो और जिस औषधिको कभी देखा नहीं, जाना नहीं, कभी सुना नहीं, ऐसे रसायनके बारे में और उस औषधिके बारेमें फल कैसे हो सकता है। जो समझमें अब तक आया ही नहीं, उसके बारेमें कैसे विश्वास किया जाय और समझमें आ गया तो उसके मायने हो गया कि अधिगमज हुआ। बाह्य उपदेशसे समझमें आया निसर्गज सम्यग्दर्शन तो कुछ चीज नहीं है यह शंकाकारका अभिप्राय है। उसके समाधानमें यदि कोई यह कहे शंकाकार ही कह रहा है कि इस शंकाका यदि कोई यह जवाब दे कि जैसे लोकमें यह प्रसिद्ध बात है किशुद्रने वेदको कभी नहीं जाना। वेदवाले तो कहते हैं कि शुद्रको वेद पढ़ने का अधिकार नहीं, जब अधिकार ही नहीं तो फिर

वे कैसे वेदकी बात समझें ? तो जैसे वेदकी बात कभी सुना ही नहीं फिर भी उसे वेदकी बहुत भक्ति रहती है, वह उसे नमस्कारकरता है। उस वेदके सम्बंधमें कभी चर्चा हो जाय तो वह सामने आकर कहता है कि यह तो मेरा है, वह उग मतकी बड़ी श्रद्धा करता है तो देखिये जाने बिना भी वेदमें श्रद्धा होगई। तो उसकी वह श्रद्धा निसर्ग से है। जाना नहीं फिर भी श्रद्धा है। इसीतरह इस सम्यग्दर्शनका विषयभूत आत्मपदार्थ जाना नहीं फिर भी नैसर्गिक सम्यग्दर्शन हो सकता है। ऐसा जो कोई समाधान दे तो शंकाकार कह रहा है कि उसका समाधान ठीक नहीं बैठता। क्योंकि उदाहरण जो दिया वह विषम उदाहरण है। वेद वादियोंकी धारणाके अनुसार शूद्र को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं मगर उसने कभी सुना तो है और उस वेदके जानने वाले जो लोग हैं वे तो कुछ बताते हैं कि वेद कैसे हैं, किस तरह से उनके जाननेमें तो आया। जाननेमें किसीप्रकार न आया हो और फिर उस वेदमें श्रद्धा की जा रही हो तब तो यह दृष्टान्त हमारी शंकाका समाधान देने में ठीक बैठ जायगा। लेकिन ऐसा नहीं है, यह समाधान ठीक नहीं है। हमारी शंका बराबर खड़ी हुई है। जब पदार्थको जाना नहीं, आत्मस्वरूपको जाना नहीं तो फिर श्रद्धान कैसे हो जायगा ? और, जाने बिना श्रद्धान होता नहीं तब यह सिद्ध होगया कि नैसर्गिक सम्यग्दर्शन कुछ चीज नहीं होती। तो शंकाकार अपनी यह शंका पुष्ट कर रहा है कि जीवको केवल आत्माका श्रद्धान नहीं होता अतः निसर्ग सम्यग्दर्शन है ही नहीं। तब इसके भेद न करना चाहिए। शंकाकार कह रहा है कि हमारी शंकाके समाधानमें यदि कोई यह कोई यह उत्तर दे कि कि देखो जैसे किसी पुरुषको मणि (रत्न) की जानकारी नहीं है, वह यदि उसे कहीं पा जाय और बाजारमें बेचने जाय तो कांके टुकड़ेमें अधिक कीमत वह पा लेगा ना ? तो नहीं भी जाना मणिको फिर भी उसे ग्रहण कर सकते और उसका फल भी भोग सकते। तो ऐसे ही जिसने आत्मतत्त्वको नहीं जाना उसे भी उसका ग्रहण हो सकता, उसका फल हो सकता, उसका फल हो सकता तो नैसर्गिक सम्यग्दर्शन हो जायगा। यदि कोई हमारी शंकाका समाधान इन न रह देना चाहे तो उसका भी कहना ठीक नहीं, क्योंकि वह भी विषम उदाहरण है, फिर यह कैसे कहा जायगा कि उसने नहीं जाना ? तो निसर्ग सम्यग्दर्शन कोई चीज नहीं, शंकाकार कर रहा है इस कारण भी निसर्ग सम्यग्दर्शन नहीं हैं। जिस समय सम्यग्दर्शन होता है उसी समय पहिलेका जो ज्ञान है बस वही सम्यक्स्वरूप परिणाम जाता है, मानो ज्ञान सम्यक बन जाता है, तो वह अधिगमज बन ही गया। इस सम्यग्दर्शन से पहिले उपदेश मिला या सम्यग्दर्शनके साथ उपदेश मिला ? सम्यग्ज्ञान तुरन्त हो गया, इसलिए मालूम होता है कि सम्यग्दर्शन एक नैसर्गिक चीज नहीं है।

निसर्गज सम्यग्दर्शन की मिद्धि द्वारा शंकाकार की शंका का समाधान:—नैसर्गिक सम्यग्दर्शक न माने जानेकी शंकाकार की शंका का अब समाधान सोंचें। यहाँ नैसर्गिक का यह अर्थ नहीं है कि बाहरी प्रसंग कुछ न आये और हो जायें, यह बात नहीं किन्तु परोपदेश न मिले और जाति स्मरण, वेदनानुभव आदिक बाह्य साधन मिले तब होने वाला सम्यग्दर्शन नैसर्गिक कहलाता है। सम्यग्दर्शनोत्पत्ति में तो निसर्गजसम्यक्त्व में भी अन्तर में निमित्त अनिवार्य है। सम्यक्त्वोत्पत्तिका अन्तरङ्ग निमित्त सम्यक्त्वघातक प्रकृतियों का उपशम क्षय, क्षयोपशम है। इस तरह सम्यग्दर्शन किसी के यों भी हो जाता कि दूसरे का उपदेश नहीं भी मिला किन्तु जाति स्मरण हो जाये अथवा वेदना का अनुभव आदि हो। अनेक नारकियों को वेदना का अनुभव होने से सम्यक्त्व हो सकता है। वेदनानुभव करते हुए वे ज्ञान से सोचते हैं—ओह पूर्वभव में मैंने धर्म नहीं किया, व्रत नहीं किया, विवेकपूर्वक नहीं रहे, अन्याय किया, हिंसा की पाँचों प्रकार के पापों का हमने बहुत बहुत तरह से सेवन किया इस कारण यह दुःख भोगना पड़ा। उन्हें ज्ञान हुआ, वेदना का अनुभव हुआ, उससे उनको अकल ठिकाने हुई। विवेक हुआ और उनके नैसर्गिक सम्यग्दर्शन हो जाता। सम्यग्दर्शन जिसे प्राप्त होता है उसे पहिले ५ लब्धियाँ प्राप्त होती हैं। (१) क्षयोपशमलब्धि (२) विशुद्धिलब्धि (३) देशनालब्धि (४) प्रायोग्यलब्धि और (५) करणलब्धि। ज्ञान जब क्षयोपशम को प्राप्त होता है। इस स्थिति में बनता है कि जहाँ विशुद्धि का लाभ हो, कुछ विवेक चले तो इसे कहते हैं क्षयोपशमलब्धि। तो देखो हम आपको क्षयोपशमलब्धि है कि नहीं? इतना तो है ही कि हम आप जान सकते हैं, सोच सकते हैं। आत्मा अपने निर्मल परिणाम बनाता है तो विशुद्धिलब्धि है उपदेश प्राप्त होता है तो देशनालब्धि है। मगर इसका हम आपठीक-ठीक उपयोग नहीं कर रहे। ग्रन्थ हैं, विधिपूर्वक उनमें उपदेश भरा है। उपदेश सुननेको मिलता है, उसे भी हम ले सकते हैं, तथा इसके बाद हम कुछ आगे नहीं बढ़ते, कुछ हम अपने सोचनेमें अपना उपयोग आगे नहीं ले जाते तो हम आगे प्रायोग्यलब्धि नहीं ले पाते। जहाँ प्रायोग्यलब्धि होती है वहाँ परिणाम बड़े विशुद्ध होते हैं। प्रायोग्यलब्धिमें ३४ बंधावसरण होते हैं, तो यह कोई मामूली बात नहीं है। ऐसी-ऐसी कर्म प्रकृतियाँ कि जिनका बंध छूटे गुणस्थानमें सम्भव है उन प्रकृतियोंका बंध इस प्रायोग्यलब्धि-स्थ इस मिथ्यादृष्टि रुक केजाता है। जो प्रायोग्यलब्धिमें हो उसके प्रकृतियोंका बन्ध रुक जाये इससे बढ़कर और क्या बात कही जाय? छूटे गुणस्थानमें अस्थिर, अशुभ, अयश, अमाता, अरति, शोक इन प्रकृतियोंका बंध चलता है। ७ वें में बंध होता है लेकिन इन प्रकृतियों का बंध प्रायोग्यलब्धिमें रहने वाले मिथ्यादृष्टि नहीं करते हैं, पश्चात् सम्यक्त्व होनेपर भी

इनका बंध होने लगता । परिणामोंकी इसमें कितना निर्मलता है । प्रायोगिकतन्त्रि कायापिपू किसीको प्राप्त हो जाय, और करगालब्धि न प्राप्त हो तो भी सम्यक्त्व नहीं होता । अधः करण, अपूर्वकरण अनवृत्तिकरण परिणामके होने पर नियमसे सम्यग्दर्शन होता है । तो यद्यपि ये ५ लब्धियां वहां अवश्य हैं और जिस किसको भी सम्यक्त्व हुआ है देशानालब्धि भी मिली है लेकिन यह उस भवकी बात है जिस भवमें देशना नहीं मिल रही किन्तु जाति-स्मरण आदिकसे सम्यक्त्व उत्पन्न होता है ।

सम्यक्त्वोत्पत्तिके निमित्तकारण व बाह्य साधन का विश्लेषण—एक बात और ध्यान में लावें । सम्यग्दर्शन उत्पन्न होने का निमित्त कारण क्या है ? तो कुछलोग कह देते हैं कि भगवानके दर्शन करना अथवा तप प्रत करना या जातिस्मरण होना, उपदेश मिलना, ये निमित्त कारण हैं, लेकिन सम्यग्दर्शनके ये निमित्त कारण नहीं हैं । देखिये दो तरहके जानने वाले लोग हैं या उपदेश करने वाले लोग हैं ? एक तो इन बाहरी बातोंको सम्यग्दर्शनका निमित्त मानकर उपदेश करते हैं कि ये निमित्त हैं । इनका दर्शन करनेसे, प्रभुके निरखनेसे या प्रभुका उपदेश सुननेसे सम्यक्त्व होता है, ऐसा नियम बनाये हुए हैं । दूसरे लोग जो निमित्तका खण्डन करना चाहते हैं वे जानबूझकर जो निमित्त नहीं हैं उनको निमित्त बता-बताकर यह समझाना चाहते कि निमित्त कुछ चीज नहीं । जैसे कहते हैं कि इसने जिनेन्द्रदेव के दर्शन अनेक बार किया पर सम्यक्त्व न हुआ तो निमित्त कुछ नहीं करता । दोनो ही भूलमें हैं । जो जिनबिम्ब का निमित्त कारण कहकर इस बातका खण्डन करते हैं कि निमित्त कारण कुछ नहीं रहा वे आखे मीचकर जगते हुए भी सोये हुए हैं । देखिये दो तरह के सोये हुए पुरुष होते हैं एक तो सचमुच सोये हुए, जो जगाने पर जग जातें हैं और एक बनावटी सोये हुए । यों ही आखें मीचकर सोनेका बहाना कर लिया, तो बहाना करके सोये हुए पुरुषका जगाना कठिन है । उसके आगे कोई ढोल बजावे तो भी वह नहीं जग सकता । तो बात क्या है ? घटना देखिये—जिनेन्द्र भगवानके दर्शन या साक्षात् समवशरणमें दर्शन या उपदेश ये सम्यग्दर्शनके निमित्त कारण नहीं हैं, ये तो आश्रयभूत हैं । सम्यग्दर्शनका निमित्त कारण है ७ प्रकृतियोंका उपशम क्षय, क्षयोपशम । तो एक भी दृष्टान्त बतायें जहां ७ प्रकृतियोंका उपशम, क्षय, क्षयोपशम हो जाय और सम्यक्त्व न हो ? वह उसकी उत्पत्तिका निमित्त कारण है, किन्तु जो विषयभूत पदार्थ हैं उनमें यह नियम नहीं बनाया जा सकता कि जो भगवानके दर्शन करके उसको सम्यक्त्व हो ही जाय । हो भी और न भी हो ।

उदाहरणपूर्वक आश्रयभूत व निमित्तकारणमें अन्तरका प्रदर्शन—एक और उदाहरण लीजिए आश्रयभूत व निमित्तका समझनेके लिये । एक वेश्या मर गई और उले लोय जलाने

के लिए लिए जा रहे थे । तो उस मृतक शरीरको किसी मुनिने देखा तो उसका यह भाव हुआ कि देखो इसने दुर्लभमानव जीवन पाकर कैसा व्यर्थ विषयमें अपना जीवन गमाया, उसे देखकर किसी कामी पुरुषके मनमें ऐसा भाव आया कि यदि यह अभी कुछ दिन और जीवित रहती तो इससे मिलकर कुछ मौज और लूटता । उसी मृतक शरीरको देखकर कुत्ता स्याल आदिके मनमें इस प्रकारका भाव आया कि ये लोग व्यर्थ ही इसे जला रहे हैं । यदि इसे यो ही छोड़ देते तो मेरा कुछ दिनोंका भोजन बनता । तो देखिये—एक वेश्याशरीरको तीन तरह के लोगोंने देखा तो उनके अलग अलग भाव हुए । अगर वह बाह्य पदार्थ निमित्त होता तो निमित्त तो सबके लिए हुआ ना, वह वेश्याका शरीर । फिर तो सभीके एक सा ही भाव होना चाहिह । मुनि महाराजका और विचार, कामीका और विचार, स्याल, कुत्ते आदि का और विचार क्यों हुआ ? मुनि महाराज के विचार में निमित्त कारण नहीं हैं वह वेश्या । मुनि महागजके विचारमें निमित्त कारण है कर्मका क्षयोपशम । प्रत्याख्यानावरणकषाय नहीं रहा इसलिए उनके वैराग्यरूप भाव चल रहे हैं, उस समय वह वेश्या दिखी तो वह विषय—भूत हुई उनके अनुरूप विचारका आश्रयभूत हुई । उसका आश्रय बनाकर मुनि महाराजके ये परिणाम हुए कि इसने सम्यक्त्व न प्राप्त किया । तो निमित्त कारण क्या रहा ? प्रकृतिकी-योग्या दशा । कामी पुरुषके मनमें जो कामभाव जगा उसमें वह वेश्याका शरीर निमित्त कारण नहीं, किन्तु उस प्रकारके वेदका कामीके तीव्र उदय अथवा उदीरणा है, जिससे उसने वेश्याको आश्रय बनाकर काम भाव बनाया । यह ही बात स्याल कुत्ते आदिकी है । तो ये बाहरी पदार्थ निमित्त नहीं कहलाये । लोग तो बहकाने के लिए बाह्य पदार्थोंको निमित्त बताकर यह बतलाते हैं कि देखो निमित्त कोई जीज नहीं है । देखो वेश्याशरीर मुनिराजने भी देखा, लेकिन उनके मनमें तो विकार भाव नहीं आया तो वह निमित्त तो न रहा । अरे भाई वेश्याशरीर तो निमित्त है ही नहीं । कामी पुरुष के काम कषायका, वेद प्रकृतिका उदय है, उसकी उदीर्णा हो तो काम भाव हो सकता है भैया ! जैन सिद्धान्तमें जो कर्मोंका वर्णन है, एक-एक समयकी जो दशायें बतायी हैं, कैसे उदय है उदीरणा है, कैसे क्षय है, कैसे स्पर्धक है, इतना विस्तृत वर्णन है कि जीवन भर भी कोई अध्ययन करे तो नई-नई बातें समझमें आवेंगी । तो क्यायह व्यवहारनय भूड है ? प्रमाणमें दो अंश हैं—निश्चयनय और व्यवहारनय । व्यवहारनय भूठ है, तो जिसका अंश भूठा है वह प्रमाण भी भूठा है । तो यह अंश भूठा नहीं । जो उपचार करके बोला वह भूठ । घड़ा बनने में कुम्हार का व्यापार निमित्त है—यह कहना भूठ नहीं, किन्तु घड़ा कुम्हारने बनाया यह कहना भूठ है । कैसे भूठ है ? भिन्न पदार्थोंमें कर्ता कर्म भाव लादना भूठ नहीं । निमित्तनैमित्तिकयोग

होनेपर भी कुम्हारमें कुम्हारकी ही परिणति होती, मिट्टीमें मिट्टीकी ही परिणति होती। अतः निमित्तनैमित्तिक योग व वस्तुस्वानन्वयका एक साथ होना विरुद्ध नहीं। बाह्य साधन, निमित्त व उपादान इन तीनों को सही समझे बिना जीव परिणामोत्पादका रहस्य नहीं समझा जा सकता। निमर्गज सम्यग्दर्शनमें निमित्त तो है सम्यक्त्वघातक प्रकृतियोंका उपश-मादिक, बाह्य साधन है जातिस्मरणआदिक तथा उपादान वह जीव है जिसको सम्यक्त्व हो रहा है। मात्र उस भवमें अधिगम (उपदेश) पाये बिना जो सम्यक्त्व हो जाता उस निसर्गज सम्यग्दर्शन कहते हैं।

विपदाओंकी कल्पनामूलता—अनादि कालसे भ्रममें गोते लगा रहा यह जीव अपनी कल्पनायें बना कर दुःखी हो रहा है। अपनी-अपनी बात देखो इस देहके अन्दर जो यह जाननहार आत्मा है, मैं हूँ, उस मैं की परख करके देखें कि यह भीतरमें क्या कर रहा है, जिससे यह क्लेश पाता है और क्या करे कि जिससे इसके क्लेश दूर हो जायें? तो निहारो यह मैं भावमात्र पदार्थ हूँ, जैसे बाहर देखते हैं—खम्भा है तो कोई पिण्ड, कोई मोटी लम्बी वस्तु है। बाहर परखते हैं तो कोई आकारकी चीज है। कठोर नरम वस्तु है। जरा अपने आपको विचारिये—क्या मैं कठोर, नरम वस्तु हूँ? क्या मैं ढेला पत्थर आदिककी तरह पकड़ा जाने वाला पदार्थ हूँ? नहीं, मैं हूँ एक जाननभाव मात्र। तो जाननभाव मात्र यह मैं कर क्या सकता हूँ सो देखिये यह केवल जानने का ही तो काम कर सकता, और कुछ नहीं कर सकता। उस जाननेमें कल्पना बना डालें तो कल्पनाओंका काम कर सकता हूँ। पर जानें, कल्पनाएं करके इसके सिवाय और कुछ यह नहीं करता देखो दिल को सुहावने वाली बातें इस आत्मा को पार न कर सकेंगी किन्तु भेदविज्ञान वाली बात आत्माको पार करेगी। इससे दिल लुभावने जैसी बातकी इच्छा मत रखो। इच्छा रखो इस बातकी कि मूँहको ऐसा प्रकाश मिले कि जिससे मेरा दुःख कट जाय। देखो—दुःख तो इस जीवके कटे हुए ही हैं। कोई जीव दुःखी नहीं है। किसी जीवका स्वभाव दुःखका नहीं है। लोग मानते हैं कि मैं दुःखी हूँ, मेरेको यह कष्ट है। बाहरी पदार्थोंकी बात निरख-निरखकर अपनेमें कष्ट मानते हैं। एक मोटी सी बात देख लो, मर गए, यहां से चले गए फिर इसके लिए यहाँ का क्या? तो आत्मापर दया करके ऐसा ही समझलें कि हम कुछ पहिले ही मर गए थे। अब इस नरभवमें मानो हैं तो एक मुफ्त हैं, इन लोगोंके लिए नहीं, इस बाहरी सम्पदाके लिए नहीं। मेरेको तो आत्महित कर लेना है, छूटना तो है ही सब। जो छूटे उसका मोह जिन्दगी भर बसा बसाकर पा क्या लोगे? प्रभुभक्ति करने आते, भगवानकी उपासना करते तो भगवानका स्वरूप ही और क्या है? केवल ज्ञानमात्र ज्ञान

ज्योति, ज्ञानप्रकाश । और कुछ नहीं । जो प्रभुका स्वरूप है सो मेरा हैं, सो सबका है । प्रत्येक देहधारीमें वही स्वरूप है जो प्रभुका है, जो मेरा है । सबका एक समान स्वरूप है । वह स्वरूप क्या है ? ज्ञान और आनन्दका पिण्ड । यहां कष्टका कोई नाम नहीं है, कष्टकी गुंजायस ही नहीं है इस स्वरूपमें पर, कल्पनायें करके अपने को ही कष्टमें डाल रहे हैं । हिम्मत नहीं बनाते । बाहरमें अगर कुछ हो गया तो हो गया, उसमें इष्ट अनिष्टकी बुद्धि क्यों करते कि यह मेरे लिए इष्ट होगया यह मेरे लिए अनिष्ट हो गया । मैं आत्मा सबसे निराला केवल भावमात्र, केवल ज्ञानप्रकाशमात्र, इस देहके फन्देमें पड़ा हूँ इतनी ही तो त्रुटि हो रही है और इसी कारण वह सब भार मैं मान रहा हूँ । स्वरूपको सम्हालूँ, बोझ न मानूँ, ऐसी दृष्टि बनाऊँ और कभी आत्मा के सहजस्वरूपका अनुभव कर लूँ तो सम्यक्त्व हो जायगा ।

आत्महितके लिये स्वभावाश्रयकी नितांत आवश्यकता— देखोभैया क्या करना है ? अपने निरपेक्ष आत्मस्वभावका अनुभव करना है । सम्यक्त्व पैदा करो । वह सम्यक्त्व होता है स्वभावके आश्रयसे । इस अन्तस्तत्त्वके लिए पहिले एक भीतरमें बड़ी तैयारी करना है । अपनेको सबसे अत्यन्त निराला निरखना । निराले विविक्त ज्ञानस्वरूपको दृष्टिमें लाते लाते ही वह क्षण आ सकेगा कि जब मेरेको ज्ञानस्वरूपका अनुभव होगा । कोई ऐसी शंका न करे कि गृहस्थीमें रहकर स्वानुभव करेंगे तो गृहस्थी चलायेंगे तो स्वानुभव न होगा । अरे गृहस्थ हो तो, साधु हो तो, सम्यक्त्वकी दिशामें दोनोंका एक सा कदम होता है फर्क क्या रह गया ? एक बाहरी परिग्रह का । बाह्य परिग्रह जितना जिसके कम होता है वह उतनी अधिक देर बराबर स्वानुभव पानेका अधिकारी बनता है । तो गृहस्थ शीघ्र बारबार स्वानुभव प्राप्त करने का अधिकारी नहीं है लेकिन उसके अनुभवका स्वाद लेनेका अधिकार तो है । जैसे किमीने एक छटाक ही मिठाई खाया और किसीने वही मिठाई एक किलो छककर खाया तो इसमें छक कर खानेका अन्तर तो है मगर स्वाद तो दोनों को एक सा आयगा ऐसे गृहस्थ हो या मुनि सम्यक्त्व परिणति समान रह सकती ।

आत्महिताभिलाषियोंके व्यावहारिक कर्तव्यों में स्वाध्यायकी प्रमुखता—स्वाध्याय नाम किसका है ? प्रथा तो बहुत चली की मैं स्वाध्याय करता हूँ, स्वाध्याय तप है, स्वाध्याय करना चाहिए, स्वाध्यायसे कल्याण होगा, पर स्वाध्याय नाम किसका है ? स्व का अध्ययन करना सो स्वाध्याय है । ग्रन्थ पढ़कर, बांचकर, पंक्तिका अर्थ लगा लगाकर, अपने पर घटा घटाकर अपने आत्माका अध्ययन करना सो स्वाध्याय है, या दिल सुहावनी बातों को पढ़ने—का नाम स्वाध्याय है ? अरे वह तो दिलाध्याय है । कषाय उत्पन्न करनेवाला विषय

बाँचनेका नाम कषायाध्याय है। अब समझलो स्वाध्याय नाम किमका है? जिममें स्वका अध्ययन किया जाय वह स्वाध्याय है। जीवने अब तक अनेक बातें की, पंचेन्द्रियके विषय और मनका विषय, इन ६ प्रकारके विषयोंको इमने बहुत भोगा। भोगता ही चला आया। तो इन ६ विषयोंको प्रेरणा मिले ऐसी बात करनेका ही उपक्रम रहा तो वहाँ कौन सा लाभ लूट लिया जायगा जैसे तेलीका बैल कोल्हूमें जुतता है तो उसकी आँखोंमें पट्टी बांध दी जाती है। वह कोल्हूमें चलता रहता है। उसे ऐसा भ्रम रहता है कि मैं तो सीधा ही चल रहा हूँ, और चल रहा वह उसी जगह। उसकी आँखें क्यों खोली जाती? इसलिए कि उसे यदि मालूम पड़ जाय कि मैं तो उभी जगह चल रहा हूँ तो उसे चक्कर आ जायगा और गिर जायगा। उस कोल्हूके बैलको तेली सही ज्ञान नहीं कराता, उसे भ्रममें ही रखता है आँखें बांधकर कि यह भ्रममें रहे तो यह गोल गोल चलता रहे और हमारा तेल निकलता रहे इसीतरह हम आप सभी जीव अकेले चल रहे हैं भ्रम रहे हैं चारों गतियोंमें या दुर्गंतियोंमें नई जगह नहीं चल रहे। क्षेत्र दृष्टिसे देखें तो लोकमें भ्रमण कर रहे, भाव दृष्टिसे देखें तो इन्द्रियके विषय और मनके विषयको भोग रहे। वही कल भोग भोगे थे, वही आज भोगा और वही कल भोगेंगे। कोई नई चीज है क्या? अरे उसे तो अनन्त बार भोगा जा चुका है, छोड़ा जा चुका है, तो खा खा कर, छोड़े उसे तो लोग क्याकरना कहते

। यह सब जगतका विषय वैभव क्या हुआ है। भोग भोगका छोड़ा हुआ है। यह ज्ञान प्रकाश जगे और उससे विरक्ति जगे कि मुझे विषयभोगोंसे प्रीति नहीं। मैं तो एक अपने आपके आत्मानुभवके लिए ही जीवित हूँ। परवाह न करेंकि क्या होगा हमारा। जो एक मुक्ति का मार्ग मिला बस उसपर चलें। जिस परिस्थिति में हों उस परिस्थितिमें अपना कर्तव्य निभायें भला ही होगा, बुरा नहीं हो सकता। अच्छा भाव करके चलेंगे तो कभी बुराई नहीं आ सकती। बुरे भाव करके चलेंगे तो भले ही पूर्व पुण्यवश थोड़ा अभी पोल ढक जाय मगर उसका परिणाम अवश्य मिलेगा। भीतरमें अपनी गुत्थी सुलझा ले। बाहरमें संग्रह विग्रह करनेसे कभी सच्चा मार्ग न मिलेगा। भीतरमें निरखिये—यह मैं भावमात्र हूँ आकाशकी तरह अमूर्त हूँ। केवल जानना इसका एक गुण है, उस जाननेमें आनन्द अपने आप बसा हुआ है। होता क्या है कि पूर्वबद्ध कर्म जब उदयमें आते हैं और उनका जब एक विकराल रूप सामने होता है, अनुभाग सामने आता है, उसका विस्फोट होता है तो उस समय ज्ञानमें ये सब रंग आ जाते हैं। जहाँ ज्ञानमें यह कषायोंका रंग आया, इस रूप उपयोग बना कि इसमें नाना कल्पनायें होती हैं। मिथ्या श्रद्धानके समान कोई हमारा बैरी नहीं है और सम्यक्त्वके समान मेरा कोई मित्र नहीं। निर्णय ठीक करलो।

मानवधर्मसे आत्मधर्मके धारणकी पात्रता—भैया कर्तव्य तो गृहस्थीमें गृहस्थी जैसा करें, यह तो एक व्यवस्था सौपी गई है कि तुम इन ५—७ जीवों की, स्त्री पुत्रादिक की व्यवस्था करा, तुम इन दो चार जीवोंकी व्यवस्था करो। मानो यह व्यवस्था सौपी गई है, ममताके लिए नहीं है ये घरके जीव। क्योंकि मानो तुम्हारे घरमें ये जीव न आये होते, कोई ममताकी गुंजाइस रही क्याकि ये मेरे हैं? जो आये, कोई आये। संसारमें चारों गतियोंके जीव चलते फिरते हैं। कोई आ गया आपके पास। आपका है कुछ क्या? कुछ भी नहीं है। सर्व जीव स्वतंत्र है। सबके अपने-अपने कर्म साथ हैं। सब अपने अपने उदयके अनुसार सुख दुःख पाते। किसीका कोई कुछ लगता नहीं, केवल एक अपने आपके ज्ञानका ही सहारा है, ज्ञान ही परमात्मतत्त्व है, ज्ञान ही सार है, वही मेरे लिए शरण है। जगत्में कोई दूसरा मेरे लिए कुछ नहीं है। फिर भीतरमें अपनी ईमानदारी खो देना, यह तो मेरा है, यह दूसरेका है, यह भ्रम है और यह बहुत क्लेश देने वाला भाव है। बात सत्य समझें। व्यवस्था अपने जिम्मे जो हैं उनकी करें। वह एक गृहस्थीका कर्तव्य है, किन्तु आत्माका कर्तव्य क्या है? देखो बात दो हैं—इसे लोग कहते हैं मानवधर्म, और एक दूसरी चीज है आत्मधर्म। चूंकि मानव धर्मका ही टोटा पड़ रहा है इसलिए बड़े बड़े भाषण होते हैं मानवधर्म पर। मानव बनिये, दानव न बनिये। परोपकार करो, सब पर समबुद्धि रखो दानव न बनिये। परोपकार करो, सब पर समबुद्धि रखो मानवधर्मके उपदेश होते हैं ना। तोपहिले मानवधर्मकी ही पात्रता नहीं है। मानव अपने कर्तव्यसे इतना दूर हो गए हैं, तो आवश्यकता है मानवधर्मके उपदेशकी। लेकिन एक बात और समझिये—मानवधर्मसे बढ़कर है आत्मधर्म। जहां आत्मधर्मका प्रसंग आयगा उसका प्रयोजन क्या है कि जन्म छूट जाय, ज्ञाता दृष्टा रहूं, केवल ज्ञानज्योतिमात्र रहूं और सदाके लिए क्लेशमुक्त हो जाऊं। आत्मधर्म का प्रयोजन यह है। और, मानवधर्मका प्रयोजन क्या है? देशमें, समाजमें सही व्यवस्था बनी रहे और कोई आपत्ति, गड़बड़ी न आये इस जीवनमें यह है मानवधर्मका प्रयोजन। तोभाई पहिले मानव बनें, यह तो ठीक है, पर मानव मानव ही बन बनकर जीवन गुजारना, यह भविष्यके लिए ठीक नहीं है। मानवधर्म तो और आत्मधर्ममें अग्रसर हो। एक बात और भी समझना चाहिए कि जो आत्मधर्मका अभिलाषी होगा उससे मानवधर्म तो अपने आप पलेगा, पर जो केवल मानवधर्म तक सीमित रह जायगा वह आत्मधर्म से बंचित रह जायगा। अब समझ लीजिए कि आत्मधर्मका कितना विशेष महत्त्व है।

सम्यक्त्वोपलब्धिकी भेदविज्ञानपूर्वकता—सम्यक्त्व पानेके लिए मूल बात यह है कि भेदविज्ञान करो। दो कभी एक नहीं बनते, यह निश्चित बात है, अगर अस्तित्व दो हैं

तो वे दो मिलकर एक कभी नहीं हो सकते, किन्तु यह मुझ अज्ञानी प्राणी करना चाहता है दो को एक। बस यह ही संघर्ष है जो संसारमें इसे रूलाये फिरता है। दो कभी एक नहीं हो सकते और यह दो को एक करना चाहता। देखलो जब मोह होता है, पिताका पुत्रमें मोह है तो ऐसा चाहता है कि मैं एक बन जाऊं, शरीर भी क्यों अलग रहे स्त्री और पतिरं प्रीति है तो वे चाहते हैं कि मेरा यह शरीरका भी भेद क्यों हो रहा ? मैं तो एक बन जाऊं ऐसा ऐसा कल्पनायें करता है यह जोव, पर जो बात हो नहीं सकता उसे कलना लये तो उनका फल क्लेश है। कोई ५०—६० मनुष्य बोक वानो गाड़ी बैन अथवा भोंटा लादे लिए जा रहे हों, बच्चे लोग उसे हाथसे ढकेलते हों तो यद्यपि वह गाड़ी बच्चे लोग नहीं चला रहे। चला रहे वे बैन अथवा भोंटा। अब वह गाड़ी कहीं रुक जाय तो वे बच्चे बड़े दुःखी होते हैं, हैरान होते हैं- हाय गाड़ी क्यों रुक गई ? उन बच्चों के जोरसे लगानेसे कहीं वह गाड़ी चल तो न जायगी, गाड़ी तो बैनों अथवा भोंटे द्वारा ही चलेगी, पर वे यह कलना करते हैं कि इस गाड़ीको मैं चलाता हूं इसलिए उन्हें दुःखी होना पड़ा, ऐसे ही घर गृहस्थोंके बीच रहने वाले ये अज्ञानी प्राणी मानते हैं कि मैं इस गृहस्थोंको चलाता हूं। मैं धन कमाता हूं, मैं इस धनको अपनी तिजोरी में रखता हूं। इसपर मेरा पूरा अधिकार है, इन स्त्री पुत्रादिक पर मेरा पूरा अधिकार है, ये मेरे से बिछुड़कर जायेंगे कहाँ ? बिछुड़ते तो औरोंके हैं, ये मेरे से कभी न बिछुड़ेंगे, ऐसा विश्वास किए हैं ना ? तो यह उनका झूठा विश्वास है कि नहीं ? ऐसा जो विश्वास करेगा उसका फल क्या होगा ? क्लेश ये संग मेरे साथ ही रहे ऐसा वे सदा तो नहीं रह सकते, अपने अपने समयपर गुजरेंगे। तो जब गुजरेंगे तब यह कष्ट मानेगा। याने निर्णय यह बनावें कि जितने हमारे कष्ट हैं वे छूटें। कष्ट है अज्ञानका, कष्ट है झूठे विश्वासका अन्यथा मेरेको कष्ट रंक नहीं। कष्टकी कहानी लोग बहुत सुनाते हैं तो उनकी सारी कहानीमें बात मूलकी भरी हुई, क्या कि परके प्रति झूठा विश्वास जगा, झूठा ज्ञान जगा इसलिए कष्ट पाया। इतनी सी बात है।

कषायोंकी बलिमें स्वानुभूति भगवतीकी प्रसन्नता—बहुत सी बातें आनी हैं ना-जो तुमको सबसे अधिक प्रिय हो उसका बलिदान करदो। मुनलमानोमें भी कहा है और उसका प्रयोग किया गया। किसीने सोचा कि मेरेको तो मेरा बच्चा प्यारा है तो उसकी बलि कर दूँ। अरे वह तो अर्थ ही नहीं समझा। बच्चा किसीको प्यारा नहीं, धन किसीको प्यारा नहीं, यह तो लोग झूठ कहते हैं कि हमें अमुक प्यारा है। प्यारी है सबको अपनी-कषाय। बच्चा तो वह ही है मगर कोई गड़बड़ हो जाय, मन न मिले तो फिर उस बच्चेपर प्यार कहाँ रहा ? स्त्री तो वही है, उसका मन बिगड़ गया, दिल हट गया, फिर कहाँ रहा प्यारा ?

ये बाहरी पदार्थ प्यारे नहीं होते किमीको । यह तो झूठ कहते हैं कि मुझे यह प्यारा है । अगली बात यह है कि मेरेको मेरी कषाय प्यारी लग रही । उस स्त्रीके बारेमें जो कुछ मैं सोचता हूँ जो राग भाव होता है वह कषाय मेरेको प्यारी है । जब दिल न मिला उस समय द्वेष कषाय प्यारी हो गयी । पहिले राग कषाय प्यारी थी, अब द्वेष कषाय प्यारी हो गई । तो कषाय सबसे प्रिय हुई । उस कषायकी बलि करनी पड़ेगी तब उद्धार होगा अन्यथा नहीं । जो कषायोंकी बलि कर सकनेका साहस बना लेता है उसकी शान्ति कहीं नहीं गई । सदा है, और जो कषायोंको नहीं छोड़सकता वह कायर है । और कायर पुरुषोंको शान्तिका अवकाश नहीं है भेद विज्ञानकी बात कही जा थी । जब तक यहां का भेद विज्ञान नहीं जगा तब तक बाहरक भेदोंकी कोई बात कहे तो वह उसकी ऊपरी ऊपरी बात है । जैसे अनेक लोग कहते हैं अरे भाई किसका मकान है ? यह तो बाहरकी चीज है, सब छूट जायगा । अरे तुम्हें अपने अन्दरका भेदविज्ञान जगा कि नहीं ? नहीं जगा तो यह बात तुम्हारी केवल कहनेकी है, उसे त्याग नहीं सकते । जिसको यह भीतरमें ज्ञान जगा कि मैं तो ज्ञानप्रकाश मात्र हूँ । कषाय जगना आदिक जो कुछ है वह सब कर्मकी चीज है, कर्मका रंग है, उसे मैं क्यों अपनाऊँ ? मैं तो ज्ञान ज्ञान हूँ । ऐसा जिसने भीतरमें भेदविज्ञान किया उसकी सारी बातें सही हैं और जिसको अन्दर का भेद विज्ञान नहीं जगा उसकी बातें कोरी हैं, ऊपरी हैं । यों तो विचारो—जैसे रेलगाड़ियों या और भी अनेक जगह देखा होगा कि बहुत से वस्तुओं के नीलाम करने वाले लोग फिरा करते हैं । वे अपनी वस्तु लोगोंको दिखाते हैं, उनसे वे उसकी बोली बुलवाते हैं । जो कुछ अधिक बोली बोलता है उसके पास वे उससे रुपया निकलवा कर देखते हैं । अगर रुपया निकल आया तो वे उसे कोई इनाम दे देते हैं और अगर सौदा ठीक-ठीक निपट गया तो वे उन रुपयोंको अपनी जेब में करते हैं और उस वस्तु को दे देते हैं । प्रायः करके वे लोगोंको बहका देते हैं और उनसे वे कुछ ठग ले जाते हैं । तो ऐसे ही समझिये कि ये दिखने वाले समस्त पर पदार्थ ठग है, बहकाने वाले हैं । अरे जिन्हें मेरा मेरा कह रहे वे सब मायारूप हैं उनसे धोखा ही धोखा है । अरे अपना एक वास्तविक ज्ञान बनाइये कि ये दिखने वाले पर पदार्थ मेरे कुछ नहीं हैं, मैं तो एक ज्ञान मात्र हूँ ये कषायें, यह दिखने वाला देह यह ही जब मेरा नहीं तो फिर अन्य कुछ मेरा कैसे हो सकता है ? जिसे बाहरमें अन्धेरा है वह बाहरमें जो कुछ भी बोलता है वह केवल उसका बोलना मात्र है ।

जन्ममरणकी बाधासे मुक्त होनेके लिये अजर अमर अन्तस्तात्त्व की रुचिकी श्रेयता—अनात्मतत्त्वसे रुचि न रहे, केवल एत आत्मप्रकाशमें रुचि जग जाय, यह काम

करने का है अगर जन्म मरणकी बाधा से मुक्त होना चाहते हो। सबसे बड़ी विपात्त हम आपपर जन्ममरणकी लगी है। जीवनमें कुछ साधन बना लिया, मकान बना लिया और कुछ आरामके साधन बन गए तो वे सब बेकार हो जायेंगे। क्योंकि मरण होगया तो फिर से वही पाटी पढ़नी पड़ेगी तो यह ठाटबाट किस काम आयगा? थोड़ा सा कुछ साधनसा बन गया, फिर मर गए तो वे सब बातें बेकार हो गईं। यह जीव अनादि कालसे यही जन्म मरण करता आया। इस रही सही थोड़ी सी जिन्दगी में ऐसा साधन बनायें कि अपनेको ऐसा जचेकि समस्त बाह्य पदार्थ बेकार की चीज हैं यह बात इस लिए सुना रहे हैं कि उनकी रुचिन रहे। करना पड़ता है सब। रहेंगे कहां? रहेंगे मकान में। और यदि सब छूट जाय, इतना बल प्रकट हो जाय तो बहुत उत्तम है, पर नहीं प्रकट होता है तो घरमें रहना होता है। पर सत्य—सत्य तो समझते रहें, उससे अशान्ति न रहेगी। सम्यग्ज्ञानमें अशान्ति नहीं होती। जितनी अशान्ति होती है वह सब मिथ्याज्ञानमें है, और ऐसा अपने आपका निर्णय रखिये कि हमको जितने भी कष्ट हैं वे सब हमारे मिथ्या ज्ञानके कष्ट हैं। सच्चे ज्ञानमें तो कष्टका नाम नहीं कर्तव्यपथपर चले चलो। कमाई के समय कमाई करो, धर्मके समय धर्म करो, प्रतीति कभी मत छोड़ो। पूजनके समय पूजनमें आबो स्वाध्यायके समय स्वाध्याय करो, पर प्रतीति अपनी कभी मत छोड़ों। मैं इन सबसे निराला ज्ञान-स्वरूप मात्र हूं। भेद विज्ञान ही बंधु है। भेदविज्ञान ही पिता है, और भेदविज्ञान ही हमारा रक्षक है, दूसरा कोई रक्षक नहीं। बाहरी पदार्थों में राग मोह करके चोटपर चोट सहते चले जाते हैं और फिर भी ज्ञानप्रकाशमें नहीं आते। ऐसा व्यामोह है जीवोंको। तो इस जीवनमें एक प्रयोजन बनालें कि हमको ऐसा उपाय बनाना है कि मेरा जन्म मरण छूट जाय। इससे बढ़कर अन्य कोई बात अपने हितकी नहीं है।

कर्ममुक्त होनेके लिये कर्मविविक्त अन्तस्तत्त्वकी प्रतीतिकी प्राथमिकता—देखो एक छोटी सी कुंजी है। सर्व दुःखोंसे, कर्मोंसे, बाधाओंसे मुक्त होनेकी कुंजी। छूट वही सकती है चीज जो बाहर की हो। जो बात बाहरमें लगी हो वह ही चीज छूटसकती है। अन्य की चीज कभी नहीं छूट सकती। चौकीमें जो काठका असली रंग है वह कभी छूट सकता है क्या? वसूलेसे कितना ही छीना जाय तो क्या वह रंग छूट सकेगा? अरे काठ में उसका जो निजका असली रंग है वह उससे कभी छूट नहीं सकता। और जो काठ पर बीट या मेल लग जाय, या पालिसका रंग लग जाय तो वह छूट सकता कि नहीं? अरे धोनेका उपाय बनाया जाय तो वह छूट सकता। तो जो चीज छूट जाने की है उस चीज के लदे हुए होने पर भी भीतरमें वह चीज उससे छूटी हुई ही है। चौकीका मल झाड़नेसे छूट

जायगा तो जब तक मन लगा है चौकीपर तब तक भी वह चौकी अपने आपमें उस मलसे छूटी हुई है। खूब समझलें, और ऐसी जिनको श्रद्धा है वे ही चौकी को साफ करते हैं, इसीतरह आत्माको जिन जिन बातों से छूटनेको आवश्यकता है, विषयकषाय, राग, कर्म देह, इनसे निराला होनेकी आवश्यकता है तो सम्यग्दृष्टि जानता है कि मैं इनसे छूटा हुआ अपना निजी स्वरूप रख रहा हूं। तभी तो मैं छूट सकता हूं। और, मेरे में ही जन्म मरण घुम हो, मेरे स्वरूपमें ही कषाय कर्म पड़े हों तो ये कभी छूट नहीं सकने। कारीगर एक पत्थरमें से जिस मूर्तिको निकालता है वह मूर्ति उस पत्थरमें पहिलेसे बनी हुई है कि नहीं? बनी हुई है। बस उसको ढकने वाले अगल बगलके पत्थर हटा दिये तो वह मूर्ति ज्यों की त्यों प्रकट हो गई, इसी प्रकार हमें होना है सिद्ध, प्रभु। तो सिद्ध क्या हुआ? जो मेरेमें स्वभाव है, जो आत्मा में स्वभाव है, वही केवल स्वभाव प्रकट हो गया इसको कहते हैं सिद्ध। तो कैसे प्रकट हो गया? अरे वह था स्वभाव जो प्रकट हो गया, वह अनादिसे था, उसको ढकने वाले विषय कषायके पत्थर लगे थे। उन्हें ज्ञानकी छेनी, ज्ञानकी हथौड़ीसे काट काटकर हटा दिया तो जो स्वभाव पहिलेसे था वह प्रकट हो गया। उसी को कहते हैं सिद्ध भगवान।

क्लेशमुक्तिका उपया क्लेशविबिधत अतस्तत्त्वकी प्रतीति—ममता छोड़ो, मिथ्यात्व हटाओ। भ्रमको नष्ट करो। नत्य सत्य स्वरूप समझों, सम्यक्त्व हो जायगा। और सदाके लिए क्लेश दूर हो जायगा। कभी कभी कोई यो भी कह बैठते हैं हमतो उसे बहाना समझते कि अगर सत्यस्वरूप समझेतों त फिर हम यह घर कैसे चलायेंगे? बात उनकी सही है। सत्यस्वरूप समझलें तो कल्पित घर, मिट्टीका घर मायाका घर भ्रमका घर नहीं चला सकते, फिर तो वह उस आनन्दधामकी ही सम्हाल करेगा। पर स्वरूपको समझना, उस स्वरूपमें रत होना, ये दो बातें बनें तब। स्वरूपको समझ लेने पर भी पूर्वबद्ध कषायोंके संस्कार के कारण पहिले अज्ञानमें जो क्रियायें कर डाला उसके संस्कार के कारण इसे रहना पड़ता है घरमें, और सारी व्यवस्था करनी पड़ती है, करें व्यास्था, पर अपनेको यह समझें कि हमारा नाम अब मोहियो की लिस्टमें नहीं है, मेरा नाम तो मैंने सिद्धभगवान की लिस्टमें लिखाया है। तो ओर दृष्टि होनी चाहिए। मेरेको तो सिद्ध होना है। मुझे यहां नहीं रहना है, मेरेको तो सिद्ध लोकमें रहना है। मेरे को तो शुद्ध स्वरूपमें रहना है यह रहने की चीज नहीं। राग सताते हैं। रहना पड़ता है, रह रहे हैं, रहते जाते हैं मगर प्रतीतिमें यह बात लावें कि मेरेको रहनेका यहाँ काम नहीं। मेरेको तो स्वरूपमें रहनेका, सिद्ध लोकमें रहनेका काम है। बात भेद विज्ञानकी कही है, जिससे स्वाध्याय बने। स्वकी १ अध्ययन बने

और इस स्वरूपकी दृष्टि हमारी प्रबल बने तो चाहे बड़ीमे बड़ी विपत्तियाँ आयें, पिता गुजर गया, पुत्र गुजर गया, या और कोई भी बड़ीमे बड़ी घटना घट गई, कौनो कुछ भी बड़ी से बड़ी विपत्ति आये तो यह उसे देखता रहे, हंसता रहे, बाहर की चीज है, बाहरका बाहरमें परिणामन हो गया। यदि ऐसा ज्ञानबल जग जाय तो फिर इसके विपत्तिका नाम नहीं।

मोक्षोपाय व मोक्षोपायाके प्रथम अङ्ग का स्वरूप कह कर सम्प्रबन्धोत्पत्तिविधिका प्रकरण मोक्षशास्त्रमें सर्वप्रथम संसारके दुःखोंसे छूटनेका उपाय बताया गया है, वह उपाय है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका एकत्व। सम्यग्दर्शन कहते हैं—पर द्रव्योंसे भिन्न परभावोंसे भिन्न जो एक अनादि निधन अहेतुक चैतन्यस्वभाव है उसरूप अपने आपकी प्रतीति हो कि यह हूँ मैं, और मैं कुछ नहीं हूँ, बाकी सब माया जाल है। मैं गृहस्थ हूँ तो, साधु हूँ तो, यह सब एक पर्याय है। यत्र मैं नहीं हूँ। यद्यपि इनमें से मैं गुजरता हूँ लेकिन यह तो विनाशीक चीज है, मैं अनादि अनन्त अहेतुक असाधारण चैतन्यस्वभावी हूँ जिसको कारणरूपसे ग्रहण कर करके स्वभाव गुणपर्यायें होती रहती हैं, इसकी प्रतीतिको सम्यग्दर्शन कहते हैं, और इस आत्मस्वरूपके ज्ञानको सम्यग्ज्ञान कहते हैं और आत्मस्वरूपमें रमण करने को सम्यक्चारित्र कहते हैं। मोक्षमार्गके उपायस्वरूप सम्यग्दर्शनका स्वरूप इस दूसरे सूत्रमें कहा गया है। अब तृतीय सूत्रमें कहा जा रहा है कि वह सम्यग्दर्शन कैसे उत्पन्न होता है? तन्निसर्गादधिगमद्वा—वह सम्यग्दर्शन निसर्ग से, स्वभावसे उत्पन्न होता है अथवा परोपदेशसे उत्पन्न होता है? इस सम्बन्धमें कुछ वर्णन किया गया है। निसर्गका अर्थ है स्वभाव, सहज स्वभाव। यद्यपि सम्यग्दर्शन सभी अपने सहजस्वभावकी ही व्यक्ति है इसलिए सहज स्वभावसे हुआ ऐसा कहनेमें भी कोई अपराध नहीं लेकिन सम्यग्दर्शन अब तक नहीं है, और अब हुआ। तो जो नहीं है ओर अब हुआ, इसमें कारण क्या है? अगर सहजस्वभाव ही कारण हो तो वह अनादि से ही रहना चाहिए था, लेकिन अनादि से तो नहीं है और अब हो रहा है तो उसमें कोई कारण तो होगा। उस कारण का यहां वर्णन है। निसर्गसे अथवा अधिगमसे होता है। परोपदेश बिना अन्य कोई कारण जुटे तो वह निसर्ग कहलाता है। परोपदेश हो तो वह अधिगम कहलाता है। इस प्रकार सूत्रका अर्थ कि वह सम्यग्दर्शन निसर्गसे अथवा परोपदेश से उत्पन्न होता है।

तन्निसर्गादधिगमद्वा सूत्रमें तत् शब्दसे सम्यग्ज्ञानका ग्रहण कर लेने की आशंका— अब इस सूत्रमें तत् इस पदका विचार कोजिए। तत्के मायने हैं, 'वह'। वह निसर्गसे अथवा उपदेशसे उत्पन्न होता है तो वह से क्या अर्थ लिया जाय? वह में कोई नाम तो आया नहीं, यह ही कहा गया—'वह उत्पन्न होता है'। तो वह क्या चीज है? सम्यग्दर्शन या सम्यग्ज्ञान

या सम्यक्चारित्र या मोक्षमार्ग या और कुछ । तत् से क्या मतलब है ? इस पर कुछ विचार कीजिए । तत् का यहाँ अर्थ है सम्यग्दर्शन केवल सम्यग्दर्शन, वह निसर्ग और अधिगम से उत्पन्न होता है, कौन ? सम्यग्दर्शन । ज्ञान चारित्र मोक्ष मार्ग, इसका अर्थ नहीं है तत् शब्दमें, क्योंकि निसर्ग और अधिगम से सम्यग्दर्शन ही होता है । अच्छा, तो बताओ ज्ञान निमर्गसे या परोपदेशसे होता है, यह बात रखी जाय याने यदि तन्निसर्गाधिगमाद्वा इस सूत्रका यह अर्थ किया जाय कि सम्यग्ज्ञान निसर्गसे अथवा अधिगमसे उत्पन्न होता है तो इसमें क्या हर्ज है ? देखिये सूत्रका अर्थ क्या है यह तो समझते नहीं अथवा समझना भी नहीं चाहते । केवल पाठ कर लिया इतने से ही सन्तोष कर लेते हैं कि हमने उपवास में, व्रतमें पाठ कर लिया । यद्यपि वहाँ भी कुछ फल है, पर वह—जैसी श्रद्धा है उतना मात्र है । तत्त्वार्थसूत्र का पाठ करनेसे भला होता है, धर्म होता है, पुण्य होता है । उपवासका फल मिल जाता है, श्रद्धा है, उसके अनुसार मंद कषाय है । उस मंद कषायका उसे फायदा तो हुआ, लेकिन सूत्र में क्या बिषय है, किसका प्रतिपादन है यह और कोई उसके साथमें जानले तो महत्त्व उसका ही है । अच्छा तो कुछ लोग सूत्रका अर्थ भी जानते हैं लेकिन एक दो दिन में ही जल्दी जल्दी पढ़ लिया, एक दिनमें एक अध्याय पढ़ना होता है तो उसे बहुत जल्दी—जल्दी बाँचा जाता है, उसमें बड़ी आकुलता बनी रहती हैं । देखो—तत्त्वार्थ सूत्रका दूसरा नाम है मोक्षशास्त्र । यह एक ऐसा अतृष्ठा ग्रन्थ है कि इसका वाचन, अध्ययन, मनन करे तो वर्षों लग जाय । देखिये—इस तृतीय सूत्रमें कहा जा रहा है तन्निसर्गाधिगमाद्वा, वह सम्यग्दर्शन निसर्गसे अथवा अधिगमसे उत्पन्न होता है, यहाँ शंका यह रखी गई कि तत् शब्दसे यह ही अर्थ क्यों लगगया ? तत् मायने वह सम्यग्दर्श, सम्यग्दर्शन ही क्यों लिया ? हम यह अर्थ करने कि सम्यग्ज्ञान निसर्ग और अधिगम से उत्पन्न होता है, तो इसमें क्या आपत्ति है । देखिये—शब्दरचना करना सूत्ररचना करना, हर एकके वशकी बात नहीं है । जो व्याकरण व्याय, धर्मशास्त्र, सिद्धान्त सभीमें पारगामी हों, उसको ही अधिकार है कि वह सूत्रनिर्माण करे, कुछ शब्द अधिक हो गए तो वह भी रचनाके अनुकूल नहीं है । और अगर कोई शब्द बदल कर आ गया तो वह भी रचनाके अनुकूल नहीं है । सूत्र उसे कहते हैं जिसमें थोड़े अक्षर हों और निःसन्देह अर्थ भलक जाय—तो तन्निसर्गाधिगमाद्वा, इस सूत्रका अर्थ तो है कि वह सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगमसे होता है, सूत्रकारका भी अभिप्राय है कि सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगमसे होता है । शंकाकार यहाँ यह कह रहा है कि यह मानलो कि सम्यग्ज्ञान निसर्ग और अधिगमसे होता है । अब इसका समाधान सोचिये ।

तन्निसर्गाधिगमाद्वा 'सूत्रमें तत् शब्दसे सम्यग्ज्ञानका ग्रहण न किये जानेका कारण

बनाते हुए उक्त शंकाका समाधान—उक्त शंकाका समाधान यह मिलेगा कि चूंकि सम्यग्ज्ञान निसर्गके सभी निसर्ग और अधिगमसे नहीं होते । सम्यग्दर्शन ही एक ऐसा है कि प्रत्येक सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगमसे होता है । अगर ज्ञान और चारित्रिकी उत्पत्तिमें निसर्ग अधिगम को कारण माना जाय तो सिद्धान्तसे विरोध खाता है । देखिये सिद्धान्तकी बात, जरा इस विषयको विकल्पमें देखिये, यदि यह कहा जाय कि सम्यग्ज्ञान निसर्ग और अधिगम से उत्पन्न होता है तो जरा यह तो बतलावो कि कौन सा सम्यग्ज्ञान निसर्ग और अधिगमसे होता है । सम्यग्ज्ञान हैं दो प्रकारके, एक समस्त पदार्थों को विषय करने वाला और एक नियतपदार्थ को विषय करने वाला । याने केवलज्ञान, सकल ज्ञान और विकल ज्ञान, तो क्या सकल ज्ञानके बारेमें आप कह रहे हैं कि वह निसर्ग और अधिगमसे उत्पन्न होता है । यदि सकल ज्ञान के विषयमें कहते हो तो यह बात यों युक्त नहीं है कि केवलज्ञान निसर्गसे नहीं होता, वह समस्त श्रुतपूर्वक होता है, याने क्षीण मोह गुणस्थानमें सम्पूर्ण श्रुत ज्ञान प्रकट हो जाता है तब वहां केवलज्ञान होता है और श्रुतज्ञान उपदेशपूर्वक ही होता है, जिसको श्रुतज्ञान पूर्ण हुआ है, कुछ पहले उपदेश जरूर पाया हो, अध्ययन किया हो, सुना हो दूसरोंने बताया हो, फिर क्षयोपशम बढ़कर श्रुत ज्ञान पूर्ण हो जाय लेकिन उसमें मूल प्रभाव तो उपदेशसे हुआ तो वो उपदेश पूर्वक हुआ सकल श्रुत ज्ञान और श्रुतज्ञान पूर्वक हुआ केवलज्ञान इसलिए केवल ज्ञानको हम निसर्गज नहीं कह सकते । यद्यपि केवल ज्ञानमें उपदेश कारण नहीं है नाक्षत्र आदि देखें तो, वह एक निर्विकल्प शुक्ल ध्यानसे प्रकट होता है, लेकिन केवलज्ञान त्रिमे भा हुआ है उसे सकल श्रुतज्ञानपूर्वक हुआ है और सकल श्रुतज्ञान जिसे होता है उसे परोपदेश पूर्ण होता है, इस धारा से केवल ज्ञानकी निसर्गज नहीं कह सकते । यो तो सभी ज्ञान निसर्गसे होते हैं, किसी दूसरे पदार्थके आश्रय से नहीं होता है । जैसी दृष्टि करें वैसा उत्तर आना चला जायगा । लेकिन इस सूत्रमें निसर्गका इतना ही अर्थ है कि परके उपदेश बिना किसी अन्य कारणसे तो उसे कहते हैं निसर्गज । तो केवल ज्ञान सकल श्रुतज्ञानपूर्वक होता है अतः उसे निसर्गज न कहेंगे । और श्रुतज्ञान परोपदेश पूर्वक होता है । अगर परोपदेश न हो तो श्रुतज्ञानकी उत्पत्ति नहीं हो सकती ।

स्वयंबुद्ध और बोधितबुद्ध दोनोंके ज्ञानकी अधिगमजता—अब उक्त समाधान सुनकर आशंका सामने आती है कि दो प्रकार के साधक होते हैं—स्वयंबुद्ध और बोधितबुद्ध । स्वयं बुद्ध वह है जो परके उपदेश बिना स्वयं ज्ञानी बन गया हो और बोधित बुद्ध उसे कहते हैं जो किसी दूसरे के उपदेशको पाकर ज्ञानी हुआ हो । तो उसमें बोधित बुद्ध भले ही परोपदेशपूर्वक श्रुत ज्ञानका धारी माना जाय लेकिन प्रत्येकबुद्धका श्रुत ज्ञान तो परोपदेशपूर्वक

नहीं है। तब यह कैसे कहा गया कि श्रुतज्ञान परोपदेश पूर्वक होता है। लो स्वयं बुद्धका श्रुतज्ञान तो निसर्गज हो गया। इसके समाधान में देखिये—अभिप्राय ज्ञानके विषयमें स्वयं बुद्ध और बोधित बुद्धके लक्षणके प्रसंगमें यह है कि स्वयं बुद्ध को उस भवमें दूसरे का उपदेश नहीं मिला और ज्ञानी नौ गया। बोधितबुद्धका अभिप्राय है कि उस भव में दूसरेका उपदेश मिला तब वह ज्ञानी होता है। तो स्वयं बुद्धको यद्यपि उस भवमें दूसरेका उपदेश नहीं पाया था उसका संस्कार बना है और उससे ज्ञान प्रकट होता है। एक कथा सुना होगा कि एक ब्राह्मणके कोई पुत्री थी। वह एक बार सबके साथ जाकर एक बनमें मुनिराज के दर्शन को गई। वहां मुनिराजके मुखसे उसने ५ प्राकारके गर्भोंका वर्णन सुना वर्णन सुनकर उसका चित्त पवित्र बना और उसने ५ पापोंका त्याग कर दिया। घरमें लड़की आयी, अपने पिता से कहा कि मैंने तो आज मुनिराजसे ५ पापोंके त्यागका व्रत लिया है। तो उसकी बात सुनकर पिता नाराज हो गया। बोला—अरे मुनिराजने बिना मेरी आज्ञा तुम्हे व्रत क्यों दिया? मैं तेरा व्रत छुड़ा दूंगा। चलो उन्हीं मुनिराजके पास। जब वे दोनों मुनिराजके पास जा रहे थे तो एक जगह रास्तेमें लड़की ने देखा कि किसी व्यक्ति को फांसी दी जा रही थी। लड़की ने पूछा—पिता जी यहां क्या हो रहा है? तो पिताने बताया कि किसी पुरुषने किसीकी हत्या करदी है तो उसको फांसी की सजा दी जा रही है। तो लड़की बोली—पिता जी जब हिंसा करने का यह फल है तो मैंने हिंसा पापको छोड़ दिया तो बुरा किया? ठीक किया बेटी, पर तू एक यह नियम रख ले बाकी ४ नियम तो छोड़ दे। कुछ और आगे बढ़े तो लड़की ने क्या देखा कि एक जगह किसी पुरुषकी जीभ काटी जा रही थी। वहां लड़की ने पूछा—पिता जी यह क्या हो रहा है? तो पिता बोला—बेटी यहां किसने भूठ बोला है इसलिए उसकी जीभ काटी जा रही है। तो पिता जी मैंने भूठ बोलनेके पापको त्याग दिया तो क्या बुरा किया? ठीक किया बेटी, तू ये दो नियम रखले, बाकी तीन नियम तो छोड़ दे। कुछ और आगे जाकर लड़कीने देखा कि किसी पुरुषको सिपाही लोग हाथमें हथकड़ी डालकर पकड़े लिये जा रहे थे। तो वहां लड़कीने पूछा पिता जी यह क्या हो रहा है? तो पिताने बताया—बेटी यहां किसीने चोरी किया है इसलिए उसे सजा देनेके लिए सिपाहीलोग पकड़े लिए जा रहे हैं। तो पिता जी मैंने इस प्रकारके चोरी के पापको त्याग दिया तो कोन सा बुरा किया? ठीक है बेटी, तू इन तीन नियमोंको रखले, बाकी दो नियम तो छोड़ दे। कुछ और आगे बढ़े तो क्या देखा कि एक जगह किसी पुरुषके हाथ पैर काठ में फसाये जा रहे थे। वहां लड़कीने पूछा—पिता जी यह क्या हो रहा है? तो पिताने बताया—बेटी यहां किसी पुरुषने कुशील किया है इसलिए उसे सजा दी जा रही है। तो पिता जी मैंने कुशील

पापका त्याग कर दिया तो क्या बुरा किया ?... ठीक है बेटी, तू यह भी नियम रखले, पर चल तो सही उन मुनिराजके पास, उन्होंने मेरी बेटीको क्यों ऐसे नियम दिया ? कुछ और आगे बढ़े तो क्या देखा कि एक जगह सिपाही लोग किसी पुरुषको पकड़े लिए जा रहे थे। वहां लड़कीने पूछा कि पिता जी यह क्या हो रहा है ? तो पिता ने कहा बेटी यहां किसी पुरुष ने अन्याय करके अपमान किया है इसलिए उसे दण्ड देने के लिए सिपाही लोग पकड़े लिए जा रहे हैं।... तो पिता जी मैंने ऐसे परिग्रह पापको त्याग दिया तो क्या बुरा किया ? ठीक है बेटी तू यह भी नियम रखले पर चल तो सही उन मुनिराजके पास। उन्होंने क्यों तुम्हें मुझसे बिना पूछे ये नियम दिये। जब वे पहुंचे मुनिराजके पास तो मुनिराजसे वह पिता पूछ बठा कि महाराज आपने मेरी बेटी को ऐसे नियम क्यों दिए ? तो मुनिराज बोले अरे यह बेटी आपकी है या मेरी ? लो अब तो और भी गुस्सा आ गया उस पिताको। पिता बोला—अरे यह तो मेरी बेटी है।... नहीं नहीं यह मेरी बेटी है।... कैसे ? ज्यों ही मुनिराजने उस लड़कीके सिरपर आशीर्वादका हाथ किया तो वह लड़की पूर्वभवमें उन मुनिराज से जो विद्यामें पढ़ी थी वह सब बोलने लगी। वहां सभी को आश्चर्य हुआ और यही कहा कि इस लड़कीको मुनिराजने विद्या दिया है अतः यह लड़की मुनिराज की है। तो देखिये उस लड़कीने पूर्वभवका स्मरण किया, ज्ञान किया, ऐसे ही स्वयंबुद्ध की बात समझिये वहां उस भवमें भले ही उपदेश नहीं मिला हो, लेकिन जिन्हें ज्ञान हो जाता है उन्होंने पूर्व जन्ममें उपदेश सुना था, उसका फल है कि जो उन्हें विद्या अपने आप आ रही है। तो यह दोष नहीं दे सकते, स्वयंबुद्धका ज्ञान परोपदेशसे नहीं हुआ इसलिए निसर्ग कह दीजिए। सभी श्रुतज्ञान अधिगमज होते, निसर्गज नहीं होने ? और इसीकारण निसर्गज और अधिकरण दोनोंका भेद ज्ञानमें होना नहीं बताया गया।

पंचविध सम्यग्ज्ञानोंमें किसी भी सम्यग्ज्ञानमें द्विविधहेतुता न होनेसे तत् शब्द द्वारा सम्यग्ज्ञानका ग्रहण—अब शंकाकार एक नई आशंका रख रहा है कि चलो श्रुत-ज्ञान न सही, निसर्ग और अधिगमसे ही उत्पन्न लेकिन जो नियतविषय वाले हैं, एकदेश जिनका विषय है ऐसे मति, अवधि और मनः पर्ययज्ञान ये तो निसर्ग और अधिगम से उत्पन्न हो जाते होंगे, उनको ग्रहण कर लीजिए। अब इसके समाधानमें भी सोचिये मतिज्ञान, अवधि ज्ञान और मनः पर्ययज्ञान ये तीन-ज्ञान क्या निसर्ग और अधिगम यों दो प्रकारसे उत्पन्न होते हैं ? भली भांति विचार करें तो विदित होगा कि ये तीन ज्ञान निसर्गसे ही होते हैं अधिगम से नहीं इन तीन ज्ञानोंमें द्विविध हेतुता नहीं है, अतः मति, अवधि मनः पर्ययकी अपेक्षा भी यह नहीं कह सकते कि सम्यग्ज्ञान निसर्ग अथवा अधिगमसे उत्पन्न

होता है। यहां तो सम्यग्दर्शन ही विवक्षित है, क्योंकि त्रिविध सम्यग्दर्शनोंमें ऐसी विशेषता है कि ये निसर्ग और अधिगमसे उत्पन्न होते हैं। अब यहां कोई ऐसी आशंका रखे कि चलो ५ ज्ञानोंमें कोई भी ज्ञान निसर्ग और अधिगम दोनोंसे उत्पन्न होना न बन सका तों ज्ञान-सामान्यको हम यहां तत् शब्दसे लें और फिर यह बात समझ लेंगे कि कोई सम्यग्ज्ञान निसर्गसे होता कोई अधिगमसे होता। सभी ज्ञान ज्ञान ही तो है और तत् शब्दसे ज्ञान-सामान्य ले लो, उनमें कोई निसर्गसे होगा कोई अधिगमसे होगा तो लो ज्ञानसामान्यमें तो द्विविध हेतुता आ गयी ना, ऐसी भी आशंका न रखना चाहिए, क्योंकि इस तरह तो द्विविध हेतुता दर्शनमें ही है याने व्यक्तिगत प्रत्येक सम्यग्दर्शन वह औपशमिक हो, क्षायोपशमिक हो या क्षायिक हों, तीनों निसर्गसे भी हो सकते और अधिगमसे भी हो सकते, किन्तु ज्ञानमें कोई भी ज्ञान नहीं है जो निसर्ग और अधिगम दोनोंसे उत्पन्न होता है। मतिज्ञान निसर्ग से होता है, श्रुतज्ञान उपदेशसे होता, अबधिज्ञान, मनः पर्यपज्ञान निसर्गसे होता। केवलज्ञान श्रुतज्ञानपूर्वक होता है और वह श्रुतज्ञान उपदेशपूर्वक होता है यों किसी भी ज्ञानको नहीं कह सकते कि वह निसर्ग और अधिगम दोनोंसे उत्पन्न होता है। इसी कारणसे तत् शब्दसे सम्यग्ज्ञानको न ग्रहण करना, किन्तु सम्यग्दर्शन ही विवक्षित है। तन्निर्गतात् अधिगमाद्वा, वह सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगमसे उत्पन्न होता है।

सम्यग्दर्शनकी सहज विशुद्धता—अब सम्यग्दर्शनकी बात देखिये सम्यग्दर्शन एक ऐसा सत् प्रकाश है, ऐसी ज्ञानस्वच्छता है, ऐसी आत्माकी विशुद्ध है कि सम्यक्त्वके होने पर उसके ज्ञान और चारित्र्य सम्यक हो जाते हैं। देखिये—सम्यक्त्व बिना कितना ही पुष्ट ज्ञान हो फिर भी ज्ञान सम्यकपनेको प्राप्त नहीं होता। वहां एक ऐसी अनुभूति की गई है इस आत्मामें कि जो एक सहज निरपेक्ष सत्य निजकी अनुभूति है। जिसके होनेपर स्पष्ट विदित हो जाता कि जगतका यह समस्त रजकण, जगतके ये सब जीव मुझसे अत्यन्त निराले हैं। आत्माका किसी से रंच भी सम्बन्ध नहीं फिर मरे लिए कौन शरण ? मैं ही एक मात्र अपना शरण हूँ, ऐसी प्रतीतिपूर्वक अनुभूतिपूर्वक जिमकी दृष्टि बनी है अब उसे विचलित करनेमें कोई समर्थ नहीं हो सकता, जब कि मोही जनोको लग रहा कि कषाय करना सरल है, रागकी बात सरल है, समागम बनाना सरल है, ज्ञान और वैराग्य तो उनके लिए बड़ी कठिन चीज हैं, पता ही नहीं कि यह सहज हो सकने वाली चीज है। असम्भव होगी, मोहियोंको इस प्रकार दिखता है। देखिये कोई मोहीं किसी विरक्त पुरुष के वैराग्यकी अदभुत महिमा सुनकर विश्वास नहीं कर पाता। सुकौशल मुनिराज थोड़ी ही उम्रमें जब कि उनकी स्त्रोके गर्भ था, विरक्त हुआ और छाड़कर चला दिया, लोगोंने बहुत

समझाया, अरे बच्चा तो हो जाय तब जाना । यहाँके मोहियोंकी विश्वास नहीं होता कि ऐसा हो भी सकता है क्या ? लेकिन जहाँ आत्मतत्त्वकी अनुभूति होती है वहाँ ऐसा आनन्द प्रकट होता है, कि फिर जिसके सामने सारा जगत् धूलवत् दिखता है उसके जगतके परतत्त्वोंमें कैसे प्रतीति हो सकती है ? हो गए वे मुनिराज ।

ज्ञानीके पराक्रमकी विलक्षणता—एक कथा सुनी होगी बज्रबाहुकी । वह विवाह करके स्त्री सहित आये ४—६ दिन बाद स्त्रीका भाई उदयसुन्दर लेने आया, तो बज्रबाहुको इतना राग था उस स्त्रीमें कि उसे एक क्षण भी छोड़ नहीं सकता था । जब लेने आया भाई, तो स्त्रीके साथ बज्रबाहु भी चल दिया । अब वे तीनों प्राणी किसी जंगलमें से गुजर रहे थे । रास्तेमें देखा कि एक जगह कोई मुनिराज बिगजे थे । मुनिराजकी मंद मुस्कान और शान्त मुद्राको देखकर बज्रबाहुका मोह गल गया । वह इस चिन्तनमें पड़ गए कि अहो, धन्य है इन मुनिराजको और धिक्कार है मेरे मोहको, इस मेरे मोहने मुझे कितना विपत्तिमें डाल रखा है यह देखो शान्त सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष कैसा अद्भुत आनन्द पा रहे हैं । वह उन मुनिराजको टकटकी लगाकर देख रहा था । उदयसुन्दरने उससे मजाक किया । क्या आप भी मुनि बनेंगे ?...क्यों, यदि मैं मुनि बन जाऊँ तो क्या तुम भी बन जाओगे ।' तो उदयसुन्दर तो जानता था कि यह मोही पुरुष क्या मुनि बन सकेगा, सो भट कह दिया हां यदि तुम मुनि बन जावोगे तो मैं भी बन जाऊँगा । अब क्या देर थी । बज्रबाहु वहीं दीक्षित हो गया । ऐसी अद्भुत घटना देखकर उदयसुन्दरका भी मोह गल गया । वह भी मुनि हो गया । ऐसी दो पुरुषोंकी विचित्र घटनायें देखकर स्त्रीका भी मोह गल गया वह भी वहीं दीक्षित हो गई । तो मोहियोंकी विश्वास हो सकता है क्या कि ऐसा भी हो सकता है । वे तो असम्भव सा समझते हैं । मोहियोंकी तो यह आदत है कि वे घरसे बाहर जायेंगे तो स्टेशनपर ही पत्र लिखेंगे, रोज—रोज घर पत्र डालेंगे । भला इन ज्ञानी पुरुषोंका पता न पूर्व देशको है न उत्तर देशको और मुनि हो गए, दीक्षित हो गए । मोहियोंकी विश्वास ऐसी घटनामें नहीं होता । अब जरा ज्ञानियोंकी दुनियामें आइये । उन्हें मोहों पुरुषोंकी करतूतपर आश्चर्य होता है । कैसे ये करते हैं, क्या इन्हें पड़ी है, क्यों पर वस्तुमें इन्हें मोह बसता है ? क्या सम्बंध है ? बड़ा कष्ट है, क्यों ये परका ख्याल रखते हैं, ऐसे ज्ञानी पुरुष—के तो मोहियोंके प्रति विचित्रता सी मालूम होती है । जिसने सम्यग्दर्शन पाया है उसकी एक अद्भुत दशा हो जाती है, वह अपने ही ज्ञानमें मग्न रहता है, अपने ही ज्ञानमें संतोष पाता है और अपने ही ज्ञानमें आनन्दमग्न रहता है ऐसे पुरुषको किस कारणसे अन्तस्तत्त्वका अनुभव उत्पन्न होता है यह प्रसंग चल रहा है । सम्यग्दर्शनकी उदभूति किसीके निसर्गसे और

किसीके अधिगमसे होती है। यद्यपि उद्भूतिके कालमें उपदेशका कहीं प्रसंग नहीं है और निसर्गमें भी जो कारण बताये जाते हैं, जातिस्मरण, वेदनाप्रभव, देवदर्शन आदिक, ये भी कोई प्रसंग वहां नहीं हैं। लेकिन जिनके ये तीन कारण होते हैं, जिनके प्रसादसे सम्यक्त्व होता है उनकी क्या स्थिति थी कि जिससे उत्तरोत्तर बल पाकर सम्यक्त्व किसी के निसर्गसे और किसीके अधिगमसे होता है। तो सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगमसे उत्पन्न होता है, यह सूत्रका अर्थ है।

तन्निर्गमस्य अधिगमाद्वा सूत्रमें तत् शब्दसे सम्यग्ज्ञानके अग्रहणकी भांति सम्यक् चारित्र्य व मोक्षमार्गका अग्रहण होनेसे सम्यग्दर्शनके अग्रहणकी उपयुक्तताका उपसंहार—अब इस प्रसंगमें एक नई आशंका और आती है कि तत् शब्दसे सम्यग्ज्ञानको नहीं लिया जा सकता तो मत लो, पर सम्यग्दर्शनको ही क्यों ले रहे ? सम्यक् चारित्र्यको ले लीजिए। चारित्र्य तो निसर्ग और अधिगम दोनोंसे उत्पन्न हो सकता है। तो तत् शब्दसे हम यहां चारित्र्य अर्थ लेंगे। तो इस आशंकाके विषयमें भी वही बात सोचिये कि क्या चारित्र्य भी निसर्ग और अधिगम दोनोंसे उत्पन्न होता है ? न होगा। चारित्र्य तो अधिगमज ही होता है, क्योंकि चारित्र्यका पालन जो करता है वह श्रुतज्ञानपूर्वक करता है, उन्होंने सुना, अध्ययन किया, उपदेशमें सुना तो उनको उस विषयकी सुमति जगी, चारित्र्य पालने लगे। तो जितने चारित्र्य हैं वे श्रुतपूर्वक हैं और इसी कारण चारित्र्यके जो भेद हैं वे सब अधिगमज होंगे तो उनमें कोई निसर्गपना नहीं है, सो चारित्र्यमें भी नहीं कह सकते कि चारित्र्यपना दो हेतुओंसे होता है। तो न तो चारित्र्यको कह सकते कि वह निसर्ग, अधिगम दोनोंसे होता न सम्यग्ज्ञानको कह सकते, किन्तु सम्यक्त्व ही एक ऐसा इन तीनमें है कि जो निसर्गसे भी हो सकता है और अधिगमसे भी हो सकता है। तब तत् शब्दका अर्थ सम्यग्दर्शनका लेना, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र्यसे न लेना, और न मोक्षमार्ग से लेना कोई यह कहने लगे कि शब्दसे न सम्यग्दर्शन लें, न सम्यग्ज्ञान लें, न सम्यक्चारित्र्य लें किन्तु मोक्षमार्ग ले लें ? नहीं, मोक्षमार्ग निसर्ग अधिगम दोनोंसे उत्पन्न नहीं होता। मोक्षमार्ग क्या चीज है ? वह तो तीनरूप है। उन तीनोंपर ही तो विचार किया जाना चाहिए कि वे किस कारण उत्पन्न होते हैं ? तो तत् शब्दसे यहां सम्यग्दर्शन ही विवक्षित होता है। तो सम्यग्दर्शन किसीमें निसर्गसे होता है किसीमें अधिगमसे।

अधिगमकी अद्भुतकारणरूपता—अब देखिये सम्यग्दर्शन उत्पन्न होनेमें यद्यपि निमित्त कारण एक ही प्रकारसे सबमें है। दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियाँ और अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, इन ७ प्रकृतियोंके उपशमसे औपशमिक सम्यक्त्व, क्षयोपशमसे क्षायोपश-

मिक सम्यक्त्व और ७ प्रकृतियों के क्षयसे क्षायिक सम्यक्त्व होता है। तो निमित्त कारण तो उन ७ प्रकृतियोंका अभाव है, उसपर यहां विचार करनेकी आवश्यकता नहीं, वह तो है ही, किन्तु व्यवहारमें जो सम्यक्त्व देखा जाता है तो वह किस किस कारणको लेकर उत्पन्न होता है? सम्यग्दर्शन ग्रहेतुक तो है नहीं कि किसी कारणसे न हुआ हो। जो चीज नहीं है और किसी समयसे हो उसका नियमसे कोई कारण होता है, ग्रहेतुक नहीं होता। जो ग्रहेतुक हो वह अनादिसे होता है। सम्यग्दर्शन अनादिसे नहीं है। भले ही चाहे वह अनन्त काल तक रहे, मगर उत्पत्तिकी बात कही जा रही है। जो ग्रहेतुक होता है वह किसी दिनसे होता हो, उसमें ऐसी बात नहीं कही जा सकती। सम्यग्दर्शन ग्रहेतुक नहीं है, यह तो अमु-भव ही बता रहा। जगके इतने मोही जीव ऐसा घोर कष्ट पा रहे हैं, तो यह वेदना, आत-ज्ञानसे है, यह मिथ्यात्व ही तो है। सम्यग्दर्शन हो तो यह कष्ट क्यों भोगना पड़ता इस जीवको। अनादिसे मिथ्यात्व बस रहा है और अब हुआ सम्यक्त्व, तो उसका कारण अवश्य सोचना चाहिए। कुछ कारण जरूर है, तो निमित्त कारण तो ७ प्रकृतियोंका अभाव अथवा हटना है और बाह्य कारणोंमें किसी को तो परोपदेशसे होता है और किसी को निसर्गसे अर्थात् उपदेश बिना कुछ अन्य कारण घटना पाकर, जातिस्मरण आदिक पाकर। देखिये यहां वह बात कही जा रही है—एक ओर तो परोपदेश और दूसरी ओर परोपदेशको छोड़-कर बाकी सब बाह्य कारण। परोपदेश एक ऐसा अद्भुत कारण है कि सब कारणोंके मुकाबलेमें एक पलड़ेमें ही रखा गया है और इस परोपदेशकी कितनी अद्भुत महिमा गायी जा रही है तो परोपदेश एक बड़ा महत्त्वशाली उपाय है। वैसे देखो तो देशनालब्धि के बिना किसीको भी सम्यक्त्व नहीं हुआ। देशनालब्धि अवश्य होती है। चाहे पूर्वभवमें हो चाहे इस भवमें हो। देशनालब्धिकी बात यहां नहीं कही जा रही है। इस भवमें किसी जीवका परके उपदेश पूर्वक सम्यक्त्व होता है तो किसीको परोपदेश बिना जातिस्मरण आदिक ऐसी घटनाओंको पाकर सम्यग्दर्शन होता है। यो सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगम दोनोंसे उत्पन्न होता है। तो तत् शब्दसे यहां सम्यग्दर्शन लिया है। सम्यग्ज्ञान और सम्यक-चारित्र्यका ग्रहण यहां तत् शब्दसे नहीं किया गया है।

प्रधान शब्द मोक्षमार्गका ग्रहण न हो कर सम्यग्दर्शनका ही ग्रहण हो एतदर्थ तत् शब्दका तन्निर्गणदिधिगमाद्वा सूत्रमें निबंधन—मोक्षशास्त्रके तृतीय सूत्रमें सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिके कारण बताया जा रहे हैं। सम्यग्दर्शनकी उत्पत्तिकी निमित्त तो सम्यक्त्वघाती ७ प्रकृतियोंका उपशम, क्षय और क्षयोपशम है, पर बाह्य साधन किसीके लिए परोपदेश पड़ता है तो किसी के लिए परोपदेशके बिना जातिस्मरण आदि ही होता है। इस तरह निसर्गज और

अधिगमज सम्यग्दर्शनके दो भेद कहे गए हैं। तत् शब्द किसको ग्रहण करता है ? जो निसर्ग और अधिगमसे होता है। तो वह कौन है। इसको भिन्नप्रकार सिद्ध किया गया कि वह के मायने है सम्यग्दर्शन। अब एक आशंका और रखी जा सकती है कि इस सूत्रमें यदि तत् शब्द न देते, सीधा इतना कह देते निसर्गादधिगमाद्वा, स्वभावसे और अधिगमसे उत्पन्न होता है। स्वभावके मायने निसर्गसे और अधिगमसे उत्पन्न होता है। कौन होता है ? सम्यग्दर्शन जिसकी बात चल रही वही तो ग्रहणमें आयगा। तो तत् शब्द निरर्थक है, क्योंकि सूत्ररचना में सामर्थ्यकी वजहसे दर्शनसे सम्बंध हो जायगा पहिले कहा—तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं तदनंतर ही कहा गया निसर्गादधिगमाद्वा, बात जहां जो चल रही उसकी बात आयगी, तो तत् शब्द न डालना चाहिए। वैयाकरण लोग तो एक भी शब्द लघु हो जाय तो उसमें बड़े खुश हो जाते हैं। तो तत् शब्द हटा लीजिए, ऐसी एक आशंका रखी है। अब चलिये समाधानमें—जब सूत्र इतना ही बनाया जा रहा है निसर्गादधिगमाद्वा, निसर्ग और अधिगमसे उत्पन्न होता है। कौन होता है ? तो कोई कहेगा सम्यग्दर्शन। कोई कह देगा ? मोक्षमार्ग होगा तो मोक्षमार्गका भी सम्बंध बन जायगा, फिर सूत्रका अर्थ सही न रहेगा इसलिए तत् शब्द डालना पड़ा। यहां यह बात बिचारी जा सकती कि तत् शब्द न डालें, केवल यह कहें—कि निसर्ग और अधिगमसे होता है। तो लिया वह जायगा जो पासमें शब्द पड़ा हो। तो तीसरे सूत्रसे पहिले आया हुआ है दूसरा सूत्र—तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं। तो सम्यग्दर्शन शब्द कहकर जब निसर्गादधिगमाद्वा कहा जायगा तो सम्यग्दर्शन ही तो लिया जायगा। मोक्षमार्ग कैसे ले लिया जायगा ? तो तत् शब्द निरर्थक ही रहा। लेकिन यह बात सही यों नहीं है कि भले ही इस तीसरे सूत्रसे पहिले दूसरे सूत्र में सम्यग्दर्शन शब्द आया है लेकिन एक न्याय होता है कि निकटकी अपेक्षा प्रधान बलवान होता है तो इस सारे शास्त्रमें मोक्षमार्गका वर्णन है, सम्यक्त्वका तो प्रकरण पाकर वर्णन चल रहा है, पर पूरे मोक्षशास्त्रमें तो मोक्षका ही वर्णन है, मोक्षका ही एक अंग सम्यक्त्व आयगा। निकट शब्द है सम्यग्दर्शन, मगर प्रधान शब्द है मोक्षमार्ग इसलिए मोक्षमार्गका इसमें ग्रहण हो जायगा तब तो मोक्ष मार्गका सम्बंध ही लाना पड़ेगा। तो मोक्षमार्गका मतलब इस सूत्रमें तत् शब्दसे नहीं है किन्तु सम्यक्त्वका मतलब है अतएव तत् शब्द डाला 'वह'। और, प्रक्रिया भी ऐसी ही है। इसका नाम सम्यग्दर्शन है और वह निसर्ग और अधिगमसे उत्पन्न होता। तो वह कहनेसे निकटवर्तीका ही ग्रहण होगा, प्रधानका नहीं। अगर कुछ न कहें तो प्रधान का ग्रहण होता, मोक्षमार्गका होता, इसलिए इस सूत्रमें तत् शब्द डाला। बताया भी गया कि सूत्र में कोई शब्द निरर्थक न हो, कोई शब्द अधिक न हो, ऐसी शब्दरचनासे सूत्र बनता है जैसे कि

ईंटों पे भोंट बनो। उसमें एक भी ईंट ज्यादा पड़ जाय तो काम न बनेगा, कोई ईंट कम रख दी जाय तो काम न बनेगा, इसी तरह सूत्रमें कोई शब्द कम नहीं होता और न कोई शब्द अधिक होता। तो यहां तक क्या बात आयी कि तन्निर्गणद्विगमाद्वा, इस सूत्रमें तत् शब्दसे ग्रहण किया गया है सम्यग्दर्शनको, क्योंकि सम्यग्दर्शन निकटमें है। इस सूत्रसे पहिले सूत्रमें आया है।

लिङ्ग व वचनको समानतासे भी तत् शब्दसे सम्यग्दर्शनके ग्रहणकी उपयुक्तता— एक आशंका यह भी की जा सकती है कि पहिले तो मोक्षमार्ग ही शब्द आया। देखो पहिले सूत्रमें तो मोक्षमार्ग शब्द है। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः और दूसरे सूत्रमें सम्यग्दर्शन शब्द है। तो तीसरे सूत्रसे पहिले जैसे सम्यग्दर्शन आता है वैसे ही मोक्षमार्ग भी तो आता है तो सम्यग्दर्शनको ही क्यों ग्रहण करते? मोक्षमार्गको क्यों नहीं ग्रहण करते? उत्तर इसका कारण यह है कि मोक्षमार्ग तो बहुत पहिले है और अनन्तर पहिले सम्यग्दर्शन है, इसलिए तत् शब्दसे सम्यग्दर्शन ग्रहण किया जायगा। तब अर्थ हुआ ना-वह सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगमसे उत्पन्न होता है। अब इस सम्बंधमें एक बात और परख लीजिए। देखिये—तत् शब्द है नपुंसक लिंग तो तत् शब्दसे उसका ग्रहण होगा जो नपुंसक लिङ्ग में प्रयुक्त होता है। मोक्षमार्गः और सम्यग्दर्शन इन दोनोंमें मोक्षमार्ग है पुलिङ्ग और सम्यग्दर्शन है नपुंसक लिङ्ग। और तत् शब्द नपुंसक लिङ्ग है तो जिसके लिए वह कहा जा रहा है वह भी नपुंसक लिङ्ग ही होना चाहिये। तो नपुंसकलिङ्ग जो सम्यग्दर्शन है उसका ही ग्रहण होगा, मोक्षमार्गका ग्रहण न होगा। अच्छा तो कोई यह कह बैठे कि चलो न मोक्षमार्गका ग्रहण करें, न सम्यग्दर्शनका ग्रहण करें, किन्तु इन सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तोनोंका ग्रहण कर लिया जाय, मानों तोनों ही निसर्ग और अधिगमसे उत्पन्न होते हैं तो उसका समाधान बिल्कुल ही स्पष्ट है। तत् शब्द है एक वचनमें, सम्यग्दर्शनज्ञान-चारित्राणि है व वचन में, तो इन तीनोंका ग्रहण करना अभीष्ट होता सूत्रकारको तब तो बहुवचन शब्द देते ना—तानि निसर्गद्विगमाद्वा, मगर यहां दिया है एक वचन, इससे तीनोंका ग्रहण नहीं होता। इस प्रकार यह भली भांति सिद्ध हो जाता कि तत् शब्दसे सम्यग्दर्शन अर्थ लेना याने सूत्रका यह अर्थ लेना—वह सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगमसे उत्पन्न होता है। निसर्गका अर्थ तो स्पष्ट कह दिया गया कि परोपदेश नहीं किन्तु अन्य कुछ भी कारण मिले वहां सम्यक्त्व जगे तो उसे कहते हैं निसर्गज सम्यग्दर्शन और दूसरेका उपदेश पाकर दो तो उसे कहते हैं अधिगमज सम्यग्दर्शन। निसर्ग शब्दसे यह न समझना कि कुछ भी बाह्य साधन न मिलना चाहिए और अपने आप सहज हो जाना चाहिए। देखिये निसर्ग शब्दका

प्रयोग, जैसे कहा जाय कि यह बालक निसर्गतः शूरवीर है, यह मित्र निसर्गसे शूरवीर है तो क्या उसकी शूरवीरतामें कोई कारण नहीं है ? अरे निरोगता हो, शरीरमें बात पित्त कफ कि समता हो या पहिलेसे ढाचा वगैरह ठीक हो, देश काल अनुकूल हो, तब शूरवीरता हुई, मगर उसे निसर्गसे बोलते हैं । सिंह निसर्गसे शूरवीर होता है, इसी प्रकार यह सम्यग्दर्शन निसर्गसे हुआ, इसका अर्थ यह न लेना कि कोई बाह्य साधन न मिले । किन्तु यह लेना कि परोपदेशको छोड़कर अन्य कोई कारण मिले और हो सम्यग्दर्शन तो उसे निसर्गज सम्यग्दर्शन कहते हैं ।

सम्यक्त्वसे पहिले होनेवाले ज्ञानकी विशेषता—अब एक बात और सामने रखी जा रही है कि देखो—बताया यह गया है ना कि सम्यग्दर्शनके होते ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान हो जाता है, अच्छा बतलावो—सम्यग्दर्शनसे पहिले जो ज्ञान है वह सम्यग्ज्ञान है या मिथ्याज्ञान ? तो कहा यह जायगा कि मिथ्याज्ञान है । जब तक सम्यक्त्व न हो तब तक ज्ञान मिथ्याज्ञान है, लेकिन एक समस्या आती है कि सम्यग्दर्शन जिस क्षणमें होगा उस क्षणसे पहिले यदि ज्ञान मिथ्याज्ञान है तो ऐसे मिथ्याज्ञानसे सम्यग्दर्शन कैसे हो सकता है ? कहीं झूठे ज्ञान से भी सम्यक्त्व जग जायगा ? मोटे रूपमें लगता है ऐसा कि सही ज्ञान बने किसीके तो सम्यक्त्व जगेगा, मिथ्याज्ञानसे नहीं, लेकिन सिद्धान्तमें तो यह कहा जा रहा है कि सम्यग्दर्शन के साथ ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान है उससे पहिले नहीं । तो उससे तो यह सिद्ध होता है कि सम्यग्दर्शनसे पहिले जो ज्ञान हुआ वह मिथ्याज्ञान कहलायगा । तो यह बात जचती नहीं । सम्यग्ज्ञानसे पहिले उत्पन्नज्ञानके विषयमें या सम्यग्ज्ञानको उत्पन्न करनेके लिए जो ज्ञान पहिले हुआ है वह ज्ञान मिथ्या कैसे हो सकता है ? मिथ्याज्ञानमें सम्यग्दर्शनको उत्पन्न करने की योग्यता नहीं हो सकती । तो क्या कहा जाय ? यों मिथ्याज्ञान तो कह नहीं सकते और सम्यग्ज्ञान भी नहीं कह सकते, क्योंकि सम्यग्दर्शन होनेसे पहिले ज्ञान यदि सम्यक् है तो सम्यक्त्वकी और जरूरत क्या रही ? ज्ञान तो समीचीन हो गया, तो उसे सम्यक् भी नहीं कह सकते । तो क्या कहा जायगा सो बतलाओ ? तो कोई यह सोचे कि चलो न उसे सम्यक् कहें, न उसे मिथ्या कहें, किन्तु उसे सामान्य कहें । ज्ञान सामान्य है, उस ज्ञानसामान्यके द्वारा जाना गया जो पदार्थ है, उस पदार्थमें प्रवर्तमान हो रहा जो सत्यज्ञान है वह सम्यग्दर्शनके विषयका ग्राहक है और उसे सम्यक्त्व हो जायगा, ऐसा मान लो ना । तो इस सम्बन्धमें भी सोचें । अब तीन बातें आयीं सम्यग्दर्शनसे पहिले होने वाला ज्ञान क्या सम्यग्ज्ञान है ? क्या मिथ्या ज्ञान है ? क्या ज्ञान सामान्य है ? अब सोचिये—सम्यग्ज्ञान भी नहीं कह सकते, मिथ्या ज्ञान भी नहीं कह सकते । ज्ञान सामान्यसे भी क्या फायदा निकलेगा ? ज्ञानसामान्य तो इस जीवके

सदा काल रहता है। तो क्या कहना होगा कि वास्तवमें वह ज्ञान मिथ्याज्ञान है, लेकिन समीपताके कारण और सम्यक्त्वका जनक होनेके कारण ज्ञानको उपचारसे सम्यक् कहा जायगा।

दृष्टान्तपूर्वक सानुभव ज्ञान व निरनुभव ज्ञानका विश्लेषण—देखो सम्यक् ज्ञान व मिथ्याज्ञानके निर्णयके लिए एक दृष्टान्त लो। जैसे जिस पुरुषने श्रवणबेलगोलमें जाकर बाहुबलि स्वामीके दर्शन नहीं किए और उसकी यह भावना हुई कि मैं दर्शन करूँ, तो वह यहां लोगोंसे उन मूर्तिके विषयमें पूछकर पूरी जानकारी करता है, उसका फोटो देखकर और उसका इतिहास पढ़कर उसकी नाप आदिका भी पूरा ज्ञान कर लेता है। बाहुबलि प्रतिमाके दर्शनके पहिले ज्ञान तो कहा जायगा। वह ज्ञान वैसा ही कर रहा है जैसी कि वह प्रतिमा है। एक तो ऐसा ज्ञान किया और दूसरे वह श्रवणबेलगोल जाकर उस बाहुबलि प्रतिमाकी मूर्तिके दर्शन प्रत्यक्षरूपमें करता है वहाँ जाकर ज्ञान किया। तो अब आप बताइये इन दोनों प्रकारके ज्ञानोंमें कुछ अन्तर है कि नहीं? अरे अन्तर है। देखिये—उस प्रतिमाके दर्शन करने से पूर्व उसके विषयमें जो जानकारी किया था उसे मिथ्याज्ञान तो नहीं कह सकते, क्योंकि वैसा ज्ञान कर रहा है। तो क्या वह ज्ञान सम्यक् था? सम्यक् भी नहीं कह सकते अगर वह ज्ञान सम्यक् था तो फिर मूर्तिके दर्शनके समयमें होने वाले ज्ञानमें कुछ विशेषता न आनी चाहिये थी, क्योंकि ज्ञान तो पहिले से ही रहा था। तो बात क्या हुई कि दर्शनके समय जो ज्ञान हुआ है वह अनुभवसहित ज्ञान है अनुभव--सहित ज्ञान हो उसे कहते हैं सम्यक् और जो अनुभवरहित ज्ञान है उसे कहते हैं मिथ्याज्ञान। लेकिन विपरीतज्ञानसे सम्यक्त्व नहीं होता, अनुभव न बनेगा, उसके लिए ज्ञान उसके अनुरूप करना होगा। वह अनुभवरहित होने के कारण मिथ्या है और जैसा वह जाना गया वैसा जाननेके कारण वह सम्यक् है। तो अब देखिये—सम्यक्त्व उत्पन्न होनेसे पहिले जो ज्ञान बन रहा है वह ज्ञान कितना विशिष्ट ज्ञान बन रहा है वह ज्ञान कितना विशिष्ट ज्ञान है कि उस अधःकरण, अपूर्वकरण अन्विष्टाकरण के समयमें कितने बधापसरण होते, कितनी विशुद्धता होती और उसकी निर्विकल्प स्थिति होने लगती है उस कालमें इसे अनुभव जगता है, और अनुभव जगा कि वही ज्ञान पूरा सम्यक् हो जाता है।

ज्ञानके सम्यक् होनेका विद्यानन्दस्वामीका एक उदाहरण—अबसे सैकड़ों वर्ष पहिले एक विद्यानन्द स्वामी हुए हैं जो कि बहुत ही दिग्गज आचार्य हुए हैं जिन्होंने समंतद्राचार्य रविवर देवागम स्तोत्रकी अष्टशतीपर अष्टसहस्री टीका की है। अष्टशती टीका की है अकलंक स्वामीने। और अकलंक स्वामीकी टीकापर इस तरह की टीका विद्यानन्द स्वामीने

की कि अकलंक स्वामीके वाक्य बीच-बीचमें ऐसे लगा दिए गए कि वह सारा व्याख्यान एक हो गया। टीका की वह एक अनोखी पद्धति है। टीका प्रायः उसे कहते हैं कि जिस बात पर टीका करना है उसको पहले हेडिङ्गमें लिखते हैं, बादमें वक्तव्य देते हैं लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। वे टीका करते गए। जहाँ अकलंक देव का वाक्य फिट बैठता है वहाँ बैठा दिया, बादमें अपना वाक्य जोड़ दिया, फिर अपनी बात कहने लगे। वह बड़ी कठिन टीका है जो अष्ट सहस्री के नामसे प्रसिद्ध है। बहुत से लोग तो उसे कष्टसहस्री भी कहने लगे। इतनी ऊँची सूक्ष्मदार्शनिक टीका है। तो उन विद्यानन्द स्वामी का हम जीवन चारित्र बतलाते हैं। उन्होंने मोक्षशास्त्रपर भी टीका की है। वे बहुत दिग्गज विद्वान थे। वेद वेदान्त के उस समय सबसे ऊँचे आचार्य कहलाते थे। और जैनधर्मसे वे द्वेष रखते थे। वे राजदरबार में प्रधान पुण्यहित थे, राजा उनका बड़ा सत्कार करता था। उस समय उनके ५०० शिष्य थे। घरसे दरबारमें जाते तो रास्तेमें एक पार्श्वनाथचैत्यालय मिलता था। वे उससे इतना द्वेष करते थे कि उसकी ओर अपना मुख भी नहीं करते थे। वहाँ से मुख फेर कर तिरछे होकर निकलते थे। याने उस चैत्यालयको देखना भी वह न पसंद करते थे, इतना द्वेष था। एक दिन उनके मनमें आया कि मैं बहुत समयसे इस चैत्यालयकी ओर पीठ देकर जाता हूँ, जरा एक बार इसके अन्दर जाकर देखें तो सही कि इसमें है क्या चीज ! तो केवल एक तफरी बतीर देखनेके लिए उस चैत्यालयमें चले गए। कुछ देखा तो वहाँ एक मुनिराज बैठे थे। और वे मुनिराज देवागमस्तोत्रका पाठ कर रहे थे। वह पाठ उन्हें बड़ा सुहावना लगा।

जैन शासनके रत्नों का ग्रहण करने का अनुरोध—जैनशासन में कितने रत्न पड़े हैं और आचार्योंने क्या देन दी है इस बातको पहिचानने वाले वे ही हो सकते हैं जो कुछ उस ओर ज्ञान करें और उस ओर कुछ प्रवेश करें। समुद्रमें रत्न कैसे हैं इस बातको वे ही पहिचान सकते हैं जो समुद्रमें डुबकी लगायें। क्या-क्या रत्न हैं, क्या-क्या तत्त्व वसा हुआ है। आज कल तो लो स्वाध्याय या सभामें आना, प्रवचन सुनना या अध्ययन करना आदि इन कामोंको आवश्यक काम नहीं समझते और आवश्यक काम समझते हैं देरसे उठना साबुनसे नहाना, चाय पीना, अखबार पढ़ना आदिक। मगर भाई अगर अब भी न चेतें, दुर्लभ मनुष्यभव पाकर भी अगर सदबुद्धि नहीं आती तो बताओ किस भवमें तिरनेका उपाय बनाओगे। अगर मरकर पशुपक्षी हो गए, स्थलर हो गए पेड़ पौधे हो गये तो सब गड़बड़ हो गया। अभी तो एक बड़ा अहंकार सा बना हुआ है, बड़ी शान रखते, बड़े ऐश आराम की बातें चाहते हैं और हो जाय दुर्गति तो फिर क्या किया जायगा ? तो आवश्यक है तत्त्वज्ञान

का । घरका काम आवश्यक नहीं । घरका काम तो जी जैसा होता है उसे वैसा होने दो । दूकान आदिक में धनार्जनका काम तो पुण्योदय से होता है । वे सब काम तो जैसे होते हैं हो मगर सदाके लिए हम संकटोंसे छूट जायें ऐसी कोई दृष्टि मिलें, ऐसीकोई भीतरमें बात मिले तो भला बतलाओ इससे बढ़कर और कोई बात है क्या ? यह तो चंददिनोंका समागम है, ये सब समागम तो छोड़ने पड़ेंगे । तो जिन बातोंमें कुछ सार नहीं रक्खा उनको तो लोग आवश्यक समझते हैं और जो तत्त्वज्ञानकी बात है, सारभूत बात है, कल्याणकारी बात है, जो दृष्टिको निर्मल कर सकने की बात है, ये आचार्योंके बचन, इनको सुननेकी बात लोग अनावश्यक समझते हैं—इसे इतना आवश्यक समझिये कि यह बात अगर किसी भी क्षण समझ में आ गई तो आपका भला हो जायगा । लोग तो चाहते हैं कि हम आज ही स्वा-ध्यायमें पहुँचें और आज ही हमें आनन्द मिल जाय, आज ही हमारा कल्याण हो जाय, तो यह बात कैसे हो सकती है ? अनादि कालसे मोहरूपी विषका पान किए हुए हैं तो उस विषका उतरना इतना जल्दी कैसे हो सकेगा ? अरे इसके लिए तो सारा जीवन लगाना होगा ।

विद्यानन्द स्वामी पर प्रथम प्रभाव—हां तो विद्यानन्दस्वामी वहां चैत्यालयमें खड़े मुनिराजसे देवागमस्तोत्र सुन रहे थे । वह विद्वान तो थे ही । वह बड़ा अच्छा लगा तो वहीं पास में बैठकर मुनिराज से कहा-महाराज हमें आप इसका अर्थ बता दीजिए । तो मुनिराज बोले भाई मैं विद्वान नहीं हूँ, मैं पाठ करता हूँ । तो इतनी बात सुनकर विद्यानन्दस्वामी पर और भी अधिक प्रभाव पड़ा । सोचा कि देखो यह हैं तो कितने बड़े महात्मा, पर यह अपनी कमजोरी बताने में रंच भी संकोच नहीं कर रहे हैं । कैसे सच बात कह रहे हैं । लोग तो प्रायः ऐसे होते हैं कि वे दूसरों के सामने अपनी कमजोरी उनसे छिपाते हैं । अभी अभी समय नहीं है, फिर कभी समझा देंगे आदि बातें कह कर टाल देते हैं । पर महाराज तो अपनी कमजोरी हमसे रंच भी नहीं छिपाते । वहां विद्यानन्दस्वामी थोड़ा झुक गए और कहा—अच्छा तो महाराज एक बार फिर सुना दीजिए । तो उन्होंने प्रारम्भ से लेकर अन्त तक देवागमस्तोत्र सुनाया । क्या है ? देवागमस्तोत्र में भगवान की स्तुति हो रही है और निर्णय हो रहा कि यह एकान्तवाद क्यों सही ।

देवागमस्तोत्र की भूमिका का दिग्दर्शन—प्रथम भूमि का रूप बताया गया है कि हे भगवान आपको हम अपना सिर झुकाते तो क्यों झुकाते ? कारण क्या है ? तो मानो भगवान बोले, हम आकाश में चलते हैं, देवता गण हमारी भक्ति में आते हैं, देवता चमर ढोरते हैं इसलिए सिर झुकाना चाहिए । तो समस्तप्रश्न की यह उत्तर है कि इस कारण से

हम सिर नहीं नमा सकते । अरे इतनी बातें तो कोई मायाचारी पुरुष भी कर सकता है । कोई विद्या सिद्ध करले तो वह भी ऐसी बातें दिखाने लगे । इससे तो आप बड़े नहीं । तो मानों भगवान बोले कि इससे बड़े न सही तो इससे बड़ा मान लो कि हमारे शरीर में खून पीप आदिक नहीं है, हमारा शरीर परमोदारिक है इससे तो बड़ा मान लो, तो कहते कि इससे भी आप बड़े नहीं हो । अरे देवों के भी तो शरीर ऐसे मिलते हैं । तो मानों फिर भगवान बोले कि अच्छा इससे भी बड़ा नहीं मानते तो न 'सही' लेकिन हमने तो एक धर्म चलाया है इससे तो बड़ा मानो... कहते कि अरे तीर्थ तो अनेक लोगों ने चलाया । सभी लोग अपने अपने तीर्थ चलाते हैं, इसमें भी आपका क्या बड़प्पन ? तो फिर मानो कोई पूछ बैठ कि इन बातों से बड़े नहीं तो फिर यहां क्यों आये और स्तवन क्यों करने आये ? तो कहा—सुनो बात ऐसी है कि बड़ा वह होता है कि जिसमें गुण तो हों पूरे दोष एक भी न हो । कहीं इससे बड़प्पन नहीं कि धर्म चलाया, शरीर निर्दोष है, देवांगनायें आती है । बड़प्पन तो इसी कारण है कि गुण तो पूरे हों और दोष एक भी न हो । कहते हैं कि ऐसा हो सकता है क्या ?...हां कोई ऐसा भी मनुष्य होता कि जिसमें एक भी दोष न हो । देखो जब हम जीवों में यह देख रहे कि किसी में कम दोष हैं किसी में और कम तो किसी में दोषों का अभाव भी है । अच्छा तो देखो किसी में ज्ञान कम है किसी में और भी कम है, तो कोई ऐसा भी आत्मा हो सकता कि जिसमें ज्ञान बिल्कुल न रहेगा । कहते नहीं । ऐसा पटतर मत दो । बात यह है कि जो उपाधि के हटने से हटे वह तो कहीं पूरा भी हट सकता है मगर जो उपाधिके हटने से बढ़ता हो उसमें यह नहीं कहा जा सकता है कि यह ज्ञान कहीं बिल्कुल कम हो जायगा । अच्छा यह भी बात मान ली । मगर एक मैं ही निर्दोष हूँ यह तुमने कैसे जाना ? तो कहते हैं कि सुनो—निर्दोष वह कहलायगा जिमकी वाणी में न युक्ति से विरोध खाये, न शास्तासे । और वाणी से ही मनुष्य की पहिचान होती है । जिसके वचन खोटे निकलें । समझो कि उसका अभिप्राय खोटा है और जिसके वचन प्रिय, मधुर निकलें, समझो कि उसके दिल में बड़ी उदारता है और स्वच्छता है । तो वचनों से पहिचाना जाता है कि मनुष्य कैसा है । तो हे भगवान मैंने आपके वचनोसे ही पहिचाना कि आप निर्दोष हैं, क्योंकि आपकी वाणी में युक्ति से कहीं विरोध नहीं खाता । कैसे विरोध नहीं खाता ? जब यह बात बतानी पड़ी तो सभी मतों का वर्णन करना पड़ा और बताना पड़ा कि आपके अनेकान्तवाद की बात सत्य बैठती है, पर एकान्तवाद की बात सत्य नहीं बैठती है । तो सारे एकान्तों का बहुत पुष्टता से संक्षेपमें वर्णन किया है । समन्तभद्राचार्य को तो कलिकाल केवली जैसी बात कही जाती है, इतने ऊँचे दिग्गज विद्वान आचार्य थे ।

जिसकी रनच। पर टीका अकलंकदेवने की और उसपर विद्यानन्द ने की।

विद्यानन्दस्वामी के ज्ञान में सम्यक्त्व आये बादका प्रकरण—बात यह कह रहे थे। कि विद्यानन्दस्वामी ने उन मुनिराजसे पाठ सुना और उनका वित्त बदल गया कि वास्तव में अनेकान्तवाद ही सही है। तो देखिये जितना ज्ञान उन्होंने किया था वह ज्ञान कुछ सही तो था, मगर दृष्टि से। अब उसमें जितनी खोट थी और जितना सहीपन था वह सब एक साथ नजर आ गया। तो अब तो उनका प्रभात हो गया। अब तो विद्यानन्दस्वामीका कल्याण हो गया। उनका चित्त बिल्कुल बदल गया। अब एक इस ही ओर की सुध हो गई। तो जब वे रात्रि को सोये उसी चिन्तन में सोये, उस चिन्तनको करते करते एक शंका उनको चित्तमें रह गयी थी वह शंका है अनुमान प्रमाणसे सम्बन्धित। अनुमान प्रमाण याने धूम देखा और अग्निका ज्ञान कर लिया। साधन से साध्यका ज्ञान होने को अनुमान कहते हैं। तो अनुमान अन्य प्रमाणों की भांति पुष्ट ज्ञान होता है। तो बौद्ध लोग तो मानते हैं कि भैरूप्य उसका साधन है और नैयायिक मानते हैं कि पांच रूप उसका साधन है। अनुमान की मुद्रा यह है—इस रसोई घर में अग्नि है धुवां होनेसे जहां जहां धुवां होता है वहां वहां अग्नि होती है जैसे रसोई घर और जहां धुवां नहीं होता वहां अग्नि नहीं देखी जाती जैसे तालाब। ऐसा लोग बोलते कि नहीं? तो इसमें ५ अवयव आ गए। प्रतिज्ञा हेतु उदाहरण उपनम व निगमन। तो अब शंका यह थी कि अनुमान पचरूपसे सिद्ध हुआ या भैरूप्यसे? भैरूप्य है—पक्षवृत्ति सपक्षवृत्ति, विपक्षव्यावृत्ति। तो उनको स्वप्न हुआ। स्वप्नमें वह बात आयी कि तुम शंका मत करो। उस चैत्यालय में जावो तो भगवान के पीछे तुम्हें इसका उत्तर मिल जायगा। उस स्थानपर वह गए तो उस समय वहां दो श्लोक दिखे, चमत्कार था वे दो श्लोक क्या थे? ...अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र किं तत्र पंचभिः। नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र किं तत्र पंचभिः अन्यथानुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण किम्। नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्। जहां अन्यथानुपपत्ति है वहां पांचसे क्या प्रयोजन, जहां अन्यथानुपपत्ति नहीं वहां पांच से क्या प्रयोजन, जहां अन्यथानुपपत्ति है वहां जहां अन्यथापानुपपत्ति नहीं वहां तीनसे क्या प्रयोजन। देखो यह सोचना कि अनुमानका साधन क्या है? पांचरूप्य है या भैरूप्य? तो देखिये साधन केवल एक है अन्यथानुपपन्नत्वं त्व मायने अग्नि बिना जो नहीं हो सकता वह चीज अग्निका साधन है, इसे कहते हैं अविनाभाव। चाहे पचरूप हो चाहे न हो, मगर जहां अन्यथानुपपत्ति होती है वहां अनुमान प्रमाण सही कहलाता है। चैत्यालयमें गये श्लोक लिखे शंकानिवृत्ति हो गई। अब दूसरे दिन जब विद्यानन्दस्वामी राजदरबार में गए तो व्याख्यान तो रोज देते ही थे। उस दिन जब व्याख्यान दे रहे थे तो उसमें अनेकान्तवाद (स्याद्वाद)

की छाया थी। उनके ५०० शिष्य तथा अन्य बहुत से लोग भी वह व्याख्यान सुन रहे थे, तो वहां सभी लोग एक आश्चर्यमें आ गए कि आज हमारे गुरु महाराज को क्या हो गया बात है ? आज यह क्या बोला जा रहा है ? तो उन्होंने कहा कि भाई आज तक हम एकान्त वादमें थे। हमने सत्य शासन अब जाना और जिसे शांति हो वह हमसे वाद-विवाद कर ले। वह बहुत ऊंचे विद्वान तो थे ही। सबको सन्तुष्ट किया। दरबारसे चले आये और मुनि हो गए। उसके साथ उनके सभी शिष्य भी मुनि हो गए। तो बतलाया यह जा रहा है कि जो सन्नित ज्ञान है, जिस दिन दृष्टि समझ ली, उस दिन वह सही ज्ञान बन जाता है। जब यहाँ यह बात देखी जा रही है तो उसमें भी यह अलौकिक बात है। क्या ? कि सम्यक्त्वसे पहिले जो ज्ञान है वह सम्यक् भी है, मिथ्या भी है। जो सम्यग्दर्शन से पहिले ज्ञान होता है वह ज्ञान झूठा ज्ञान नहीं। परन्तु स्वरूप के अनुरूप ज्ञान है, हां अनुभवरहित ज्ञान है, इतनी बात जरूर है। जैसे कभी मिश्री तो खाया न हो, सिर्फ गन्ना ही चूसा हो, वह दूसरों से सुनकर पढ़ कर उस मिश्री का ज्ञान करले। कुछ अन्दाज करले तो उसका वह ज्ञान है तो सही, मगर वही व्यक्ति अगर उस मिश्री को चखकर उसका ज्ञान कर ले तो उसका वह ज्ञान अनुभव सन्नित ज्ञान सम्यग्ज्ञान है और अनुभवरहित ज्ञान मिथ्या ज्ञान है। वह मिथ्याज्ञान है जिस तरह मिथ्या है, मगर वस्तुस्वरूप के अनुरूप होने से वह सम्यक् है।

सम्यक्त्व की कल्याण मूलता—इस जीवका भला कर सकने वाला उपाय सम्यक्त्व है। जिसके सम्यक्त्व नहीं है वह दोन है, गरीब है, अमहाय है, संसारमें जन्ममरण करते हुए कष्ट भोगेगा। तब सभी चाहते हैं कि मेरे सुख शान्ति हो। कभी भी क्लेश न आये। जब ऐसा चाहते हो तो भोजीप्रकार इसका प्रयोग करो, कुछ अमलमें लावो देखते तो जा रहे सभी लोग कि बहुत परिकर मिलते, बहुत समागम मिलते लेकिन किसी समागमसे कोई लाभ नहीं होता। दुःख ही दुःख मिलता है। रागद्वेष मोहके फलमें तो दुःख ही दुःख है। तो जिस बातमें कष्ट होता है उसको करते ही क्यों ? खूब परख करलो, किसी भी पर वस्तुमें मोह करने का फल क्या मिलता है ? मोह परवस्तु में ही तो होता है, निजमें मोह कौन करता है ? निजमें तो एक स्वच्छता प्रकट होती है। बेहोशी नहीं होती है निज दृष्टिमें। बेहोशी आती है मोहसे पर वस्तुके प्रति जो लगाव है यह ही इस जीवको ऐसा बुरी तरह से दुःखी करता है। जैसे कहते हैं कि किसीको बोटी बोटी छेद करके दुःख देना। इस आत्मा के प्रत्येक गुणपर कैसा आघात पहुँचता है इस रागमोहसे। लेकिन यह मोही प्राणी राग मोहसे दुःखी होता है और उसी में ही मरना चाहता है। यह जी स्वयं आनन्दस्वरूप है। जो लोग कहते हैं—आनन्दब्रह्मणोरूपी, वह कुछ असत्य नहीं हैं। ब्रह्मका स्वरूप आनन्द है,

लेकिन वे एकान्त करते कि आनन्द के सिवाय और कुछ नहीं है। बस इतनी ही तो कमीकी बात है। आनन्द है क्या नहीं आत्मा में ? आत्मा स्वयं आनन्दस्वरूप है, उसमें कष्टका कोई नाम नहीं, लेकिन यह जीव मोह करके बाहरी पदार्थों में लगाव करके स्वयं दुःखी होता है। व्यर्थका लगाव है। व्यर्थका मोह है, मर गए फिर क्या रहा इस जीवका। अब भी क्या लाभ मिलेगा ? इसे कोई लाभ नहीं परवस्तुका मोह रखने में। ज्ञानप्रकाश लावें। घर में तो रहो, गृहस्थ हो लेकिन सत्य बात यदि न समझोगे तो जीवन बेकार है। केवल कमाई करके धन भर लिया अरे किसके लिए धन जोड़ने की धुन बनाते ? कहेंगे कि हमारे पुत्र हैं, उनके लिए हमने धन रखा है। अरे मरने पर तुम्हारे पुत्र क्या ? मरने पर वे तुम्हें क्या लाभ दे सकने वाले हैं ? कहाँ उत्पन्न होंगे ! कौन हैं ? सारा भ्रम है। तो सम्यक्त्वके बिना यह जीवन व्यर्थ समझिये !

मनका ऊधम छोड़कर उद्धारक धर्म में उपयोग लगाने का अनुरोध—धनपर आस्था मत रखो। चूंकि कुछ जरूरत पड़ गई है, भूख प्यास, ढंड आदिकी अनेक बाधाएँ हैं इस-लिए गृहस्थ होकर कुछ कमाई करना चाहिए, यों कुछ जरूरत पड़ी, है, इतना मात्र समझिये। इससे आगे कोई मोह की बात सोचा, कोई लाग लपेट की बात बनाया तो यह सब ऊधम है। यह समझिये कि कोई लाभ मिला है, पुण्यका अवसर आया है। मन मिला है तो इनका प्रयोग ऊधम के निये न करो। इस ऊधमको छोड़ो। बच्चे लोग तो ऊधम करते हैं तो उन्हें ये बड़े लोग डाटते हैं—अरे क्यों ऊधम कर रहे हो, लेकिन वे यह नहीं सोचते कि अरे हम भी तो कितना ऊधम कर रहे हैं। परवस्तु से मोह करना, पर पदार्थों में लगाव रखना यह इसका ऊधम नहीं है तो फिर और क्या हैं ? पर इसे कौन डाटे ? इसे डाटने वाला कोई नहीं है इसलिए यह स्वच्छन्द होकर ऊधम कर रहा है। यह मोहका ऊधम छोड़ना चाहिए और अपने आपपर कुछ दया करना चाहिए। सम्यक्त्व प्राप्त करो। सम्यक्त्वके बिना जीवन निष्फल है, यो तो ये कुत्ते गधे सूकर आदि हो जाते तो वे भी विषयों का मौज मानते। जैसे यहां खाने, पीने, मंथुन आदिके विषयों में मौज मान रहे वैसेही उन बाटी पर्यायों में भी तो मौज मान सकते थे फिर फर्क क्या रहा उन सूकर, कुत्ता, गधा आदिके और इन मनुष्यों में ? क्यों हुए मनुष्य ? अगर सुख भोगनेके लिए मनुष्य हुए तो वह सुख तो कुत्ता, गधा आदिकी पर्यायो में भी तो लूटा जा सकता था। फिर मनुष्य बनने का लाभ क्या उठाया ? अरे मनुष्य बननेका लाभ तो तब है जब कि अपना मन ऐसा बनालें कि यह आत्मा पवित्र बन जाय। बताइये—इन स्त्री पुत्र घर द्वार, धन वैभव आदिक में मोह करनेसे आत्मपवित्र हो सकेगा क्या ? धर्मकी बात सुननेके लिए किसी भी प्रकार से

समय नहीं मिलता ऐसा यह व्यस्तजीव, यह क्या आत्माको पवित्र बनानेका उपाय है ? अरे आत्माको पवित्र बनानेका उपाय सिवाय रत्नत्रयके और कुछ नहीं है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, बस यही आत्माको पवित्र बनानेका उपाय है ।

मोह राग के अधर्मसे हटकर रत्नत्रयकी श्रद्धाधनमें ही धर्मात्मत्व—रत्नत्रयकी शरण्यताकी बात अपने आप पर दया करनेकी बतायी जा रही है, कहीं दूसरोंको नही बताना है कि मैं धर्मात्मा हूँ । उससे लाभ कुछ नहीं मिलनेका । अगर किसीके मनमें ऐसा आ जाय कि लोग मुझे समझें कि यह तो बड़े धर्मात्मा हूँ तो समझो कि वह एक तरहसे अधर्म कर रहा है, क्यों कि उसके परिणाममें मिथ्यात्व हो सकता है । अरे जो स्वयं दुःखी हैं, कर्मके प्रेरे हैं उनसे अपनी क्या प्रशंसा चाहते ? तो ऐसी स्थितिमें कोई ऐसा उपाय बनालें कि हमारे संसारके दुःख सदाके लिए छुट जायें । बस इसी के लिए हमारा जीवन है । कमर कसकर चलो, भगवानकी भक्ति करो तो वहाँ भी ध्येय एक यही रखो कि हे भगवन मुझे तो आप जैसा पवित्र ही बनना है । बस उसी स्थिति में आनन्द है, मेरे में भी वह शक्ति है, वह स्वभाव है जो आपमें है । अगर न हो तो फिर आपकी भक्ति करनेसे लाभ क्या ? अगर पवित्र बन न सके, आकुलतायें दूर न कर सकें तो फिर आपकी भक्ति करनेसे लाभ क्या ? मानो थोड़ा सा लौकिक सुख मिल भी गया तो उससे लाभ क्या है । यह तो कीचड़ है । इस संसार सुखमें क्या रखा है । तो उस सुखसे भीतरमें ऐसा मुख मोड़े कि श्रद्धामें तो यही बात रहे कि हमें तो इसकी ओर देखना ही नहीं है । समयसारमें बताया है कि परमाणुमात्र भी जिसके राग है वह आत्माको नहीं जानता । और जो आत्माको नहीं जानता वह जीव अजीव को नहीं जानता वह सम्यग्दृष्टि कैसे ? तो परमाणुमात्र भी राग न होना चाहिए तब समिभये ज्ञान । इसका अर्थ क्या ? राग बिना घरमें रह सकते क्या ? नहीं रह सकते । तो फिर इसका मतलब यह है कि श्रद्धामें परमाणु मात्र भी राग न होना चाहिए । तो किसी भी रागसे, बाह्य वस्तुकी प्रीतिसे मेरा हित न होगा, ऐसे श्रद्धामें राग न होना चाहिए । एक निर्णय रखो कि किसी भी विषय सेवन इस आत्माका उद्धार नहीं । और, परिणामोंको गंदा करना, कलुषित करना विषयवृत्ति है, अनर्थ है । इससे प्रीति न करना चाहिए ऐसा मनमें विश्वास बनायें और इस धनके व्यामोह विषको उगल दीजिए । अगर नहीं उगलतें तो इससे आप बरबाद होगी । ऐसी श्रद्धा रखो कि इससे इस आत्माको कुछ शान्ति नहीं । यह तो परिस्थितिमें जरूरत पड़ी है इसलिए थोड़ा सा संग है । इतनी बात है ।

लोकेशणामें असिद्धि—मैं दुनियामें बड़ा कहलाऊँ इसके लिए जो धन कमाता है

वह मूढ़ है। भला दुनिया में कोई ऐसा व्यक्ति मिलेगा जिसपर सभी लोग खुश हो जायें ? ऐसा कोई न मिलेगा। चाहे तीनों लोकका कोई अधिपति हो जाय, जिनेन्द्रदेव बन जाय जिसका समवशरण रचा गया हो, जिसका धर्मोपदेश हो रहा हो ऐसे पुरुषकी भी तो सभी लोग प्रशंसा नहीं करते। बहुत से लोग उसके भी विपक्षी होते हैं। दुनिया में ऐसा कोई नहीं मिलेगा जिसपर सभी लोग खुश हो जायें। एक कथानक है कि एक सेठके चार लड़के थे और उसके पास ५ लाखका धन था। एक एक लाखका धन सभी लड़कोंको बांट दिया। सभी लड़के न्यारे-न्यारे हो गए। एक दिन सेठ ने कहा कि देखो तुम लोग बड़ी शान्तिसे न्यारे हो गए तो इस खुशीमें तुम सभी लोग बिरादरीकी पंगत कर लो। सबसे पहिले मानलो सबसे छोटे लड़के ने बिरादरी की पंगत की। उसमें उसने ८-१० तरह की मिठाइयां बनवायी और सभी को बड़े प्रेमसे भोजन करवाया। वहां बिरादरीके लोग भजन करते हुए में आपसमें चर्चा कर रहे थे कि मालूम होता है कि सेठने अपने इस छोटे बेटेको सबसे ज्यादा धन दे दिया है। ठीक ही है। छोटा बच्चा सभीको सबसे प्यारा होता है, तभी तो यह बड़ा खर्च करके अनेकों प्रकारकी मिठाइयां सबको खिला रहा है। उसके बादमें उससे बड़े लड़केने बिरादरी की पंगत किया तो उसने कोई चार व पांच ही तरह की मिठाइयां बनवायीं। अब बिरादरीके लोग जीमते जा रहे थे और आपसमें चर्चा कर रहे थे कि देखो यह तो चालाक निकला। इसने तो ४-५ प्रकार की मिठाइयों में टरका दिया। यह तो उससे बड़ा था। इसको तो और भी अधिक धन मिला होगा, पर इसने बिरादरीपर खर्च करनेमें बड़ी कंजूसी की। उससे बड़े लड़के ने जब बिरादरीकी पंगत किया तो उसने मिठाई का नाम ही न रक्खा। सिर्फ पूड़ी साग ही बनवाया। वहां बिरादरीके लोग जीमते जाते थे और आपसमें यह चर्चा करते जाते थे कि देखो यह तो बड़ा ही कंजूस निकला। इसने तो मिठाई का नाम ही न रखा। जब सबसे बड़े लड़के ने पंगत किया तो उसने पकवानका नाम न रक्खा, सिर्फ दाल रोटी ही बिरादरीके लोगोंको खिलाया। वहां भी खाने वाले लोग यही चर्चा करते थे कि देखो यह तो सब लड़कोंसे बड़ा था। इमने तो सबसे अधिक धन अपनेपास दबा रखा होगा पर वह कैसा चालाक निकला कि सिर्फ रोटी दालमें ही सबको टरका दिया तो देखिये खुशकरने का प्रयत्न तो किया गया पर सभी लोग खुश तो न हो सके। बाहरी बातों में अपना यह निर्णय न बनायें कि मैं ऐसा करूंगा तो ये लोग खुश हो जायेंगे ! हम अपनेमें एक यह निर्णय बनायें कि मैं क्या करूँ कि जिससे मैं खुश हो जाऊँ ? मैं कौन सी भावना बनाऊँ, कैसी बात सोचूँ कि मैं अपने आपमें प्रसन्न हो जाऊँ, निर्मल हो जाऊँ ! सदाके लिए संकटोंसे छूट जाऊँ ?

मन के ऊद्यम के फल में पुनः निगोदवास की भ्रंशट का लाम—जब ये सब जीव अपने-अपने में कष्ट में पड़े हैं तो उनसे अपने लिए क्या आशा करते हैं। मन को स्वच्छंद न बनाना चाहिए उद्यम न करना चाहिए। दूसरों पर दृष्टि रखना, उनमें रागद्वेष मोह करना यह सब ऊद्यम है और अपने भगवान् आत्मा पर अन्याय करना है। अगर ऐसा अन्याय इस भगवान् आत्मा पर किया गया तो उसका फल क्या मिलेगा कि जिस दुर्गति से निकल कर आये वही दुर्गति फिर मिलेगी। एक कथानक है कि साधु के पास कोई चूहा रहता था। एक बार उस चूहे पर बिलाव भपटा तो साधु ने चूहे को आशीर्वाद दिया- बिडालोभव- तू भी बिलाव बनजा। लो वह चूहा बिलाव बन गया। अब उसे बिलाव का डर तो न रहा। फिर एक बार उस बिलाव पर कुत्ता भपटा तो बिलाव को साधु ने आशीर्वाद दिया- श्वानभव, अर्थात् तू भी कुत्ता बनजा। लो वह बिलाव कुत्ता बन गया। एक बार उस कुत्ते पर भपटा तेंदुआ तो साधु ने कुत्ते को आशीर्वाद दिया- व्याघ्रोभव अर्थात् तू भी तेंदुआ बनजा। तो वह कुत्ता तेंदुआ बन गया। एक बार उस पर भपटा सिंह तो फिर साधु ने आशीर्वाद दिया- सिंहोभव, अर्थात् तू भी सिंह बनजा। लो वह भी सिंह बन गया। अब उस जंगल में उस सिंह को भूख लगी- वहां कुछ खाने को था नहीं। उस सिंह के मन में आया कि न हो तो मैं इस साधु को ही क्यों न खा जाऊं। यह भी तो हृष्ट पुष्ट है। जब सिंह के मन की बात साधु ने समझ लिया तो आप दिया- पुनर्मूषकोभव, अर्थात् तू फिर चूहा बन जा। लो वह फिर चूहा बन गया। तो इस कथानक से शिक्षा यह लेना है कि हम आप अनादि काल से निगोद में थे। वहां से निकलकर एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय में आये। कुछ ओर ऊंचे उठे तो मनुष्य हुए। यहां प्रेष्ठ मन मिला हुआ है तो इस मन का दुरुपयोग किया तो इसका फल यही होगा कि आत्मा भगवान् का आशीर्ष मिलेगा- पुनर्निगोदोभव फिर से निगोद जाना पड़ेगा। मन का दुरुपयोग यही तो है कि जो इस पर पदार्थों के प्रति इतना लगाव लगाया जा रहा है। यह तो इस आत्मा भगवान् के लिए कलंक है। हां गृहस्थी में रह रहें हैं तो पर पदार्थों से सम्बन्ध रखना पड़ रहा है पर श्रद्धा अपनी सही बनाये रखें कि इसमें मेरी बरबादी ही है। यह अपने आपके दया की बात कही जा रही है।

स्वभाव सुधार संगम में शाश्वत शान्ति का संगम—यदि यह आत्मा मिथ्यात्व से हटे, भ्रम से दूर हो जाय, अपने आपके स्वभाव को पहिचान ले, उसकी लगन लगाये, उसका आचरण करे तो उसके प्रताप से इसका आनन्द सदा के लिए अरहंत सिद्ध बन जाय, सदा के लिए अनन्त आनन्दमग्न हों जाय, सदा के लिए यह आत्मा परमविभू हो जाय।

क्या यह बात आपके लिए बुरी लगती है ? अरे वह तो आनन्द की बात है । उसके लिए तो सदा बाट जोहना चाहिए । बाट जोहना चाहिए कि कब सिद्ध होऊँ और सदा के लिए मैं संकटों से मुक्त हो जाऊँ । यहां की झूठी मायामय चीजों की बात जोहने से काम न चलेगा । यहां के धन वैभव की भी धुन बनाये रखें और चाहे कि मैं भगवान् जैसा बन जाऊँ तो ये दोनों बातें एक साथ न बन पायेंगी । अरे किन के लिए इस धन वैभव की होड़ मचाई जा रही है ? यह तो एक बेकार सी बात है । सबका अपना-अपना भाग्य है । गृहस्थी में रहकर तो अपना एक कर्त्तव्य समझें ८-१० घंटे कमाई के कामकाज में रहेंगे, जैसा सबका भाग्य होगा सो कमाई होगी । क्या है जिन्दगी का गुजारना । इसको तो गरीबी में भी गुजार सकते, कष्ट में भी गुजार सकते । यदि अपने परिणामों में समता रखे, शुद्ध ज्ञान प्रकाश रखे तो इस जीवन का भला हो जायेगा । देखिये अनादि काल से अब तक अनन्त भव पाये, बड़ी बड़ी विभूतियों के स्वामी भी बने पर वह सब साथ रहा क्या ? अरे वह सब छोड़ना ही पड़ा । और इस भव में भी जो कुछ समानता प्राप्त है वे क्या सदा पास रहेंगे ? वे भी छूटेंगे । तो इससे रही सही जिन्दगी में इन पर पदार्थों से लगाव रखना । लगाव रखे आत्मकल्याण का । सम्यक्त्व उत्पन्न करें ।

सम्यक्त्वोत्पत्ति में वस्तुस्वातंत्र्य व निमित्तनैमित्तिक भावके यथार्थ परिचय की उपयोगिता—सम्यक्त्व उत्पन्न करने का सही उपाय यह है कि वस्तु का सही स्वरूप समझें । सही स्वरूप समझने में दो दिशाये हैं (१) वस्तुस्वातंत्र्य (२) निमित्तनैमित्तिकभरव उसमें जो वस्तु स्वातंत्र्यकी ऐसी हट करते हैं कि जब जो पर्याय होनी है सो होती है, निमित्त कुछ नहीं है क्रम से बंधी है सो निकलती जाती हैं, उस समय जो सामने हो उस पर निमित्तका आरोप करते हैं, यह उसका अज्ञान है, क्योंकि इसदृष्टि में यह बात आयी कि आत्मा में जो भी बात हुई वह सब हमारे स्वभाव से हुई, कोई विरुद्ध बात है ही नहीं । राग किया तो वह भी स्वभाव से हुआ उसे छोड़ने की क्या जरूरत ? तो यह स्वातंत्र्यका ऐसा एकान्त जो सीमा का उल्लंघन करे वह भी ठीक नहीं । कोई कहे कि कर्म ने ही किया विकार राग तो यह एकान्त भी ठीक नहीं । इस एकान्त का अर्थ यह हुआ कि जब ये कर्म दया करेंगे तब राग मिलेगा अन्यथा नहीं, सो उसके इस एकान्त में भी सही मार्ग न मिलेगा । तथ्य सच समझिये जगत के सर्व पदार्थ स्वतन्त्र है, सब अपनी-अपनी सत्ता स्वयं रखते हैं । स्वयं सिद्ध हैं । स्वतः परिणामशील हैं, अपने आप परिणमते रहते हैं । स्वातंत्र्यता तो यों है मगर देखिये- इस जीव में अनादिकाल से यह बात चली आ रही है कि अशुद्ध बना हुआ है, तो क्या इसकी अशुद्धता स्वभाव से है ? यदि

स्वभाव से यह जीवअशुद्ध है तो यह फिर वह कभी मुक्त हो ही नहीं सकता। यह इस तरह अशुद्ध होता चला आया। कि कर्म उपाधि का निमित्त पाँकर यह जीव उसके अनुरूप होतीं चला आया है। उसका परिणमन उसकी ही कारण शक्ति से है। कहीं निमित्त की करण शक्ति से नहीं है निमित्तका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, प्रभाव कुछ भी उपादान में नहीं गया, लेकिन उपादान ऐसा बिगड़ गया तो क्या स्वभाव से बिगड़ कर बिगड़ गया? ऐसा हो तो फिर उसके छूटने का कोई उपाय नहीं रहेगा। बिगड़ा वह उसी तरह से है कि पर वस्तु का निमित्त सन्निधान पाया और यह आत्मा स्वयं अपनी परिणति से उस प्रकार हुआ है। दृष्टान्त देखिये-दपर्ण में हाथ की छाया पड़ी तो बताइये क्या वह छाया उस दपर्ण की है या हाथ की? हाथ में हाथ है, दपर्ण में दर्पण है। हाथ का कुछ भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव दर्पण में नहीं गया और न दर्पण का हाथ में। हाथ में निमित्तता मात्र थी, दर्पण में योग्यता थी अतः हाथ सामने आने पर दर्पण स्वयं अपनी परिणति से उस रूप परिणम गया। इसमें विवाद की क्या बात? जैन सिद्धान्त में इसकी बहुत स्पष्ट विवेचन है। एक पक्ष का चित चिन्त में न रहे तो विवाद के लिए एक भी स्थल नहीं बैठता। आचार्यदेव की ऐसी परम करुणा है कि इस जीव को ऐसा सत्यमार्ग बताया गया है।

स्वभावदर्शन के लिये निश्चयनय व व्यवहारनय के सदुपयोग की कला का दिग्दर्शन—
अब देखिये- मोक्ष के लिए, अपना मार्ग अपनाने के लिए कर्तव्य क्या है? स्वभाव दर्शन। अपने स्वभाव की दृष्टि बनाये, इसमें दूसरी राय नहीं है। यदि शान्ति पाना है, मोक्ष मार्ग पाना है तो एक ही उपाय है कि अपने सहज स्वभाव की दृष्टि करें और उस ही रूप असने को माने। यह ही तो काम करना है, इसमें विवाद की कोई बात नहीं, लेकिन स्वभाव दृष्टि हमारी कैसे बने, इसके लिये जो उपाय सोचा जा सकता है उसमें भूल भी हो सकती, कोई सही भी कह सकता, मगर वास्तव में यह धुन बने कि मेरे को स्वभाव दर्शन चाहिए। अन्य बातों की हमें जरूरत नहीं। अगर वास्तव में आत्महित की श्रद्धा हुई है तो भी यह श्रद्धा निर्विवाद सब काम कर देगी। निश्चय दृष्टि से देखो सभी पदार्थ स्वतन्त्र है, अपने आप में अपना परिणमन कर रहे हैं, अपने आप की शक्ति में उत्पाद व्यय ध्रौव्य रूप रहा करते हैं। ऐसा सोचने का प्रभाव क्या पड़ा कि किसी भी पर वस्तु पर दृष्टि न होगी, किसी भी पर वस्तु का ख्याल न आया तो निराश्रय अध्यवसान नहीं हो सकता। तब इसने पर वस्तु का आश्रय छोड़ दिया। अध्यवसान की व्यक्ति कैसे हो। निश्चयनयका आलम्बन करके जब इसने परका आश्रय छोड़ दिया तब फिर निराश्रय तो रागभाव न रहेगा। वहाँ अपने को मार्ग मिल जायेगा। स्वभाव दर्शन ही जायगा। अब

जरा व्यवहार दृष्टि से देखो, कैसे स्वभाव दर्शन मिलता है ? व्यवहारनय यह बताता है कि जीव में जो विकार परिणति होती है वह कर्म विद्या का निमित्त सन्निधान पाकर होता है । अही आत्मा में ये विकार स्वभाव से नहीं हुए हैं, कर्म उदय का निमित्तपाकर हुए हैं नैमित्तिक भाव है, अथवा कर्मविपाक में स्वयं यह उधम पड़ा हुआ है । वह उधम इसमें झलकता है, झलका वह करता है, मोही इसे अपनालेता है । यह न अपनायेगा तो ऐसा विशुद्ध परिणाम होगा कि कर्मकाऊधम भी मिट जायेगा । तो स्वभाव दर्शन हो जायेगा । ये समस्त विभाव नैमित्तिक भाव है, परभाव है, मेरा स्वरूप नहीं, मेरा स्वभाव नहीं, ऐसी गंभीर दृष्टि में स्वभाव दर्शन भी हमें मिलेगा । बात सीधी है कि विकार को निमित्त नैमित्तिकभावपूर्वक मानने परकल्याण की दृष्टि जोगी और कर्ता कर्म भाव न मानने में ही हमको स्वभाव की दृष्टि और कल्याण का मार्ग मिलेगा । एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं करता । यह निर्णय अपेक्षित है, लेकिन यह भी एक तथ्य है कि जब जो विकार होगा वह पर द्रव्य का निमित्त पाकर ही होगा । निमित्त बिना विकार नहीं होता और निमित्त परमें कुछ करता नहीं । ये दोनों के निश्चय से अपने को कल्याण का मार्ग मिलता है । तो ऐसी दृष्टि बनाकर अपने आपमें एक स्वभाव दृष्टि करें और अपने कल्याण मार्ग में लगे ।

वाट्स्यसमागम में हितलाभ की अशक्यता—भैया देह देवालय में अन्तः विराजमान आत्मदेव की अपना निर्णय बनाले कि धन वैभव परमाणु मात्र भी ऐसा कुछ नहीं है । अपने हृदय में पवित्रता लाये । पर वस्तु का मोह रखने से आत्मा में अपवित्रता जगती है और उससे पापका बंध होता है । श्रद्धा सही बनाले कि परमाणु मात्र भी मेरा कुछ नहीं है, शान्ति नहीं है, ऐसा अपने आप में एक विशुद्ध भाव बनाये । देखो बाहर में जो होना है सो होता है । जैसा आपके घरके लोगों का उदय है वैसा सब काम चल रहा है । हां ऐसा होता है कि जैसा उन लोगों का उदय है वैसा होने में आपकी बुद्धि भी निमित्त बनती है, वैसी बुद्धि चलती है लेकिन आपका उसमें कोई सम्बंध नहीं, कुछ बात नहीं, आप निराले हैं, यह धन वैभव जड़ आपसे निराला है । वह अजीब है आप जीव है । इससे आपका क्या सम्बंध ? जरा अपने आप पर दया करने के लिये सोचें किजिन पर मोह कर रहा हूँ वे कोई आपके साथी नहीं हो सकते । न पुत्र, न स्त्री, न पति, न पिता, न धन वैभव में कोई आपके शरण, साथी नहीं हो सकते । आपके साथी, आपका शरण सब आप ही हैं । कोई दो मित्र थे तो वे दोनों रोज मिलकर स्वाध्याय किया करते थे । तो उनमें एक दिन ऐसा ठहराव हो गया कि हम दोनों में से कोई अगर गुजर जाय और गुजर करके देव बने, तो वह आकर दूसरे को समझाये । उनमें से एक मर गया और देव बना । उसने अवधिज्ञान

से परखा और उसी मन्दिर में आया जिसमें कि उनका वह पूर्वभव का मित्र स्वाध्याय कर रहा था। उसे समझाने के लिए आया क्योंकि वादा निभाना था। उसे देव ने कुछ बिर-त्तिकी बातें कहीं देखो जिन परिजनों में तुम मोह करते हो वे तुम्हारे कुछ नहीं, नहीं तो वह मित्र यही कहे कि अरे मेरे पुत्र बड़े अच्छे, मेरी स्त्री बड़ी आज्ञाकारिणी, मेरे परिजन बड़े अच्छे। तो उस देव ने समझाया कि देखो तुम भूल में हो, वे तुम्हारे कुछ नहीं हैं, यो देवने बहुत बहुत समझाया पर उसकी समझ में न आया। देव ने फिर कहा- अच्छा तुम एक काम करना, कलके दिन दोपहर को तुम पेट दर्द का बहाना कर लेटजाना, हम वहां आयेंगे तब तुम्हें समझायेंगे। अच्छी बात। दूसरे दिन वह पुरुष पेट दर्द का बहाना करके लेट गया। घर वाले बड़े हैरान हुए। इसी बीच वह देव वैद्य का रूप रखकर सड़क पर फिरने लगा, लो दवा खरीदो दवा, हमारे पास हर प्रकार की पेटेन्ट दवायें हैं। जब घर वालों ने सुना तो बुलाया। कहा आप हमारे अमुक की दवा कर दीजिए। जब उस वैद्य ने उस पुरुष की नाड़ी पकड़ी तो कहा अरे इसको तो बड़ी जबरदस्त बीमारी है। इसका बचना मुश्किल है, लेकिन हम इसका इलाज करते हैं।.....अच्छा भाई एक गिलास पानी ला दो, आ गया पानी। अब उसमें कोई झूठ मूठ की दवा या भस्म डाल दी और कोई झूठ मूठ का मंत्र सा पढ़कर उन घर वालों से। उस पुरुष के माता, पिता, स्त्री, पुत्रादिक से, कहा लो तुममें से कोई इस दवा को पी लो, अभी तुम्हारा आदमी अच्छा हुआ जाता है।...अरे ऐसी क्या बात कह रहे? बीमार तो वह है, दवा हमें पीने को क्यों कह रहे? ...अरे यह दवा मंत्रसिद्ध है, इसमें विशेषता यह है कि इसे जो पीता है वह तो मर जाता है और जो बीमार होता है वह अच्छा हो जाता है।...अब बस पुरुष की माँ सोचती है कि अभी तो मेरे पास ३-४ लड़के हैं, यदि मैं ही मर गई तो फिर पुत्रों का सुख कहां से देख सकूंगी, यह सोचकर उसकी माँ ने वह दवा पीने से इन्कार कर दिया। ऐसा ही कह कर उसके पिताजी ने भी इन्कार कर दिया, जब उसकी स्त्री से दवा पीने को कहा तो उसने सोचा कि मेरे पास दो तीन लड़के हैं। यदि मैं ही मर गई तो फिर इन पुत्रों का सुख न देख सकूंगी, इसलिए उसने भी मना कर दिया। ऐसे ही लड़कों ने भी मना कर दिया। बाद में ह वैद्य बोला-तो क्वा मैं पी लूँ? ...हाँ हाँ आप पी लीजिए। आप तो बड़े दयालु मालूम होते हैं...अच्छा तो तुम लोग यहाँ से जावो, हम पी लेंगे। सब लोग वहाँ से चले गए। अब वह देव उस पुरुष के कान में कहता है समझ गए न? जिसको तुम बड़ा आज्ञाकारी कह रहे थे वे तुम्हारे लिए कुछ न हुए ना। उस पुरुष की समझ में झट आ गया।

आत्माहित के लिये आत्मबोध व आत्माश्रय करने के दृढ़ नियम की आवश्यकता—
 भैया अपना दृढ़ निश्चय करो—मुझे तो पवित्र बनना है । उसके द्वारा ज्ञान प्रकाश पाना है, अपने आपका मन शुद्ध करना केवल जीवन में उसका एक ही लक्ष्य है, बाकी सभी लक्ष्य छोड़ दें, ऐसा भाव बने तो इस जीव को कुछ लाभ भी मिलेगा और अगर नहीं करते तो फिर जौ करते सो करो । होगा यही कि जो संसार में जैसे अभी तक चलते आये, कीड़े मकोड़े बनते आये वैसे ही बनना पड़ेगा । उससे इस जीव को लाभ क्या है ? लो सम्यक्त्व पाने के लिए उपाय है तत्वाभ्यास । ज्ञान की बात सीखें, जो पदार्थ जैसा उसे वैसा समझें । यह बात कहीं १०-१५ वर्ष सुनने मात्र से बोध हो जाये ऐसा करने में सारा जीवन लगाना पड़ेगा । तत्त्वज्ञान करते हुए समय व्यर्थ की गप्पों में निकला जाता है । अपने दुर्लभ क्षणों का सदुपयोग करो । अच्छा, लो जरा हम आपसे कहते हैं कि आप २४ घंटे धन कमाओ । खूब कमाओ । मगर कोई २४ घंटे धन कमाता है क्या ? और २४ घंटे किसी से कमाई बनती है क्या ? कोई २४ घंटे का समय धन कमाने में लगा सकता है क्या ? कितना समय लगाते ? मुश्किल से ६-१० घंटे । अब बताइये आप के पास बाकी जो १४ घंटे बाकी जो समय है उसमें आप क्या करते हैं ? उसे फालतू ही तो गमाते हैं । अरे मित्रों में, दोस्तों में कभी भी ऐसी बाततो कर लिया करो कि यार बताओ तो सही कि मेरे आत्मा का उद्धार कैसे हो ? इस ओर तो चलना चाहिए । धर्म के मार्ग में खुद भी लगों और दूसरों को भी लगायें । अगर ऐसी बात मित्रों में होती तो वह सच्ची मित्रता है, और यदि ऐसा नहीं हो सकता है तो धोखा है, उसे दुःख में डालता है और खुद भी दुःख में पड़ता है, ऐसी गोष्ठी बने कि दूसरों का भी उपकार और खुदका भी उपकार हो । तो एक निर्णयकर लीजिए कि मेरा परमाणु मात्र से भी प्रयोजन नहीं, परिस्थितिवश करना पड़ता है । सो जिस कर्म के उदय से हम मनुष्य हुए हैं उसमें इतनी बात तो होती ही रहेगी कि बिना किसी विशेष चिन्ता के इतना तो मिल ही जायगा कि गुजारा ही चलता रहे । मानलो अधिक धन जोड़-जोड़कर रख लिया और उसको किसी ने छुड़ा लिया, अगर सरकार ही कोई कानून बनाकर आपसे छुड़ाये तो उससे आपको फायदा क्या रहा ? और छुटेगा तो है ही । अभी न छूटा तो मरने पर एकदम सारा का सारा धन छूट जायगा । इससे धनार्जन करने का अपना मुख्य लक्ष्य न बनायें । अपना लक्ष्य बनायें आत्म-कल्याण का । यही सारभूत बात है ।

प्रत्येक आत्मा में धर्म की एक रूपता और उसके प्रारम्भिक विकासका साधन निसर्ग व अधिगम—सम्यग्दर्शन निसर्ग और अधिगम से होता है अर्थात् किन्हीं जीवोंको

सम्पद्दर्शन दूसरे के उपदेश सुनकर होता है । तो जो अपने आप होता याने उपदेश सुने बिना अन्य किसी कारण घटना को देखकर होता है । उसे कहते हैं निसर्गज सम्पद्दर्शन और जो दूसरे का उपदेशकर सम्पद्दर्शन लाभ होता है उसे कहते हैं अधिगमज, सम्पद्बन्ध क्या वस्तु है ? आत्मा का परिणाम । जगतमें जितने जीव हैं वे सब सुख शान्ति चाहते हैं और दुःख से दूर होना चाहते हैं । उस ही का उपाय है सम्पद्दर्शन । यही आत्मा का धर्म है । जो भी जीव है उसका यह स्वभाव है । धर्म है । प्रत्येक जीव अपने आपके धर्मको सम्हाले तो वह पवित्र हो जायेगा । इस लोक में मुद्रामुद्रित जो धर्म फैले हैं, जो मजबूत चल रहे हैं वे धर्म नहीं कहलाते हैं । वह तो एक परिस्थिति है । मार्ग में लगने वालों का एक समूह है, धर्म तो जात्मा में है और वह है आत्मा के स्वरूपका सही श्रद्धान होना ज्ञान होना और आचरण होना । मुक्ति इस ही उपाय से मिलती है ।

श्रद्धान ज्ञान आचरण बिना लौकिक कार्यकी भी सिद्धि की अशक्यता—जगत में जितने भी कार्य होते हैं वे सभी कार्य विश्वास, ज्ञान, आचरणपूर्वक होते हैं । कोई रोगी निरोग होना चाहे तो वहाँ पर भी औषधिका विश्वास, ज्ञान और आचरण चाहिए । कोई कहे कि औषधि का विश्वास न करे और खा ले तो ऐसा कहाँ होता ? वह तब खायेगा जब उसके प्रति विश्वास होगा । विश्वास बिना खाये तो वह औषधि असर भी नहीं करती । प्रथम तो यह बात है, जब वह विश्वास नहीं है तो खायेगा कैसे ? चाहे एक थोड़ा विश्वास करे करना ही तो पड़ता है और ज्ञान न हो- कैसे खाया जाता है, इसमें क्या चीज है, तो उससे उसका आचरण नहीं बनता और आचरण करे तो निरोग हो जायगा । जैसे कोई रसोई बनाता है तो क्या वह विश्वास, ज्ञान, आचरण बिना बना सकता । अरे उसे विश्वास है कि कल रोटी बनाया था । आज भी इसी तरह से बन जायगी । क्या कोई यह सोचता है कि कल तो आटे से रोटी बन गई थी, आज पता नहीं बनेगी भी या नहीं ? अरे उसे पूरा विश्वास है कि आटे से रोटी बना करती है और ज्ञान भी है कि इस तरह से रोटी बन जाती है । आटे को पहिले भिगोया और फिर उसे गूथ कर ऐसा लसादार बना लिया कि उसे उठावें तो वह थाली भी साथ उठ जाय । उसकी पहिचान है कि रोटी अच्छी बनेगी । परोथन होना चाहिए आटे से पतला, फिर रोटी बनाया, तब पर डाला, पहिली बार जल्दी रोटी को बदल दिया, फिर उसे देर तक तबे पर रोके रहे, फिर रोटी को तेज अंगारे में डाल दिया, अगर कोई उस रोटी में छेफ हो जाय तो उसे चमीटे से बन्द कर दें । यों सब ज्ञान है ना, तो वह रोटी बनाता है, उस क्रिया का आचरण करता है, उस तरह की क्रिया करने से बन गई रोटी ।

बात यह बतला रहे हैं कि विश्वास, ज्ञान, आचरण बिना कोई काम नहीं बनता। चाहे वह व्यापार आदिक के कार्य करे, चाहे कुछ भी करे, विश्वास, ज्ञान, आचरण तो होना ही चाहिये।

स्वयं के श्रद्धा ज्ञान आचरण स्वभाव से लाभ लेने का विवेक—जीव में यह स्वभाव पड़ा है कि वह विश्वास ज्ञान, आचरण बिना रहता ही नहीं है। यह विभाग की बात है कि कोई अच्छे काम में विश्वास, ज्ञान, आचरण करता है तो कोई छोटे कामों में मगर इनके बिना कोई नहीं रहता है। तो जिसे मुक्ति चाहिये तो मुक्ति भी एक कार्य है, कर्मों से छूटना भी एक कार्य है, उसके लिए विश्वास, ज्ञान, आचरण क्या? क्या काम चाहिए हमें? छूट जाना। किससे? कर्मों से, शरीर से छूट जाना। तो देखो जिसको छोड़ना है पहिले उसका विश्वास हो कि हां इसका छुटा स्वभाव है तब ही छूट सकता है तो अपने आप का वास्तव में विश्वास होना चाहिए और जिससे छूटना है उसका विश्वास हो, कैसे छूटना, उस उपाय का विश्वास हो, ज्ञान हो और फिर वैसी ही क्रिया करे याने ज्ञान की भीतर में ही वैसी ही वृत्ति बने तो उसे मुक्ति प्राप्त हो जायगी। तो उस ही सम्यक्त्व की बात कही जा रही है कि वह क्या है। देखिये—अभी तक बहुत-बहुत बातों में आनन्द लिया। स्पर्शना, रसना, सुगन्ध लेना, रूप देखना, राग के शब्द सुनना, मान प्रतिष्ठा नामवरी की इच्छा रखना और उस कार्य में लगना आदि, अब तक बहुत-बहुत काम कर डाले मगर किसी काम में भी शान्ति न मिली तो फिर यह निर्णय तो बनायें कि जोरोजिगार हमने अब तक किया, विषय से मनका व्यापार जो अभी तक करते आये, इसमें अभी तक टोटा ही टोटा पड़ा तो अब यह काम बदल दो। यहां तो आप रोजिगार में अगर ४-६ वर्ष टोटा ही टोटा पड़ता रहा, नफा कुछ नहीं होता तो आप उस काम को बन्द कर देते हैं, कोई दूसरा काम करने लगते हैं, किन्तु अनादिकाल से जो अब तक स्पर्शन, रसना, घ्राण चक्षु, कर्ण और मन इसके विषय लगे हैं, इसमें बराबर तुमको नुनशान ही नुकशान रहा, बरबादी ही रही, चारों गतियों में परिभ्रमण करते रहे, इसमें तो सारा नुकशान ही नुकशान है। तो इसे बदलना क्यों नहीं चाहते। तो क्या बदल करना चाहिये? आत्मदर्शन, आत्म-ज्ञान और आत्मआचरण, ये उपाय करें।

यथार्थज्ञान में ही कष्टविध्वंसन की क्षमता—देखो अपना अनर्थ कितने विकल्प उठा करते? जैसे मरते समय मोहियों को दुःख होता कि मैंने जीवन भर कमाई की, मकान खड़ा किया, दुकान बनाया, इतने ठीक बच्चे तैयार किए और इन सबको छोड़कर जाना पड़ रहा है, इसका ही तो दुःख होता है, और विशेष दुःख क्या होता है। मरना तो सभी को

पड़ता है। मरने में कष्ट क्या? अरे एक कमरेसे उठकर दूसरे कमरे में हम बैठते तो उसमें दुःख तो नहीं मानते; इसीतरह एक इस शरीर कमरे से निकलकर किसी नये कमरेमें, शरीरमें पहुँचे तो वहाँ दुःखकी क्या बात है? दुःख तो इस बातका होता कि मैंने बड़ा कठिनाई से इतनी कमाई की, पर यह सब छूटा जा रहा है, इसका कष्ट मानता है यह। और, जिसे ज्ञान हो जाय कि मैंने इसे कमाया ही नहीं, यह तो यों ही जुड़ गया, उदय था, जिनको भोगना है उनके उदयसे यों ही जुड़ गया। क्या किया मैंने? इसे मैंने नहीं कमाया, मैंने इसका कुछ नहीं किया, ये पर द्रव्य हैं, इनकी मैं परिणति नहीं कर सकता। अगर ऐसा जानकर बन जाता तो मरते समय इसको कष्ट न होता। तो जितने भी कष्ट हैं जीवको वे सब भ्रमके कारण हैं। विपरीत बुद्धि है उसका कष्ट है। इसलिए क्या करें कि भ्रम दूर करें। समस्त पर द्रव्योंसे निराला, शरीरसे निराला, कर्मोंसे निराला विषय कषाय भाव विकल्प विचारसे निराला, शुद्ध सहज एक ज्ञानस्वभावी मैं आत्मा हूँ। यहाँ तक कोई दृष्टि लिए जाय तो उसे मोह कहां सतायगा? सब भिन्न हैं, सब पर हैं। यों ही अचानक मिल गए। जैसे रास्ता चलते-चलते किसी चौहट्टे पर वहाँ सामनेसे आते हुए कोई आदमी मिल गए तो वहाँ आप कितनी देर तक उनसे मिलते? बस जरासा नमस्ते या रामराम या जप जिनेश किया, बस आगे चल दिया। तो जैसे वह थोड़ी देर का मिलाप है ऐसे ही यह भी थोड़े समयका मिलाप है। कोई किसी गति से आया कोई किसी गति से रास्तेमें मिल गए तो थोड़ी देरका मिलाप है। उस ही समयको रागद्वेष, मोह, कषाय कर लिया।

यथार्थ परिचय होनेपर रागद्वेष मोहका अनवकाश—अरे भाई किसपर कषाय करते, किसपर द्वेष करते, किसपर विरोध करते? जिसे देखकर आप विरोध करते उसे आप जीव मानते, वह तो मायारूप है, परमार्थ वस्तु नहीं है। जिसपर विरोध करते वह जीव तो कई बार तुम्हारा कुटुम्बी हो गया बन्धु हो गया। किस पर मोह करते। तुमसे सभी जीव भिन्न हैं एक कथानक है कि एक कषायी एक बकरा मारनेके लिए कहीं लिए जा रहा था। वह किसी शहरसे निकला। रास्तेमें एक सेठकी दुकान थी। वहाँ वह सेठ खड़ा हुआ था। सो वह बकरा जब उस दुकान के पास पहुँचा तो झट दुकान पर चढ़ गया और उस सेठ के चारों ओर चक्कर मारने लगा। सेठ के शरीर में बहुत बहुत चिपटने लगा। सेठने कषायी से बहुत बहुत कहा कि भाई यह बकरा यहाँ से हटता नहीं इसे मुझे दे दो। तो कषायी बोला—यदि आप दो हजार रुपये मुझे दें तो मैं यह अपना बकरा आपको दे दूँ। वह सेठ क्यों दे दो हजार रुपये? उसने सोचा कि बकरे तो ४०-५० रूपयों में

बिकते हैं । आखिर सेठ ने बकरे को ढकेल दिया तब वह कषायी बकरे का कान पकड़ कर हत्यागृह में उस बकरे को ले गया और फिर जो करना था सो कर दिया अब वह सेठ एक मुनिराज के पास पहुंचा । मुनिराज से सेठने पूछा कि महाराज आज एक ऐसी घटना घटी कि एक बकरा मेरी दुकान पर चढ़ आया और वह मेरे पास आकर मेरे शरीरसे चिपट रहा था और मेरे चारों ओर चक्कर लगा रहा था । मैंने बहुत भगाया, भागा नहीं, बड़ी मुश्किलसे मैंने उसे खदेड़ा । यह क्या मामला है ! तो मुनिराज बोले-बेटा वह तेरे बापका जीव था । तेरा बाप गुजर गया तो वह मरकर बकरा हुआ था । कषायी उसे मारने के लिए ले जा रहा था सो वह बकरा अपने प्राण बचाने की आशा से तेरे पास आया था, इसलिए वह तेरे शरीरसे चिपट रहा था और तेरे चारों तरफ चक्कर लगा रहा था मुनिराजकी बात सुनकर सेठ जल्दी ही वापिस आया, कषायीके हत्यागृहमें पहुंचा तो वहां तब तक वह मर ही चुका था । तो बात यह है कि वे ही जीव जो तुम्हारे घरमें आज हैं वे मरकर दूसरा भव धारण करलें तो उनमें फिर आपको ममता जगती है क्या ? आपके घरका कोई जीव मरकर मान लो गाय की बछड़ी बन गयी तो उससे आप प्रेम करेंगे क्या ? अरे उसे तो आप डंडे ही लगायेंगे । वह जब दूध देने वाली बन जायगी, दूध देने लगेगी तब तो आप उसे कुछ हरी भरी घास तथा दाना खिलायेंगे, नहीं तो वहीं रुखा सूखा भुस ही देंगे । तो कोई किसीसे क्या प्रेम करता, क्या राग करता ? जगतमें जितने भी समागम हैं वे सब बेकार हैं । व्यर्थ पर द्रव्यों में मोह किया जा रहा और अपने आपको दुःखी किया जा रहा । व्यर्थ ही कर्म बन्धन किया जा रहे, अगली गति बिगाड़ी जा रही । किसीका कोई दूसरा शरण नहीं । सब अपने आपके जिम्मेदार हैं दूसरा जिम्मेदार नहीं । यह ख्याल रखना कि मेरे को क्या परवाह है, मेरा तो अभी बाप जिन्दा है, मेरा तो सपूत सदा हाजिर रहता है । मेरे को क्या परवाह है । मेरी स्त्री आज्ञाकारिणी है, ये सब बातें थोथी हैं, इस जीवके लिए कोई शरण नहीं है । ऐसा जब देखते हैं तो चिन में यह बात लायें कि ये जो बाहरी बातें हैं ये मेरे लिए कुछ नहीं हैं । इस ज्ञानस्वभावी आत्मतत्त्वके लिए ये बाहरी बातें क्या महत्व रखती हैं ? भिन्न हैं । बाहरी चीजें हैं । भैया ? तृष्णा करो तो अपने आत्माको जानने की और आत्माके शुद्ध ज्ञानप्रकाश में मग्न होनेकी तृष्णा करो । बाहरी की तृष्णामें क्या फायदा पा लोगे ? ये तो अत्यन्त भिन्न चीजें हैं । ज्यादाह आ गई तो क्या, न आयी तो क्या ? तो अपने आपको पहिचानों, अपने आपको समझें, मैं ज्ञानमात्र हूँ । देखो एक यह ही बुद्धि रखें कि बस जो ज्ञान प्रताप है, मैं वही वही हूँ, दूसरी बात ज्ञान में न लावें । कहते हैं ना कि ऐसे ऐसे लोग प्राचीन लोग आ और भी लोग ऐसे हुए

जिन्हें विशेष ज्ञान न था, वे भी तिर गए। तो किस बलपर वे तिर गए ? न था उन्हें अधिक ज्ञान लेकिन मैं ज्ञानमात्र हूँ, ज्ञान प्रकाश हूँ, इतना ज्ञान तो उन्हें हुआ था ही। तभी तो तिर गए ! भैया ! ऐसी भावना लावो कि यह दिखने वाला शरीर भी मैं नहीं, मैं तो ज्ञानमात्र हूँ। जब कोई शरीर में रोग हो जाय, कोई वेदना हो जाय तो यह जैसी कि शरीर में वेदना हुई है दवा कर लिया, कुछ बात नहीं है, मगर उसमें ममता न करें। नेरे दुःख का कारण तो शरीर की ममता ही है बाह्य के मोह में, बाह्य साधन के लगाव में दुःख का होना प्राकृतिक है, क्योंकि वह सब कोरी कल्पना है भ्रम है, अज्ञान है। देखिये जितने भी कष्ट हो रहे हैं उनमें यह साधन शरीर बनता रहता है, तुम कोई भी कष्ट की बात सामने रखो, अन्त में उत्तर यही मिलेगा कि तुम्हारा शरीर है दुःख का कारण। कोई कहे कि बाह्य अमुक ने मेरा अपमान किया तो इसमें दुःख का कारण शरीर कहा रहा ! तो सुनो आपको है इस शरीर में ममता, इस शरीर को आपने माना कि यह मैं हूँ, फिर ध्यान में लाये कि इसने मेरा अपमान किया तो यह आपकी शरीर में आत्मीयता की बुद्धि हुई इस कारण आपने अपना अपमान महसूस किया। अपमान आपका यह ध्यान बन जाय कि मैं शरीर ही में तो एक ज्ञान पुञ्ज हूँ तो फिर आप किसके सम्मान अपमान की बात सोचेंगे उस ज्ञानपुञ्ज का कोई अपमान कर सकता है क्या ? अगर कहीं अपमान का दुःख हुआ तो उसका भी कारण यह ही शरीर बना।

शरीर का शरीरों से रिश्तेदारी का तांता—अच्छा मान लो कोई रिश्तेदार में खटपट हो गई, बात नहीं बनती है तो कहते हैं कि मेरे को बड़ा दुःख है इस रिश्तेदार की वजह से। अरे वह रिश्तेदार किसने बनाया ! इस शरीर ने इस ज्ञान पुञ्ज चैतन्यस्वरूप आत्मा को कष्ट है क्या ! रिश्तेदारी है शरीर की शरीर से। इसलिए इस दुःख का कारण यह शरीर हुआ। भैया किसे कहते हैं ! जिससे यह शरीर पैदा हुआ उसी से जो अन्य शरीर पैदा हो, उसका नाम है भैया। देखो सब शरीर के नाते से बोले जायेंगे। बहिन किसे कहते हैं ! जहां से यह शरीर पैदा हुआ वहीं से जो स्त्री जाति का शरीर पैदा हो उसे बहिन कहते हैं। स्त्री किसे कहते हैं ! जो इस शरीरको रमाने वाला, ऐसा जो कोई शरीर हो उसे कहते हैं स्त्री पुरुष किसे कहते हैं ! इस शरीर को रमाने वाला जैसा शरीर शरीर है वह शरीर जिससे पैदा हो उससे जैसा ओर पुरुषजातिकर शरीर पैदा हुआ हो उसका शरीर है साला। स्वसुर किसे कहते हैं ! इस शरीर को रमाने वाला जो शरीर है वह शरीर जिस शरीर से पैदा हुआ हो उसका नाम है स्वसुर। यों सब नाते रिस्ते शरीर के साथ मिलेंगे। जब कोई बड़ा सा हल्ला होता है तो लोग कहते हैं कि अरे यह कलकल क्यों मचा रहे हो ! वह कलकल क्या

चीज है ! कल मायने शरीर, याने शरीर शरीर की ही बात हो रही, सारे बचन व्यवहार ये सब इस शरीर के ही कारण तो होते हैं। तो शरीर शरीर का ही तो सब कुछ होता है। यहां यह बात कही जा रही है कि जितने भी कष्ट होते हैं उनमें माध्यम है यह शरीर। भूख प्यास लगी तो इस शरीर की वजह से ठंड गर्मी लगी तो शरीर की वजह से लगी। हां कोई अगर टोटा आ गया, घर गिर गया, दूकान फँस हो गई या पैसा डूब गया तो उसका भी कारण यह शरीर है। शरीर कैसे कि इस शरीर में ममता है। इस शरीर को माना कि यह मैं हूँ। कोई नुकसान हो गया तो कहते कि मेरा नुकसान हो गया। वे इस शरीर को ही मैं हूँ ऐसा समझकर कहते हैं वे यह नहीं कहते कि मेरा शरीर है। अगर वे ऐसा बोलें तो कुछ गुंजाइस निकले, इतनी भी बात नहीं चलती है। हाथ उठा उठा कर कहते हैं, कि पहलवानों की तरह छाती ठोक ठोक कर कहते हैं इसने मुझे यों कष्ट दिया।

अज्ञानजन्म विपरीत कल्पनाओं में क्लेश का विलास—अरे भोले प्राणी अज्ञान में तू कितना दुःखी हो रहा है, कषाय करके कितना दुःख पा रहा है। अपने को समझ जाओ कि मैं ज्ञानमात्र हूँ, अन्य कुछ नहीं हूँ मैं स्वतंत्र सत् हूँ मैं स्वयं उत्पाद व्यय धौव्य से सहित हूँ मेरे में मेरा परिणाम होता रहता है। मैं दूसरे का परिणाम नहीं करता। दूसरा कोई मेरा परिणाम नहीं करता। कोई मुझे क्या कहेगा ! कोई मेरा क्या बिगाड़ करेगा जो कोई करता है अपना करता है। कोई दो लड़के २०-२० हाथ कीदूरी पर खड़े हों, उनमें एक जरा कमजोर है या मान लो कैसा ही हो। एक लड़का दूसरे लड़के को अंगुली मटका कर या जीभ निकाल कर चिढ़ा रहा हो तो वह २० हाथ दूर खड़ा हुआ बच्चा चिढ़ता है, दुखी होता है। बताओ अज्ञान में वह करे क्या, वह यह सोचकर दुःखी होता कि यह तो मुझे यों कर रहा, यह मेरे को यों चिढ़ा रहा। दुःखी हो रहा। अब कोई सज्जन आता है तो वह कहता है कि अरे बालक तू क्यों रो रहा है ! तो वह कहता है कि वह मुझे चिढ़ा रहा ! अरे वह कहाँ तुझे चिढ़ा रहा ! वह तो अपने हाथ को अंगुली मटका रहा है अपनी जीभ निकाल निकाल कर अपने को कष्ट दे रहा है, वह तो तेरा कुछ नहीं कर रहा। तो ऐसे ही समझिये कि जितने गाली देने वाले हैं, तिरस्कर करने वाले हैं वे अपना कष्ट कर रहे हैं, तुम्हारा क्या बिगाड़ करते ! तुम तो ज्ञान स्वरूप हो। ज्ञानी बनो तो सुखी रहोगे। अज्ञान में कोई सुख न पावोगे। उस अज्ञान को छोड़ना पड़ेगा। कोई कहे वाह इस अज्ञान को तो हमने अनादिकाल से अब तक पाला पोषा है। अब मैं इसे कैसे छोड़ूँ। जैसे कोई मोही कहते हैं कि मैंने तो इस परिवार को अब तक ऐसा पाला पोसा है इसे मैं कैसे छोड़ूँ ! अथवा ये मिथ्या-दर्शन, लिथ्याज्ञान और मिथ्याचरित्र इन्हें मैंने अनादिकाल से पाला पोषा है, इन्हें मैं कैसे छोड़ूँ

अरे अनादि कालसे ही-इन्हें रखते आये तो क्या कल्याण हो गया ? अरे इन्हें छोड़ना ही होगा । शान्तिका दूसरा कोई उपाय नहीं । कोई सोचे कि मैं ऐसा धन कमालूँ तो सुखी हो जाऊँगा । कमालें, पर कभी ऐसा मोका न आयगा कि आप सुखी हो सकें । बल्कि धन अधिक हो जायगा तो उसे कहां रखना, कहां छिपाना किसे देना, यों अनेक उत्पन्न सामने आयेंगी । तो भाई जैन सिद्धान्त यह उपदेश देता है कि तुम्हारे थोड़े परिश्रममें जो धन आता हो आने दो, उसीमें सन्तुष्ट रहो । उसीमें अपनी सारी व्यवस्था बना लो । लोग तो सोचते हैं कि हम कैसे व्यवस्था कर लें ? हमारे पास तो धन बहुत कम है । अरे भाई जितनी आमदनी हो बस उतने में ही व्यवस्था बनाना है । उदाहरण के लिए जिनके पास कम धन है उनको देख लो, वे भी जिन्दा रहते कि नहीं ? जिसके पास जो है उसीमें व्यवस्था बना लें । उसीमें कुछ हिस्सा पालन पोषण के लिए रखें कुछ दान के लिए रखें । और, उसी से आनन्द से जीवित रहें ।

परको अपने तंत्र बनानेकी मूर्खतामें धलेशका विलास—भैया दुःख तो तब है कि जब अपने मनमें ऐसी इच्छा बनाया है कि मेरे को तो ऐसा ही बनना चाहिए । उसके बिना गुजारा नहीं । उसको कहते हैं ऊधम जब कोई बच्चा ऊधम करता तब तो बड़े लोग उसे बहुत डाटते, पर जब खुद ही ऊधम कर रहे तो फिर उन्हें कौन डाटे ? पर वस्तुओं पर जिनपर आपका अधिकार नहीं उनकी आप इच्छा किए हुए हो । अगर कोई बच्चा किसी दूसरे बच्चे का खिलौना देखकर रोता है तो आप उसे डाटते हैं—अरे क्यों रोता है, वह तो दूसरेका खिलौना है, मगर आप भी तो इन दूसरों के खिलौनों से देखकर, उनकी तृष्णा करके दुःखी हो रहे हो ! जितने भी पर द्रव्य हैं वे दूसरे खिलौने ही तो हैं, वे तुम्हारे कुछ लगते तो नहीं । और नहीं तो इतना तो लोग कह ही देते हैं कि क्या यह तुम्हारे बापकी चीज है ? यह पुद्गल, यह धन, यह पैसा, यह तुम्हारे बापकी चीज है क्या ? वहां क्यों नहीं दृष्टि लगाते । तो जो बात जैसी नहीं है उसे वैसी न जानकर विपरीत करे और विपरीत चेष्टायें करें तो उसे ऊधम कहते हैं । सहारनपुर की एक घटना है । एक बजाजका लड़का था तो उसका घर जम्बू प्रसादकी हवेलीके सामने था । वह मोहियोंके बड़े रईस हुए हैं । सुनते हैं कि जमींदारी के जमानेमें उनके पास ७०० गांव थे तो बजाज लड़का एक बार किसी हाथी को देखकर अपने पिता से मचल गया कि पिता जी हमें हाथी खरीद दो । तो हाथी खरीदना तो उनके लिए कठिन था खरीदे भी कोई तो पर उसका इन्तजाम कौन करें ? सो उस लड़के के पिताने महावतसे कहकर अपने द्वार पर हाथी खड़ा करवा दिया और कहा—लो बेटे तुम्हारे लिए हाथी खरीद दिया । फिर भी वह

बालक रोने लगा। पिता ने फिर पूछा—अरे बेटे अब क्यों रोता है? अब तो हाथी खरीद दिया? तो वह लड़का बोला—इस हाथीको मेरी जेबमें धर दो। अब भला बतलाओ यह काम कौन करे? तो जैसे वह बच्चेकी हठ है जो काम कभी हो नहीं सकता चिकाल सम्भव नहीं और उसकी हठ करे तो ऐसी हठ में रो रहा है तो उसका रोना कैसे मिटे? तो इसी तरह जानें कि ये सब प्राणी अनहोनी हठकर रहे हैं। यह दूकान ऐसी ही बन जाय। और वह तुम्हारी चीज है क्या? तुम्हारे आत्माकी चीज है क्या? तुम्हारे आत्माकी परिणति है क्या? यह काम ऐसा ही बन जाय, यह काम ऐसा ही होना चाहिए, ऐसी हठकर रहा यह बच्चा ही तो है। तो इस हठ में कभी भी सुख नहीं पाया जा सकता। हठ छोड़ना पड़ेगा, मिथ्यात्व हटाना पड़ेगा, सम्यक्त्वका संगम करना पड़ेगा यदि यह श्रद्धा नहीं है कि जो कुछ जड़ वैभव हमें मिला है लाख दो लाखका ये सब कुछ महत्त्व नहीं रखते और मेरे आत्माका ज्ञान, श्रद्धान, तत्त्वा यास, व रत्नत्रय बने वह ही महत्त्वकी चीज है। यदि ऐसी श्रद्धा हो तो वह धर्मको पल रहा है। हम छोड़ने की बात नहीं कह रहे, काम सब करते रहो मगर जो सच्ची बात हो उसमें श्रद्धा बना लो और झूठ हो तो हमें समझाओ सच है ना। जितने भी बाह्य समागम हैं वे सब भिन्न हैं, मेरे लिए असार हैं, ऐसा श्रद्धान बनाओ और अपने ज्ञानमें लगे। तत्त्व—चिन्तनके काममें लगे। सम्यक्त्व पालो।

सभी सम्यग्दर्शनोंकी अधिगम्यता ही होनेसे निसर्गज सम्यक्त्वकी असंभवताकी शंका—सम्यक्त्वका वर्णन इस सूत्रमें चल रहा है। वह सम्यक्त्व पैदा कैसे होता है? तो कोई तो निसर्ग से और कोई अधिगमसे उत्पन्न होता है। इस विषयमें कुछ गत दिवस ऊहापोह किया गया है। पहले उस निसर्गका अर्थ क्या और अधिगम का अर्थ क्या? इसका अब भले प्रकार समझ लेना चाहिये। कुछ यहां कोई शंकाकार-शंका रख सकता है कि हमें तो ऐसा मालूम होता है कि जितने भी सम्यक्त्व हैं वे सब अधिगमज हैं सायने उपदेश से उत्पन्न होने वाले हैं। निसर्गज नहीं है कोई सम्यग्दर्शन अधिगमके बिना उत्पन्न हो ऐसा कोई सम्यग्दर्शन नहीं। देखो जिसे भी सम्यग्दर्शन होता है तो इतनी बात देखी जाती है कि वह ज्ञान से जाने हुए पदार्थमें ही तो विश्वास करता है, ज्ञानमात्र से अधिगत पदार्थमें उसके सम्यग्दर्शनकी प्रवृत्ति होती है। सम्यग्दर्शन वहीं होता है जहां सामान्यज्ञानसे कुछ जाना गया, हो। और, सामान्यज्ञान से कुछ जाना गया हो तो तब कि सामान्यज्ञान से जाना गया तो यह ही तो एक उपदेश हुआ। बाचकर जाना गया, उपदेश सुनकर जाना गया या कुछ भी घटनायें सुनकर जाना गया, इसीको उपदेश कहते हैं। देखिये कहते हैं ना कि कोई

आदमी बोले भी नहीं और शान्ति से है। साधु संत बहुत शान्ति से विराजे हों तो उन्हें देखकर लोग कहते हैं कि इनकी सकल उपदेश दे रही है, इनकी मुद्रा उपदेश देती है। तो उपदेश मुद्रा से भी होता है स्वाध्याय से भी होता है और शब्द सुनने से भी मिलता है। किसी भी प्रकार उसे आत्माके बारे में ज्ञान जगे। ज्ञानसामान्य हो तब तो उसमें सम्यग्दर्शन की प्रवृत्ति होती है। इसलिए यह सिद्ध है कि सम्यग्दर्शन सभी अधिगमज होते हैं।

निसर्गज सम्यक्त्व न होनेकी शंकाका समाधान—उक्त शंकाके समाधानमें सोचें कि अधिगमजका अर्थ क्या है और निसर्गज का अर्थ क्या है। अधिगमजका अर्थ है परके उपदेशकी अपेक्षा रखकर तत्त्वज्ञान हुआ है उसे कहते हैं अधिगम उस अधिगम से जो सम्यक्त्व होता है उसे कहते हैं अधिगमज। दूसरेका उपदेश सुनकर जो तत्त्वज्ञान हुआ उस तत्त्वज्ञानसे जो सम्यक्त्व हुआ उसे अधिगमज कहते हैं। यह बात सुनकर शंकाकार बोला कि तब तो और बड़ी कठिनाई हो गई। इसमें तो इतरेत राक्षस दोष हो गया। कैसे कि आप कह रहे हो कि परोपदेशापेक्ष, तत्त्वज्ञान से सम्यग्दर्शन होता है। तो यहाँ दो बातें रखीं तत्त्वज्ञानसे सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्दर्शसे तत्त्वज्ञान उपदेशापेक्ष तत्त्वज्ञान से सम्यग्दर्शन होता है। अब यहाँ यह समझिये कि जब सम्यग्दर्शन होवे तब बने तत्त्वज्ञान और जब तत्त्वज्ञान होवे तब बने सम्यग्दर्शन, इसे कहते हैं इतरेतराश्रय दोष। जैसे बिना तालीके कोई ताला लग जाता है, अब ताली तो घर दी सन्दूकमें और ताला लगा दिया तो अब समस्या सामने आ गई ना। चाभी निकले तो ताला खुले और ताला खुले तो चाभी निकले। ऐसे ही यहाँ समस्या आयेगी कि जब वह तत्त्वज्ञान हो तो सम्यक्त्व हो और जब सम्यक्त्व हो तब तत्त्वज्ञान हो। इसमें तो इतरेतराश्रय दोष हो जाता है। इसका समाधान करने के लिए कोई अगर ऐसा कहे कि यह तो परोपदेश देने वाले ज्ञानकी अपेक्षा बात कह रहें कि उपदेश देने वाले को तो ज्ञान है तत्त्वज्ञानका और उससे फिर इसको सम्यक्त्व हुआ, तो यह उसका समाधान कोई सिद्ध नहीं, क्योंकि तत्त्वज्ञान तो इसे होना है इस ही एककी बात करिये। अथवा यह समाधान कि जो उपदेश देने वाला है उसका ज्ञान परके उपदेश से होता है। तो यह भी निश्चय नहीं है कि उपदेश देने वाले का ज्ञान परोपदेशसे होता है, संभव है निसर्गज होता हो, अपने आप होता हो, स्वयं संचित होता हो उनका ज्ञान तो परोपदेशकी अपेक्षा वह नहीं रखता हो अतः यह भी सही उत्तर न जामेगा। तब फिर क्या? उत्तर यह है कि जो पहिले बताया था कि सम्यक्त्व होने से पहिले जो तत्त्वज्ञान है वह तत्त्वज्ञान अनुभव रहित होनेसे तो मिथ्या और चूँकि वैसी ही ज्ञान किया जैसा ज्ञान सम्यक्त्व होनेपर पर हो गया उस अपेक्षासे वह सम्यक् है। ऐसे इस तत्त्वज्ञानसे परोपदेशसे ^{परोपदेश} अधिगमज

सम्यग्दर्शन होता है । तो सम्यग्दर्शनका हम आप उपाय करें, और शास्त्राभ्यास करें, दूसरेके मुखसे उपदेश सुनें । सम्यक्त्वका कारण तो यह ही है पुरुषार्थ इस बातपर मत रहें कि जब जो होना होगा हो जायगा । ऐसा भी हो सकता जिससे यह नहीं हो सकता उसका ऐसा भाव बने वैसे । पौरुष करें । वह पौरुष है, ज्ञानमय पौरुष । अपने ज्ञानसे अपने आत्माके सहज ज्ञानस्वरूपका बोध बनावें और निर्णय बनावें कि मैं हूँ, यह मैं हूँ ।

सम्यग्दर्शनकी अधिगमजताके विषय शंकाका निवारण—मोक्षमार्गका प्रारम्भ सम्यग्दर्शन होनेपर होता है । जहां जाना है, जहां रमना है उसका ही श्रद्धान न हो. उस धामका ही पता न हो तो रास्तेपर चला ही जायगा कैमे ! ही जायगा तो मुझे रमना है, आनन्द मग्न होना है आत्माके सहज धाममें जो कि आनन्दमय हैं, विशुद्ध ज्ञान स्वरूप है । और जिन कारणोंसे हम अपने में मग्न नहीं हो पाते थे उन कारणोंसे छूटकारा पाना है, तो ऐसी बात तब ही तो हो सकेगी जब हमें उस रम्य स्थानका परिचय हो । तो सर्व-प्रथम मोक्षार्थी जीवको यह आवश्यक हो गया कि वह सम्यक्त्व प्राप्त करे । वह सम्यक्त्व प्राप्त करे वह सम्यक्त्व कैसे प्राप्त होता है ! तो उसके बाह्य साधन कों बताया जा रहा है कि वह निसर्ग और अधिगमसे होता है । अधिगम से होता है इस सम्बन्धमें चर्चा चल रही है ईश्वर के ऊपदेशसे होता है, इस चर्चा में अब तक यह कहा गया कि अधिगम सम्यग्दर्शन इस विधिसे होना है कि परका उपादेश मिले और उससे तत्त्वार्थका ज्ञान जगे तब सम्यग्दर्शन होता है अर्थात् परोपदेशाये तत्त्वार्थज्ञानका नाम है अधिगम और उस अधिगमसे जो सम्यग्दर्शन हो उसे कहते हैं अधिगमज इस अधिगम के विषयमें शंका की गई थी इसका निष्कर्ष यह निकला कि जो प्रतिपाद्य है शिष्य है जिसे सम्यक्त्वलाभ हुआ है उसे परोपदेशापेक्ष तत्त्वार्थज्ञान हो तो वह सम्यग्दर्शनका जनक है । अब एक समस्या और रखी जा रही है कि परोपदेशापेक्ष तत्त्वज्ञानसे सम्यग्दर्शन होना मानने पर इतरेतराश्रय दोष दिया था ना तो उसका निवारण भी हो और उसकी आशंका आ जाय इस तरह एक समस्या रखी जा रही है कि परोपदेशसे प्रतिपाद्य शिष्यको तत्त्वार्थज्ञान होता है, तत्त्वार्थज्ञान होते ही सम्यग्दर्शन हो जाता है । यों सम्यग्दर्शन और यह परोपदेशाये तत्त्वज्ञान दोनों ही साथ होते हैं । उसे इतरेतराश्रय दोषकी गुंजाइस नहीं रहती है । इतरेतराश्रय दोष क्या था कि जब उपदेशापेक्ष तत्त्वज्ञान हो तो सम्यग्दर्शन हो वहाँ भिन्न समय मान लिया जाय भिन्न-भिन्न बात मान लिया जाय तब ही तो इतरेतराश्रय है लेकिन समय इसका एक ही है । जिस समय उपदेशापेक्ष तत्त्वज्ञान होता है उस ही समय सम्यग्दर्शन होता है । इस तरह की एक समस्या रखने वाले

शब्दमर्म को नहीं जानते। क्योंकि कारण यह है कि सम्यग्दर्शन का जनक परोपदेश है। वह परोपदेश जो कि तत्त्वार्थ ज्ञान का साधन है वह तत्त्वार्थ ज्ञान पहिले होता है और उसके बाद से सम्यग्दर्शन होता है। तब ही तो वह जनक कहा जायेगा कि परके उपदेश को सुनकर तत्त्वविषयक ज्ञान हुआ। उस ज्ञान से फिर सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति हुई। अतः यह मानना होगा कि शिष्य को ही तत्त्वार्थ का ज्ञान जगे। परोपदेशापेक्षा से, और उसे ही सम्यक्त्व हो तो वह है अधिगमज सम्यग्दर्शन। एक बात सब जगह सामने रख रहना कि सम्यग्दर्शन होने के समय जो ज्ञान होता है उसका नाम तो सम्यग्ज्ञान है और सम्यग्दर्शन होने के अनन्तर पूर्व जो तत्त्वज्ञान होता है उसे न सम्यक् कहते न मिथ्य कहते, किन्तु अनुभवरहित ज्ञान है इस कारण मिथ्या कहते और अनुभवसहित ज्ञान हो जाने पर फिर सम्यक्त्व के साथ होने वाले ज्ञान को सम्यग्ज्ञान कहते हैं। वैसे वह तत्त्वज्ञान मिथ्या नहीं हैं। जैसा सम्यक्त्व होने पर ज्ञान जगेगा वैसे ही ज्ञान अब बन रहा है लेकिन जैसे एक तो सुनी सुनाई बात कहना और एक आंखों देखी वही बात हो जाना। तो बात वही जाना पहिले भी अब भी, लेकिन पहिले जाना सुने सुनाये ढंग से वह अनुभवरहित है। अब यह हो गया स्वसम्वेदन प्रत्यक्ष। तो इस तरह अधिगमज सम्यग्दर्शन परोपदेशापेक्ष तत्त्वज्ञान से उत्पन्न होता है।

स्वकारणजन्यता होने पर भी विधि की अनपक्षर की अनुपेक्ष्यता—अब यही एक जिज्ञासु अपनी बात रख रहा है कि देखिये—पर के उपदेश से हुआ तत्त्वार्थक ज्ञान। वह भी अपने कारण से ही हुआ। जैसे कि निसर्गज सम्यग्दर्शन में जो तत्त्वार्थज्ञान होता है वह अपने कारण से होता है यानि ज्ञानावरण का क्षयोपशम हो, बुद्धि विवेक वैसे बने तो ज्ञान जगता ना, निसर्गज सम्यग्दर्शन से पहिले, तो इसी तरह अधिगमज सम्यग्दर्शन पहिले भी जो तत्त्व ज्ञान है वह भी अपने कारण से ही उत्पन्न होता है। फिर वहां इतरेतराश्रय दोष नहीं कह सकते तत्त्वार्थज्ञान अपने कारण से हुआ, सम्यग्दर्शन अपने कारण से हुआ। वहां यह दोष नहीं लगता कि तत्त्वार्थज्ञान हो तो सम्यग्दर्शन हो। सम्यक्, यह तो है मगर सम्यग्दर्शन हो तो तत्त्वार्थज्ञान है, ऐसा वहां आश्रय नहीं है, क्योंकि? ज्ञान का कारण है अपना क्षयोपशम, अपनी ही योग्यता सो कारण निसर्ग में है, सो अधिगम में है तब तो इतरेतराश्रय न आयेगा। एक बात जिज्ञासुओं ने रखी तो यह सिद्धान्त भी यह ही मानता है कि जो भी ज्ञान जगा जिस ज्ञान के बाद सम्यग्दर्शन होगा वह ज्ञान अपने कारण से जगा। क्या कारण थे उसके। ज्ञानावरण का क्षयोपशम था, उस प्रकार का ज्ञान जगा, ऐसा ही उपयोग बना, सो यह ही बात उपदेश पाने पर भी ज्ञान जगने में होती है, और यह ही बात उपदेश न पाने पर भी ज्ञान जगने में होती है। तो ठीक है मगर वह परो पदे शापेक्ष तत्त्वज्ञान हुआ, उससे तो

हुआ अधिगमज सम्यग्दर्शन । और जो उपदेश बिना नाना कारणों से सम्यक्त्व जगे उसे कहते हैं निसर्गज सम्यग्दर्शन । देखो सम्यग्दर्शन क्या चीज है ? सम्यक्माय ने सच्चा दर्शनमायने देख लेना । सहीस्वरूप देख लेना । सही स्वरूप किसे कहते हैं ? जैसे दर्पणके आगे हाथ कर दिया और उसमें हाथ की छाया आ गई तो क्या दर्पण का सही स्वरूप है ? नहीं, क्योंकि वह अपने आप होने वाला स्वरूप नहीं है । वह परापेक्ष स्वरूप हो गया अर्थात् नैमित्तिक बात हों गई । वह सही स्वरूप नहीं है । इसी प्रकार आत्मा में जो विषयकषाय है, विचार विकल्प है, ये क्या आत्मा के सही स्वरूप हैं ? नहीं, ये भी नैमित्तिक हैं । पुद्गल कर्म का उदय क्षयोपशम आदि का निमित्त पाकर होते हैं ।

आत्मस्वरूप का दिग्दर्शन—

विभाव परभाव है तब आत्मा का सही स्वरूप क्या है ? तो मानो, सोचो कि आत्मा जब सत् है तो अपने आप सत् है । किसी दूसरे की दया परअस्तित्व किसी का नहीं होता जिसका अस्तित्व है उसका अपने आप स्वयं सहज हुआ करता है । तो जो अस्तित्व हुआ है आत्माका वह किसी अन्य वस्तु के कारण नहीं हुआ । है सत् ! अपने आप है, अकेला है, तो ऐसा ही वह अकेला सत् कैसा होता है इस बात पर दृष्टि दीजिए । जहां शरीर न हो, कर्म न हो, कषाय न जगे, विषय विकल्प न जगे । यह पर व परभाव का सम्बंध न रहे तो अपने आप यह जीव किस स्वभाव में है, ऐसा ध्यान में लाइये । और, उस स्वभाव रूप से अपने आपका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है । देखो भैया सब लोग अपने आपके बारे में कुछ न कुछ ख्याल निरन्तर बनाये हुए है मैं हूँ जो गुजर रहा है भीतर उस पर और अपने आपके बारे में क्या है, इस प्रकार का ख्याल अवश्य बना हुआ रहता है मैं हूँ, व्यापारी हूँ, बैंक वाला हूँ, जायदाद वाला हूँ, फर्म वाला हूँ, सर्विस वाला हूँ, अथवा मैं धर्म का प्रबन्ध करने वाला हूँ, विद्वान हूँ, मूर्ख हूँ, कुछ न कुछ यह अपने को हूँ के साथ एक बात और लगाये रहता है । हूँ तो सब तो सब मानते हैं, पर हूँ के साथ एक चीज और लगी रहती है । बस हूँ के साथ जो एक बात और लग रही है वह क्या हूँ, वह इस पर ही सम्यक्त्व और मिथ्यात्व की बात का फैसला है । मैं क्या हूँ ? मैं एक सहज स्वच्छ ज्ञानमात्र हूँ, यह तो सम्यक्त्व की दिशा और उसे छोड़कर बाकी और कुछ मान कर है । मैं गृहस्थ हूँ, मैं मुनि हूँ, मैं साधु हूँ, मैं इनका गुरु हूँ, नेता हूँ, मैं इनको समझाने वाला हूँ, मैं समझने वाला हूँ, कुछ भी ऐसी बात लगावे कोई तो समझिये यह सब मिथ्यात्व हो गया । तो जहां अनादि अनन्त अहतुक सहज ज्ञान स्वभावस्वरूप में आत्मश्रद्धा है वहां सम्यक्त्व है । ऐसी श्रद्धा हुए बिना शान्ति न मिलेगी । मुक्ति का मार्ग न मिलेगा । यह सब खटपट बनी रहा करेगी । वह श्रद्धा लावे । तो ऐसे इस सम्यग्दर्शन की यहां चर्चा चल रही है ।

स्वकाल में स्वकार्य होने पर भी सहेतुकला की अप्राप्तिषिध्यता:—अब यहां एक जिज्ञासु अपनी एक बात और रख रहा है कि सम्यग्दर्शन के जो दो भेद किए गए- निसर्गज और अधिगमज ये दो भेद इष्ट नहीं हैं। मैं तो ऐसा समझता हूँ कि सभी सम्यग्दर्शन नैसर्गिक ही हैं, स्वाभाविक ही हैं, क्योंकि उनकी अनेक समय में उन्नति होती है। लोग कहते हैं कि जिस समय जो होना है उस समय वह होता है। तो फिर जिस समय जो होना है उस समय वह होगा ही, उसमें कारण की क्या बात है? नैसर्गिक हो गया। जब अपने कालमें स्वयं उत्पत्ति हुई तो वह सम्यक्त्व नैसर्गिक है। जैसे मोक्ष के बारे में भी तो कहते हैं लोग कि जिस समय में मोक्ष होना है उस समय मोक्ष होगा न ज्यादा समय में होगा न कम समय में होगा। जब होना है तब होगा। ऐसी ही सम्यक्त्व की बात है। अपने काल में उत्पन्न हुआ तो वह नैसर्गिक ही रहा। अधिगम कैसे हुआ! शंका एक रखी गयी है कि जिसके बारे में लोग ऐसे भ्रम वाले अब तक भी हैं पहिले भी थे और अब भी हैं, जब जो होना है सो होगा। उसमें कारण की कोई जरूरत नहीं। देखिये ऐसी शंका करने वालों ने इसका रहस्य नहीं समझा ऐसी बात बोललें, कुछ हर्ज नहीं। जिस काल में जो होना है सो होता है, जब मोक्ष होना है तब होता, जब सम्यक्त्व होना है तब होगा ऐसा बोलले। बोलने में कुछ हर्ज नहीं मगर मर्म तो समझें। कही वह काल की वजह से नहीं हो गया किन्तु ऐसा उस कालमें ऐसा साधन जुटना हुआ ऐसा निमित्त हुआ ऐसा पुरुषार्थ हुआ तो उस प्रक्रिया पूर्वक हुआ है वह। जिस काल में जो होना है उस काल की बात कहते हैं यहां काल विवक्षा करके बात न सोचना नहीं तो सिद्धान्त विरुद्ध बात हो जायगी। जिस काल में ऐसा हुआ बस उस काल की बात कह देते। जैसे कहते हैं ना, कलयुग पंचमकाल। यह काल नाम का द्रव्य है जो लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में एक-एक ठहरा हुआ है। और उस काल द्रव्य की प्रति समय में नई-नई परिणति होती है। तो क्या उस समय में भी ऐसी विशेषता आ गयी कि कलयुगमें या पंचम काल में लोग ऐसे गिरे भावोंके बनेंगे? नहीं। कालकी वजह से नहीं, किन्तु एक ऐसा प्रवाह है कि जिस समय ऐसा संस्थान संहननहीन संधनन हीन काय, हीन चित्त आदि सब साधन मिलने हैं उस कालमें ऐसी बात होती है। तो काल तो एक उद्भासीन कारण है। कालमें कालकी वजह से पदार्थोंका परिणमन हुआ ऐसी बात नहीं, किन्तु सभी पदार्थ जिस विधिसे होना होते हैं उस विधि से होते हैं। गुरुजी सुनाते थे एक वेदान्त कथा की बात की कोई एक राजा था, उसके कोई लड़का न होता था तो राजा एक साधुके पास पहुंचा और कहा महाराज मेरे कोई बालक नहीं, कृपा करके एक पुत्रका आशीर्वाद दे दीजिए। तो साधु ने कहा-तथास्तु, ऐसा हो जायगा। तो राजा बड़ा खुश होकर

अपने महल आया । अपनी रानियोंसे सारा समाचार कह सुनाया । सभी रानियां वह समाचार सुनकर बहुत प्रसन्न हुई । अब राजाने रानियोंसे कहा कि अब तो आर्शीवाद मिल ही चुका, संतान तो होगी ही, इसलिए अब अपन लोग ब्रह्मचर्य से रहें । अब वे ब्रह्मचर्य से रहने लगे । जब काफी दिनों तक कोई संतान न हुई तो उसने किसी ते पूछा कि भाई हमें तो साधु से आर्शीवाद मिल चुका है पर अभी तक संतान क्यों नहीं हो रहा ! तो वहां बताया गया कि देखिये जो काम जिस विधिसे होना है वह उस विधिसे होता है । संतान आदिक होने के कारण हैं उपद्रव, करे । संतान होगी तुम बन गए उपद्रवरहित, वह तो मुक्ति का मार्ग है, फिर कैसे संतान की प्राप्ति हो ? तो जो काम जिस विधिसे होना है वह उसी विधिसे होगा । लोग तो उस कालका का नाम लगाते हैं । लेकिन बात तो कारण कलापपूर्वक होती है । हां, यह बात अवश्य है कि वस्तुकी स्वतंत्रता है ।

अपनी-अपनी परिणतिमें पदार्थोंकी स्वतंत्रता—निमित्त अपना असर प्रभाव कुछ भी उस उपादान में नहीं डालता है । निमित्त और उपादान दोनों स्वतंत्र हैं अपनी अपनी परिणति में; मगर योग उनका हो, वो वैसा परिणमन है । जैसे कोई देहाती आदमी कभी कचेहरी नहीं गया, उसे कभी जाना पड़ा तो वह जजको हौवा जैसा समझता है, डर तो पहिलेसे हीं बैठा था सोचता था, वहां भगवान सा कोई बैठता है अनेक कल्पना ये थी उसके सामने जानेमें वह कांपता है । कहो डरके मारे वह मूत्र भी करदे तो बताओ उस देहाती पुरुषपर जजने कोई प्रभाव डाला क्या ? अरे वह तो जैसा बैठा है सो बैठा है । वह पुरुष स्वयं अपने में कल्पनायें करके अपने आपमें सोच विचार करके अपने आपमें प्रभाव बनाता है । और उस प्रभावके समय में विषय वह जज हुआ । इसलिए जजका नाम हुआ, आरोप हुआ, मात्र, अन्यका देखो तो इतने वकील वगैरह जाते हैं उनके कुछ नहीं होता है । तो यह सब अपनी अपनी बात है अपनी अपनी योग्यता की बात हैं । जब जैसी योग्यता है, जैसा ढंग है उस योग्यता से वह अपनेमें प्रभाव लाता है । सो देखो यहां आश्रयभूत निमित्त वह रहा ना । तो इसी तरह से सर्वत्र यह ही बात समझ लो कि निमित्त पाकर विकार होता है पर निमित्त विकारमें कुछ डालता नहीं । ऐसा ही सहज योग है कि जिस समय योग्य उपादान अनुकूल निमित्तका सन्निधान पाये तो वह इस प्रकार का विकृत बन जाय । ऐसा ही सहज योग चल रहा है । व्यवस्था हे ऐसी, तब ही सारे काम चल रहे हैं । तुम्हें चाहिए मोक्षमार्ग वह मिलता है स्वभाव दृष्टि से । तो स्वभाव दृष्टि की अभिलाषा रखने वाले से निमित्ताधीन दृष्टि न रहना चाहिए । ऐसा उपयोग बनावें कि वेवल आत्मा राम ही दृष्टिमें रहे । यह है उसका पुरुषार्थ । मोक्षमार्ग में बढ़नेकी चीज, किन्तु यह कह

बैठे कि विकार हुआ तो अपने स्वभावसे हुआ, बिना कारण के हुआ, अपने कालमें हुआ। तो यह ऐसी सुविधा रखने वाले पुरुषने विकार को अपने गांठकी चीज मान ली। तो वह कैसे निवृत्त हो सकेगा? तो यथार्थ तत्त्वज्ञानमें सब दिशाएँ मिलती हैं। स्वभावदर्शन की सब विधियाँ प्राप्त होती हैं। तो सम्यग्दर्शन जिस कालमें होना था हुआ, पर उस काल की वजहसे नहीं हुआ। जानियोने समझ लिया, जान लिया इस वजहसे नहीं हुआ। वह सब अपने कारणकलापसे हुआ।

उदाहरणपूर्वक भवितव्यके कारणकलाप संभवत्वकी सिद्धि—नेमिनाथ स्वामी के समवशरणमें जब यह बात प्रकट हुई कि यह द्वारिकापुरी १२ वर्ष में जल जायगी तो इसके जलनेका निमित्त बनेगा यह द्वीपायन, सब कुछ बता दिया, तो सबने किसीने दीक्षा ले ली, कोई विरक्त हो गए, कोई घर द्वार छोड़ कर चले गए। जिसका जैसा उपादान था उसने वैसी चेष्टा की। द्वीपायनने जब यह जाना कि मेरे कारण यह नगरी जलेगी तो वह मुनि हो गए और उस नगरी को छोड़कर जंगल चले गए। सोचा कि जब में निमित्त हीन बनूँगा तो फिर नगरी कैसे जलेगी? देखिये वे किसी साल में १२ महीना होते हैं तो किसी सालमें १३ महीने भी तो हो जाते हैं। १२ वर्ष बीत चुकनेपर द्वीपायनने सोचा कि अब तो १२ वर्षका समय व्यतीत हो गया, अब मुझे अपनी नगरी लौट जाना चाहिए। सो द्वीपायन १२ वर्ष बाद उस नगरीमें आये। महीनोके घट बढ़ होनेसे उन्हें समयका सही ख्याल न रहा, इस कारण हुआ क्या कि जब वह नगरीमें आये तो वह १२ वें वर्षका अन्तिम महीना था। वहां रहने वाले लोगों ने किया क्या था कि उस नगरीका ऐसा प्रबंध कर लिया था कि शराब जैसी नशीली बेहोशी ला देने वाली चीजोंको नगरीसे बाहर फिकवा दिया था। यह सोचकर कि कहीं ऐसा न हो कि नशीली चीजोंका सेवन करनेसे बेहोशी हालत में कोई अग्नि फेंक दे तो जब वहां द्वीपायन मुनि पहुंचे तो लोग दर्शनार्थ गये। कुछ लोगोंने फिके शराब के गड्डेका पानी पिया, इन लोगों को मुनि पर बड़ा क्रोध आया। सोचा कि देखो इसी के कारण नगरी जलना बताया था और यह आ पहुंचा। बेहोश लोगोसे उनपर इतना क्रोध उमड़ा कि उनपर ढेला पत्थर आदि बरसाना शुरू कर दिया उन मुनिराज को तपस्या के कारण तैजसवृद्धि प्रकट हो गई थी। तो तैजसवृद्धिमें होता क्या है कि अगर वह प्रसन्न हो जावे तो उनके दाहिने कन्धे से एक पुतला निकलता है कि उसके आसपास चारों ओर बहुत दूर दूर तक दुर्भिक्ष मिट जाता है, सब लोग आनन्दमें आ जाते हैं, और अगर नाराज हों गए तो बायें हाथसे ऐसा तैजस निकलता है कि उनके चारों ओर आसपास के लोग भष्म हो जाते हैं। तो वही हुआ

क्या कि द्वोपायन मुनिको उस समय ऐसा क्रोध उमड़ा कि उनके बायें कन्धेसे तेज निकला उस समय वे सम्यग्दृष्टि नहीं रहे तब उससे सारी द्वारिका नगरी भष्म हो गई। देखो उसकाल में यह सब हुआ, पर कही उस कालकी वजह से ऐसा नहीं हुआ। वह हुआ कारणकलाप से। जिस साधन से जो बात होती है उस साधनसे वैसी बात होगी। कालकी नहीं होती किन्तु कारणकलापसे होती है। ऐसे ही समझिये कि मोक्ष जिस कालमें होता है, मोक्ष जिस कालमें होना था हुआ, मगर उसका अर्थ यह नहीं है कि बिना विधिके हो गया। और, सम्यग्दर्शनके बारेमें तो यह निश्चित ही है कि ज्ञानमात्रसे भी अगर कुछ जाना नहीं गया उस सामान्यज्ञान ज्ञानसे जिसे न हम मिथ्या कहते न सामान्य कहते उसे सामान्य ज्ञानसे कुछ समझा नहीं गया आत्मतत्त्व श्रद्धान भी कैसे बनेगा ? यहां कोई इस तरह बात रख सकता कि जैसे अन्य लोगों में यह बात प्रसिद्ध है कि भाई शूद्रोंको बेदके अध्ययनका अधिकार नहीं, ऐसा होने पर भी, उसने अध्ययन नहीं किया फिर भी बेदके प्रति भक्ति तो देखी जाती है नम्रता है विनय करता है। तो देखो उसकी भक्ति निसर्गज हो गई कि नहीं ? इसीतरह से कुछ जाना भी नहीं, उपदेश भी नहीं सुना तो भी सम्यग्दर्शन हो जाना चाहिये। तो यहां बताया गया था। कि शूद्र से भी जो बेदकी भक्ति हुई वह बिना जाने नहीं हुई। सुना तो है दूसरों से अपने कुलवालोंसे सुनता है तो उससे उसे ज्ञान हुआ। जितना ज्ञान हुआ उसके माफिक भक्ति हुई। किसी विषयका ज्ञान जरा भी न हो, भक्ति हो, श्रद्धान हो, विश्वास हो तो ऐसा कैसे हो सकता है। इसलिए ऐसा कहना कि सारे सम्यग्दर्शन निसर्गज हीते हैं सो बात ठीक नहीं। और निसर्गज में भी अन्य कारण तो हैं। इससे यह समझना कि सम्यक्त्व होता है निसर्ग में भी और अधिगमसे भी

प्रत्येक अपूर्व दशावोंकी कारणकलापसंभवता—जो शंकाकारने यह बात रखी थी कि अपने आप होता है सम्यग्दर्शन तो उनका कहना ठीक यों नहीं कि स्वाभाविकपना साधन दर्शनका नहीं है। कैसे ? तत्त्वज्ञान हो, उसके उपायमें लगे, अभ्यासमें लगे, उसका ध्यान करें, चिन्तन करें, ये सब बातें करते हैं तब ही तो वह ज्ञान हुआ। तब ही तो वह सम्यग्दर्शन होता है। तो सम्यग्दर्शन निसर्गज नहीं है, अपने आप नहीं है कि अपने आप ही वह निकल गया। जैसे कहते हैं ना भेंया भाड़में चने भुनते हैं तो कोई चने ऊपर उछल जाते हैं। अब कोई कहे कि अपने आप वे चने निकल गए तो वे भी अपने आप नहीं निकले। किसीसे सिका, किसी से चोट लगी, उसे मौका मिला तो वह उचट गया। तो क्या वह बिना कारण के उचका ! नहीं। बिना कारणके कोई बात नहीं होती। स्वतंत्रता

की यह बात समझना है कि वस्तुका परिणमन अपने आपकी परिणतिसे होता है, अन्यकी परिणतिसे नहीं, यह है स्वतंत्रताका सिद्धान्त । मगर जो बात जिस विधिसे है वह उससे होती है । तो यह जो कहते हैं कि मोक्ष जिसका जब होना है होता है, उसका उन्होंने अर्थ नहीं समझा । अर्थ उसका यह है कि भले ही कोई संख्यात कालमें मोक्ष जायगा कोई असंख्यात कालमें जायगा, कोई अनन्त काल में जायगा, कोई अनन्तानन्त कालमें भी न जायगा ऐसा काल बताया है मगर उसका अर्थ यह है कि किसीके तो संख्यात कालमें ऐसेकारणकलाप जुटेगें कि उसका तत्त्वज्ञानपूर्वक, पौरुष सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र्यपूर्वक मोक्ष हो जायगा । ऐसा नहीं है कि निरुपाय मोक्ष हो जायगा । बात यह ही आयगी सबमें, पर उस कालमें होनेका है इसलिए ऐसा कह दिया । सम्यग्दर्शनके कारण हैं क्या ? अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति इन ७ प्रकृतियोंका क्षय हो तो सम्यक्त्व हो, उपशम हो तो सम्यक्त्व हो और साथमें छह का उदयाभावी क्षय और उपशम हो और एक सम्यक्त्वप्रकृतिका उदय हो तो क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है । कारण तो है, स्वकालमें हुआ, ठीक है, यों तो हर एक बात है कि जिस कालमें जो होता है, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि वह अपने आप ही होता है अपनी परिणतिसे होता चला जाता, इसमें कुछ सन्देह नहीं । किसी परकी परिणतिसे नहीं होता, मगर जो परिणति जिस साधनका निमित्त पाकर होती है वैसी ही होती है । तो युक्तिसे भी विचारों । सम्यक्त्वके मायने क्या ? विपरीत अभिप्राय का विनाश हो जाना । विपरीत अभिप्राय जब तक जीवोंके लगा है तब तक उसका नाम है मिथ्यात्व । विपरीत अभिप्राय क्या लगा ? जैसे शरीरको मानना कि यह मैं आत्मा हूँ, अपनी कषाय, इच्छा, विकारको मानना कि यह मैं आत्मा हूँ, यह ही है विपरीत अभिप्राय यह विपरीत अभिप्राय जब न रहे तो उसे कहते हैं सम्यग्दर्शन ।

सम्यक्त्वकी निषेध वचन गम्यता—भैया एक बात और समझलो दृष्टान्त में देखो भाई न तो किसी ने किसी का रोग देखा, न किसी ने किसी की स्वस्थता देखी । किसी ने किसी का रोग देखा है क्या ? अरे वह आंखों नहीं दिखता । हां फिर भी वह समझ में आता है । छूने से भी समझ में आ जाता । जैसे बुखार है तो उसे नाड़ी देखकर भट समझ लिया जाता । ऐसे ही क्या निरोगता के किसी ने दर्शन किया ? अरे जब रोग न रहा तो एक प्रकार की जो स्वच्छता है उसे कहते हैं स्वास्थ्य । थोड़ी देर को रोग का तो हम वगैर

कर सकते हैं। रोग की हम विशेषता सद्भावात्मक बना सकते हैं। सद्भावात्मक बुखार किसे कहते? जिसमें इतनी गर्मी हो। खांसी किसे कहते? जिसमें दूसरे को खाये जैसा लगे खांसी। जब कोई खांसता है तो ऐसा मुह हो जाता है कि मानों किसी को खाने को तैयार हो। अब आरोग्य का वर्णन करो। आरोग्य में क्या होता तो आरोग्य का वर्णन नकारात्मक तो कर सकेंगे पर सकारात्मक नहीं। देखो, जहाँ एक भी रोग न हो, खांसी भी नहीं, बुखार भी नहीं, पित्त कफ भी, विषमता भी नहीं, तो उसे कहते हैं अरोग। रोग का वर्णन करने के लिए आपके पास हजारों शब्द मिलेंगे आरोग्य के वर्णन को शब्द नहीं। वह आरोग्य एक ऐसी स्वच्छता है कि जहाँ एक भी रोग नहीं, इसी तरह मिथ्यात्व की बात वर्णन करने वाले शब्द आप अनेक बता सकेंगे। जो देह में ममता करें, विषय कषाय को अपना माने, यों बहुत बहुत बातें करते जावो। मगर सम्यक्त्व का वर्णन करने के लिए आप के पास क्या शब्द हैं? किसका नाम सम्यक्त्व? जरा बतलाओ तो सही। आप कहेंगे जहाँ आत्मतत्त्व की रुचि जगे वह सम्यक्त्व है। अरे रुचि की बात तो तुमने एक चरित्र की बात कही। हाँ जो जहाँ आत्मतत्त्व की प्रतीति बने सो सम्यग्दर्शन है। तो प्रतीति की बात तो तुमने सम्यग्दर्शन की कहदी। जरा बताओ तो सही, किसका नाम सम्यक्त्व है? अच्छा सुनो, जहाँ विपरित अभिप्राय न रहा, देह जीव को एक नहीं मान रहा, विषय कषायों को अपना आप नहीं मान रहा, विषय कषायों से जो निराला हो गया, इस प्रकार जो गुण है उसका नाम सम्यक्त्व है। कहते हैं कि हाँ अब आये ठिकाने। सम्यक्त्व का वर्णन विपरित अभिप्राय दूर करने की बात कहकर बता सकेंगे तब ही तो पुरुषार्थ सिद्धयुपाय में जहाँ लक्षण किया गया है वह इस तरह किया गया है कि विपरित अभिप्राय दूर होने का नाम तो सम्यग्दर्शन है। उसको तो व्यय, अभाव विनाश के रूप में बताया गया है। आत्मतत्त्वका ज्ञान आत्मतत्त्व में रमण यह तो प्रसिद्ध बात है, मगर विपरित अभिप्राय दूर होने का नाम सम्यक्त्व है।

सम्यक्त्व की उत्पत्ति की साधनपूर्वकता—विपरित अभिप्राय का जो विनाश है क्षय है, यह विपरित अभिप्राय का क्षय यों ही नहीं हो गया, वह कारणपूर्वक हुआ। प्रकृतियों का क्षय, क्षयोपशम, उपशम, ये निमित्त पा करके वहाँ हुआ है। तो तत्त्वार्थ श्रद्धान जो परोपदेशापेक्ष तत्त्वार्थ ज्ञान से उत्पन्न हुआ वह अधिगमज है और जो परोपदेश के बिना अन्य घटना पाकर हुआ हो वह नैसर्गिक है। चाहें नैसर्गिक सम्यक्त्व हो, चाहे अधिगमज सम्यग्दर्शन हो, दोनों ही इस निमित्त कारण पूर्वक होते हैं ७ प्रकृतियों का उपशम हो, क्षय हो, और क्षयोपशम हो। ऐसे इस सम्यक्त्व के प्रसंग में जो इसका वर्णन सुना उसको सुनकर हम अपने आपके भीतर एक ऐसी भावना रखें कि समय पर बारबार ऐसी दृष्टि आये, ऐसी

सुध हो कि मैं तो केवल ज्ञानमात्र हूँ। चैतन्यमात्र हूँ, प्रतिभास स्वरूप हूँ, बस प्रतिभास ही मेरा वैभव है, वही स्वरूप है, उसका ही मैं कर्ता हूँ, उसका ही मैं भोक्ता हूँ। अपने आपके प्रदेश में इस प्रक्रिया होने के अलावा बाहर में मैं रंच मात्र भी कुछ नहीं करता हूँ। ऐसी प्रतीति श्रद्धा सहित समय समय पर करें तो आपका ऐसा अमूल्य मानव जीवन सफल हो जायगा।

स्वभावद्रष्टा का सर्व जीवों में परमात्यत्वस्वभावका दर्शन—हम आप संसारी जीवों पर जो विपत्ति छापी है वह भ्रम और कषायों की विपत्ति है। भ्रम से ऐसा मानते हैं कि मेरे को कष्ट देने वाला कोई दूसरा प्राणी है। इस बेचारे को यह सुध नहीं है कि जीव जीव सब एक समान हैं। मूल जीव द्रव्य में किसी का किसी के साथ रंच भर भी अन्तर नहीं है, जहां यह स्थिति है कि मैं वह हूँ जो है भगवान, जो मैं हूँ, वह है भगवान, वहां यह बात भी नहीं मान सकते कि संसार में जितने प्राणों हैं वे सब जीव चैतन्य भाव से एक समान नहीं हैं। एक का दूसरे से रंच अन्तर नहीं है, लेकिन यहां व्यवहार में जो अन्तर दिख रहा है वह सब अज्ञान का प्रसाद है। अज्ञान के ही कारण यह बड़ा भारी अन्तर देखा जा रहा है। पहिले तो अपना ही अन्तर क्योंकि मैं हूँ एक शुद्ध चैतन्यस्वभावमात्र। उसकी सुध न होने से, उसका अज्ञान होने से इसकी दृष्टि बाह्य की ओर ऐसी तृष्णामयी हो गई कि इसको यह रुचता है कि सारा सार तो धन में है। इस बात के कहने वाले लोग भी तो बहुत हैं। कहते हैं कि आज कल तो धन का युग है। धन है तो सब कुछ है और धन नहीं है तो कुछ नहीं है। तो ऐसा उन्हें कहने दो, तुम्हें संसार में रुकना है या संसार के दुखों से सदा के लिए छूटना है? क्या मंजूर है? अगर संसार में रुकना है तो यह संसारी प्राणी जैसे चलते हैं वैसे चलो तो वह भी काम बनेगा और संसार में रुकने का भी काम बना रहेगा, और यदि समझ में आया हो कि यहां तो पग पग पर संकट ही संकट है, यहां रमने की जगह नहीं है तब फिर ठिकाने आइये। अपने आप के स्वरूप की सुध कीजिए। बाहर का सारा बैर विरोध हटावो। देखो जिस घर में रहते हैं ना कुछ परिवार के लोग तो जो समाज के बड़े पुरुष हैं वे बच्चों को भी क्षमा करते, स्त्री को भी क्षमा करते, अपने से बड़े बूढ़ों को भी क्षमा करते तब उनको उदारतापूर्वक रहने के कारण उनकी महिमा बढ़ती है। तो यहां हम सब पर क्षमा भाव रखें, सब जीव मेरे ही समान हैं, अन्तर क्या है? भीतर में ऐसी श्रद्धा बनाये और ऐसी निगाह से ही सबको निरखते रहें। बाहरी अन्तर के विचार का स्वरूप में मानने का भ्रम लगा हुआ है, अज्ञान से ऐसा बहक रहा है मेरे को गाली दे रहा। कुछ कर रहा। बेचारा क्या करे? अज्ञान है, भ्रम से भरा हुआ है।

दया कर दें। इस तरह से भी क्षमा करें। मतलब यह है कि जिस तरह प्रत्येक प्राणी के अन्दर आप यह न निरखेंगे कि सबका वही स्वरूप है जो मेरे अन्दर है, सबका वही स्वभाव है जो मेरे अन्दर है, इतनी बात अगर सब प्राणियों के अन्दर नहीं निरख सकते तब तक धर्म में पग नहीं है।

अनेक बाह्य धर्मक्रियायें होने पर भी स्वभावाश्रयित धर्मकी अनुपलब्धि—भैया भले ही कल्पनायें जगती हैं कि मैं धर्म कर रहा हूँ, पूजा करता हूँ, स्वाध्याय करता हूँ, पढ़ता हूँ, प्रवचन करता हूँ, अथवा अनेक उत्सवों के, समाज के कार्यों में भाग लेता हूँ मैं तो बड़ा धर्म कर रहा हूँ। अरे भाई सोचो जो कर रहा हूँ सो ठीक है, वह भी करना चाहिए। वह भी एक धर्मरुचि मंदकषाय की बात है लेकिन वास्तविक धर्म तब होगा जब यह समझ में आयगा कि अहो मेरे ही स्वरूप के समान सब जीव हैं। यह बात कब समझ में आयगी कि मेरे स्वरूप के समान सारे जीव हैं? यह बात तब समझ में आयगी, जब अपना स्वरूप समझ में आयगा मैं स्वयं ज्ञानानन्द स्वरूप हूँ। सहज ज्ञानस्वरूप हूँ, यह जो शरीर लपेटे फिर रहा है यह तो कीचड़ है, मेरे लिए विडम्बना है, विपत्ति है। मैं तो स्वयं अपने आप में एक सहज ज्ञानमात्र हूँ, पवित्र हूँ, स्वयं परिपूर्ण हूँ, कल्याणमय हूँ। यहां अपूर्णता का कोई काम नहीं है। मैं ऐसा शुद्ध ज्ञानमात्र हूँ। इतनी बात यदि अन्दर में न परख सके तो अनुभूति न जगेगी तो जीवन निष्फल है, बेकार है। बड़े धनी बन गये, प्रतीष्ठा वाले बन गए, चेला बन गया और जो कुछ कषाय में हम पर का अनुग्रह निग्रह करना चाहते हैं सो भी कदाचित्त हो जाय तो भी सब बेकार है।

मोहनिद्रामें दृष्ट मायाजालकी असारता—यह दृश्यमान सब स्वप्न का जाल है। किसी को नीद आती है वह स्वप्न देखता है तो स्वप्न में सब सार समझता है। क्या स्वप्न के समय में वह यह समझता है कि यह सब कुछ झूठ बात है? कोई नहीं समझता। इसी प्रकार जहां मोह में सोचा, निद्रा आ रही है, इस मोह की नीद में क्या कोई यह समझ सकता है कि जो कुछ यह दिख रहा है। जो कुछ मेरे पास लदा है वह सब असार है? कैसे समझे? मोह की नीद है ना! एक कथानक प्रसिद्ध है कि कुछ घसियारे लोग घास बेचने के लिए सिर पर गट्टा लादे हुए एक गांव को चले जा रहे थे। गर्मी के दिन थे। दोपहर के समय में वे एक पेड़ के नीचे बैठकर विश्राम करने लगे। उनमें से किसी घसियारे को निद्रा आ गई सो वह सिर के नीचे ईंट का सिरहाना रखकर लेट गया और सो गया। अब उसे सोते हुए में एक स्वप्न आया कि मैं राजा बन गया हूँ। मेरे सामने अनेक राजा महाराजा चरणों में आकर नमस्कार कर रहे हैं। मैं उन पर हुकम चला रहा हूँ। बड़ा

आनन्द आ रहा । लोग मेरे गीत गा रहे । वह बहुत खुश हो रहा । अब उसी स्वप्न-स्वप्न में ५ बज गए तो और घसियारों ने सोचा कि अब तो सिर्फ दो घंटे दिन रह गया है, कब घास बेंचेगे, कब लौटेंगे । यह सोचकर उस घसियारे को जगा दिया । जगने पर उसका वह स्वप्न में दिखने वाला सारा सुख समाप्त हो गया । अब वह घसियारा उन लोगों से लड़ने लगा—तुमने मेरा राज्य क्यों खो दिया, तुमने मेरा वैभव क्यों खो दिया ! सब लोग उसकी बातें सुन कर बड़े आश्चर्य में पड़ गए । सोचा कि यह घसियारा क्या बक रहा है ! कपड़े भी इसके तन पर नहीं हैं, फटी हालत है फिर भी कहता कि मेरा राज्य क्यों खो दिया । तो जैसे उस घसियारे की वहां मूर्खता भरी बात है इसी प्रकार यहां सभी जीवों की मूर्खता भरी बात हो रही है । मैं धनिक हूँ, मैं समाज का खास व्यक्ति हूँ, मेरी बड़ी प्रतिष्ठा है, बड़ा सुख है, बड़ा आराम है, बड़ा मौज है खाली ये सब मोह की निद्रा के स्वप्न हैं ।

सम्मिलने नयनयोर्न हि किञ्चिदस्ति—यहाँ मोह करना व्यर्थ है । कुछ करने का स्मरण होगा, यहां से कूच करना पड़ेगा, फिर क्या रहेगा आपका ? पूर्व समय में एक राजा भोज हो चुके हैं । वह विद्वानों का बड़ा आदर करते थे । कवियों को एक एक कविता पर लाखों रुपया दे दिया करते थे । एक बार एक कवि को संकट होने के कारण बहुत दिनों से इनाम न मिल सकने के कारण ऐसा मन में आया कि अब मैं क्या करूँ ? कैसे खाऊँ ? मुझे चोरी करना चाहिये लेकिन किसके यहाँ चोरी करूँ ? छोटे मोटे लोगों को सताने से क्या लाभ ? राजा के यहाँ चोरी करना चाहिये । यह सोचकर वह किसी तरह से रात्रि को राजा के महल के अन्दर पहुँचा । वहाँ कोई आहट मिली, छिपने को कोई जगह न मिली तो झट राजा भोज के पलंग के नीचे छिप गया । वहाँ राजा भोज रात्रि में अपने पलंग पर बैठे हुए एक कविता बना रहे थे । वह कविता इस प्रकार थी—चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलः, सद्बान्धवाः प्रगतिर्भगिरश्च भृत्याः गर्जन्ति दन्तिनिबहास्तरत्नस्तुरङ्गाः । बस ये तीन चरण तो बन गये थे, चौथा चरण नहीं बन पा रहा था । वे ही तीन चरण बार—बार दोहराते थे । तो वहाँ वह चोर (विद्वान कवि) सुन रहा था । उससे न रहा गया । जैसे कोई बड़ा संगीत का प्रोग्राम होता है तो वहाँ नाचने की कला जानने वाले को चैन नहीं पड़ती ऐसे ही उस विद्वान कवि को भी चैन न पड़ी और झट चौथा चरण बोल उठा । वह चौथा चरण इस प्रकार था । सम्मिलने नयनयोर्न हि किञ्चिदस्ति । राजा भोज अपनी कविता में अपने वैभव का वर्णन कर रहे थे । जिसमें यह अर्थ भरा हुआ था कि मेरी सभी स्त्रियाँ चित्त को हरने वाली हैं जैसा मैं चाहता हूँ वैसी आज्ञा मानती है । मेरे मित्र मेरे बड़े

अनुकूल हैं। मेरे बन्धुजन बड़ी नम्रता से भरे हुये हैं। मेरे सेवक सदा मेरे चरणों के पास हाजिर रहते हैं। मेरी अश्वशाला में घोड़े तथा गजशालामें हाथी गर्जते रहते हैं यों वह अपने वैभव का वर्णन कर रहा था तो नीचे से जो उस चोर ने चौथा चरण बोला तो उसका अर्थ था कि नेत्रों के मिच जाने पर फिर आपका कहीं कुछ नहीं है। अब उस चौथे चरण को सुनकर राजा का चित्त आश्चर्य से भर गया, अरे कौन से गुरु महाराजने ये शब्द कहकर मेरे ज्ञान नेत्र खोल दिये ? मैं कैसा कुमार्गमें जा रहा था, किसने मेरी अज्ञानता दूर करदी ? यह सोचकर वह इधर उधर देखने लगा। नीचे छिपा हुआ जो कवि था वह बाहर निकल आया। राजाने उसे गलेसे लगा लिया और कहा धन्य हो गुरुराज, तुमने मेरा बड़ा उपकार किया, मैं बड़े कीचड़में धंस रहा था, मिथ्यात्व में बढ़ रहा था, अब तुमने मुझे विवेक दिया तो उस कवि ने कहा—महाराज मैं चोर हूँ, तो राजा ने कहा—नहीं, नहीं, तुम चोर नहीं, तुम तो मेरे गुरु हो। राजा ने उस कवि को बहुत कुछ पुरस्कार देकर विदा किया। तो यों समझिये कि जो कल्याण की बात है उसे सुननेमें तो अरुचि होती है मोह में तो यही होता है और जो विषय कषाय, कमाई या विषय सेवनकी बात है उसकी रुचि जागती है मगर यह तो बताओ कि ऐसी बेढंगी रफ्तार में चलकर आर पार क्या पा लोगे ? कुछ तो उत्तर दो। जैसा चक्कर रोज-रोज लगाया जा रहा है वैसा ही चक्कर जीवन भर लगाते रहे तो उससे फिर आपके आत्मा का क्या भला होगा ! कुछ अपने आप पर दया नहीं लाना चाहते। दया क्या ? अपने आपको शान्ति प्राप्त हो, आनन्द मिले, ऐसा काम बनाना इसमें दया है। जिसमें आत्महित हो वह काम करे। किसी भी बात का दुःख अब मत उठाओ। इच्छा, कषाय यह सबको पीड़ रहा है, पर यह कषाय वाला जीव अपने आपकी भूलको नहीं तक पाता कि मेरे में क्यों कषाय उठी ! मैं इसे क्यों भोगूँ, यह ही तो मेरे को कष्ट देने वाली है जगत में कौन दूसरा कष्ट देने वाला है ! लेकिन हम आपको क्या कहें ! अपनी भूल क्यों नहीं देखते ! जैसे हम भी कभी दुःखी तो हो जाते, यह सोचकर कि लोग क्यों नहीं तत्त्वाभ्यास में लगते ! क्यों नहीं ज्ञानमार्ग में लगते ! जो अपने कल्याण की बात है उसमें क्यों नहीं लगते ! अरे हम अपनी गलती तो नहीं देखते। आखिर मेरे में ही तो कमी है। जो दूसरे लोग रुचिपूर्वक नहीं आ सकते तो इसमें दूसरे का क्या अपराध ! इसी तरह मानों सब लोग अपनी अपनी बात सोचें। अगर अपनी भूल को निरखे और अपनी भूल को निकालें तो इस जीव को शान्ति का बहुत कुछ मौका मिलता है।

सम्यक्त्वकी पात्रताके लिये मावाजालकी उपेक्ष्यता—यह प्रकरण सम्यग्दर्शनका चल रहा है। तत्त्वार्थसूत्रके तीसरे सूत्रकी यह चर्चा है कि यह सम्यग्दर्शन निसर्ग और

अधिगमसे होता है। जो सम्यग्दर्शन होता, कैसे ही होता उस सम्यग्दर्शनमें बनना क्या है ! यह बात बतला रहे हैं। पहिली बात यह बनेगी कि अपने स्वरूपके समान संसारके सब जीवोंका स्वरूप निरखना। अन्दरमें घुसों, भीतर में चलें। बाहरी बातें मोहजालकी हैं। बाहरी बातोंका हठ न करें। उस वीतराग स्वरूपका हठ करें। ऐसा मेरा स्वभाव, ऐसा मेरा स्वरूप। बस इस स्वरूपमें मैं प्रीति करूँ, रत रहूँ, मग्न होऊँ, दुनियाका कुछ भी हो जाय, उन उनका उन उनकी परिणतिसे सब होता है। अपने आपमें निश्चक बनो, अपना स्वरूप सहीं समझों। किसी भी प्रकारकी शंका मत करो। मेरा क्या होगा इस लोकमें ? मेरा कैसे गुजारा होगा इस लोकमें, यह शंका भी मिटा दें और ध्यान बनावें, जैसी वर्तमान में परिस्थिति है, जितनी आय है, जितनी चीज है उसके भीतर ही त्याग भाव करें और परिवारके पोषणका भी भाव करे, धर्म हेतुवोंमें भी लगाये। आपकी नगरीमें। अहमदाबादमें एक महानुभाव ऐसे हैं कि जिन्होंने यह नियम ले रखा है कि २५ हजार रुपये सालाना से अधिक आमद में न रखूँगा और होती है लाखों की आमद। तो देखो उनका कुछ घट गया क्या ? कुछ बात हो गई क्या ! अरे धरमें धन भरते जावोंगे तो वह धन भरनेसे आपको कोई नहीं पूछता, उस धनका त्याग न करनेसे आपको कोई नहीं पूछता। ऐसी एक उमंग होनी चाहिए कि मैं जो कमाऊँ उसका आधेसे भी अधिक भाग त्यागमें जाय तो देखो कितनी प्रसन्नता रहती है। और अपने आपकी वहां सुध रहती है। जगतमें और भी तो जीव हैं। इस धन वैभवको तृणवत जानें। वह आसार वस्तु मिली है तो उसे अच्छे कागोंमें लगाया जाय, उसका सदुपयोग किया जाय तो उसमें अपनेको प्रसन्न मानें। देह, धन वैभव, विषय कषाय, इच्छा, इन सब बातोंको कलक समझ करके इसके त्यागनेका भाव बनाना चाहिए। किसी प्रकारसे त्याग हो वह भाव बनना चाहिये। और अपने आपके बारे में शंका छोड़ दे कि मैं इस लोक में किस तरह जिन्दा रहूँगा। रहोगे जिन्दा। भिखारी भी तो जिन्दा रहते, गरीब भी तो जिन्दा रहते, ऐसी हिम्मत बनावें।

न्यायनीति व सात्त्विकतासे मनःप्रासाद—आपको एक घटना सुनकर आश्चर्य होगा कि बुन्देलखण्डमें एक कटेग ग्राम है, वहां एक रायसाहब थे, वह जैन थे और वहां राजा का राज्य था। तो राजा उसका कर्जदार बहुत रहता था। तो राजा उसका बड़ा सन्मान करता था। जब कभी जरूरत पड़े तो लाखों रुपया वह राजाको उधार दे दिया करता था। वह बहुत बड़ा आदमी था, लेकिन सब कुछ करने बाद उसका एक प्रोग्राम और रहा करता था। क्या प्रोग्राम रहा करता था कि वह एक बोरेमें नमक, धनिया, हल्दी, मिर्चा आदि भरकर अपनी पीठ में लाद कर पास पड़ोसके गांवोंमें एक घंटा फेरी कर लिया करते

थे । किसीने उनसे कहा कि रायसाहब आपकी तो हजारों रुपये प्रतिदिनकी आय है फिर आप यह रुपये दो रुपये कमानेका काम क्यों करते हैं ? तो उन्होंने यही कहा कि देखो-धनियां, मिर्चा, नमक आदिकी फेरी लगानेके कई कारण हैं । एक तो कारण यह है कि मेरे में यह प्रतीति बनी रहे कि जैसे ये गरीब लोग हैं वैसा ही मैं भी हूँ । दूसरा कारण यह है कि उससे मेरेको धनका अभिमान भी नष्ट हो जाता है, तीसरा कारण यह है कि आज हम बड़े हैं और पापका उदय आनेपर फिर गरीब हो जायें तो फिर मुझे ऐसा काम करनेमें सरम तो न आयगी । देखिये कैसे कैसे पुराण पुरुष हो गए हैं, उनका कैसा सात्विक रहन सहन था । एक राजा की भी तो कथा है । एक राजाने एक सन्यासी को आमंत्रण किया । वह सन्यासी आया भोजन करने के लिए । उस सन्यासीको तो हलुवा, पूड़ी, खीर आदिक परोसा गया और राजा को ज्वार की रोटी, भाजी परोसी गई । भोजन करते हुएमें वह सन्यासी बड़े आश्चर्य में था, वह सोच रहा था कि क्या कारण है कि मुझे तो हलुवा, पूड़ी बगैरह खिलाया और खुदने ज्वारकी रोटी भाजी खाया, भोजन करनेके बाद सन्यासी ने पूछा-राजन बताइये, क्या कारण है कि आपने मुझे तो मिष्ठान खिलाया और आपने सिर्फ रोटी भाजी खाया ? तो राजाने उत्तर दिया मेरी इतनी गुंजाइश है, इतनी ही आमदनी है, इससे अधिक नहीं ।...क्या कहा राजन ? आपकी इतनी आमदनी, यह आप क्या कहते ?...मैं ठीक कहता हूँ, देखिये-इस राजदरबार में प्रजाजनों से जो भी कर, टैक्स आता है उसका प्रबंध मंत्रीजन करते हैं और वह प्रजाजनोंके उपकारमें लगता है, वह मेरा नहीं है । मेरे लिए तो जो यह १०—५ बीघा जमीन है उसीमें कुछ में कर लेता हूँ, कुछ नोकर लोग कर लेते हैं, कुछ मेरे बच्चे लोग कर लेते हैं बस वही मेरी आमदनी है, उससे ही मेरा गुजारा होता है । राजाकी ऐसी बात सुनकर वह सन्यासी श्रद्धासे झुक गया और विचार करने लगा-अरे 'मैं काहे का सन्यासी ? सन्यासी तो यह हैं । देखिये-जिससे मन प्रसन्न रहे वही तो विभूति है; वही तो सुख है । तो आप बताओ ऐसे आराममें बड़े-बड़े विषयोंके प्रसंग में, इन बातोंमें रहकर प्रसन्नता कितनी आती है । अपने आपके दिलसे पूछो । किसी पुरुषको ज्ञान जग जाय, और उसकी वृत्ति परके उपकारमें लग जाय, जैसे पहिले महात्मा गांधी हुए, आजकल विनोबा भावे हैं, ओर भी ऐसे लोग हुए हैं जिनकी धुन केवल यही रही कि मैं परका उपकार करूँ उनके मनमें जो प्रसन्नता रहती है वह एक विलक्षण जातिकी है, उसे और लोग नहीं पा सकते ।

नितान्त भिन्न पदार्थोंमें शोधि ता दोनेसे निःशंकापान अमुदय—भैया चित्तमें यह

बात लावों कि मेरे आत्मा का तो मैं मात्र आत्मा हूँ। मेरे को तो यह ज्ञानस्वरूप ही वर्णन है, यह ही सार है, इसी जगत की कोई भी चीज मेरे लिए सारभूत नहीं है। यह संकल्प बनावें और मोक्ष पाने के लिए एक संकल्प ठान लें। तन, मन, धन, बचन, प्राण आदि भी देकर भी अगर मेरे को मुक्ति का मार्ग प्राप्त होता हो तो इससे बढ़कर दुनिया में कोई विभूति नहीं है। सम्यक्त्व के समान जगत में कोई भी वैभव नहीं है, क्यों नहीं इसकी धुन वाले बनते? क्यों नहीं इस धन को विकार तृणवत् चित में लाते? इसमें सार नहीं है तब कह रहे हैं। अत्यन्त असार है तब आपको यह बात कह रहे हैं। इसमें कोई आनन्द की बात नहीं होती। और जिसे आप आनन्द मानते हैं यह विष है। जरा यहां के लोगों ने कुछ प्रशंसा कर दिया, यश गा दिया तो मान लिया कि मेरे को बड़ा सुख है। अरे यह तो विष है। ऐसा विषपान कर रहें कि अगर हालाहल विषपान किया जाय तो एक बार ही मरण होगा। मगर यह ऐसा विषपान है कि इससे अनेकों बार जन्म मरण होगा। फिर क्यों नहीं उससे हटते? अब तो चेतो। जो उम्र गई सो गई, अज्ञान में गई, भ्रम में गई। जो सिद्ध हुए उनका भी अनन्त काल पहिले भ्रम में बीता, अज्ञान में बीता। वह भी कभी हम आपके ही समान दुःखी थे। जब उन्होंने ज्ञान प्रकाश पाया, मोक्षमार्ग में लगे तो उन्होंने सिद्ध अवस्था पायी और सदा के लिए वे परम पवित्र हो गए। तो हां पहिली बात है कि निशंक बनो। मेरा कहीं बिगाड़ नहीं, मेरे को कहीं कष्ट नहीं, मेरे में कोई विपदा नहीं, बिडम्बना नहीं। मैं तो यह ज्ञानमात्र परमेश्वर की तरह भगवत्स्वरूप अपने आप में सहज शुद्ध स्वभाव को लिए हुए हूँ। यह बात कब बनेगी? जब आपका भीतर में इतना त्याग हो जायगा कि पुत्र मेरा कुछ नहीं, परिवार मेरा कुछ नहीं, धन मेरा कुछ नहीं।

कषाय की बलि करने से परमार्थ मनोरथ की सिद्धि—कथानकों में कभी कभी आता है, मुसलमान भी कहते हैं कि खुदा के नाम पर कोई ऐसी चीज चढ़ावो (बलि करो) कि जो तुम्हें सबसे प्यारा था अपना बेटा तो वह बेटे का ही कत्ल करने को तैयार हुआ। वह उसकी अज्ञानता है। हम वह बात नहीं कह रहे मगर वह इस बात का त्याग कराया गया था कि जो तुम्हें सबसे प्यारा हो उसकी बली करो। देखो वह अज्ञान की बात है। क्या अधिकार है कि दूसरा जीव हो, प्राणी हो या मनुष्य हो उसे कष्ट दे या उसकी बलि कर दे। अरे उसे भीतर में बिचारें। जो तुमको सबसे प्यारा हो उसकी बलि कर दो। देखो बाह्य में जितने जीव हैं वे किसी को प्यारे नहीं हैं, आपको भी प्यारे नहीं हैं। आप भ्रम से मानते हो कि मेरे को बच्चा बड़ा प्यारा, मेरे को स्त्री बड़ी प्यारी। यह सब भूठ बात है। भ्रम में, देहेशी में आप ऐसा बोल रहे। जैसे शराब पीने वाले लोग बेहोशी में बोलते हैं इसी

तरह मोह की बेहोशी में बोल रहे हैं कि यह घर मुझे प्यारा है, यह वैभव मुझे प्यारा है । अरे किसी पर वस्तु आप से प्रेम कर ही नहीं सकते । अर आपका आत्मा स्वयं सत् जो परिणमेगा वह अपने आप में ही तो परिणमेगा । बाहर में तो वह न जायगा । आप प्रेम करेंगे तो अपने आप में करेंगे । आपने अपनी कषाय से प्रेम किया, पुत्र से नहीं । असलियत यह है । आप झूठ बोलते हैं कि मैंने पुत्र से प्रेम किया, घर से, वैभव से प्रेम किया । अरे त्रिकाल में भी आप किसी पर वस्तु से प्रेम नहीं कर सकते । आप कषाय करते हैं । इससे बाहर रूच मात्र भी आप कुछ करतूत नहीं करते । तो आपको सबसे प्यारी लग रही कषाय । और बातें तो झूठ हैं । तो उस कषाय की बलि करदो, फिर देखो मोक्षमार्ग मिलता कि नहीं । देखों आपका कल्याण होता कि नहीं । अनादि से लेकर अब तक अनन्त भव बिता डाले, इसी बेढंगी रफ्तार में यह जीवन बिताया जा रहा है । पञ्चेन्द्रिय के विषय भोगने जैसी बेढंगी रफ्तार में समय बिता रहे, ऐसे ही अनन्त भव बिता डाले, पर उनसे कुछ लाभ भी मिला क्या ? अरे अनन्त काल बिताया परभाव के लिए । अब जरा एक यह ही भव अगर अपने आत्मा के लिए लगे, तो इसमें आपका कोई टोटा पड़ता है क्या ? अनन्त भव जब तुमने विषयों में, कषायों में भ्रम में बिता डाला, इसमें एक यह भव बिना उधम का सही कल्याण के लिए भव गिता डालें तो इसमें क्या हानि है ? कल्याण के लिए भव बिताने की बात तब बनेगी जब कषायों का त्याग कर दें । विषयों का पहाड़ आप की मुक्ति को रोकने वाला है । कोई दूसरा नहीं ।

आत्माके अमिन्नात्मपदार्थमें ही आत्मप्रतीति होने में कल्याण—भैया भ्रम छोड़े, कषाय छोड़े, तत्त्वज्ञान करें, अपने आप में विश्वास बनायें, निशंक बने, अपने आपकी बात बनालें तो आत्मकल्याण है और पर के लिए अब तक मरते रहे, बरबाद होते रहे, अपने विषय भावों के लिए बरबाद होते रहें । अब जरा अपनी बात बनावें । आत्मा का यह आत्मा सत् है कि नहीं ? अगर यह आत्मा नहीं है तब तो अच्छी बात है । अगर मैं न हूँ तो फिर दुःख किसे हो ! मैं हूँ । करीब ६ वर्ष की उम्र में जब हम पाठशाला में पढ़ने जाते थे तो वहां देहातों में ऐसी पाठशालायें होती थी कि बस पढ़ते जावो, पर कक्षा का कुछ पता नहीं । जब हम दो साल पढ़कर सागर पढ़ने गए तो हमको छटवीं कक्षा में भर्ती किया । तो वहां हमने एक बार देखा कि एक पंडित जी ने किसी बालक को पीटा । हम तो नहीं पिट पाते थे, पता नहीं क्यों न पिटते थे, पर दूसरे को पिटते देखा तो हम पाठशाला न गये और एक दिन की बासी रोटी खाने का रिवाज था । बासी रोटी और मक्खन खा रहे थे जैसे कि लड़के बच्चे खाते हैं । तो मां बोली—आज पढ़ने न जावोगे क्या ! तो हमने कहा—नहीं हम

आज नहीं जाते ! क्यों न जावोगे ! हम चुप रह गए । तो मेरी मां एक रहपट मारकर बोली, तुम्हे पढ़ने जाना पड़ेगा । तो उस समय रोता रोता मैं सोच रहा था कि यह जो खम्भा खड़ा है काट का, जिस पर मट्ठा बिलोया जाता है, यदि मैं लकड़ी का होता तो पिटता नहीं । यह उस समय की हमारी एक कल्पना थी । तो अगर मैं नहीं हूँ तब तो यह बड़ी अच्छी बात है । अगर मैं हूँ तो अब कहाँ जाऊँ ? सदा के लिए हूँ, मेरी सत्ता मिट नहीं सकती । कोई वैज्ञानिक बता दे कि जो पदार्थ मूलतः हैं उसका अन्त्य होता हो ? जब मैं हूँ तो मेरा विनाश न होगा । यह बात तो हम देखते ही हैं कि मनुष्य को मरना पड़ता है, शरीर जल जाता है तो यह भी बात देख रहे, तो इसके बाद मैं हो जाऊँगा । भगवान तो न हो जाऊँगा । भगवान जैसी करतूत तो नहीं हो रही, तब फिर क्या हो जाऊँगा ? ये ही जो जगत के जीव दिख रहे कीड़ा मकोड़ा, सूकर, कुत्ता, गधा, पेड़ पौधे आदिक, और क्या होंगे ? एक शराबी गया किसी शराब वाले की दुकान पर । उससे कहा भाई मुझे बहुत ही बढ़िया शराब दो । अजी हमारे पास बहुत ही बढ़िया शराब है । जब वह बहुत बहुत ऊँची शराब की बात करने लगा तो उस दूकानदार ने कहा अगर आपको हमारी शराब का विश्वास न हो तो ये जो नाली में कोई लोग बेहोश पड़े हुए हैं जिनके मुख में कुत्ते भी मूतते हैं, इनको ही देख कर अन्दाज करलो कि हमारी दूकान की शराब अच्छी है या नहीं । सो भाई अब विश्वास न हो तो ये कुत्ता, गधा, सूकर, कीड़ा मकोड़ा इनको ही देख कर विश्वास करलो कि खोटी करनी का फल यह होता है । खराब करतूत का फल यह होता है, मोह बसाने का फल यह होता है । तो अपना हृदय विशुद्ध बनावें और आत्मकल्याण के लिए दृढ़ संकल्प हो और अपना यह जीवन का ढाँचा बिल्कुल बदल करके चलना चाहिए ।

सम्यक्त्वोत्पत्ति में निर्णय व अधिगम का स्थानः—सम्यग्दर्शन के प्रकरण में यहां यह चर्चा चल रही है कि सम्यग्दर्शन अहेतुक है या सहेतुक, याने हेतु के बिना होता है या किन्हीं हेतुओं से होता है, यहां यह जानना कि निश्चय से तो प्रत्येक पर्याय अपने आपके उपादान से ही होता है । अतएव सभी पर्यायों हेतुके बिना होती है, तो कोई भी बाह्य पदार्थ अपनी परिणति नहीं देता, वहां प्रभाव नहीं करता फिर भी जो पर्याय होती हैं वह किस विधि से होती है, इस पर विचार करें तो वहां हेतुओं की बात आती है । कोई भी परिणति अहेतुक नहीं है और नहीं तो स्वभाव पर्याय भी है ना इस में भी काल परिणमन हेतु है और फिर अब तक जो स्वभाव परिणमन न था अब हो रहा है तो उसमें कुछ और हेतु बनाने पड़ते हैं फिर बिकार तो सहेतुक है ही विकार तो किसी निमित्त सन्निधान बिना होता ही नहीं है । यह सब करते हुए भी निर्णय यह रखना कि प्रत्येक पर्याय अपने आपके उपादान की

परिणति से होता है, वह उपादान अपने में उस पर्याय का प्रभाव लाता है तो वह किसी निमित्त को पाकर लाता है। तो यहां सम्यग्दर्शन को कहा जा रहा है कि यह सम्यग्दर्शन अधिगम से उत्पन्न होता है और निमित्त दृष्टि से तो दर्शन मोहनीय का उपशम, क्षय, क्षयोपशम का निमित्त पाकर होता है। जो सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति कहो या विपरीत अभिप्राय की निवृत्ति कहो, दोनों का एक भाव है। विपरीत अभिप्राय न रहना, यह भी सहेतुक है अर्थात् विपरीत अभिप्राय चल रहा था मिथ्यात्व कर्म के उदय का निमित्त पाकर। तो मिथ्यात्व कर्म का दर्शन मोहनीय का उपशम, क्षय, क्षयोपशम हो तो विपरीत अभिप्राय का क्षय हो, सम्यग्दर्शन का उत्पाद हो।

कर्मविध्वंस में आत्मपरिणाम की निमित्तता:—यहां एक शंका की जा सकती है कि दर्शन मोहनीय का उपशम होना, क्षय होना, क्षयोपशम होना यदि यह तत्त्वश्रद्धान का कारण हो तो सब जीवों को सब समय सम्यग्दर्शन उत्पन्न कर देगा क्योंकि दर्शनमोहनीय का उपशम क्षय, क्षयोपशम अहेतुक है। वह तो किसी हेतु से नहीं बनता। सम्यग्दर्शन भले ही है दर्शनमोह के उपशम आदिक हेतु से बने मगर दर्शन मोह के उपशम आदिक तो बिना हेतु के हो गए तब तो सभी समय सबके सम्यग्दर्शन उत्पन्न हो जाना चाहिए और अहेतुक होने पर भी यदि सब समय किसी को सम्यग्दर्शन नहीं होता तो फिर कभी भी न हो या जब चाहें बिना नियम के किसीके भी हो बैठे। एक यह शंका रखी गई है। उत्तर इसका साफ है। दर्शन मोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशम भी सहेतुक है अर्थात् दर्शन मोह के क्षय का प्रतिपक्षी है विशुद्ध भाव। विशुद्ध भाव जगे, कुछ तत्त्वाभ्यास जगे, कुछ ज्ञानाभ्यास बने तो यह प्रवृत्ति दर्शन मोहके उपशम आदिक का कारण है। इस बात को युक्तिसँ सोचिये जो पदार्थ कहीं कभी किसीके उपशान्त होता है, दबता है तो या क्षयको प्राप्त होता है या कुछ दबता, कुछ उमड़ता है तो वह बात अपने प्रतिपक्षी पदार्थ की वृद्धि की सदृशता से होती है तो विशुद्धि बढ़ी तो कर्मोंमें भी क्षय, क्षयोपशम, उपशम हो गए। कर्म दूर हों इसका कारण है आत्म निर्मलता। आत्मा को सम्हालिये। आत्मा में सँ रागद्वेषकी गीलाई को हटावों तो कर्म निर्जराको प्राप्त होंगे। जैसे धोती धोया, निचोई, गीली धोती हो गई उसे दो खूँटो में बांधकर सूखने के लिए डाल देते हैं। अब मानो धोतीका एक खूँट छूट गया, धोती नीचे गिर गई, उसमें घूल लग गई तो वहां लोग क्या करते हैं? जिनको विशेष बोध नहीं है वे उस घूलको लकड़ी या हाथसे छुटाते हैं। परिणाम उसका यह होता है कि वह घूल और भी गहरी होती जाती है। पर जो विवेकी लोग हैं वे क्या करते हैं कि उस धोतीको यों ही खूँट से बांध देते हैं। जब वह धोती सूख जाती है तो एक ही भिटके

में सब धूल भड़ जाती है। तो इसी तरह आत्मा में जो कर्मका बन्ध हो रहा है वह मोह रागद्वेष की गीलाई से चिपटकर हो रहा है। तो लोग करते क्या हैं? जो उस विषयमें ज्यादा बुद्धि नहीं लगाते वे मन, वचन, काय की चेष्टाको लम्बा करके, देकरके उस कर्म को हटाना चाहते हैं। जैसे बोलते हैं ना, अष्ट कर्म के ध्वंस करनेके लिए मैं घूप चढ़ाता हूँ। भाव तो वहाँ कुछ भीतर का है कि भाई यह द्रव्य रख दिया है तो इसके सहारे इतना समय पूजा में लग जायगा।

आत्मविशुद्धिके अर्थ व्यवहारधर्मकी प्रकृति—द्रव्य पूजा किस लिए है? जो चावल वगैरह धोकर चढ़ाते हैं, पूजा चढ़ाते हैं तो यह चावल वगैरह धोना, चढ़ाना यह किसलिए है? यह इसलिए है कि उसके सहारे ऐसा करनेके माध्यमसे इतना समय घंटे भर पूजामें लग जायगा। और बीच-बीच में हम अपने भाव सम्हाल सकेंगे। न कि द्रव्य चढ़ा देना यह ही पूजा है, या द्रव्य चढ़ाने से कर्म नष्ट होते हैं। तो जो इस रहस्य को नहीं जानते और जब वह मंत्र आता है कि अष्ट कर्मके ध्वंस करने के लिए मैं घूप चढ़ाता हूँ तो वह उमंग से मूठी भर घूप लेकर बड़े जोर से आग पर पटक देते हैं। अब उनका लक्ष्य किधर है। उनका उपयोग किधर है। स्वकी ओर छुवा नहीं है। कुछ बाहर की प्रवृत्ति है। तो बात यह कह रहे हैं कि धर्म के नामपर भी मन, वचन, काय की चेष्टा को ही दृढ़ जमाना और भीतरके मर्मको न पहिचाने तो यह काम ऐसा है कि जैसे गीली धोती धूल में गिर गई। धूल चिपट गई तो उस धूल को आप हाथों से निकालना चाहते तो कैसे निकले? अरे यह समझो कि यह द्रव्य पूजा तो हमारा उपयोग लगाने के लिए है। इससे यह भाव भरते हैं कि वह वीतराग सर्वज्ञ देवका जैसा स्वरूप है वैसे ही मेरा स्वरूप है। हे प्रभो! जिस विधि से आपने अपना वह पद पाया उसको करने की कला मुझमें भी है। मैं उस पर चलूँ तो उसको पा सकता हूँ।

परमें कुछ भी करनेकी अशक्यताकी आस्थासे धर्मधारणकी सुगमता—देखो हम आप रात दिन २४ घंटे क्या किया करते हैं? इसपर जरा विचार तो करें। यह बात तो भूठ है कि मैं दुकान चलाता हूँ। मैं कुछ चीज बनाता हूँ। मैं कुछ कला करता हूँ। मैं ड्राइंग करता हूँ, मैं कुछ लिखता हूँ आदिक बातें, तो यह मिथ्या है। मिथ्या क्यों है? निश्चयसे कह सकते हैं। यों मिथ्या है मेरा जो आत्मा है वह अपने प्रदेश में अपना ही काम कर पाता है, अपने प्रदेश से बाहर कुछ नहीं कर सकता है। तो अब अपनी बात देखिये कि मैं रात दिन क्या किया करता हूँ। घरमें हो तो वहाँ भी क्या करता? दुकानपर जाता हूँ तो वहाँ भी क्या करता? धर्मस्थानमें आता तो वहाँ भी क्या करता?

देखो—सबका एक ही उत्तर है, नाना उत्तर नहीं हैं कि जैसे कोई कहे कि मैं घरमें जाता हूँ तो रोटी बनाता हूँ। घरमें जाता हूँ तो कोई सागभाजी लेकर जाता हूँ। घरमें जाता हूँ तो मैं बाल बच्चों को डाटता हूँ। या कोई मैं व्यवस्था बनाता हूँ। और दुकानमें जाता तो मैं दुकान का काम करता हूँ। धर्मस्थान पर जाता तो मैं पूजा करता। जाप देता। ये नाना उत्तर न आयेंगे। उत्तर एक आयगा। मैं क्या करता हूँ? मैं कुछ उपयोग बनाता रहता हूँ। घर पर भी मैं उपयोग को ही करता हूँ। अपना ज्ञान बनायें, समझ बनायें, अपना उपयोग बनायें, यह ही काम मैं घर पर करता, यह ही काम दुकान पर करते। यह ही काम मैं धर्मस्थान पर करता ऐसा विचार करिये। यह तथ्यकी बात कह रहे हैं। हम सब जगह उपयोगकी ही बात करते हैं। अन्य कुछ नहीं करते। तब उपयोग में हम क्या किया करते हैं? जरा इसका भी जवाब लें तो इस जवाब में भी आप बहुत-बहुत बात कह सकते हैं। उस उपयोग में कभी बच्चों की बात लाते। कभी घर की बात लाते, कभी दुकान की बात मन में लाते। कभी सामाजिक व्यवस्था की बात मन में लाते, वहां भी अनेक उत्तर देंगे। पर वहां भी अनेक उत्तर न आकर दो उत्तर आयेंगे। आप उपयोग में क्या किया करते हैं! कभी तो आप पर का उपयोग देकर परका उपयोग करते हैं और कभी स्वका उपयोग देकर स्वका उपयोग करने हैं। ये दो उत्तर हैं स्व और पर में सारा उत्तर आ गया। स्व में आया निज और पर में आया निज को छोड़ कर बाकी के जीव चाहे घर के जीव हों चाहे विदेश के जीव हो तो सब एक समान हैं पर में आये पुदुगल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल पर को महत्व देने में लाभ क्या पाते हैं? अब जरा इस पर दृष्टि दी जाए। और स्व को महत्व देने में लाभ क्या मिलता है इस पर विचार कीजिए। पर को महत्व देने में होता क्या है! क्षोभ, आकुलता और स्व को महत्व देकर स्व की दृष्टि करने में स्व में रत होने में मिलता क्या है? शान्ति और पर के उपयोग में मिलती है अशान्ति बुद्धि नगे, सुमति बने।

तत्त्वज्ञान और कष्टसहिष्णुताकी वाञ्छनीयता:—प्रभो से प्रार्थना करें कि हे प्रभो मैं आपसे यह मांगने नहीं आया कि मेरा घर अच्छा बन जाय, मेरा बंगला बन जाय, घर के लोग सुखी रहें। मैं मुकदमें में बिजय पाऊँ या मेरा अमुक काम बन जाय या मेरा यश फैल जाय, मेरी प्रतिष्ठा हो... हे प्रभो मैं आपसे ये कुछ मांगने नहीं आया। मेरेको कष्ट न आये, विपत्तियां न आये, सुख ही सुख रहे, यह मांगने मैं नहीं आया। मैं तो यह बात चाहता हूँ कि मेरे को सत्य ज्ञानका प्रकाश मिले। सही जैसा वस्तु स्वरूप है, वैसे मेरा आत्मरूप है वैसे जानने का प्रकाश मुझे मिले। अरे इसमें तू क्या पायगा?

तुमने तो फोकट की बात मांगा। इसमें तो तरे हाथ कुछ न आयागा। न देखने की बात, न पकड़ने की बात। तू ऐसी बात मांगने क्यों आया कि मैं तो एक सत्य ज्ञानका प्रकाश चाहता हूँ ! मैं और कुछ नहीं चाहता। इसमें मुझे सब कुछ मिलता है। क्या मिलता है ? कष्ट अगर आप तो आये, उसको सहन करने की मुझे क्षमता मिलती है। एक बात। दूसरे मुझमें उपयोग जाने से परके विकल्प हटने से कष्ट भी दूर होता है। कष्टका दूर होना और कष्ट आये तो उसे सहन करने की क्षमता होना यह सत्य ज्ञानप्रकाश में ही सम्भव हैं। अन्य प्रकार सम्भव नहीं है। तो हे प्रभो मैं तो यथार्थ तत्त्व ज्ञानप्रकाश चाहता हूँ। अन्य कुछ मैं नहीं चाहता। उस ज्ञानप्रकाश भी बात कह रहे हैं कि वह मिलता कब है ? सम्यक्त्व होते ही मिल जाता है। सम्यक्त्व होता कब ! निमित्त दृष्टिसे दर्शन मोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशम हो तो मिलता है। यों दर्शन मोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशम भी कब होता है ? जब आत्मा में विशुद्धि बढ़ती है। पहिले हुई क्षयोपशम लब्धि। मायने कर्ममें उस प्रकार का कुछ क्षयोपशम हुआ, फिर आत्मा में विशुद्धि हुई, उससे मैंने तत्त्वज्ञात किया, उसमें मेरा भाव बढ़ गया, फिर वहीं सम्यक्त्व के लिए सहकारी कारण बन जाता है,

स्वावलम्बनकी कर्मविध्वंसन क्षमता—भैया ! अत्मलाभके लिये क्या करना ! कर्मको आंखके आगे धरना, देखना, और मैं इनका नाश कर दूँ, यों सोचना इससे काम न बनेगा, किन्तु निजका स्वरूप सामने रखना, एक सहज ज्ञानस्वभाव और उसमें मग्न होना, उससे काम बनता है। कहते हैं ना कि जब किसी दुष्टसे पाला पड़ जाय, किसी दुष्टसे फसाव हो जाय तो उस दुष्ट का आमने सामने मुकाबला करके हम वहां विजय नहीं पा सकते। युक्ति से, धीरतासे, चतुराई से, साम्यभावसे कोई काम बनावें तो उस दुष्ट से पिण्ड छूट जायगा। इस प्रकार इन कर्मोंका, इन बाह्य पदार्थोंका, इस शरीर का जो बंध है। सम्बन्ध है यह ही दुष्ट प्रसंग है। इस दुष्ट प्रसंग से हम इन दुष्टों के साथ लड़ करके, अनुग्रह करके इनसे छुटकारा नहीं पा सकते, किन्तु हम कुछ धीरता लायें, अपने आपकी और अपना उपयोग बनायें, साम्यभाव लायें तो ये अपने आप सब दूर हो जायेंगे। तो कर्त्तव्य क्या है ! आवो अपने पास, आवो अपने धाममें ठहरे आवों अपने आपके भगवान के दर्शन करके अपने आपसे मिलो। अब तक सम्यग्दर्शन न हुआ और हो रहा तो सही बात, यह सिद्ध होती है कि इस सम्यक्त्वका कोई प्रतिपक्षी था जिसका सन्निधान होने पर नहीं हो रहा था उस प्रतिपक्षी का हटाव तो सम्यक्त्व हो। वह प्रतिपक्षी है कर्म, दर्शन मोह। दर्शन मोहका क्षय

पहिले से न था। अब हो रहा है तो यह इस बात को सिद्ध करता है कि दर्शन मोहका प्रतिपक्षी भी कोई होता है। वह क्या हैं! निर्मलभाव, विशुद्धभाव। अपनी उन्मुखता। यह बात जैसे बड़ी वैसे ही दर्शन मोह दूर हुआ, कर्म दूर हुए। कर्म दूर हुए तो सम्यक्त्व निधि प्राप्त हुई। जैसे कोई पुरुष बेहोश न था, अब बेहोश हुआ तो कोई कारण तो है। क्या कारण है! शराब पीली। अच्छा, वह पुरुष शराब पिये बेहोश है और अब कोई चीज खिला दी, बेहोशी में न रहा सचेत रहा तो उसका भी कारण है कि उस शराब के नशे का प्रभाव हट गया, यों ही समझिये कि जो बात अब तक नहीं है और अब हुई तो उसका कोई कारण होगा।

अलौकिक कार्यमें अलौकिक साधनकी उपयोगिता—यद्यपि वस्तुस्वातन्त्र्यको देखें तो वह स्वयंस्त् है, स्वयं परिगमनशील है। अपने आपकी करण शक्ति से परिणमता है; किन्तु इसका तो उत्तर बताओ जरा कि अब तक यह न था और अब यह हुआ। उसको भी अगर यों कहो निमित्तकी बात हटाकर कि वह तो उपादान में जिसमें जो होने की योग्यता है सो होती है तो इसमें व्यवस्था नहीं बनती, इसमें किसी प्रकारका समाधान न हो सकेगा। निमित्त नैमित्तिक भोग है और वस्तुस्वातन्त्र्य है। दोनों को भली भाँति समझने से सब बात ही जायगी। एक बात और सोचना चाहिए कि कल्याणलाभ के लिए हमारा कर्तव्य क्या है! स्वभावदर्शन। हमारे स्वभावदर्शन में अगर विघ्न आये जिस ज्ञान से वह ज्ञान तो न करना चाहिए और जिस ज्ञानसे हमको स्वभावदर्शन में मदद मिले, सहायक बने उस से ज्ञान कोई बाधा है क्या! जब निश्चय दृष्टि करते हैं कि पदार्थ अपने आपकी शक्तिसे अपने आपमें अपनी पर्यायोंको करता चला जाता है। यह भी एक प्रामाणिक मार्ग है, इससे भी स्वभावदर्शन मिलेगा कि एक द्रव्य की निगाह में जब हम रहते हैं, दूसरे द्रव्य की निगाह भी नहीं कर सकते तो पर पदार्थ का निमित्त न होने से, आश्रय न होने से हमको स्वभावदर्शन बनेगा। लेकिन निश्चय की तो हम दृष्टि बनाकर बात करें और वहाँ निमित्त की चर्चा छोड़े चाहे न रूप से या चाहे हां रूप से तो वह अनधिकार बात है। जैसा दृष्टि में आया हो, उस ही दृष्टि की बात करते जावो, उसमें अन्य दृष्टि की बात मत मिलाओ, स्वभावदर्शन होगा। अच्छा अब व्यवहार दृष्टि की बात देखिये, व्यवहार दृष्टि में यह ही तो बताया गया कि ये जो विकार हैं ये कर्म का निमित्त पाकर हुए हैं, ये मेरे नहीं हैं, यह शिक्षा मिली, ये मेरे नहीं हैं, ये नैमित्तिक भाव हैं, ये मेरी कला नहीं है, इनका मैं ग्रहण नहीं करता। ये पर द्रव्य हैं, ये परभाव हैं। इनसे मेरे को क्या मतलब! ऐसी जो दृष्टि रहेगी वह तो स्वभावदर्शन की और मुड़ेगी। जरा इस विषय को

जैसा कि तथ्य है, जैसा कहा हो थोड़े समय के लिए, अगर वहां कुछ बात कठिन जचे तो भी समझने की ओर पोरुष करना। इसकी ममभ बिना काम न बनेगा। चाहे आज समझ लो, चाहे कुछ दिन बाद समझो, आज कल्याण पायेंगे। इस समझ के बिना कल्याण मार्ग न पायेंगे, इसलिए कठिन लगे तो भी समझना, सरल लगे तो तत्काल उसका आनन्द लेना।

प्रकृतिधर्मकी शक्ति व व्यक्ति—देखो जिस कषायके कारण, जिस विषय के कारण, जिस वासना के कारण, जिस विकल्प के कारण हम इतना कष्ट पा रहे हैं, रात दिन दुःखी हो रहे हैं वे विकल्प, वे विषय कषाय क्या चीज हैं, इस बातको सोचना चाहिए। क्या है सो देखिये। इस जीव के साथ पूर्व काल से बांधे हुए कर्मकी सत्ता है। पहिले शुभ अशुभ भाव बनाकर पुण्य पाप परिणाम करके यह कर्म का बंध हुआ था, उसकी सत्ता है अब। तो जिस कालमें कर्म बंध हुआ था उसही कालमें कर्ममें क्या हुआ, प्रकृति, प्रदेश, स्थिति, अनुभाग का निर्णय बन गया। प्रकट घोषणा है जैन सिद्धान्त में। कर्मकाण्ड देखिये, करणानुयोग के ग्रन्थ देखिये, जिस कालमें इस जीव ने शुभ या अशुभ भाव किया उसही कालमें प्रकृति बंध, प्रदेश बंध, स्थिति बन्ध और अनुभाग बन्ध हो गया। क्या हो गया ! जिन कर्म परमाणुओंका यहां बन्धन हो गया, इनके साथ रहना निश्चित हो गया, उन कर्म परमाणुओंमें प्रवृत्ति निश्चित हो गई कि इनमें ज्ञानावरण की प्रकृति हो गई ये ज्ञानको ढकनेके कारण बनेंगे ये सुख आदिक के हेतु भूत बनेंगे। उनमें प्रकृति पड़ गई और कितने दर्जे के ये दुःखके हेतुभूत बनेंगे ऐसा अनुभाग पड़ गया और ऐसे ये कर्म कितने दिन तक यहां रहेंगे, यह स्थिति पड़ गई। तो देखिये जैसे चूनाका डगला है ठोस है, रखा है, मगर उसमें स्थिति है। क्या वह चूनाका डपला दो चार वर्ष तक ठहर सकेगा ! नहीं ठहर सकता। जैसे कि सीमेन्ट होता ना तो सीमेन्ट का उपयोग जल्दी ही कर लेना चाहिए। उसे बहुत दिन तक धरे रहते हैं तो उसमें कमजोरी आती है, बल्कि कभी कभी तो बिल्कुल खतम हो जाता है। वह पत्थर बन जाती है, टपला बन जाती है ऐसे ही जो कर्म सत्तामें पड़े हैं उन कर्मों की स्थिति है, सो जब तक स्थिति है जब तक आखिरी समय नहीं आया, उदयकाल न आया तब तक वे अच्छे हैं। उनसे कोई कष्ट नहीं होता इस जीवको, लेकिन जब उनका उदयकाल आता है, स्थिति पूरी होती है उस कालमें उन कर्मोंमें अनुभाग बनता है, फैलता है, उस कर्म विपाकमें भी कोई विकृति आती है। जब तक कर्ममें सत्ता थी विकृति नहीं आयी, जब उदयकाल आया तो विकृति आयी।

कर्मविपाकालमें कर्मकी उपयोग्यता—एक दृष्टान्त समयसारमें दिया कि

७-८ वर्षकी बालिका का विवाह हुआ किसी नवयुवक से अभी वह बच्ची अत्यल्प आयु है। वहां कोई प्रकार का विकार नहीं है, वह उपभोगके योग्य नहीं है। जिस काल में वह युवती हो जाती है तो क्या हुआ, विपाक काल आ गया अब वह उपभोग के योग्य हुई, इसीतरह जो कर्म सत्तामें पड़े हैं वे भी उपभोगके योग्य नहीं हैं, वे फलके योग्य हो जाते हैं। तो उन कर्मोंमें स्वयं रागद्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभकी प्रकृति है उसी पर उस उस नामका वह कर्म है वही बात उनमें उस काल में होती है। वे अचेतन हैं सो वे सब बातें कर्मके अनुभवमें न आयेंगी। भवनमें अवश्य हैं। पर पदार्थकी बात हमारे अनुभव में नहीं आ सकती। लेकिन बन्धन तो यही है, एक चेन्नावगाह ही तो है, जैसे वहां ऊधम मचाया उन कर्मों ने तो इसकी जानकारी से वे दूर कैसे हो सकते! भूलका तुरन्त ज्ञान में आया और चूंकि हम बुरे हैं, बुरी वासना लिए हैं, अनादि से खोटे संस्कार मैं पले हुए हैं तो जानने तक की बात नहीं रहती किन्तु जानने के ही साथ, भूलक के ही साथ हम उस ओर आकर्षित हो जाते हैं। हमारा उपयोग उस ओर पहुच जाता है, हम उसको अपनाने लगते हैं, और अपना करके हम अपने में बड़ा विकार उत्पन्न कर लेते हैं। तो ऐसा दुःख मेटने के लिए हमको कर्त्तव्य क्या करना है? कर्मानुभाग और तथाविधानुभव इनमें भेदविज्ञान करना चाहिए। वहां की बात क्या है, मैं क्या हूँ। और पुद्गल क्या है कर्म तो पुद्गल की हैं पुद्गल बात क्या है और मेरी बात क्या? ऐसा वहां भेदविज्ञान करना चाहिए। इस बात को समयसार में एक स्थल में बड़े ढंग से बताया गया है, कर्त्तकर्मधिकार में हुआ करें? कर्मविपाक, कर्म विकार हुआ ना। हां कर्म का जो विकार है, कर्म में जो स्वयं अपने आपकी दशा है वह कर्म में तन्मय है कि मेरे आत्मा में? वह कर्म में तन्मय है। विकल्प हुआ तो वह विकार कर्म में तन्मय है कि मुझ में! मुझ में। पुद्गल परिणामका, पुद्गल फल का ज्ञान हुआ, वह मुझ में तन्मय है और ज्ञान से आगे बढ़कर जो हम खिच गए, लीन हो गए अपना उपयोग बहुत रंग बिरंगा बना डाला यह बात किसमें तन्मय है, कर्म में कि मुझमें वह भी निज में तन्मय है। अब रंग बिरंगा उपयोग बना डालना ऐसी तन्मयता तो मेरे लिए है अहितरूप, उसे तो हटाओ और पुद्गल परिणामका ज्ञान, वह तो एक अनिवार्य है, उसे हम हटा नहीं सकते, हो रहा है उसके जाता रहो, और वह भी हटेगा। वह हटेगा जब हम पहिले से जातादृष्टा रह रह कर अपने आपमें दृष्टि बहुत बढ़ालें अपने आपमें सन्तुष्ट होने का हम काम पहिले बनालें तो मेरी इस तृप्ति के कारण से उन कर्मों की निरा हो जायगी। बन्धन दूर हो जायेंगे, विपाक ही न रहेगा, तब ज्ञान किसका किया जायगा ज्ञान यों ही सहज विद्युत् बन जायगा।

कर्मविपाक और उपयोगवृत्ति में भेदविज्ञान करने का कर्तव्य—हमारा इस समय कर्तव्य क्या है ? हम ऐसा समझें कि ये कर्मविपाक जितना जो कुछ हो रहा है, इसका मैं करने वाला नहीं हूँ। यह तो कर्मविपाक है, हो रहा है, इसका तो मैं ज्ञान कर सकने वाला हूँ, और जो लोग ज्ञान से आगे बढ़कर जाननहार देखनहार से आगे बढ़कर और कुछ फंसते हैं, और कुछ लगते हैं तो वे संसार परिभ्रमण करते हैं, उसका कर्तव्य है जो विकार का कर्ता है मगर अपने उपयोग के दुरुपयोग का कर्ता है, न कि पुदगल के विकार का कर्ता है, और विकार का कर्ता कहना यह भी अशुद्ध निश्चय की बात है। स्वभावतः तो यह अकर्ता है, तो तीन बातों का निर्णय करें, यह जीव पुदगल कर्म का कर्ता नहीं। पुदगल कर्म में आये हुए फल का कर्ता नहो किन्तु पुदगल के ज्ञान का कर्ता है। पुदगल के फल के ज्ञान का कर्ता है और कोई मोही जीव पुदगल कर्म के फल में लिप्त होता है और अपने उपयोग को विकृत करता है तो वह उसका भी कर्ता हो गया। पर वस्तुतः आत्मा उन पुदगल कर्मों का कर्ता नहीं है। पुदगल फल का कर्ता नहीं तो फिर उपयोग के विकार का कर्तव्य हम छोड़े भेद विज्ञान से। भेदविज्ञान ही एक ऐसा सुधा अमृत है कि जिसका पान करलें तो सदा के लिए संकट छूटते हैं। इस दुनिया में जिस प्रसंग में मनुष्य रह रहा है—घर घर में परिवार में, कुटुम्ब में, समाज में, लोगों में रह रहा है, इस ओर जिसकी दृष्टि है, इस ओर जो ख्याल करता है वह कीचड़ में फंस रहा है, उसे सन्तोष नहीं मिलता है और जो सबमें रहे तो और जंगल में जाकर अकेला रह जाये तो, जो अपने उपयोग को एकान्त में रख लेता है अर्थात् एक निज आत्म तत्त्व में ही अपना अभ्यास बनाता है, ऐसे अपने उपयोग का एकान्तधाम बना लेता है, निर्जन विवक्ति ऐसा अपने उपयोग को जो कोई बना ले, चाहे घर में बैठकर बना ले, बना सकता है, शान्ति पा लेगा। देखो आप करे तत्त्वज्ञान। कैसे सम्यक् बोध हो ? कैसे समीचीन तत्त्वज्ञान की बात जगे ? अभ्यास करें इसका। अब तत्त्वज्ञान की बात तो कुछ मन में लावे नहीं और घर छोड़कर जंगल चले गये तो क्या लाभ होगा ? जैसे पुष्पडाल की कथा है, वे घर छोड़कर चले गये, पर उन्हें अपनी कानी स्त्री का ख्याल रहा और मानो कोई सदगृहस्थ है ज्ञानी गृहस्थ, घर में रह रहा तो सँगे मध्य उसे आसक्ति नहीं होती। प्रायः कुछ ऐसा है कि जो चीज पास में नहीं है उसकी ओर ख्याल ज्यादा जाता है और जो चीज पास में हो उसका फिर ज्यादा ख्याल नहो होता है। वहाँ आपको ऐसे मौके मिलेंगे कि जरा अपनी भी दृष्टि बना लेंगे, परिवार के बीच रहकर भी भेदविज्ञान में कुशल बन सकेंगे। चाहिये दृष्टि, चाहिये एक लक्ष्य। इस लक्ष्य को प्राप्त करें और अपना जीवन सफल करें।

सम्यग्दर्शन के स्वरूपका शब्दों में दिग्दर्शन एवं सम्यग्दर्शन के गतिपथ की सफाई—:

सम्यग्दर्शन में दो शब्द हैं (१) सम्यक् (२) दर्शन सम्यक् का अर्थ है प्रशस्त, भला, उत्तम, तो सम्यग्दर्शनका अर्थ है कि सम्यक् में, सम्यक् के द्वारा सम्यक् के लिए ही सम्यक् निरखना इसे कहते हैं सम्यग्दर्शन। सम्यक् में सम्यक् है यह स्वयं सहज स्वभावी आत्मा इस आत्मा में सम्यक् के द्वारा अर्थात् एक भक्ति परिणति के बल से, विशुद्धि के बल से सम्यक् के लिए अर्थात् एक सही शान्तिपूर्ण वर्तना रहने के लिए सम्यक् को निरखना अर्थात् जो सहज स्वभाव है उसको अनुभवना, निरखना सो सम्यग्दर्शन बहुत ही सरल सहज सीधी वस्तु है तत्व है, जिसमें दूसरे का लपेट नहीं, जिसमें दूसरे की परतन्त्रता नहीं, आधार भी स्वयं है, वर्तता भी स्वयं है, ऐसा अपने आप में सम्यक् ससज स्वरूपका दर्शन है। अब बात एक सामने यह आती है कि सम्यग्दर्शन अब तक न था और अब हुआ है तो इसमें कोई कारण अवश्य होना चाहिए। जो अहेतुक होता है अनैमित्तिक होता वह अनादि से अन्नत काल तक वाता ही रहता है। पदार्थ में स्वयं ऐसी स्वच्छन्दता नहीं है कि वह अपने आप अपनी ही परिणति से, अपने ही स्वभाव से अपने ही निरोक्षतया जिस चाहें रूप परिणमें। उसे ऐसी जरूरत क्या पड़ी? अगर निरोक्ष पदार्थ है, पर उपाधि रहित पदार्थ है तो वह एक समान ही बर्तेगा। जैसे कि धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य और काल द्रव्य, ये अनादि से अनन्त काल तक एक प्रकार से बर्तते चले जा रहे हैं, जीव और पुद्गल से जो विभिन्ता पाई जाती है उस दशा के लिए यह नहीं कहा जा सकता कि द्रव्य में इतनी पर्याय में बंधी है, क्रम से निकल रही है, वे अपने स्वभाव से निकल रही है, और कोई कुछ चर्चा छेड़ दे, निमित्त की बात करे तो यों कहा जाता कि जो सामने हाजिर हो, उसे निमित्त कहा है, यद्यपि एक ही वस्तु की दृष्टि में तब तो यह है किन्तु एकान्त बाद में विकार स्वभाव बन जायगा सो व्यवस्था इस प्रकार नहीं बनती। व्यवस्था यह है कि योग्य उपादान अनुकूल निमित्त का सन्निधान पाकर स्वयं अपनी परिणति से वह उपादान अपने में अपना प्रभाव उत्पन्न कर लेता है। जैसे मैं तखत पर बैठा हूँ तो यह कहना कि जब मैं तखत पर ऐसा बैठूंगा तो तखत आगे हो जायगा लो इसका क्या अर्थ निकलता है? और ऐसा कहने में कौन सी बात सामने आती है कि तखत का निमित्त पाकर मैं अपनी शक्ति से, अपनी परिणति से अपने आप में अपना प्रभाव बनाकर बैठ गया, इसमें स्वतन्त्रता का कहाँ घात हुआ? स्वतन्त्रताका घात तो तब कहलाये जब निमित्त उपादान की परिणति करे। उपादान स्वयं परिणति न करे। मैं तो अपनी स्वतन्त्रता से अपने आप में ऐसा परिणमन करके बैठा, पर यह क्या गलत है कि इस तखतका निमित्त पाकर बैठा? इसमें कौन

सी बाधा है ? तिमित्त नैमित्तिक योग न हो तो विकार अवस्था कभी सम्भव ही नहीं हो सकती । निमित्त नैमित्तिक योग होने पर भी वस्तुमें अपने आपकी स्वतंत्रता है ।

सर्वा जीवोंमें सम्यक्त्वशक्तिका स्वभाव—यहां विचार यह किया जा रहा है कि सम्यग्दर्शन न था और अब हुआ तो कैसे हुआ तो कैसे हुआ ? तो बताया गया कि दर्शन मोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशमका निमित्त पाकर यह जीव अपने आपकी स्वच्छतासे, अपनी परिणतिसे अपने आपमें सम्यक्त्वलाभ लेता है । अब एक बात और सामने आती है कि यह सम्यक्त्वलाभ किन जीवोंको होता है ? तो उत्तर सही है । निकट भव्यों को सम्यक्त्वलाभ होता है । दूर भव्यों को भी होता है, पर उनका समय अधिक है, जब वे सम्यक्त्वकी पात्रता पायेंगे । तो निकट भव्यों से ही सम्यक्त्वलाभ होता है, दर्शनमोह का विनाश होता है, इसका कारण क्या है ? अन्य जीवों को क्यों नहीं होता जो कि निकट भव्य नहीं हैं, उसके अन्तरंग संभव नहीं, दर्शनमोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशम संभव नहीं । अतएव जो निकट भव्य हैं उनका दर्शन मोहका प्रतिपक्षी परिणाम, विशुद्ध परिणाम उत्पन्न होते हैं । निकट भव्यों के अतिरिक्त और भी भव्य हैं, उनके भी होता है, पर बहुत समय के बाद होता है । उनके अतिरिक्त एक दूरातिदूर भव्य हैं, जिनका नाम भव्य तो है पर उन्हें सम्यक्त्वलाभ कभी न होगा, मोक्षलाभ कभी न होगा, और चौथे कहलाते हैं अभव्य, जिनमें सम्यक्त्वलाभकी और मोक्षलाभकी योग्यता ही नहीं है । इतना होने पर भी सब जीवों में सम्यक्त्वगुण, चारित्र्य गुण, आनन्द गुण सब एक समयसे बर्त रहे हैं । कितनी ही विलक्षणता है कि जैसे भव्यों में सम्यक्त्व गुण है, शक्ति है उसी प्रकार की अभव्यमें भी है, मगर उस शक्ति के व्यक्त होने की योग्यता नहीं है । सम्यक्त्वकी शक्ति जरूरत ही क्या पड़ी ? केवलज्ञानकी शक्ति नहीं है, अभव्य में तो फिर केवलज्ञान वरण का क्या अर्थ रहा, उसके मानने की क्या आवश्यकता हुई ? केवलज्ञानावरण तो उसे ही कहते हैं कि जिसके होनेपर केवलज्ञान प्रकट न हो । तो केवलज्ञान की शक्ति तो है लेकिन अभव्य जीवमें शक्ति की व्यक्तिकी योग्यता नहीं है । एक दृष्टान्त लो जैसे एक सधवा सुशील महिला एक सुशील विधवा व एक बन्ध्या । सुशील महिला में पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति है और पुत्र उत्पन्न होता है, जैसे कि भव्य जीवोंमें सम्यक्त्व शक्ति है और उसकी व्यक्त होती है । अब सुशील विधवा की बात देखो—जैसे दूरातिदूर भव्य, उनमें सम्यक्त्व प्रकट

करने की शक्ति है, मगर सम्यक्त्व कभी प्रकट होता ही नहीं, जैसे कि सुशील विधवा में पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति है मगर वह तो सुशील है, सदाचारणी है। उसके जीवन में कभी पुत्र उत्पन्न होगा नहीं मगर पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति की व्यक्ति की योग्यता है कि नहीं ? है, और बंध्या में पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति तो है मगर उस शक्ति की व्यक्ति की योग्यता नहीं है। यहाँ आप जरा सोचिये। आप कहेंगे कि बंध्या में तो पुत्र उत्पन्न करने की शक्ति ही नहीं है सो बात गलत है। अगर शक्ति न होती तो वह स्त्री ही न बनती। स्त्री है, पुत्र उत्पन्न करने की उसमें शक्ति है मगर उस शक्ति के व्यक्त करने की उसमें योग्यता नहीं है। यह बात कुछ गहराई से समझने पर समझ में आयेगी। इसी तरह अभ्रम जीव में भी केवल ज्ञान की सम्यक्त्व की शक्ति है मगर उस शक्ति के व्यक्त करने की योग्यता नहीं हो सकती। तो यों यहाँ तक यह बात सिद्ध की गयी कि दर्शन मोह का उपशम, क्षय, क्षयोपशम निमित्त है, और सम्यग्दर्शन उस जीव को अवकरण, अपूर्वकरण और अनवृत्तिकरणपूर्वक अपने उपादान से प्रकट होता है।

निमित्तनैमित्तिक संबंध और वस्तुस्वातन्त्र्यका संगम—देखो निमित्त और उपादान के बारे में यह जिज्ञासा बनी है कि इसमें तथ्य कहाँ है ? निमित्त नैमित्तिक सम्बंध है या नहीं ? निमित्त उपादान में परिणति कराता है या नहीं या उपादान स्वयं निरपेक्ष परिणति करता है। कुछ ऐसी जिज्ञासायें लोगो को बनी रहती हैं। इस विषय में तथ्य है कि जिसे अध्यात्म सूत्र के एक सूत्र में कहा है कि “निमित्तं प्राप्योपादानं स्वप्रभाववत्” अर्थात् निमित्त को पाकर उपादान अपने प्रभाव वाला होता है। इन शब्दों में सब समाधान आ गए। निमित्त पाये बिना विकार भाव नहीं होता तिसपर भी निमित्त उपादान में विकार परिणति को नहीं करता। निमित्त अपने आपमें अपने ही विकार को करता है और उपादान अपने आपमें अपने ही विकार को करता है, पर जितने भी विकार होते हैं ये पर निमित्त का सन्निधान पाये बिना हो जाये तो वे स्वभाव कहलायेंगे, विकार नहीं कहला सकते तो उस सम्बंध में इतना ही एक निश्चय है कि निमित्त के सन्निधान बिना विकार होता नहीं और निमित्त उपादान में विकार परिणति करता नहीं। उपादान ही विकार परिणति करता है अपने आपकी करण शक्ति द्वारा, पर निमित्त सन्निधान बिना यह बात नहीं हो सकती। दृष्टान्त के लिए स्पष्ट उदाहरण ले लो। एक दर्पण के सामने हाथ किया तो दर्पण में जो छाया आयी वह हाथ की छाया आयी। हाथ के सन्निधान न होने पर तो नहीं आ सकती, लेकिन हाथ ने कुछ दर्पण में छायारूप परिणति की हो सो बात नहीं। हाथ जो कुछ कर सकेगा वह अपने आपमें कर सकेगा। अपना रूप बदले, अपना रस बदले, अपना स्पर्श

बदले, अपनी क्रिया करे, अपने में चेष्टा करें, जो हो सो यहां होगा और दर्पण में छाया रूप परिणति होगी तो वह दर्पण की शक्ति से दर्पण की परिणति से ही होगी। मगर सामने बात तो स्पष्ट है कि हाथ का सन्निधान निमित्त पाकर दर्पण ने अपने में छाया परिणति की। अब इसमें समझे कि क्या, ये शब्द ठीक लग रहे कि दर्पण में जब छाया होने को हुई तो हाथ को हाजिर होना पड़ा ? अरे यह सहज निमित्त नैमित्तिक। योग है कि हाथ का सन्निधान पाये तो यह दर्पण छाया रूप परिणम जाय। अब इन शब्दों में कोई यह कहें कि तब तो दर्पण की परिणति परतंत्र हो गई। अरे वह स्वतंत्र है, पर स्वतंत्र का अर्थ है कि दर्पण में दर्पणकी योग्यता से, दर्पणकी परिणतिसे करण शक्तिसे छाया हुई, पर उसमें यह अर्थ नहीं है कि वह परसन्निधान न हो तो भी वह उस रूप परिणम स्वतंत्र परिणतिका अर्थ है कि अपनी ही शक्तिसे अपनेमें परिणमन करें।

स्वभावदर्शनके लिये ही नयोंकी उपयोगिता—देखिये प्रयोजन की बात क्या है ? जान लो सब बातें। अपने लिए लाखों और करोड़ों बातों में सार बात क्या है ? स्वभाव-दर्शन। एक ही इस स्वभाव दर्शन के प्रयोग में लग रहे। यह मानव जन्म बड़ी मुश्किल से प्राप्त हुआ है, यह रागद्वेष विकल्प विकार करने के लिए नहीं है, यहां जो कोई यह उपाय कर लेगा कि स्वभाव दर्शन, अपने में अपने स्वभाव की दृष्टि बनाले। वह कृतार्थ हो जावेगा। बस अपने को चाहिए स्वभाव दर्शन, क्योंकि स्वभाव की दृष्टि, स्वभाव के दर्शन, अपने सहज ज्ञानमात्र की रुचि, उसमें लीनता बिना शान्ति और मुक्ति हो नहीं सकती। एक यह अमिट विर्णय है। आपको स्वभावदर्शन चाहिए और स्वभाव दर्शन के लिए ही सारे प्रतिबोध बनाये गये। यह तो बड़े सुभीते की बात है प्रमाण से जानो, नय से जानो और फिर प्रमाण नय सबको छोड़कर एक निर्विकल्प प्रतिभास से जानो। देखो दोनों आंखें मूंद सोच कर दाहिनी आंख से हम देख सकते हैं ना ? देख सकते हैं। दाहिनी आंख बन्द करके बाई आंख से भी देख सकते हैं ना ? देख सकते हैं। दोनों आंखें खोलकर देखते हैं ना, देखते ही हैं, और दोनों आंखों को बन्द करके भी हम कुछ देखते हैं ना ? देखते हैं। इसी तरह जानने के साधन हमारे चार हैं (१) निश्चयनय (२) व्यवहारनय (३) प्रमाण और अनुभव। निश्चयनय को समझिये दाहिनी आंख, व्यवहारनय को समझिये बाई आंख, प्रमाण को समझिये दोनों आंखें और अनुभव समझिये नय और प्रमाण तीनों को बंद करके एक जो अन्तर्दशा है उसे। हम व्यवहारनय को गौण करके निश्चयनय से देखें तो देखते हैं ना ? जानते हैं ? अब आंखों को बन्द करके दाहिनी आंख से देखें और बीच में थोड़ा बन्द करे कराने में ही बांयी आंख से देखने का पौष्ट्य करें तो वह अटपट लगता है। दाहिनी आंख

२४६

से देखना चाहते हो तो बाईं आंख को पूरा बंद करके देखते रहो, क्या हानि है ? निश्चयनय से आप वस्तु का स्वरूप जानना चाहते हैं तो व्यवहारनय को गौण करके देखते रहो। बन्द करके शब्द यों नहीं कह रहे कि संस्कार में, ज्ञान में अगर व्यवहारनय का विरोध है तो वह निपट अज्ञान है और उसमें कभी मुक्ति सम्भव नहीं है इसलिए व्यवहारनय को बन्द करके न कहना, किन्तु व्यवहारनय को गौण करके कहना, क्योंकि प्रमाण से ग्रहण किये गए अर्थ में किसी एक दृष्टि से देखने को नय कहते हैं। प्रमाण से तो वह जाने और निश्चय व्यवहार दोनों नयों से ज्ञान होता है। पर प्रमाण से जान कर अब व्यवहार नयको गौण करके निश्चय से देखिये तो सब देखिये, द्रव्य अपने में अपने द्वारा अपनी परिणति से परिणमता रहता है। यह बात सत्य है। इसमें किसी भी प्रकार का कोई विवाद नहीं है। अच्छा अब व्यवहारनय से देखिये, निश्चयनय को गौण कर लीजिये। निश्चयनय को बंद करके मत देखिये यदि निश्चयनय को बंद करके व्यवहारनय से देखा तो मिथ्या हो जायगा, क्योंकि प्रमाण से ज्ञात किये गए पदार्थ में ही किसी एक दृष्टि को ग्रहण करने को नय कहते हैं। निश्चयनय की बात जानिये, संस्कार में रखा समझिये। अब कुछ परिस्थिति है, प्रयोजन है, अतः व्यवहारनय से जाने। अब इन प्रसंग में निश्चयनयको गौण करके व्यवहार नय से देख रहे तो यों देखा जायगा कि ये विकार कर्म विपाक का निमित्त पाकर आत्मा में उत्पन्न हुए हैं। व्यवहारनय यह न कहेगा कि यह राग अनुभव, यह चैतन्यदायक कर्म में हुआ है। व्यवहारनय यों न कहेगा कि कर्म ने चेतन में राग उत्पन्न किया है। जब किसी किसी प्रसंग में कर्त्तव्य की बात व्यवहारनयकी की गई हो कि व्यवहारनय का कर्म जीव में राग कराना है तो वह व्यवहारनय नहीं है किन्तु उपचार से कहा हुआ है उपचरित व्यवहार हो तो उपचार मिथ्या हुआ। वह नयसे परे की बात है, पर नयको मिथ्या नहीं बोलते। सम्यक श्रुतज्ञान के अंश है निश्चयनय और व्यवहारनय, पर व्यवहारनय कर्त्ता कर्म की बात नहीं कहता। कर्त्ता कर्म की बात एक द्रव्य से दूसरे द्रव्य में उपचार से कही है और ज्यों ही व्यवहार में उपचार का मुंह करके बोलेंगे तो यह भाषा उपचार की बनती है भले ही व्यवहार शब्द से कहा हो पर उसमें निर्णय रखना कि यह व्यवहार की भाषा नहीं है, किन्तु उपचार को साथ लेकर व्यवहार की भाषा बनाई गई है। उपचार मिथ्या है, व्यवहार मिथ्या नहीं। व्यवहारनय ने तो एक घटना बतादी। कर्मविपाक का निमित्त पाकर जीव में राग परिणति हुई है, बात भी बहुत समझने की है और बारबार यदि उस पर उपयोग लगायें तो भेद विज्ञान की बड़ी दृढ़ता आयगी।

प्रकट भिन्न अचेतन परिग्रह से आत्मतत्त्व की निमित्तता-भैया जैसे सामने कोई

रस्सी पड़ी है। उसमें सांप का भ्रम हो गया तो हम उसके पास जाने में डरते हैं। जरा हिम्मत बांधकर चले यह सोचकर कि देखें तो सही कि यह सांप है कैसा? जब कुछ आगे बढ़े तो सोचा कि अरे इसमें तो जरा भी चल विचल नहीं हो रहा। कुछ और पास गए तो देखा कि अरे यह तो कोरी रस्सी है। जब वह रस्सी को रस्सी समझ गया तो फिर क्या भ्रम में पड़ता है? क्या वह पहिले जैसा डरता है? अरे अब उसके ज्ञान को कोई बदल नहीं सकता। उसी तरह भेदविज्ञान जो बात निरखता है उस बात को अपने पर धटा कर समझो, यदि तथ्य निरख में आजायगा तो उसे स्पष्ट हो जायगा कि भेदविज्ञान की कितनी उत्कृष्ट उपयोगिता है। हमें भेदविज्ञान करना है। किममें भेदविज्ञान करना है? दो बातें होंगी तो, तब ही तो भेदविज्ञान की बात कहेंगे। यह इससे अलग है, यह जुदा है, यह जुदा है। दो को समझना है ना, तो दो को समझिये, स्व और परको, स्व तो एक है पर अनेक हैं। पर में किस किस को समझना है? चलो पहले तो यही एक मोटी बात है कि धन वैभव से अपने को जुदा समझें। जुदा हर एक कोई समझ रहा है, पर भीतर में मोह की प्रेरणा ऐसी है कि बाहर में ही पड़े रहते हैं। किसको समझ नहीं है कि मकान मेरे से अलग है। अज्ञानी भी जानता है कि मकान मेरे से अलग है। मैं इतना हूँ। भले ही शरीर तक को समझता कि यह मैं हूँ और मेरे से यह मकान वैभव अलग है फिर भी मोह की ऐसी प्रेरणा है कि अलग क्षेत्र में रहने वाले मकान आदिक से भी इसका ऐसा लगाव है कि उसको वैराग्य नहीं जगता।

चेतन परिग्रहसे आत्मतत्त्वकी विविक्तता—अच्छा, अब अपने को कुटुम्ब से अलग निरखो। देखो अचेतन वैभव से चेतन परिग्रह के लगावसे उलझन अधिक बढ़ जाती है। अचेतन परिग्रह से चेतन परिग्रह जबरदस्त और कठिन है। कैसे कि अचेतन परिग्रहसे हम राग करते हैं तो अचेतन की और से कोई ऐसी चेष्टा नहीं होती जो हमारा राग बढ़ानेका कारण बने। मकान तो जहां खड़ा है सो खड़ा है, चीज तो जहां रखी है सो रखी है, इसकी और से कोई चेष्टा ऐसी नहीं होती कि जो हमारा राग बढ़ानेका आश्रय बने! यह तो हम अकेले ही अपनी ओर से साधनोंमें राग करते हैं। कम इस घटनामें अन्तर निमित्त है उसकी बात नहीं टाल रहे! उपयोगके विकारके आश्रयभूतके लिए बात कह रहे हैं कि हम अपनी ओर से ही इन अचेतन पदार्थोंमें राग लपेटे हुए हैं मगर चेतन परिग्रह वे छोटे-छोटे बच्चे और नई नई स्त्री उससे जब बात करता है, प्रेम करता है तो वह पुरुष तों उसको और से भी राग की प्रेरणा पाता है। राग भरे शब्द स्त्री आदिके निकलते, हाव भाव निकलते, कटाक्ष होते, बच्चे तोतले बोल बोलते, उनको सुन-सुनकर

इस जीवमें राग बढ़नेका एक मोका होता है। तो अचेतन परिग्रह से चेतन परिग्रह कठिन है जैसे कुपूत से सुपूत ज्यादा कठिन होता है। अगर पुत्र कुपूत हो गया तो वह उतना कष्टकारक नहीं जितना कि सुपूत। पिताको वरबाद करने वाला, कठिन लगने वाला, विपत्तिमें डालने वाला है वह सुपूत। अगर पुत्र कुपूत हो गया तो उससे आप कुछ अपना मतलब ही नहीं रखते। उसे चाहे जहां जो कुछ हो, बल्कि आप अखबारोंमें भी निकाल देते कि अब इस पुत्र से मेरा कुछ सम्बंध नहीं। लो सारा झगड़ा मिट गया, और अगर पुत्र सुपूत हुआ तो उसके पीछे जीवन भर आपको बड़ा परिश्रम करना पड़ेगा, उसका लक्ष्य रखकर-मैं इसे इतना धन कमा जाऊँ कि यह जिन्दगी भर सुखी रहे। तो देखिये जिन्दगी भर मरे उस सुपूतकी वजह से। यो समझिये कि अचेतन से चेतन परिग्रह कठिन है,

विकार निर्माण विधि—निमित्त नैमित्तिक भाव के प्रसंगमें यह भी बात खास करके समझ लीजिए कि जिस बातकी चर्चा बहुत कम है। प्रसिद्धि नहीं है या कोई लोग जानते तो भी नहीं बताना चाहते। जीवके विकार होनेमें, रागद्वेष होनेमें तीन प्रसंग होते हैं (१) निमित्त, (२) उपादन और (३) आश्रय भूत। आश्रय भूत की बात लोग कोई जानकर नहीं कहते, अथवा उसकी प्रसिद्धि नहीं है। पर तीनों बातें समझनेसे एक बहुत बड़ी दिशा मिलेगी। रागभाव हुआ तो उसमें निमित्त कारण, उपादान कारण और आश्रय भूत कारण, ये तीन प्रसंग आते हैं। क्या? राग प्रकृतिका उदय, यह तो है निमित्त कारण और यह जीव रागपरिणामन जो कर रहा है वह है उपादान कारण, मगर राग परिणाम व्यक्त बनता तभी है ना कि जब किसी की ओर लक्ष्य हो, किसीका ख्याल हो, किसी पर राग हो रहा हो। तो जिस वस्तुको ख्यालमें लाकर राग करते-मानो पुत्र को ख्याल में लाकर राग करते तो पुत्र हुआ आश्रय भूत। आश्रय भूत के साथ नैमित्तिक कार्य होने का नियम नहीं है, विभाव हो अथवा न भी हो। जैसे—मुनि महाराजको आश्रय भूत नहीं बन पाता वही पुत्र जो कि पहिले गृहस्थावस्था में आश्रयभूत था। तो आश्रयभूत कारणमें कोई कार्यकी नियमकता नहीं है। पर निमित्त कारण में नैमित्तिक कार्य होने का नियम है। इसका अदिनाभाव सम्बंध है। निमित्त न होने पर विकार नहीं होता, निमित्त के होने पर ही विकार हो सकता है, आश्रयभूत के साथ ऐसा नियम है कि पुत्र के होने पर ही राग हो सकता है या पुत्र के न होने पर राग नहीं हो सकता है। दोनों तरह से नियम नहीं है। देखिये आश्रयभूत में

नियामकता नहीं है, इससे कभी यह शंका न करें कि देखो यह जीव समवशरण में गया और सम्यक्त्व न हुआ। तो निमित्त कारण कुछ नहीं है, उसे उलाहना मत दो, क्योंकि समवशरणमें जाना सम्यक्त्व का निमित्त कारण नहीं, भगवान के दर्शन करना सम्यक्त्व का निमित्त कारण नहीं। वंदना जातिस्मरण या दूसरे से उपदेश सुनना सम्यक्त्व का निमित्त कारण नहीं, ये सब आश्रयभूत कारण हैं। निमित्त कारण तो वह है जिसका कार्य के साथ अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध हो, हाँ परस्पर निमित्त उपादानमें अत्यन्ताभाव तो जरूर है। अध्यात्मसूत्र के एक सूत्रमें आया—अत्यन्ताभाव बदन्यव्यतिरेक सम्बन्ध वच्छिन्नानि-निमित्तानि ॥ ये सब बातें समझनेका प्रयोजन क्या रहा? स्वभावदर्शन का लाभ स्वभाव की ओर आना। इसी के लिए सारे प्रयास हैं,

चारों अनुयोगों की स्वभावदर्शनप्रयोजकता:—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग, इन सब शास्त्रों का प्रयोजन यह है कि यह पुरुष स्वभावदृष्टि की ओर लगे। जब कथा में पढ़ते हैं तो वहां कुछ उत्साह जगता है ना, कुछ वैराग्य की बात आती है ना, कुछ उमंग उठती है ना, जब चरणानुयोग के शास्त्र पढ़ते हैं तो इसमें यह बात सीखते हैं कि देखो अध्यवसान परिणाम निराश्रय नहीं होते। समयसार में स्पष्ट घोषणा की है कि बाह्य वस्तु का आश्रय किए बिना रागादिक भाव अपना स्वरूप नहीं बना पाते। चरणानु-बोग हमें यह शिक्षा देता है कि तुम अध्यवसान के आश्रयभूत पदार्थों का परित्याग करो। यह ही तो चरणानुयोग कहलाता है। अब उसके साथ कोई यदि बाहर बाहर ही दृष्टि रमाकर रह जाय कि बाहरी चीज का त्याग करें तो काम न चलेगा। यह बाह्य पदार्थों का त्याग किस लिए किया कि मेरे में रागभाव न हो। अब बाह्य पदार्थों का हम ख्याल कर करके राग कर रहे और बाह्य पदार्थों को छोड़े रहे तो यह करने की बात नहीं है। ख्याल ही मत करें उसका। यह तो है छोड़े रहना। बाहर से छोड़ दिया, ख्याल में नहीं छोड़ा तो वह छोड़ना नहीं कहलाया। मगर एक अवसर जरूरदस्ती में भी आ सकता कि मानो छोड़ दिया ओर ख्याल में आता रहता है; कभी ख्याल मिट भी जायगा। जैसे कोई पुरुष घर में मर जाता है तो वह उन घर वालों से छूट ही तो जाता है मगर उसका कुछ दिनों तक ख्याल बना रहता है। तो ऐसे ही विषयों का त्याग भी करें, कषायें भी मंद करें तो न भी हो अधिक ज्ञान तो भी वह उससे कुछ न कुछ लाभ उठा लेता है। व्रत, तप, संयम आदि हानि कारक नहीं हैं, पर हानिकारक हैं ये तीव्र कषायें। कषायों की तीव्रता में आकर व्रत करें कोई तो वह हानिकारक है, मंदकषाय करे और सम्यक ज्ञान न जगे तो भी मंद कषाय से व्रत तप करे तो मोक्षमार्ग का लाभ तो न होगा मगर हां कुछ लाभ है। जब तक रहेगा तब तक उस

की दशा ठीक होती रहेगी। मोक्षमार्गका लाभ होता है सम्यग्दर्शन में। तो उस स्वभावदर्श के लिए ये सारे उपाय किए गए। करणानुयोग में भी जब गुणस्थानों में होने की दशा का वर्णन करते हैं, जानते हैं और उसमें उपयोग लगाते हैं तो एक तो उपयोग लगने से बाह्य विषय कषायों का उपयोग दूर हुआ और फिर उसमें गुरुजनों की एक ज्ञानशीलता उनकी सम्यग्दृष्टिता, उनका एक भाव यह भी रचयिता का अनुमान में आता है और परिस्थितियां भी जो हैं वे भी मोक्षमार्ग की प्रेरक होती हैं, सभी शास्त्र स्वभावदर्शन के अनुरूप भाव कराने वाले हैं, उस स्वभावदर्शन की ही बात यहां देख लीजिए।

आश्रयभूतकारणर कारणत्वका उपचार:—ये आश्रयभूत पदार्थ मेरे में राग नहीं कराते, ये याग के कारण भी हैं, किन्तु मैं ही विकल्प करके इनका ख्याल करते हुए मैं ही इन्हें निमित्त बनाता हूँ। जैसे कहते हैं ना कि जब यह राग करे तो पर पदार्थ निमित्त बन जाता है। उस पर निमित्तका उपचार होता है यह बात आश्रयभूत के साथ ही लगावें कि जब यह जीव राग करता है, जब यह राग करने को होता है तो जो हाजिर हो वह कारण बन जाता है। यह बात आश्रयभूत के साथ लगी है। और चूंकि जीव को आश्रयभूत पदार्थ सामने दीखा करता है तो उनके साथ जो बात होती है उसी बात का और जगह जिक्र कर देते हैं। करें क्या? जिसके सम्बन्ध में विशेष जानकारी नहीं है उसके बारे में जो एक रूढ़ि चलती आयी है उस तरह की बात लगा देते हैं। जैसे जब पहिले ट्रेन निकली थी। लोगों को पता पड़ गया कि भाई अमुक दिन रेलगाड़ी निकलेगी तो गांव के देहात के आदमी बहुत से जुड़कर आये होंगे तो वे देखकर यहीं कहते होंगे कि इस रेल में जो आगे काला काला है उसमें काली देवी रहती है वह इस गाड़ी को चलाती रहती है। जब समय में ही न आया कि ऐसा निमित्त नैमित्तक योग है कि जिससे यह चल रही है तो वे उसमें काली देवी की कल्पना कर बैठे, तो इसी तरह हम जो आश्रयभूत पदार्थ के साथ जो बात देखते हैं, क्या कि जब जीव राग करने को होता है तो बाहरी पदार्थ जो हाजिर हुआ वह निमित्त बन जाता है। यह बात आश्रयभूत पदार्थ के साथ फिट बैठती है। जब इस जीव को क्रोधप्रवृत्ति होती है तो सामने नौकर आये तो उसे ही देखकर कोई न कोई बात उमड़ जाती है। कभी-कभी प्रयोजनवश किसी पर ख्याल करके राना उमड़ जावे और कभी बिना प्रयोजन के भी उमड़ जाता है तो यह आश्रयभूत कारण के साथ तो फिट बैठता है पर निमित्त कारण के साथ फिट नहीं बैठता है, कि जब जीव में राग की परिणति आने को होती तो उस समय निमित्त को हाजिर होना पड़ता। यह निमित्त के साथ नहीं है, किन्तु ऐसा सहज योग है निमित्त का सन्निधान या कर योग्य उपरान्त अपनी परिणामशक्ति से विकार।

करता है ।

जीव विकार में कर्म दशा के निमित्तत्वका दिग्दर्शन—सत्ता में पड़े हैं कर्म, और उनकी स्थिति पड़ी थी उनकी स्थिति जब पूरी होती है तो उदयकाल आता ही है अथवा किन्हीं विशुद्ध परिणामों से अथवा किन्हीं परिणामों से बाहर उदीरणसे बाहर उदीरणा कर दी तो उदीरणा का भी भाव यही है कि उनका समय पूरा हो गया । उदीरणा में तो समय से पहिले समय में पार कर देगा और उदय में अपने आप निश्चित समय में पार कर देने में आखिरी हुआ, तो स्थिति पार होते समय ही वे कर्मवियाक निमित्त हैं । उस निमित्त का सन्निधान पाकर चूँकि यह जीव उपयोग स्वरूप है तो इसमें उस कर्म का विपाक, कर्म की दशा, कर्म का उद्यम, कर्म का क्षोभ वह अनुभव करता है, और न उसे जीव करता, क्योंकि कर्म अपने परिणाम को भी नहीं जानता, अपने परिणाम के फल को नहीं जानता, अपने को नहीं जानता तो वे कर्म अपने आप में होने वाले राग का तो अनुभव क्या करे ? मगर राग प्रकृति का उदय आने पर उसमें राग है । जैसे कपड़ा लाल है तो लाल है । कपड़ा अनुभव नहीं करता कि मैं लाल हूँ । उस कपड़े में लालिमा है और हमने उसकी लालिमा का अनुभव किया तो हमारे उपयोग में भी लालिमा आयी । अगर हमने लाल कपड़ा देखा तो कपड़े में भी लालिमा है और हमारे उपयोग में भी लालिमा है । कपड़े की लालिमा तो है अचेतन और उपयोग में जो लालिमा आयी वह है चेतन लालिमा । तो हम न तो इस कपड़े की लालिमा का अनुभव करते न कपड़ा अपनी लालिमा का अनुभव करता किन्तु उस लालिमा को विषय करके हमारे उपयोग में जो लालिमा का परिचय हुआ है उसके ज्ञान का हम अनुभव करते हैं । यह ही बात वहाँ रख लीगिए । कर्म विपाक हुआ, कर्म में क्षोभ हुआ, राग, क्रोध, मान, माया, लोभ हुए, बतते ना, मिथ्यात्व भी दो तरह का है, विषय भी दो तरह का है । इस कर्म की भी कुछ बात हुई जो कर्म में हुई । वह मेरे क्षेत्रावगाह में है ना, तो वह उपयोग से बाहर नहीं जा सकता । उपयोग में छलका और तुरन्त यह मोही जीव उसे अपना लेता है । यह दशा बनती है । तो यहाँ यह जानना कि कर्म ने रागभाव नहीं किया । जीव का राग कर्म ने नहीं किया, कर्म का राग कर्म ने किया जाव का राग जीव ने किया, मगर ऐसा सहज योग है कि कर्म के राग का निमित्त पाकर इस जीव ने अपने में राग परिणति को । निमित्त नैमित्तिक योग भी है और वस्तु स्वतंत्रय भी है कि तना एक स्पष्ट वर्णन है, कहीं विवाद का काम नहीं एक तो यह बात । दूसरी बात जो कुछ थोड़ा अपने प्रवाह में परम्परा में कुछ थोड़ी बहुत एक अटकोव सा हो गया वह एक अटकव हो गया मुनियों को मानने न मानने का । पर जरा गम्भीरता से तो सोचिये मुनि क्या है ? एक साधक याने आत्मशुद्धि के लिए जिसने अपनी तैयारी की हो उसे कहते हैं साधक ।

साधक कहीं निर्दोष हो सकता है क्या ? अगर निर्दोष है तो साधक क्यों बन रहे हैं । जितने साधक हैं वे साधना करेंगे तो उनमें कुछ दोष भी रहेंगे और उन दोषों को दूर करने का निरन्तर प्रयत्न करते रहेंगे । यथार्थता ध्यानमें रखिये । व्यर्थ विकल्प करके अपना समय खोटा न कीजिये ।

ज्ञान अपरिमित लोक व अनन्तकालके बीच थोड़े से क्षेत्र व कालमें पर्याय का यश चाहने का दुष्परिणाम—जगत की कितनी ही बातों का परिचय कर लेना, बहुत सी बातों को समझ लेना और एक अपने आत्माकी बातकी सुध न होना, ऐसी अगर स्थिति है तो चाहे वह जगत का बड़ा से बड़ा वैज्ञानिक हो जाय तो भी वह शान्तिका पात्र नहीं है, और कोई पुरुष बहुत-बहुत बातें नहीं भी जान पाता, नहीं बोल पाता और एक अपने आपके अन्तस्तत्त्वकी परख कर लेता है जो बहुत सुगम है, स्वाधीन है, सहज है, कठिन नहीं, एक दृष्टि द्वारा साध्य है तो आत्मतत्त्व की परखकर लेने वाला पुरुष ज्ञानी है, शान्तिका पात्र है, जन्म मरणकी विपदासे दूर हो जायगा । तो उस अन्तस्तत्त्वकी परख करने के लिए दो बातोंका सही निर्णय करना बहुत आवश्यक है । (१) वस्तुस्वातंत्र्य और (२) निमित्त नैमित्तिक भाव । यह बात केवल सुन लेने की नहीं है, बोलने मात्र की नहीं है, किन्तु अपने आपमें घटत करके समझने की बात है । जीवका धन केवल ज्ञान ही है, दूसरा कुछ नहीं । वे लोग तो गरीब हैं दीन हीन हैं जो बाह्य वैभवमें, धनमें दृष्टि लगाये हैं और अपना बड़प्पन समझते हैं । वे तो संसारसंतति के बढ़ानेका ही प्रयत्न कर रहे हैं । है उनमें भी परमात्मरूप, पर अपने उस स्वरूपकी दृष्टि न करने से उनका जीवन व्यर्थ ही जा रहा है । मोटे रूप से सोचो कि यह सारा लोक कितना बड़ा है ? जिसे बतलाया है ३४३ धनराजू प्रमाण । उसके सानने यह परिचय वाला क्षेत्र कितना है । जैसे समुद्र के आगे एक बिन्दु । इतनी बिन्दु भर जगह में पर्यायबुद्धि के कारण नामवरी की बात कोई सोचे तो वह मूढ़ता है और कितनी हानि कर रहा है । काल कितना गुजर गया ? अनन्तकाल । आगे कितना गुजरेगा ! अनन्तकाल उस समस्त काल के आगे आजकी पायी हुई यह १००-५० वर्ष की जिन्दगी या जिसने हजारों, लाखों, करोड़ों वर्षकी जिन्दगी पायी हो, सागरपर्यन्तकी भी जिन्दगी क्यों न पायी हों, पर वह एक बूँद माफिक भी नहीं है । जैसे समुद्रके आगे एक बूँद की गिनती है उतनी भी गिनती नहीं है, क्योंकि काल अनन्त है । तो जरा सें जीवनके लिए अपनेको महान समझना, दूसरों को तुच्छ समझना, पर्यायबुद्धि करना, पाये हुए समागमों में मोह ममता करके इस जीवन को गुजार देना यह सब मूढ़ता है और यह इतना बड़ा अपराध है कि जिसके फलमें

कीड़ा मकोड़ा पेड़ पौधा आदिक होकर नाना यातनायें सहनी पड़ेगी ।

अनन्तानन्त जीवोंमें से न कुछ संख्याके कुछ जीवोंमें यशका विकल्प बनाकर अपने को बरबाद करनेका दुष्परिणाम—जगतमें जीव कितने हैं ? अनन्तानन्त । यह मनुष्य मोहवश ऐसा चाहता है कि लोग मेरी तारीफ करें । कितने लोग तारीफ करें ? क्या इस गांव के सभी लोग तारीफ करें लगे ।***अरे गांवके ही क्या, इस देश के भी सभी लोग तारीफ करें । मगर ऐसा कभी हो सकता है क्या ? प्रथम तो व्यावहारिक दृष्टिसे ऐसा कोई मनुष्य न मिलेगा, तीर्थकर भी न मिलेगा कि जिसकी सभी मनुष्य तारीफ करते हों । कुछ मान भी लो तो जगतके अनन्त जीवों पर दृष्टि दें तो उन अनन्त जीवोंके समक्ष यह कितनी सो संख्या है ? ये कुछ करोड़ मनुष्य उन अनन्त जीवों के समक्ष कुछ भी तो गिनती नहीं रखते । कितने जीव हैं संसार में***अनन्तानन्त । जिसका अनुमान यों कर सकते कि सबसे कम जीव तो मनुष्य हैं । दोनों तरहके मनुष्योंको जोड़ लें तो भी सबसे कम हैं दो तरह के मनुष्य कौन से ? एक तो जो शरीरधारी ऐसे दिखने वाले हैं, जिन्हें पर्याप्त मनुष्य कहते हैं, ये कुछ संख्या में ही हैं, पर असंख्या मनुष्य वे हैं जो निगोद की तरह यातनायें भोगते एक २ स्वांस में १८ बार जन्म मरण करते और कांख आदिक से पैदा होते रहते, वे सम्मूदर्छन हैं, उन सब मनुष्यों को भी जोड़ लो, तो सब गुतियों से कम मनुष्य हैं । उनसे अनगिनते गुने हैं नरकगतिके जीव । उनसे अनगिनते गुने हैं देवगतिके जीव और देवों से अनगिनते गुने हैं त्रस जीव और त्रस जीवोंसे अनगिनते गुने हैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और प्रत्येक वनस्पति और उनसे अनन्त गुने हैं सिद्ध भगवान और सिद्ध भगवान से भी अनन्त गुने जीव हैं निगोद जिनके बारे में बताया है कि अब तक जितने सिद्ध हुए हैं वे सब सिद्ध अभव्यों से तो अनन्त गुने हैं मगर निगोद से अनन्त वें भाग हैं, और इतने अनन्त वें भाग हैं कि अनन्त काल के बाद भी यह ही कहा जायगा कि अब तक जितने सिद्ध हुए हैं वे निगोद के अनन्तवें भाग हैं । तो जगत के जीवोंकी संख्या समझलो, और यहां सन्तोष करो कि अगर कुछ हजार मनुष्योंने मुझे बुरा कहा तो कहने दो, उससे बुरा क्या हुआ ? कुछ हजार लोगों ने भला कह दिया तो उससे भला क्या हुआ । मेरा बड़प्पन यदि भगवान के ज्ञानमें झलक रहा हो तो वह तो मेरी सच्ची बात है । बाकी यहांका क्या ? तो ऐसे संसारकी बात समझकर यहां मुग्ध न होना और जैसे अपने आत्माका हित हो उस प्रकारका ज्ञान बनाना, चिन्तन करना, मनन करना यह ही एक इस विनश्वर जीवन का लाभ है ।

वस्तुस्वातन्त्र्य व निमित्तनैमित्तिक भावकी समझमें शौर्य और स्वच्छता का अभ्युदय—दो बातें, निमित्त नैमित्तिक भाव व वस्तुस्वातन्त्र्य निर्णय में आये तो अपना आत्मतत्त्व, अपना सहज स्वरूप और जगत का वास्तविक रूप दृष्टि में सामने रह सकता है। वस्तुस्वातन्त्र्य तो यही है कि प्रत्येक पदार्थ है और प्रति समय उत्पादव्ययशील है और उसके ही उपादान में, उसके स्वरूप में, उसके ही परिणमन में उत्पादव्यय आता है। उस उत्पादव्यय को दूसरा पदार्थ नहीं करता। एक हाथ दूसरे हाथ को मरोड़ दे, इतने पर भी उस एक हाथ ने अपने में ही कुछ काम किया। पर उस मरोड़े हुए दूसरे हाथ में कोई क्रिया नहीं की। ऐसा ही निमित्त नैमित्तिक योग है कि ऐसा ही वह एक हाथ के बीच फंसा है कि यह हाथ जैसी क्रिया करे वैसा इस अंगुली को भी करना पड़ा। इतना होने पर भी मरोड़ने वाली अंगुली अपनी क्रिया से ही मरोड़ गई है। अनेक जगह आप यही बात समझें तो उससे मुझे बल क्या मिलता कि जब अपना उपयोग भाव और कर्मोदय इन दो का निर्णय करने चलते हैं तो यह स्पष्ट जाहिर होता कि कर्मोदय का निमित्त सन्निधान होने पर जीव ने रागद्वेष विकार रूप परिणमन किया। इस प्रसंग में अगर वस्तु स्वातन्त्र्य न मानें तो मैं उन्नति नहीं कर सकता हूँ और निमित्त नैमित्तिक भाव न मानूँ तो मैं उन्नति नहीं कर सकता। सो कैसे? अगर वस्तु स्वातन्त्र्य नहीं मानते, जिसका अर्थ यह हुआ कि कर्मोदय ने मेरे को रागी बना दिया। जैसा कि अनेक लोग कहते ना कि ईश्वर इस जीव को सुख दुःख देता है तो ऐसा समझने वाला मनुष्य इतना कायर बनता है कि उसके मन में यह है कि ईश्वर जो करता है सो होगा, मैं कुछ कर ही नहीं सकता। मेरी कुछ सामर्थ्य ही नहीं, अथवा वह स्वच्छन्द हो जायेगा तो इसी तरह यदि यह बात किसी के चित्त में बसी हो कि कर्मोदय ने मेरे को रागी किया, अब मैं क्या कर सकता हूँ? वे कर्म जब कभी अवसर दें तो मेरा उत्थान है मैं कुछ कर ही नहीं सकता। जबकि बात इसके विपरीत है। कर्मोदय कितना ही आये वह अपने आपके प्रदेशों में ही अपना अनुभाग, अपना विस्फोट करता है, इसके आगे उसका काम नहीं। जैसे दर्पण के आगे लाल चीज आई तो लाल कपड़ा अपने में ही लालरूप परिणमता है, उससे बाहर कपड़े का कोई काम नहीं। हाँ निमित्त नैमित्तिक योग है कि ऐसी घटना में दर्पण भी लाल प्रतिविम्बित हो जाता है, हाँ, लेकिन कर्ता कर्म भाव नहीं है यह तो ज्ञानी पुरुष है, यह तो ज्ञान बल बना सकता है। दर्पण तो ज्ञानबल नहीं बनाता। तो कर्मोदय होने पर यह जीव अपने ही उत्पादव्यय से अपना उत्पादव्यय करता है। कर्मोदय ने मेरे में राग नहीं किया, ऐसे वस्तुस्वातन्त्र्य की परख से यह अपने में शौर्य प्रकट करता है कि मैं क्यों अज्ञानी बनकर दुःखी हो रहा हूँ।

अज्ञान छोड़ूँ तो शान्त होऊँ। वस्तुस्वातंत्र्य न मानने पर अपने को हानि है। इसी प्रकार निमित्त नैमित्तिक योग न मानने पर भी हानि है। बात यह है कि कर्मोदय का सन्निधान होनेपर यह मैं विकार रूप परिणम गया। अब निमित्त नैमित्तिक योग माने नहीं और यह ही कहे कि मैं अपनी योग्यता से रागी बना, दूसरेका इसमें क्या? यद्यपि राग परिणमन मेराही है परिणमन, लेकिन मैं अपनी ही सामर्थ्य से, अपनी ही योग्यतासे अपनेही आप रागी बन गया यदि यह सोच बैठे कोई कि मेरेमें मेरे ही कारण से राग हुआ, निमित्त की तो लोग तंग करते सो लेना पड़ता, ऐसे सोचने में राग स्वभाव बन गया, अब उस राग को हटानेका क्या उपाय सोचूँ? निमित्त नैमित्तिक योग माननेपर तो यह ज्ञान प्रकाश रहता है कि राग मेरी चीज नहीं है, यह तो कर्मकी लीला है। यह मेरा स्वभाव नहीं। मैं तो उपयोग मात्र हूँ। इस राग भाव से उपेक्षा करना है और अपने ज्ञान परिणमन को अपना ही उपयोग वृत्ति को अपने में आत्मसात् करना है। तो स्वभाव दर्शन मिला ना उसे। वस्तु-स्वातंत्र्य मानने से भी स्वभावदर्शन को प्रेरणा मिली। निमित्तनैमित्तिक भाव माननेपर स्वभावदर्शनको प्रेरणा मिली। तो ये दो निर्णय ऐसे अद्भुत निर्णय हैं कि जिनके पाये बिना कोई आत्मा मोक्षमार्गमें लग नहीं सकता।

वस्तुतथ्यनिर्णयताकी शान्ति पात्रता—जब वस्तुस्वातन्त्र्य निमित्त नैमित्तिक योग ये दो वस्तुतथ्य निर्णयमें आ जाते हैं तो स्वयं ही उसके बड़े प्रशमभाव, चारोंकषायों को मंदता होती है, क्रोध नहीं होता, घमंड नहीं होता, सरल रहता। किसी बाह्य पदार्थ से लगाव न रखना, यह सहज ही उसमें प्रकट होता है। और चारित्र्यमें उन्नति उसके फिर होने लगती है। कषायें दूर हों, यह ही चारित्र्य कहलाता है। तो ये दो निर्णय अनेकानेक ज्ञानाभ्यास करके करलें। और, वास्तविकता तो यह है कि गुरुचरणप्रसाद मिले बिना यह सँतापहारी, छाया प्राप्त नहीं होती। गृहस्थोंको जिज्ञासुवो को गुरुचरण कही साक्षात् मिलें तो उनकी उपासनोके प्रसादसे प्राप्त शुद्ध अन्तस्तत्त्वको अनुशासन से यह आनन्द भरने वाली बात प्रकट होती है, और उसे पात्रता तब समझिये कि जब यह विमूर्ति, यह अचेतन परिग्रह जड़ पदार्थ, ये सब यों मालूम होने लगेंगे कि मेरे आत्महित के लिए तो ये सब पूर्णतया बेकार हैं। आत्महित इनमें नहीं है। परि-स्थिति वगैरे इनमें रहना पड़ता है और हमें इनका संग्रह विग्रह रखना पड़ता है। यों परसे उपेक्षा हो, आत्मतत्त्वमें रुचि हों, ज्ञानाभ्यासका प्रयत्न हो तो जीवनकी सफलता है।

सम्यग्दर्शनकी मधुराई—सम्यग्दर्शन शब्द भी सुनने में मधुर है और अर्थ भी मधुर है और जब इस रूप उपयोग होता है तो उसकी मधुराई तो एक बहुत उत्तम है। जहाँ सम्यग्दर्शन है वहाँ अन्तरंग में आकुलता नहीं है। नारकी जीव भी जो सम्यग्दृष्टि है। बाहर में बहुत कष्ट सह रहे हैं एक नारकी दूसरे नारकी के तिल-तिल बराबर खण्ड कर डालता है। वहाँ की पृथ्वी के स्वयं कठिन दुःख हैं। भूख प्यास सर्दी गर्मी आदि की बहुत तेज बाधा है ऐसी बाधाओं में रहकर भी सम्यग्दृष्टि नारकी अन्तरंगमें व्याकुलता नहीं करता। आकुलता तो होती है मगर भीतरमें उसे आकुलता नहीं है वह स्वरूप ठीक-ठीक समझ रहा है मेरे आत्माका स्वरूप यह उपयोग मात्र है। यह शुद्ध ज्ञानमात्र है। ये सब कुछ जो बीत रही हैं वे सब कर्म की दशायें हैं। वे मेरे उपयोग में झलकती हैं। उनका वह सम्यग्दृष्टि नारकी ज्ञातादृष्टा रहने का यत्न करता है। तो विपत्ति भी आये उससे भी बिगाड़ नहीं है जीव का, किन्तु मिथ्यात्व हो तो उससे बिगाड़ है। चाहे बड़ी सम्पत्तिके बीच भी रह रहा हो—सम्यग्दृष्टि ज्ञानी पुरुष तो भी वह उसमें मुग्ध नहीं होता। जैसे कोई सम्यग्दृष्टि देव है वह अपनी अदृष्ट ऋद्धि के मध्य रह रहा है, उसकी जो देवियाँ हैं नारियाँ हैं वे वैक्रियक शरीर वाली है उनके पसीने का काम नहीं, बदबू का काम नहीं, फोड़ा फुन्सी आदिक का काम नहीं, मलमूत्रादिक का काम, नहीं वह हाड़ मांस रहित दिव्य शरीर है, यहाँ तो मनुष्य मलमूत्रादिक महा अपवित्र चीजों से भरे हुए इस शरीर को देखकर बहुत सुहावना समझते हैं और घृणा योग्य पदार्थ पर दृष्टि तक नहीं पहुँचती। ऐसा घृणा योग्य शरीर भी जब यहाँ बड़ा मनोज्ञ लगता है और उसे छोड़ा नहीं जाता, मोहीजन ऐसे अपवित्र शरीर की प्रीति भी नहीं छोड़ पाते तब देखो वहाँ ऐसे सम्यग्दृष्टि देव ऐसे पावन धातुरहित वैक्रियक शरीर के बीच रहकर भी, देवियों के बीच रहकर भी उनमें बेमुग्ध नहीं रहते हैं, सहज विस्तृत रहते हैं, इनसे मेरा क्या पूरा पड़ेगा ? मेरा स्वभाव तो यह है, उपयोग है शुद्ध ज्ञानमात्र जैसे सम्यक्त्व के होने पर सम्पदा से भी क्षोभ नहीं होता, विपदासे भी क्षोभ नहीं होता ऐसे ही यह सम्यक्त्व यह ही हम आपके लिए उन्नति और उद्धार के लिये हेतुभूत है। सम्यक्त्व में मुख्य प्रतीति यह रहती है कि यह तो मैं ज्ञानमात्र हूँ, और उपयोग का परिणामन है, ज्ञानका जो परिणामन है वह मेरा काम है। ज्ञान में जो आया है, अनुभवा जाता है वह ही ज्ञान मेरे अनुभव में आता है और यह ही मात्र मेरा मैभव है, ऐसी प्रतीति रहती है। जैसे कोई पुरुष समझता है कि यह गैर आदमी है तो उसके कारण अपने में रोग नहीं लगता। गैर है यह तो। देशवासी लोग समझते हैं कि अन्य देश के लोग गैर हैं, वे उनकी क्षति से अपने में क्षोभ नहीं लाते हैं, तो राग नहीं लाते हैं, तो

यहाँ सम्यग्दृष्टि समझता है कि जो मेरे में कषाय पिकला विचार जग रहे हैं ये सब कर्म विपाक हैं मुझसे विविक्त हैं। सो ऐसा जानकर कि वे परद्रव्य हैं, परभाव हैं, परतत्त्व हैं, इनसे भेरा क्या नाता है। यदि इनमें लगता हूँ तो मैं बरबाद होता हूँ। उनसे प्रीति को छोड़ देता हूँ। ऐसे सम्यक्त्व की बात कही जा रही है।

दर्शनमोहोपशमादिमें विशुद्ध परिणामकी निमित्तभूतता—सम्यक्त्व का निमित्त कारण है दर्शनमोहका उपशम, क्षय और क्षयोपशम। चाहे निसर्गज सम्यग्दर्शन हो और चाहे अधिगमज सम्यग्दर्शन हो, दोनों में ये निमित्त होते हैं और दर्शन मोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशम कैसे होता? तो उसका कारण है विशुद्ध परिणाम। देखो जैसे किसी ने विष खा लिया हो तो विष को दूर करने के चार साधन देखने में आते हैं। एक तो यह द्रव्य कोई चीज पिला दी गई, कोई औषधि पिला दी गई जो उस विष को मारने वाली हो। तो यह तो है उसकी द्रव्यरूप चिकित्सा और क्षेत्र अनेक लोग विष खाये हुए मनुष्य को किसी क्षेत्र पर ले जाते हैं। जो मंत्रशाला का क्षेत्र हो या जहाँ कुछ सुन रखा हो, कोई देवस्थान हो तो ऐसे क्षेत्र पर ले जाते। तो क्षेत्र भी एक चिकित्सा बन गई। तो कई व्याधियों को दूर करने के लिए काल योग्य काल देखा जाता है। कोई किसी खास नक्षत्र में, किसी खास दिन में चिकित्सा करना है, इस तरह का व्यवहार लोक में देखा जाता है, और कुछ चिकित्सा भाव साध्य है। जैसे धनंजय सेठ के लड़के को साँप ने डस लिया था उस समय धनंजय सेठ तो पूजा में थे। वहाँ उनकी स्त्री आयी और बोली; तुम तो यहाँ पूजा पाठ में लगे हो, वहाँ बच्चे को साँप ने डस लिया। धनंजय सेठ ने कुछ न सुना। स्त्री ने उन्हें बड़ा भला बुरा कहा, फिर भी कुछ न सुना। पूजा में ही मग्न रहे। स्त्रीको गुस्सा आया तो वह उस बेहोश लड़के को वहीं मन्दिर में छोड़ गई और यह कह कई कि अब इसे तुम जानो, हत्या लगेगी तो तुम्हें लगेगी। धनंजय सेठ अपने भावों में मग्न रहे। तो उस लड़के का विष दूर हो गया। तो यह विशुद्ध भाव लड़के के विष को दूर करने में कारण हो गया। तो ऐसे ही समझिये कि दर्शनमोह का उपशम, क्षय, क्षयोपशम होने के लिए भी योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव होते हैं। चाहे सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के लिए कहो चाहे दर्शनमोह के उपशम, क्षय, क्षयोपशम के लिए कहो, ये चार बातें आती हैं। देखो जब कोई बड़ा कठिन रोग होता है तो औषधि पिलाने से भी वह दूर नहीं होता, पर जैसे औषधि एक साधन है करते ही हैं लोग उसका उपचार तो इसी प्रकार हमारे व्यवहार के जो साधन हैं—जिनेन्द्रदेव के दर्शन करना, गुरुजनों की सत्संगति करना, गुरुजनों की वैयावृत्ति रखना, स्वाध्याय करना आदिक यह सब द्रव्य का सन्निधान हुआ। योग्य क्षेत्र बीर पर गए, जहाँ जानीजाना विराजे हो उस

क्षेत्र में गए, यह क्षेत्र का सन्निधान है। काल का सन्निधान—दश लक्षण पर्व आया उसमें विशेष उपाय बनाया, धर्मसाधन किया, अष्टानिका आयी तो उसमें विशेष उपाय बनाया। और योग्यभाव—उसके योग्य विशुद्ध परिणाम बनें, मंद कषाय रखें और विशेष परिणाम तो अधःकरण, अपूर्वकरण, अनवृत्तिकरण हैं, तो योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव होने पर कर्म में भी यथायोग्य फेरफार होता ही है। उनका उपशम, क्षय, क्षयोपशम होता है। और जहां दर्शनमोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशम मिला वहाँ यह जीव अपने आपकी परिणति से, अपनी करणशक्ति से, अपनी विशुद्धि के बल से सम्यक्त्व को उत्पन्न करता है। ऐसा यह सम्यक्त्व निसर्गज हो अथवा अधिगमज हो, यह इस प्रकार का कारण पाकर उत्पन्न होता है।

सर्व जीवोंमें अन्तःस्वरूप की समानता—अब जीव के एक अन्तः स्वरूपपर पुनः दृष्टिपात कीजिये—देखिये हम आपका शरण है तो आत्मा का सहजज्ञान स्वभावका जितना लगाव हो, दृष्टि हो बस वही शरण है जगत में कोई दूसरा शरण नहीं। बल्कि जगत में दूसरे को शरण मानने की बात ही असहाय हो जाने की बात है। उल्टा काम होता है परकोशरण मानने में अशरणता बढ़ती है और निजको शरण मानने में सशरणता बढ़ती है। तो यह सम्यक्त्व जो इस जीवको शरणभूत है यह सम्यक्त्वगुण शक्ति सब जीवों में पायी जाती है चाहे भव्य हो चाहे अभव्य हो लेकिन सम्यग्दर्शन की शक्ति की अपेक्षा समस्त संसारीयों में भेद नहीं है तो भी किसी में सम्यग्दर्शन सम्भव हो पाता है, व्यक्त हो पाता है, किसी में असम्भव रहता है, ये भेद पाये जाते हैं। देखो लोक में आपको अनेक दृष्टान्त मिलेंगे। जैसे कनक पत्थर होता है स्वर्णपाषाण होता है तो जिस खान से ऐसी मिट्टी निकलती है कि जिसमें उपाय से स्वर्ण निकल आता है, भले ही १० मन मिट्टी में कोई एक आधा तोला स्वर्ण निकले, पर वहाँ उस मिट्टी में स्वर्ण व्यक्त होने की बात है। तो जैसे कितनी ही कनक भूमि, स्वर्णभूमि कनक पाषाण बहुत ही जल्दी उपाय से स्वर्णरूप में आ जाता है तो कुछ बहुत दिन बाद स्वर्णरूप हो पाते हैं, तो कुछ ऐसे भी कनक पाषाण हैं जिन्हें अधपाषाण कहते हैं, उनमें स्वर्ण की शक्ति होने पर भी, अनेक उपाय किए जाने पर भी उनमें स्वर्णत्व नहीं व्यक्त होता। यही आप देखलो मूंग की दाल बनाई जाती है, कोई तो छिलका सहित बनाता है और कोई बिना छिलके की बनाता है। छिलका सहित बनने वाली दाल तो साग जैसा काम करती है तो जो छिलका सहित मूंग की दाल बनती है उसमें कोई दाना कुरङ्ग मूंग होता अथवा साबित मूंग को पकाई जावे तो उसमें हजारों लाखों दानों में से कोई एक दो दाने ऐसे भी होते हैं कि जिन्हें चाहे कितना ही पकाया जाये

वे पढ़ते नहीं हैं। जिसे कूड़ मूँग बोलते हैं। तो मूँग तो मूँग है, वह उसी वृक्ष से ही तो पैदा हुआ, मूँग में जो गुण है, रूप है, रस है, गंध है, भीतर जो बात है, जो स्वाद है, जो कुछ भी है वह शक्ति तो दोनों में बराबर है, चाहें कुरडू मूँग हो चाहे सही मूँग हो। जाति एक है, फिर भी कोई दाने नहीं चुगते हैं। तो ऐसे ही एक ही जाति का सम्यग्दर्शन गुण हो, अन्य गुण हो, इस जाति की अपेक्षा से भव्य अभव्य में अन्तर नहीं है, लेकिन कोई जीव सिद्ध हो पाता। ऐसे भी जीव हैं। यहां ऐसा न सोचना कि जो भव्य जीव है वह तो कभी मोक्ष जायगा ही। सारे भव्य मोक्ष चले जायेंगे तो संसार अभव्यों की वजह से रहेगा, ऐसा नहीं है। भव्य जीव भी अनन्तानन्त ऐसे हैं कि जो कभी भी मोक्ष न जा सकेंगे। और भव्य हैं वे। तो ऐसे सम्यग्दर्शन की शक्ति समान होने पर भी किन्हीं में व्यक्त होने की शक्ति है और किन्हीं में नहीं है।

शरीर के आठ अंगों की मुद्रा का दृष्टान्तः—अब जरा सम्यग्दर्शन का एक रूपक देखिये—जैसे एक शरीर है, शरीर में आठ अंग है। २ हाथ, २ पैर, १ पीठ, १ छाती, १ सिर और १ नितम्ब। ये आठ अंग इस शरीर के होते हैं। तो आठ अंगोंमय यह शरीर है ना ? अगर अंग न हों तो फिर शरीर किसका नाम ? तो जैसे अष्टांग सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन के भी आठ अंग हैं। उन आठ अंगों में वे भावरूप हैं, वे पौद्गलिक नहीं हैं, सम्यक्त्वभाव है। तो सम्यक्त्व के अंग भी आठ हैं। वे आठ भाव निश्चयदृष्टि से भी समझ में आने की चीज है और व्यवहार दृष्टि से भी। निश्चय दृष्टि के जो ८ अंग हैं वे तो सबके होते ही हैं। व्यवहार दृष्टि के जो ८ अंग हैं वे सराक अवस्था में व्यक्त हो सकने वाले हैं, वे आठ अंग हैं। उनका वर्णन जब किया जायगा तब शरीर के अंगों की विधि मुद्रा की तरह लगेगा। जैसे जब चलते हैं तो दोनों पैरोंकी क्या मुद्रा बनती है। जैसे मानो चलतेमें जक दाहिना पैर आगे रखते हैं तो कैसा निःशंक रखा जाता है, बड़ी निर्भयता से रखा जाता है। यह निःशंक भाव हुआ। पीछेका पैर, बायां पैर कैसी उपेक्षासे पीछेके स्थानसे उठाया जाता है जरा भी उसकी आकांक्षा नहीं, मानों उस जमीनसे अब काम ही नहीं कुछ पड़ेगा। यह निःशंक भाव हुआ। दोनों हाथोंमें से बाये हाथसे लोग रोज २-३ बार शौच साफ करते हैं, फिर भी उस हाथसे घृणा की किसीने क्या, उसे काटकर फेकेगा कोई ? नहीं, दाहिना हाथकी तरह उससे भी स्नेह रहता। यह निर्विचिकित्सभाव हुआ। दाहिने हाथकी तर्जनी से निर्णय विवेककी कैसी मुद्रा बनाती है यह ऐसा ही है यह अमूढ़ दृष्टिका भाव है। नितम्ब (पौंदा) जैसे ढाँके ही रहते हैं वस्त्रसे यह उपगूहण हुआ। पीठ पर बोझ रखकर चलते हैं यह स्थितिकरण है। हृदयमें प्रेम वात्सल्य है, यह वात्सल्य है।

और शिरसे प्रभावना होतो है थाने मस्तक मुख मुद्रा से लोगों पर प्रभाव पड़ता है। यह प्रभावना का उदाहरण है

सम्यक्त्वके आठ अंगोंकी मुद्रामे निःशंकित अंगकी मुद्राका दिग्दर्शन—देखिये शरीरके अंग मुद्राकी भाँति सम्यक्त्वके व्यावहारिक आठ अंग सम्यक्त्व के ८ अंग हैं—पहिला अंग है निःशंकित अंग बहुत ध्यानसे सुनने की बात है, और हमारा जीवन कैसे बने, हमारा आचरण कैसे बने, यह सब इससे विदित हो जायगा। पहिला अंग है निःशंकित अंग। अन्तरंग में हम भयरहित रहें, भेरे पर कोई भय नहीं आ सकता, क्योंकि मैं तो उपयोग लक्षण ज्ञानमात्र हूँ। उस ज्ञान में क्या कोई उपद्रव आयगा? यह मैं ज्ञानस्वरूप हूँ। ज्ञान को ही करता हूँ, ज्ञान को ही भोगता हूँ, ज्ञान ही मेरा वैभव है, ज्ञान ही मेरी दुनिया है। मेरे को दुनिया में क्या भय? इस ज्ञान स्वरूप में न टिक सकने वाले लोग इस लोक का बड़ा भय रखते। सरकार बड़े कानून बना रही, सम्पत्ति की म्याद भी बना देगा, सरकार छुड़ा लेगी। बड़ी कठिन बात आयगी। अरे कठिन कुछ नहीं है। सरकार क्या करगी? जैसा मेरा अनुभव चलता, जो मेरी करतूत है, जितनी मेरी दुनिया है जहाँ आनन्द भरा हुआ है, इस ज्ञानस्वरूप को कोई भेद सकता है क्या? इस लोक का क्या भय करना? अरे जिसका भय मानते हो, मानों १०, २० वर्ष जिन्दा रहेंगे, आखिर यह सब छूटेगा तो सही, आगे क्या रहेगा इसके साथ? इसका यह स्वरूप, इसका यह स्वभाव। स्वरूप को देखो। देखो इस सम्यक्त्वलाभ के लिए अपने आप को बहुत-बहुत बलिदान करना पड़ेगा। घरमें रहने वाले स्त्री पुत्रादिक परिजन, धन, वैभव मकान, महल इन सबको दिल से हटा देना होगा। इनको दिल से श्रद्धा में न चिपकना होगा। अपनी श्रद्धा में ऐसी बात रखें कि ये मेरे कुछ नहीं हैं, मैं तो एक ज्ञानमात्र स्वरूप हूँ। ज्ञान स्वरूप के सिवाय मेरा और कोई वैभव नहीं। मुझे इस लोक का क्या भय, परलोक का क्या भय? परलोक में भी जीव तों में यही। रहेगा मेरा यही स्वरूप। यह मेरी दृष्टि में रहे। परलोक का भय क्या? वैदना का भय—शरीर में थोड़ी हरायत सी हुई बस डर गए, अरे अब न जाने क्या होगा। कहीं यह बहुत बड़ी बीमारी न बन जाये। अरे अना डर तो तेज बुखार में भी नहीं होता। कदाचित तेज बुखार हो जाय तो वहाँ तो यह सह लेता है, और जहाँ यह आशंका हुई कि अब न जाने मेरा क्या होगा? अरे हरायत हो तो, बुखार हो तो, एक निर्णय तो करो कि हो क्या रहा है? शरीर में शरीर की गम यी है गमयी कहीं जीव में आ सकती है? गर्म तो होता है यह शरीर। कहीं कोई नस चकती है तो वह पुदगल में हो रहा है, कर्म विपाक है, वह कर्म में हो रहा है। मैं तो ज्ञानमात्र हूँ। मेरे ज्ञान में यह सब आ रहा है। ज्ञान में आ रहा है इतनी भर बात रहे तो कुछ हानि

नहीं। केवल जानन देखन हार रहूँ यहां तक कुछ हानि नहीं मगर ज्ञान में आया और तत्काल ही यह उसको पकड़ लेता, अपने उपयोग में इने ग्रहण कर लेता। पर को अपनाना, दुख इसमें है, और पर को मैं रूप से न अपनाये। मैं अजर अमर हूँ। अमृत का सरोवर हूँ। इसे किसी प्रकार का कष्ट नहीं। कष्ट है कषाय को अपनाने में, शरीर को अपनाने में। तो क्यों ये कष्ट सहते? अपने ही भीतर के समझ कीतो बात है। अपने आप भीतर में ऐसी दृष्टि करें कि मेरा मैं ही हूँ। क्यों कष्ट पाऊँ? कभी कभी देखा होगा कि घर में जो बड़ा है वह जब तक रह रहा है तब तक घरवालों का ऐश्वर्य नहीं बढ़ सका। कई कुटुम्ब ऐसे मिलेंगे जिस पर लोग बड़ा गौरव रखते हैं कि इसको बिना फिर कमाई न रहेगी, फिर पालन पोषण का कोई जरिया न रहेगा और कहो उसके मरने के बाद ऐसा हो जाता कि वे लड़के मालोमाल हो जाते हैं। तो यह अभिमान करना व्यर्थ हुआ कि मैं इनको पालन पोषण करने वाला हूँ। अरे तुम इसके पालन पोषण करने वाले नहीं हो। जितने लोग घर में हैं उनका अपना-अपना उदय है, और उनका इतना उदय है कि आपको उनकी नौकरी करनी पड़ रही है। आप कर्तव्य का अभिमान कर रहे तो आपको कष्ट इसी बात का है। जिसने ज्ञानस्वरूप को प्रतीति में लिया है उसे शंका का भय नहीं, वेदना का भी भय नहीं। जो है रहा है उसे जान रहा है। जो पुरुष अपने ज्ञानस्वरूप में अपने आत्मा की प्रतीति लिए हुए हैं उसको किसी प्रकार का संशय, शंका, शल्य अन्दर में नहीं रहता। देखो बताया है कि जब तक ये तीन शल्य हैं—(१) माया (२) मिथ्या (३) निदान, तब तक व्रत नहीं। और व्रत ही क्या? सम्यक्त्व भी नहीं। तो वह शल्य क्या हैं? यह ही कि पर में आपा मानने में शल्य हुआ ही करता है। यह ही शल्य कांटे की तरह चुभती है। कौन? पर को अपना मान लेना। तो शल्य नहीं रहती ज्ञानी जीव को। वह किसी प्रकार का भय नहीं करता। उसकी सर्वत्र रक्षा है। मैं सब जगह सुरक्षित हूँ जबकि मोहोजन मानते कि ये किवाड़ ठीक नहीं है, मेरी तो रक्षा नहीं है, यहां यह ज्ञानी पुरुष सोचता है कि मेरा यह स्वरूप का किला अभेद है। इसमें किसी अन्य का प्रवेश नहीं। देखिये मैं अमूर्त ज्ञानमात्र निज धाम से ही प्रयोजन रखूँ, ऐसी दृष्टि बनावे और देखो जो वैभव में प्यार है, जो बाह्य वस्तु में राग है, बाह्य वस्तु का ख्याल है इन विषों को उगल देवें। चाहे जब उगल दो हम यह नहीं कहते कि अभी छोड़ दो, मगर जिस समय आपको धर्मधारण करने की अभिलाषा हो और उसे भीतर में घटाने की बात हो उस समय तो उस विष को त्याग दीजिए। परिग्रह के राग के विष को भुला तो दीजिए तब ही अपने आपकी बात चित्त में आयेगी। मैं सुरक्षित हूँ, अरक्षित मैं नहीं हूँ। मेरा मरण भी नहीं है। मेरे प्राण तो चेतन हैं। ज्ञान दर्शन है। वस्तु

का प्राण वह कहलाता कि जिसके कारण वस्तु की सत्ता रहती है। मेरी सत्ता मेरी चेतना से है। मेरी सत्ता इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास से नहीं है। मेरा बल कहीं बाहर नहीं हो सकता। न मिट सकता। मैं मरणरहित हूँ। मेरे को कोई भय नहीं। कहीं अचानक भी भय नहीं आ सकता। मैं रक्षारहित नहीं हूँ। मेरा मैं रक्षक हूँ, यह सब प्रतीति रहती है इसलिए वह ज्ञानी भीतर में निशंक रहता है। देखो यह सब बात जिन वाणी में लिखी है, जिन वाणी से सुना है, जिन वाणी से समझा है। जिनेन्द्र के वचन मिथ्या नहीं होते यह व्यवहार में भी निशंक है और अन्तः भी निशंक है।

सम्यग्दृष्टि का निःकांक्षित गुण—दूसरा अंग है निःकांक्षित अंग। श्रद्धा में तो उसे किसी भी परवस्तु की इच्छा नहीं है। कुछ कर्मोदय है, घर में रहना पड़ता है, इच्छा बिना रहना होता नहीं, और धर्म धारण करके उसके एवज में किसी बाह्य वस्तु की इच्छा नहीं करता। सम्यग्दृष्टि ज्ञानी के यह इच्छा न होगी कि मेरे मुकदमा लगा है, मैं महावीर जी जाऊँ। अथवा मैं रोज पूजा करता हूँ तो उसके फल में मेरे घर में सुख शान्ति रहे। इन बाह्यी बातों की इच्छा करके वह धर्म नहीं करता। वह धर्म नहीं करता। वह धर्म करता है एक अपने आपके स्वरूपको समझनेके लिए मोक्षमार्ग के लिए वह धर्म करता है ? धर्म-धारण करके भोगों की इच्छा ज्ञानी जीवके नहीं होती। भला बतलाओ-जो भोगोंसे विपत्ति समझता हो, विडम्बना समझता हो, बताओ वह भोगोंकी क्या इच्छा करेगा ? धर्मधारण करके तो वह उन भोगों को विडम्बना समझता है, विपदा समझता है। है तो कुछ और बन रहा कुछ और, जैसे कहते हैं ना कि—“आये थे हरि भजनको, ओटन लगे कपास।” अरे इस संसारमें आये तो थे हरि भजनको हरि का अर्थ है जो पापोंको हरे, अर्थात् जो अपना स्वरूप प्रकट करे, ऐसा कौन है ? यही अपना आत्मा, तो आये तो थे आत्माकी उपासना करनेके लिए पर करने क्या लगे कि कपास ओटने लगे। यहाँ कपास ओटनेका मतलब यही है कि कपास को बहुत-बहुत ओटने पर उसमें बिल्कुल अन्तमें थोड़ा एक किलो ही कपास ओटनेमें, २ किलो बिनोला कपास जहाँ रखना हुआ एक साथ रख दिया जाता है। दिन भर परिश्रम करनेके बाद कोई मुश्किलसे एक दो किलो बिलोना बच पाता है, मतलब, आये तो थे इसलिए कि सदाके लिए शान्त हो जायें ऐसा में उपाय बनालूँ, पर करने क्या लगे ? व्यर्थ के काम, भोग विषय। जरा सोचो तो सही कि जो घरके लड़का लड़की आदिसे मोह कर रहे हो तो ऐसा करते हुए कितने दिन काम चलेगा ? कितने दिन अपना पूरा पाड़ लगे ? एक दिन भी तो नहीं चलता। उससे दुःख ही तो होता। वे दूसरे जीव है, उनसे कोई लन देन नहीं, कोई मतलब नहीं; पर उन्हें ऐसा

मान रहे कि ये तो मेरे ही है, इनसे मेरा बड़ा सम्बन्ध है। अरे रंच भी सम्बन्ध नहीं, रंच भी कोई बात नहीं है, केवल मोहकी नींदमें एक स्वप्न साले रहे हो, ऐसी बात है और यहां मोहमें बेमुध हुआ जाय तो यह कितनी अज्ञानताकी बात है, कितना अपने आपके अकल्याणकी बात है, उसे छोड़ों उसकी इच्छा न रखो, अभिलाषा करो तो मुक्तिकी करो, स्वरूपदर्शनकी करो। मैं अपने आपमें आनन्दमग्न रहूँ, ऐसी अभिलाषा कीजिए। तो सम्यग्दृष्टि जीव निःशांति होते हैं।

सम्यक्त्व का निर्विचिकित्सित अंग—सम्यग्दृष्टि जीव के एक निर्विचिकित्सा गुण होता है, वह ग्लानि नहीं करता। भीतर कोई क्षुधा तृष्णा इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग सुख दुःख आदिक जितनी भी चीजें हैं उन सब में अधीर नहीं होता है। इनमें अलग रहता है, इनमें विषाद नहीं करता है। अन्दर में तो यह स्थिति है और बाहर में कोई ग्लानि की चीज (मलमूत्र वगैरह) देख लें तो उसे देखकर जानना है कि यह ऐसी वस्तु हैं। उसे देखकर वह नाक भौं नहीं सिकोड़ता है, जबकि लोग जरा जरा सी बात देखकर तुरन्त थूक देते हैं। अरे थूक क्या खराब चीज है? जब तक मुख में थूक है उसे गुटकोगे तो स्वास्थ्य सुखरेगा। जैसे कहते हैं ना कि देवताओं के कंठ से अमृत भरता है। जरा आराम से बैठे हो उस समय गुटकोगे तो उस समय देखो कितना सन्तोष मिलता है। तो क्या थूक ऐसी चीज है कि उससे घृणा करें? अच्छा और आगे चलो। मानों कोई मुनिराज है, साधु संत हैं उनको कोई रोग हो गया, फोड़ा फुंसी आदिक हो गई तो उनकी सेवा करना, उनसे ग्लानि न करना। सम्यग्दृष्टि को तो सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र में प्रीति है। तो जो रत्न भयकी मूर्ति है उनकी सेवा करते हुए में ग्लानि न आना यह है निर्विचिकित्सा अंग।

सम्यक्त्व का अमूढदृष्टि अङ्ग व प्रसक्त लोकमूढता का प्रदर्शन—सम्यग्दृष्टि का एक अंग अमूढदृष्टि है। किसी भी गुरु के चमत्कार को देखकर उनमें मुग्ध न होना। चमत्कार तो एक बाहरी चीज है, वह तो बहुत से लोगों में देखने से मिल सकता है। वह इस जीव को लाभ करने वाली बात नहीं है। वह सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र में अपनी प्रीति बनाये रहता है। गुरु का महत्व, चमत्कार रत्न त्रय की प्रतिष्ठा के बल पर ही करता है इस तरह सम्यग्दर्शन के इन अंगों में उसकी प्रकृति रनी सनी रहती है। ऐसा यह सम्यग्दृष्टि जीव इस संसार समुद्र से तिर कर सदा के लिए दुःखों से दूर हो जाता है। अमूढदृष्टि में कैसी कैसी मूढताओं का विच्छेद है इस पर दृष्टिपात कीजिये मोह भरी दृष्टि होने को मूढ़ दृष्टि कहते हैं। जहां धर्म नहीं वहां धर्म की रुढ़ि कर लेना सो मूढ़ दृष्टि है। मूढ़ दृष्टि में तीन प्रकार की मूढतायें होती हैं। (१) लोकमूढता (२) देवमूढता (३) पाखण्ड मूढता। लोक-

मूढ़ता-जैसे लोक में धर्म की रुढ़ि फैली है। नदी स्नान करना, गंगा स्नान करना, पर्वत से गिर जाना, या कहीं ईंट पत्थर का ढेर लगा कर उसे देवता मान लेना या पेड़ पौधों में देवता मानना आदिक जो धर्म के नाम पर रुढ़ियाँ हैं उनको माने तो उसे लोकमूढ़ता कहते हैं। यद्यपि कुछ बातों को देखकर उनमें अच्छाई की ओर खोज करने पर ज्ञात होगा कि कोई न कोई मूल में बात थी ठीक ढंग की लेकिन वे बातें तो नजर से उतर गई और एक मूढ़ता की बात रह गई। जैसे नदी स्नान करना धर्म है। धर्म तो नहीं है, पर नदी में किसी ने स्नान किया तो उसके स्नान करने से शरीर में हल्कापन आता है, मैल दूर होता है, शरीर हल्का होता है, कुछ मन भी हल्का हो जाता है, भावों में कुछ विशुद्धि का अवसर होता है उस समय यदि जाप, ध्यान बगैरह करें तो मन लग जायगा, इसलिए वह धर्म करने की पहिले की एक बात थी लेकिन उसी को ही लोग धर्म मानने लगे। तो ऐसी किन्हीं किन्हीं बातों में कोई ढंग से कोई स्थिति की बात थी, लेकिन वह भी न मिट्टी, और-और ऐब भी इसमें आ गए। लोकमूढ़ता में जैसा लोग करते वैसा खुद भी करते। एक बार एक सन्यासी जी गंगास्नान करने गए, उनके पास था एक कमण्डल। तो उसके रखने के लिए उन्होंने गंगाधरी रेत में एक गड्ढा खोदा, उसमें कमण्डल धर दिया और उसे बालू से ढक दिया। बाद में वह गंगा स्नान करने चले गए। वहां अनेक लोगों ने सोचा कि गंगास्नान करने की यही पद्धति होती होगी, सो उन्होंने भी रेत का ऊंचा ढेर बनाकर गंगा स्नान करना शुद्ध कर दिया। थोड़ी ही देर में वहां सैकड़ों ढेर बन गए। अब सन्यासी जी गंगा स्नान करके लौटे तो उन बहुत से ढेरों के होने की वजह से उनका कमण्डल गुम गया। तो कितनी ही ऐसी बातें होती हैं। जहां मूल में प्रयोजन तो कुछ और था, मगर लोगों ने देखा देखी रुढ़ि बढ़ा दी। ऐसे ही आत्मानुशासन में एक संकेत दिया है कि एक सन्यासी महाराज एक लाड़ लिए जा रहे थे। रास्ते में एक जगह बिष्टा के ऊपर एक और वह लाड़ गिरगया उस संन्यासीको लाड़में इतनी आशक्ति थी कि उसे ऊठा लिया और पाँछकर अपने बर्तनमें रखलिया उसे एक शंका बनी रही कि शायद किसी ने लाड़ उठातेहुए मुझे देख लिया होगा, सो अपनी पोल ढाकने के लिए उस सन्यासी ने उस बिष्टा को कुछ फूलों से ढाक दिया। जब लोगों ने सन्यासी जी को उस जगह फूल रखते देखा तो सोचा कि शायद इस जगह कोई देवता होगा। संन्यासी तो चला गया, पर जो भी वहां से निकले वह उस जगह देवता समझ कर फूल चढ़ा दे। अब तो वहां फूलों का बहुत बड़ा ढेर लग गया। कुछ लोगों के मन में आया कि यहां जौ फूलों का इतना बड़ा ढेर लग गया है। उसमें देखना चाहिए कि वास्तव में वहां है कैसा देवता, उसके दर्शन करें। जब सारे फूल

उठा लिया तो वहाँ बिष्टा (मैला) निकला। तो कितने ही स्थल ऐसे हो जाते हैं कि किसी बड़े पुरुषने किया तो था किसी और प्रयोजन से, मगर अन्य लोगों ने उस प्रयोजनको भूलकर उसको करना शुरू कर दिया तो वह एक रुढ़ि बन जाती है। जैसे किसी सज्जनके मनमें आया कि इन पत्थरोंको उठा कर मैं एक जगह रख दूँ, ये यहाँसे आने जाने वाले लोगोंके पैरोंमें लगते हैं। अब प्रयोजन को ध्यानमें न रखकर लोग उसे देवता समझ कर उसपर पत्थर डालना शुरू कर देते हैं। वह एक दिन रुढ़ि बन जाती है। काशीकरवटकी तथा सिद्धवरकूटके पासके किसी पहाड़ की बात सुनते हैं कि कभी कोई समय ऐसा था कि लोग उस पर्वतसे गिरकर नदीमें खतम हो जानेमें अपना धर्म समझते थे, वह भी एक लोकमूढ़ताकी बात थी। अनेक प्रकार के जंत्र मंत्र, छोटे गुरुवोंके दर्शन, छोटे देवोंकी आराधना आदिमें रुचि रखना और इसमें अपना कुछ धर्म समझना यह सब लोकमूढ़ताकी बात है। इसमें रुढ़ि विशेष कारण हुई। अब रुढ़िका कहना क्या? रुढ़ि ऐसी बन जाती है कि बात हो कुछ और बन जाती है कुछ। जैसे एक सेठके यहाँ उसको लड़कीका विवाह था, सो भांवरके समयमें घरमें पली हुई बिल्ली बार-बार आती जाती थी। सेठने सोचा कि ऐसे शुभ काममें यह तो असंगुन जैसी बात हो रही है सो उसने उस बिल्लीको एक टिपारेके अन्दर बन्द करवा दिया। अब वह सेठ तो गुजर गया। जब उसके किसी लड़केने अपनी लड़कीकी शादी की तो वहाँ भांवर पड़ते समय किसीने कहा ठहरो अभी एक दस्तूर बांकी है। उस दस्तूरके किया बिना भांवर नहीं पड़ सकती।” क्या दस्तूर बाकी है? अभी एक बिल्ली पिटारेके अन्दर बन्द कग्के रखना है। अब बिल्ली यों ही सहज तो नहीं पकड़में आ जाती। उसे पकड़नेके लिए कई लोग निकले, ४, ५, घंटेमें पकड़कर लाये। उसे किवाड़में बन्द किया तब भांवर पड़ी। तो ये रुढ़िया हैं। ऐसी ऐसी कितनी ही लोकमूढ़तायें होती हैं।

सम्यक्त्वके अङ्गभूत अमूढदृष्टिअङ्गमें देवमूढ़ता व पाखण्डमूढ़ताका प्रदर्शन—देव-मूढ़ता क्या? कि जो देव नहीं है उसे देव मानना। अब देव कौन है कौन नहीं? जिसने बाहर से स्त्री पुत्रादिक रखा है वह कुदेव ही तो है। कुदेव भी कुछ नहीं है। या तो कोई देव है या फिर अदेव है। याने कोई भी पुरुष या तो देव है या देव नहीं है। कुदेवकी क्या बात है? अगर देव नहीं है और देवकी प्रसिद्धि करे तो उसका नाम कुदेव होता है। अपने आप कौन कुदेव है? प्रारम्भमें कौन कुदेव है? या तो कहो कि भगवान है या कहो कि भगवान नहीं है। छोटे देवका क्या मतलब? देव तो नहीं है मगर खुद या कोई उसे देव के रूप में प्रसिद्ध करें, देव नामसे लोग बोलने लगें, तो वह है कुदेव। तीसरा है पाखण्डमूढ़ता। याने जो गुरु हैं उनकी सेवा, जपसना, आराधना करना, उसमें धर्मपालन मानना यह पाखण्ड-

मूढ़ता है। कुगुरु कौन है ? जिनका चिन्ह है कि वे ऊपरसे कुछ लिए हुए होते हैं, जैसे डंडा रख लिया, तिलक लगा लिया, जटा रख लिया, पट्टी लगा लिया, त्रिसूल ले लिया, दूसरी कुछ भी चीज जोड़े। तो पहिले इसी बाहरी चिन्हसे ही कुगुरु समझ लें। मुनिलिङ्ग तो यह है कि छोड़ने छोड़नेसे ही जो अपने आप रह जाय। वैसे वे पिछ्छी, कमण्डलु, शास्त्र थोड़ेसे जो मुनिके उपकरण माने गए उनकी संयमसाधनाके लिए, स्वाध्यायार्थ शुद्धिके लिए जरूरत पड़ती है इसलिए उन्हें अपने साथ रख लेते हैं, पर उनके न होनेसे कहीं उनका मुनिपना नहीं मिटता। जैसे जब वे विहार करते हैं तो उस समय उनको पिछ्छीकी जरूरत पड़ती है, नहीं तो पिछ्छीकी कोई जरूरत नहीं, अथवा जब शौच करते हैं तब उन्हें कमण्डल की जरूरत पड़ती है अन्यथा क्या जरूरत ? अथवा यों ही अकेले बैठे हुए समाधिमें नहीं रह पाते इसलिए शास्त्रोंका आधार लेकर अपने समाधिभाव बनाते हैं। तभी वहां शास्त्र की भी जरूरत पड़ी, वरना शास्त्रकी भी क्या जरूरत ? तो ये पिछ्छी कमण्डल और शास्त्र उपकरणके रूपमें रख सकते हैं, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी रखना ठीक नहीं। अब इन चीजोंके अलावा अन्य जितनी भी चीजें रखी जायें, उन्हें उपकरण माना जाय, तो यह भूल है। भूल करें और उस भूलको ही एक धर्मका रूप दें तो ये सब बातें कुगुरुके रूप में आती है। तो ये कुगुरुके बाह्य चिन्ह हैं और भीतरमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान-चरित्रकी जिन्हें प्रीति नहीं है और बाहरी क्लिष्य कषायोंकी प्रीति है, यदि यह बात हो तो ऐसे गुरुजनका आराधन करना कुगुरुकी मान्यता है। किसीका चमत्कार देखकर उसके प्रति भक्ति करना कुगुरुकी भक्ति कहलायेगी। चमत्कार तो कोई भी कर सकता है। क्योंकि चिच्चमत्कारस्वरूप जीवके छोटी-छोटीबुद्धियां कला जगना साधारणसी बात है। बहुतसे मदारी लोग भी बड़े-बड़े चमत्कार दिखाते हैं। जैसे कि हमने एक बार वरुवासागरमें देखा कि एक मदारी खेल दिखा रहा था। उसने किसीसे कहा भाई क्या खाओगे ? तो उसने कहा—करमकल्ला। अब करम कल्ला क्या होता हम तो जानते नहीं, पर उसने गोभीके फूल जैसे आकारकी चीज अपनी पेटीसे निकाल कर दे दी और कहा लो करमकल्ला निकाल दिया। किसी ने कहा—भाई हम तो खावेंगे तो उसे खिला भी दिया। तो ऐसे बड़े बड़े चमत्कारके खेल तो जादूगर लोग भी दिखाया करते हैं। तो ऐसे ही किसी प्रकारके चमत्कार देखकर कोई माने कि यह तो हमारे गुरु हैं, इनकी पूजा करनेसे हमें धर्म होगा, इस प्रकार समझ कर उन्हें पूजना सो मूढ़दृष्टि है। सम्यग्दृष्टि जीवको इस तरहका मोह कहीं भी नहीं उत्पन्न होता, मूढ़दृष्टिपना नहीं बनता।

सम्यक्त्व का अङ्गभूत उपगूहन गुणः—सम्यक्त्वका एक गुण है उपगूहन, इसका

दूसरा नाम है उपवृंहण। देखिये जिसने अपने आपके सहज स्वरूपका परिचय पाया और

दृढ़ता पूर्वक जिसके यह अनुभवमें आया कि लोकमें मेरे लिए सार तो केवल एक अपने सहज ज्ञानस्वरूपका बोध, उसका श्रद्धान और उसमें रमण करना है, शेष सब बातें असार हैं। अन्य जितने भी कार्य किए जाते हैं वे सब वेकार हैं। करने पड़ते हैं राग अवस्थामें, लेकिन सब बेकार चीजें हैं। ऐसा जिसे अनुभव हुआ है ऐसे पुरुषको यह ही उत्सुकता रहती है कि मैं गुणोंमें बढ़ूँ। आत्माका जो रत्नत्रय गुण है, चरित्र गुण है इसकी मेरे में वृद्धि हो, दूसरों में भी वृद्धि हो। एक तो यह भावना रहती, दूसरी भावना यह रहती कि किसी धर्मात्मा के द्वारा किसी परिस्थितिवश कोई दोष बन जाय तो उस दोषको समाजमें प्रकट न करना। यह ज्ञानोका गुण है। कर्मोंका उदय है, विपाक है, कोई दोष हो गया धर्मात्मासे तो उसे समाजमें प्रकट करनेसे बुराई यह आती है कि लोगोंकी धर्मसे श्रद्धा हट जायगी। जो सुनेगा वह यही कहेगा कि ऐसे धर्मात्माजन भी ऐसा करते हैं, यही धर्म होगा याने धर्म कुछ नहीं है। धर्मके प्रति आदर न रहेगा, यह बुराई होगी, धर्मकी अप्रभावना होगी। कितने ही लोग तो किसी दोषको ढाकनेका ऐसा भी प्रयत्न करते हैं कि उसको अपने ऊपर ले लेते हैं। एक अभी की घटना है। बुन्देलखण्ड में एक शहर है ललितपुर। तो वहां कोई एक ब्रह्मचारी वेशमें मन्दिरमें ठहरा हुआ था। वह एक बार वहांसे मन्दिरकी धोती लेकर भगा। धोती चुराकर चला तो मालीको खबर पड़ी। बुन्देलखण्डमें माली मन्दिरका बड़ा जिम्मेदार पुरुष होता है। वह मन्दिरमें एक मालिककी तरह होता है। तो वह माली उस ब्रह्मचारीके पीछे दौड़ा। कुछ दूर जाकर मालीने उस ब्रह्मचारीको पकड़ लिया। उस ब्रह्मचारीको बहुत बहुत भला बुरा कहा। बाजारमें उसी जगह वहां के जैन प्रमुखकी एक दुकान थी तो वह दुकानसे बाहर आया और मालीके दो एक तमाचे मारकर कहा-अरे तू क्यों इसे भला बुरा कहता? इन धोतियोंको तो मैंने मगाया था। लो चला गया वह ब्रह्मचारी और माली भी मन्दिर आ गया। उधर माली सोच रहा था कि देखो मैंने चोर को पकड़ा, मन्दिरके सामानकी रक्षा की फिर भी मैं ही पीटा गया। उधर वह जैन प्रमुख क्या विचार करता है कि देखो यदि मैं इस जगह मालीको न मारता तो जनतामें कितनी धर्मकी अप्रभावना होती। लोगोंके मनमें आता कि जैनियोंके ब्रह्मचारी इसी तरहके हुआ करते हैं। अब वह जैन प्रमुख मन्दिरमें मालीके पास पहुँचा और उससे हाथ जोड़ कर कहने लगा भाई आज तुमने मन्दिरके सामानकी रक्षा की, बड़ा अच्छा किया। हमने आपको परिस्थितिवश थपड़ मारा था, हमारी उस गलतीको माफ करो। वहां तुम्हारी गलती कुछ न थी। हमने वहां यह सोचकर तुम्हें मारा था कि यदि मैं ब्रह्मचारीको चोर बताता हूँ तो वहां धर्मकी अप्रभावना होगी। देखिये यह तो अभी अभी की घटना कही। अब पुराणों

की एक घटना सुनो—एक जिनेन्द्रभक्त सेठ थे। उनके मन्दिरमें एक बार एक चोर क्षुल्लक का भेष बनाकर रहने लगा। उसके मनमें यह था कि मौका मिलने पर यहांसे सोना चांदी के छत्र चमर वगैरह चुरा ले जावेंगे। सेठको एक बार कहीं जाना था तो सेठने क्षुल्लकजी से कहा—महाराज हम ४-५ दिनके लिए यहांसे बाहर जायेंगे। आप मन्दिरकी रक्षा करना (सेठको क्षुल्लकजी से बढ़कर विश्वास बताओ और किस पर हो सकता था ?) सो वह सेठ तो बाहर गया हुआ था, वहां वह क्षुल्लक मौका पाकर मन्दिरके छत्र चमर व रत्न उठा कर भग गया। मन्दिरका कोतवाल तथा कुछ सिपाही उसके पीछे लगे थे उसको पकड़ने के लिए। उसी रास्तेसे वह सेठ भी अपने घर आ रहा था, जो बाहर गया हुआ था। वहां उसने जब अपने धर्मकी अप्रभावना होते देखी तो कहा—भाई इन्हें मत पकड़ो, यह सामान तो हमने ही इनसे मगवाया था। तो यह क्या है ? जिस किसी भी प्रकार हो, धर्मकी अप्रभावना न हो ताकि लोगोंकी धर्ममें श्रद्धा बनी रहे। कदाचित किसीमें आप दोष देखें तो उसे अलगमें आप बार बार समझायें। बहुत—बहुत समझाने पर भी यदि वह न माने तो उसे समाजमें जाहिर करदो ताकि सब लोग जान जायें कि यह तो इस तरह का है, गुरु नहीं है। वहां फिर अप्रभावनाकी बातन रहेगी। देखिये—कुछ न कुछ दोष तो सभी में होते हैं, दोषोंके निवारण करनेके लिए ही तो वह साधु हुआ है, उसके दोष देख कर समाजमें उसके दोष बखाने, यह बात सम्यग्दृष्टि पुरुषसे न बन सकेगी। यह है उपगूहन अंग। अपने गुणोंको बढ़ाना, यह है उपवृंहण।

संयत्त्वका अङ्गभूत स्थितिकरण गुण—सम्यग्दृष्टिजन, जिन्होंने अपने आपके स्वभाव का दर्शन किया, परिचय किया, निज सहज स्वभावकी दृष्टिके आनन्दका अनुभव किया उनको अन्दरमें ऐसी उत्सुकता रहती है कि मैं इस सहज भावको, इस आनन्दको बढ़ाऊँ, प्राप्त करूँ, इसीमें स्थित रहूँ, इससे हटूँ नहीं, और कदाचित कर्मोदयवश कोई खोटे भाव बीचमें आयें और धर्मसे च्युत होता हो वह तो फिर जल्दी इस दोषसे हटकर अपने आपको धर्ममें स्थिर करनेका पौष करता है, और इसी प्रकार अगर दूसरे लोग भी धर्म से च्युत होने लगे तो उनकी भी तन, मन, धन, वचन सब प्रकारसे सेवा करके धर्ममें स्थिर करता है, यह स्थितिकरण अंग है। आज इसकी बहुत कमी कि साधर्मीजन साधर्मी को साधर्मीके रूपमें नहीं व्यवहार करते हैं। बहुतसा खर्च कर डालते हैं अनाप सनाप खर्च करते हैं, पान बिड़ीमें ही देखलो, लोग कितना खर्च कर तो डालते हैं। एक जगह मैंने खुद देखा है कि मन्दिरका माली जो कोई ४० रु० माहवार ही पाता था उसके मुखमें हरदम पान भरा रहा करता था। एक बार हमने उससे पूछ ही लिया

कि भाई तुम रोज कितने पान खा डालते होंगे ? तो शायद उसने बताया था कि हम तो रोज करीब ३० पान खा डालते हैं। फिर हमने पूछा कि एक पान कितने पैसे में आता है ? तो बताया ५ पैसे में। हमने कहा कि फिर तो तुम्हारे १॥) रोज के पान हो गए। भला बताओ यह फिजूल खर्च ही तो है अरे अगर वह पान खरीद ले और स्वयं ही कत्था सुपाड़ी डालकर खा लिया करे तो कोई ४-६ आने में ही उसका काम हो जाय मगर उसे भी करे कौन ? तो कितना फिजूल खर्च किए जा रहे हैं। नजाने कितने प्रकारके शौक लोगोंने लगा रक्खा है। आपके गुजरात में तो शायद उतना फाल्तू खर्च नहीं किया जाता जितना कि यू.पी. और पंजाब वगैरह में। इन फाल्तू खर्चोंकी बात कहना क्या ? आप सभी जानते हैं। इन व्यर्थके खर्चोंको दूर करो। अगर कोई गरीब साधमी बन्धु हो, साधुजन हों तो उन्हें ऐसा गुप्त रूपसे मदद करदो कि जिससे वे विपदा में न पड़े। देखिये—आजकल मजदूरभी अधिक दुःखी नहीं बड़े-बड़े उद्योगपति भी अधिक दुःखी नहीं, पर मध्यम दर्जेके लोग अधिक दुःखी हैं। आखिर वे करें क्या ? मजदूरी वे कर नहीं सकते। वे मजदूरी करने में अपनी तौहीनी समझते हैं। लोग समझते हैं कि मजदूरी करने में हमारी शानघट जायगी, पर बताओ तो सही कि उसमें शान घटनेकी कौनसी बात है ? महाराष्ट्र में और इधर इटारसी वगैरह में अनेक जगह मैंने देखा है कि बहुत से जैन भाई मजदूरीभी करते हैं। अपनी पीठपर बोझा ढोनेका भी काम करते हैं, कारीगरी भी करते हैं, कास्तकारी भी करते हैं। ऐसा करने में कौनसी बेशानकी बात हो गई, बल्कि यह तो एक व्यापकताका परिचय कराने वाली बात होगी कि सब तरहके लोग जैनधर्मका पालन करते हैं। तो यह सोचना गलत है कि इसमें हमारी शान घटती है, अरे यह सोचें कि पालन पोषण करनेके लिए हमें कुछभी उचित काम करना पड़े तो उसमें हमें कोई लज्जाकी बात नहीं है। फिर धर्मसे, स्थिर रहना कितने बड़े लाभकी बात है। अब संकोच संकोच में आखिर बुरी दशा आ जाती है। कोई बड़ा आदमी अगर गरीब हो रहा है तो वह पहिनेके सोना चांदी रत्न जवाहरात आदिके गहने बेच सकता था, मगर वह यह लज्जा करता है कि मैं खुद बेचूंगा तो लोग मुझे क्या कहेंगे ? इस लज्जाके कारण वह उन्हें दूसरे लोगोंके द्वारा बिकवाता है या धरोहर घराता है। आखिर उसका फल यही देखने को मिलता है कि उसका सारा जेवर गायब हो जाता है। उसके हाथ कुछ नहीं लगता है। यहां तक कि उसकी ऐसी नौबत आ जाती है कि वस मिट्टीके बर्तनोंमें ही उसे गुजारा करना पड़ता है। यह देखिये जरा जरासी, बातोंमें सरम करनेका फल तो हमें विवेकपूर्वक रहना चाहिए। बाहरी बातोंमें किसीभी प्रकारका उचित कार्य करेंगे तो उसमें कोई सरमकी बात नहीं। कुछभी कर लें, पर धर्मकी क्षति न होने पावे। धर्ममें हमारा मन

न लगे तो क्षति कहलाती है। तो जिस किसोभी प्रकार हो, जो दुःखी हैं, गरीब हैं उनको तन, मन, धन, वचनसे सब प्रकारसे धीरता देकर उसे धर्ममें स्थिर करना यह है स्थितिकरण।

सम्यक्त्वका अङ्गभूत वात्सल्य गुण—जिसने अपने आपके स्वरूपमें वात्सल्य बनाया है, प्रीति जगाया है, अपने गुणोंमें अनुराग जगाया है उसका बाहर भी अनुराग पुष्पता है। अपने गुणोंमें वृद्धिकरना, अपने गुणोंमें अनुराग करना, आनन्द मानना, जब निर्विकल्प समाधि जैसी स्थिति होती हो, अपना ज्ञान अपने ज्ञानस्वरूपमें लग रहा हो और ज्ञानमें ज्ञानस्वरूप समा रहा हो उस समय एक निर्विकल्प जैसी दशा होती हों, सामान्यप्रतिभास बर्त रहा हो तो उसमें उसको कितनी उमंग है, कितना आनन्द वह मानता है। जैसे कि लोग जिस कार्यको बहुत महत्व वाला समझते हैं तो वे उमंगसे लगते हैं। ज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीव अपने आपके स्वरूपके रमणमें उमंग बनाते हैं। उसका कारण क्या? एक वात्सल्य, निज वात्सल्य तो ऐसा जो निज वात्सल्यवान् पुरुष है वह दूसरे धर्मात्मा जीवोंमें भी निष्कपट वात्सल्य करता है। उसकी उपमा दी है गाय बछड़ेकी तरह। जैसे गायको अपने बछड़ेसे कोई प्रकारकी उम्मीद नहीं होती कि यह मुझे घास खिलायगा या यह मेरे किसी काम आयगा, पर उसे अपने बछड़ेसे बड़ी प्रीति रहती है। और, ऐसी प्रीति रहती कि अगर बछड़ा नदीमें गिर जाय तो वह भी नदीमें गिरकर अपने प्राण गवा दें। इतनी अधिक प्रीति होती है गायको अपने बछड़े पर। लेकिन उस गायको बछड़ेसे कोई स्वार्थ नहीं होता, वह एक निष्कपट प्रीति है, इसीतरह एक एक धर्मात्मा पुरुषको दूसरे धर्मात्मा पुरुषके प्रति निष्कपट प्रीति होती है, यह कहलाता है वात्सल्य अंग

सम्यक्त्वका अङ्गभूत प्रभावना अङ्ग—सम्यक्त्वका अन्तिम अंग है प्रभावना अंग। प्रभावना किसे कहते हैं? देखों अज्ञान अंधकार दूर करनेका कोई प्रोग्रामन हो, ज्ञानकी प्रसिद्धि करनेका कोई प्रोग्राम न हो वह तो प्रभावनाका काम नहीं है। जैसे समारोह करना। बहुत से लोगों को बुलाते हैं, हजारों लाखों रुपये की कीमत का सामान निकलता है। धन्न, चमर, रथ, आदि निकलते हैं। गाजे बाजे से बड़ा हो हल्ला होता है। दिन भर इस तरह से व्यतीत कर दिया, फिर वहां से आकर जहां का तहां सामान पहुँचा दिया। लो समारोह पूरा हो गया। उसमें न तो कोई धर्मशास्त्र सभा का प्रोग्राम रखा, न कोई ज्ञानचर्चा का प्रोग्राम रखा तो भला बतलाओ उससे सौख किसने पायी? अरे न तो उस समाजने सीख पायी और न अन्य समाजने, बल्कि अन्य लोगोंकोई ध्या हो गई। यह एक बात बतला रहे हैं कि जो ढंगकी चीज है उसके विरुद्ध चलने से

कोई न कोई कष्टही आयागा । और, कष्ट आया है, ऐसे अनेक उदाहरण भी हैं । जिन लोगों ने देखा कि यह बड़े धनिक है, इस तरह कमाते हैं, ऐसा कमा डालते हैं और यह दिखाते हैं, यों अनेक प्रकार के भाव उठते हैं । तो वहां गलती क्या हुई ? काम तो करे, काम करनेको मना नहीं, जैसे बने यथौचित समारोह भी करें व जप, तप, व्रत, संयम, आदिक भी करें मगर मूल बात को न छोड़े । मूल बात क्या है कि अज्ञान दूर होना । अपना अज्ञान दूर करें दूसरों का अज्ञान दूर करें और ज्ञान की प्रभावनाके साथ-साथ प्रभावना हो तो वह प्रभावना है, उसमें आपत्ति भी नहीं आती । यदि व्याख्याताओं के व्याख्यान में किसी भी अज्ञेन बन्धु की समझ में आ जाय कि तत्त्वयह है, स्वरूप यह है, यह तो मेरे आत्मा की बात कहीजा रही है । धर्म तो आत्मा का होता है, व्यक्ति का नहीं, समाजका नहीं । आत्माको दुख से हटाने के लिए, सुखमें पहुंचाने के लिए अपने आपका धर्म है । तो देखो उनसे तो आपसे और प्रेम बढ़ेगा, उनकी तो आपकी ओर रुचि बढ़ेगी, आपसे वात्सल्य बढ़ेगा । समन्तभद्राचार्य ने स्पष्ट कहा है अज्ञानतिमिख्याप्तिमयाकृत्य यथायथम् जिनशासनमाहात्म्यप्रकाशः स्यात्प्रभावना अज्ञान रूपी अंधकारको दूर करके फिर यथायोग्य जैनशासनके माहात्म्यको प्रकट करना सो प्रभावना है ।

सम्यक्त्वके अष्ट अङ्गोंका पारमार्थिक व व्यावहारिक प्रयोगका उपसंहार—उक्त प्रकार ८ अंगों सहित सम्यग्दर्शन है । तो अपने आपमें विचार करें, पौरुष करे, मेरे को ये ८ अंग प्राप्त हों, इन अंगोंमें व्यवहार क्या ? सो देखिये जिनेन्द्र भगवान की वाणीमें शंका न करना, धर्म पालन करके किसीभी संसारी काम की इच्छा न करना । धर्मात्माजनोंको देखकर उनकी सेवा करके ग्लानि न करना । कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु इनके चमत्कार को देख कर उसमें रीझ न जाना, धर्मात्मा जनों से कोई दोष बन जाय तो उस दोषको प्रकट न करना, धर्मात्माजन अगर किसी कारणसे धर्मसे कुछ गिरने वाले हों, कठिनाई से गरीबीसे, किसी कारण से तो उनको किसी प्रकार बने धर्ममें स्थिर करना और ज्ञानकी प्रभावना करना ये ८ बातें व्यवहारत हैं । और निश्चयतः अपने स्वरूपमें शंका न रखना, ज्ञानमात्र ही मैं हूँ, यह निर्विघन है, यह सहज आनन्दमय है, यह ही मैं हूँ । अन्य कुछ मैं नहीं हूँ । कभी अन्य बातों की इच्छा न लाना, श्रद्धा में यह न रखना कि ऐसी चीज प्राप्त हो तो मेरे को हित है । अपने को कोई बाधा आये तो उसमें ग्लानि न करना । उसे समता से सहना, विषाद न करना और अपने आपके स्वरूप में सजग रहना, उसमें मूढ़तानलाना । और अपने गुण प्रकट करना, दोष दूर करना, और खुद धर्म से च्युत होता हो तो पुनः उसमें स्थिर करना अपने स्वभाव में रुचि रखना और अपने ज्ञान को विकास करना, यह ८ अंगों सहित सम्यग्-

दर्शन है ।

शरीरके आठ अङ्गों द्वारा सम्यक्त्वके अष्टाङ्गोंका समर्थन—देखो इस शरीर के भी ८ अंग हैं—२ पैर, २ हाथ, छाती, पीठ, नितम्ब और मस्तक । इन अंगों से भी ऐसा ही काम लिया जा रहा है । जैसे कि सम्यग्दर्शन के अंगों का काम है । देखो जब कोई आदमी चलता है तो वह अपना दाहिना पैर निशंक होकर रखता है और फिर मानो उपेक्षा करके पिछला पैर उठाता है । तो दाहिना पैर निशंकित जैसा काम करता है और पिछला (बायाँ) पैर निःकांक्षित जैसा काम करता है । जैसे सम्यग्दृष्टि जीव को भोग साधनों में आकांक्षा नहीं रहती ऐसे ही इस पुरुष को वह पिछला पैर उठाने में आकांक्षा कुछ नहीं रहती । वह बायें पैरकी छुई हुई जमीन को देखता तक नहीं है । अच्छा अब देखो बायें हाथ की बात । लोग शौच करके इसी बायें हाथसे शुद्धि करते हैं फिर भी इस बायें हाथ से कोई ग्लानि तो नहीं करता । बल्कि बायें हाथको तो और भी अधिक मुद्रिकाओंसे सजाया जाता है । तो इस तरह से सम्यग्दृष्टिको निर्विचिकित्सा होती है । वह धर्ममाजनोंसे ग्लानि नहीं करता । अब दाहिने हाथकी बात देखो जैसे अमूढ़ दृष्टिमें जीवको मूढ़ताकी बात नहीं आती और बात सत्य कहता है कि यह है देव । ऐसे ही दाहिना हाथ भी आगे बढ़कर यही कहता कि बात तो यह सत्य हैं, बांकी भ्रूठ है । तो देखिये इस दाहिने हाथने अमूढ़ दृष्टिका पार्ट अदा किया । अब इसके बाद आता है उपगूहन अंग । इस उपगूहन अंगका पार्ट अदा करता है यह नितम्ब । देखो नितम्बको कोई उधाड़कर तो नहीं रखता, ढके रहता हैं उधाड़ने वाला वह ही होगा जो अलौकिक पुरुष हो । जैसे लोग नितम्ब ढकते हैं ऐसे ही सम्यग्दृष्टि पुरुष धर्ममाके दोषोंको ढकते हैं । ये शरीरके अंग भी सम्यक्त्व का पार्ट अदाकर रहे हैं । इसके बाद है स्थितिकरण यह पीठ स्थितिकरण का पार्ट अदाकर रही है । चाहै मन दो मन का वजन इस पीठ पर रख दो फिर भी उस बोझ को स्थिर करदे । तो देखिये यह पीठ स्थितिकरणका पार्ट अदा कर रही है । इसके बाद है वात्सल्य अंग देखिये आपकी यह छाती वात्सल्य अंगका पार्ट अदा कर रही है । जब आप किसी से वात्सल्य करते हैं तो उसे छाती से लगा लेते हैं । इसके बाद है प्रभावना अंग । तो यह मस्तक प्रभावना अंगका पार्ट अदा कर रहा है । मस्तक से (दिमाग से) सोचकर ज्ञान बनाया जाता, फिर उससे ज्ञानकी प्रभावनाका काम किया जाता । तो देखिये यह मस्तक प्रभावना अंगका पार्ट अदा कर रहा है । तो ये शरीर के अंग देखो इनमें भी सम्यक्त्व के ८ अंगों की जैसी बात बसी हुई है । ऐसा यह साष्टांग सम्यग्दर्शन है कैसा है कि किसीके निसर्ग से होता और किसीके अधिात्मसे होता । इस बात का वर्णन इस तीसरे सूत्रमें पूर्ण किया है । मोक्षक उपाय बताने वाले

इस मोक्षशास्त्र ग्रन्थ में द्वितीय सूत्र में जो कहा गया था कि तत्त्वार्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। इसीसे सांघमें तत्रसे चर्चा चली आ रही है। अब यहां यह जिज्ञासा हो रही कि वह तत्त्व क्या है जिस तत्त्वसे निर्णय किये गए पदार्थका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। इस तत्त्वकी बात अब इस चतुर्थ सूत्रमें कही जा रही है। जीवाजीवाश्रवबंधसंवर निर्जरा-मोक्षास्तत्त्वम्

मोक्षशास्त्र प्रवचन: द्वितीय भाग

आचार्य संतोकी वाणीमें निश्चयव्यवहार समन्वयकी झलक—जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्बर, निर्जरा और मोक्ष ये ७ तत्त्व हैं पहिले इस बातपर ही दृष्टि दीजिये कि आचार्योंकी नीति निश्चय व्यवहारात्मक रही। प्रतिपादन रीति देखिये प्रथम सूत्र कहा गया सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्राणि मोक्षमार्गः तो इसही सूत्रमें मोक्षमार्गः निश्चय वचन है और सम्यग्दर्शन ज्ञानचारित्राणि व्यवहारवचन है। ये हैं तीन और है बहुवचन। जो तीन है, बहुवचन है वह तो व्यवहार हुआ। और, जो एकत्वको लेकर एक वचनमें प्रयोग है-मोक्षमार्गः वह निश्चय का प्रतीक हुआ। फिर द्वितीय सूत्र कहा गया तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं, यहां तत्त्वार्थश्रद्धानं है व्यवहारवचन, सम्यग्दर्शनं है निश्चयवचन। प्रयोजनभूत अर्थोंका श्रद्धान करना, एक तो यह विवरण किया, कैसा श्रद्धान जो कि ज्ञान से विशेष सम्बन्ध रखता है उस माध्यमसे वर्णन किया वह व्यवहार वचन हुआ। और, सम्यग्दर्शन जो लक्ष्यभूत है वह निश्चय प्रतीक है। तृतीय सूत्रमें कहा गया, तन्निसर्गा दधिगमाद्वा तत् निसर्गात् अधिगमाद्वा इसमें तत् शब्द है निश्चय प्रतीक, निसर्गाद् अधिगमाद्वा यह है व्यवहार प्रतीक। तत् एक संकेत है, एक वचन है, लक्ष्यको दिखाने वाला है, और निसर्गसे अधिगमसे उत्पन्न होता है इस प्रकारका विश्लेषण, हेतुका वर्णन यह सब व्यवहारवचन है, तो अब इस चतुर्थ सूत्रमें भी देखिये जीवाजीवाश्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षाः यह है व्यवहार वचन और तत्त्वं यह है निश्चयवचन। ये ७ हैं, संख्या है अनेक है, सो बहुवचन है। यह व्यवहारवचन हुआ तत्त्वं एक वचन है, लक्ष्यको दिखानेमें समर्थ है, अथवा एकत्वका अभिप्राय लिए हुए है अतः हुआ निश्चयवचन। अब सूत्रार्थ क्या हुआ जीव-अजीव, आश्रव, बंध, सम्बर, निर्जरा, मोक्ष ये सब तत्त्व हैं एक वचनसे तत्त्वका जुड़ान बनेगा

तत्त्वका तथ्य—बात यहां यह है कि तत्त्व तो जो है सो है। वह क्या है? एक है; इस रूपमें भी नहीं कहा जायगा किन्तु अनुभवमें नजरमें जो आया सो तत्त्व। इसके सम्बन्धमें समयसारके एक कलसमें बताया है कि इस शुद्ध तत्त्वा साक्षात् दर्शन कराने वाला शुद्धनय है अर्थात् दर्शन तो होता है अनुभवमें, जहां शुद्धनय भी नहीं रहता, लेकिन उस